नमो नमो निम्मलदंसणस्स
बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:
पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-५/१

भगवती/व्याख्याप्रज्ञप्ति-१

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

'आगम' हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प- ५/१

आगमसूत्र-५- 'भगवती'

अंगसूत्र- ५ -हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
.....	भगवती सूत्र भाग-१	.....		भगवती सूत्र भाग-२..चालु	
०१	शतक १	००५	२१	शतक २१	१४२
०२	शतक २	०३८	२२	शतक २२	१४४
०३	शतक ३	०५७	२३	शतक २३	१४६
०४	शतक ४	०८६	२४	शतक २४	१४७
०५	शतक ५	०८८	२५	शतक २५	१७६
०६	शतक ६	१११	२६	शतक २६	२१३
०७	शतक ७	१२९	२७	शतक २७	२१८
०८	शतक ८	१४९	२८	शतक २८	२१९
०९	शतक ९	१८९	२९	शतक २९	२२०
१०	शतक १०	२२०	३०	शतक ३०	२२२
११	शतक ११	२२९	३१	शतक ३१	२२६
	भगवती सूत्र भाग-२		३२	शतक ३२	२२९
१२	शतक १२	००५	३३	शतक ३३	२३०
१३	शतक १३	०२९	३४	शतक ३४	२३३
१४	शतक १४	०४८	३५	शतक ३५	२३९
१५	शतक १५	०६०	३६	शतक ३६	२४४
१६	शतक १६	०८१	३७	शतक ३७	२४५
१७	शतक १७	०९३	३८	शतक ३८	२४५
१८	शतक १८	१०१	३९	शतक ३९	२४५
१९	शतक १९	११८	४०	शतक ४०	२४६
२०	शतक २०	१२५	४१	शतक ४१	२४९

४५ आगम वर्गीकरण

क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	---------------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત ‘તત્ત્વાર્થસૂત્ર’ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[५/१] भगवती/व्याख्याप्रज्ञप्ति

अंगसूत्र- ५/१ - हिन्दी अनुवाद

शतक–१

उद्देशक-१

सूत्र - १

अर्हन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।

सूत्र - २

ब्राह्मी लिपि को नमस्कार हो ।

सूत्र - ३

(प्रथम शतक के दस उद्देशकों की संग्रहणी गाथा इस प्रकार है–) ''चलन'' (के विषय में प्रश्न), दुःख, कांक्षा-प्रदोष, (कर्म) प्रकृति, पृथ्वीयाँ, यावत्, नैरयिक, बाल, गुरुक और चलनादि ।

सूत्र - ४

श्रुत (द्वादशांगीरूप अर्हत्प्रवचन) को नमस्कार हो ।

सूत्र - ५

उस काल (अवसर्पिणी काल के) और उस समय (चौथे आरे-भगवान महावीर के युग में) राजगृह नामक नगर था । (उसका वर्णन औपपातिक सूत्र में अंकित चम्पानगरी के वर्णन के समान समझ लेना चाहिए) उस रागजृह नगर के बाहर ईशानकोण में गुणशीलक नामक चैत्य था । वहाँ श्रेणिक राजा था और चिल्लणादेवी रानी थी ।

सूत्र - ६

उस काल में, उस समय में (वहाँ) श्रमण भगवान महावीर स्वामी विचरण कर रहे थे, जो आदि-कर, तीर्थंकर, स्वयं तत्त्व के ज्ञाता, पुरुषोत्तम, पुरुषों में सिंह की तरह पराक्रमी, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक–श्वेत कमल रूप, पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोक-प्रदीप, लोकप्रद्योतकर, अभयदाता, श्रुतधर्मरूपी नेत्रदाता, मोक्षमार्ग-प्रदर्शक, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, धर्मोपदेशक, धर्मनायक, धर्म-सारथि, धर्मवर-चातुरन्त-चक्रवर्ती, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शनधर, छद्मरहित, जिन, ज्ञायक, बुद्ध, बोधक, बाह्य-आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित, दूसरों को कर्मबन्धनों से मुक्त कराने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी थे । तथा जो सर्व बाधाओं से रहित, अचल, रोगरहित, अनन्तज्ञानदर्शनादियुक्त, अक्षय, अव्याबाध, पुनरागमनरहित सिद्धिगति नामक स्थान को सम्प्राप्त करने के इच्छुक थे

सूत्र - ७

(भगवान महावीर का पदार्पण जानकर) परीषद् (राजगृह के राजादि लोग तथा अन्य नागरिकों का समूह भगवान के दर्शन, वन्दन एवं धर्मोपदेश श्रवण के लिए) नीकली । (भगवान ने उस विशाल परीषद् को) धर्मोपदेश दिया । परीषद् वापस लौट गई ।

सूत्र - ८

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पास उत्कुटुकासन से नीचे सिर झुकाए हुए, ध्यान रूपी कोठे में प्रविष्ट श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे । वह गौतम-गोत्रीय थे, सात हाथ ऊंचे, समचतुरस्र संस्थान एवं वज्रऋषभ-नाराच संहनन वाले थे । उनके शरीर का वर्ण सोने के टुकड़े की रेखा के समान तथा पद्म-पराग के समान (गौर) था। वे उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, उदार, घोर (परीषह तथा इन्द्रियादि पर विजय पाने में कठोर),

घोरगुण सम्पन्न, घोरतपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी, शरीर-संस्कार के त्यागी थे । उन्होंने विपुल (व्यापक) तेजोलेश्या को संक्षिप्त (अपने शरीर में अन्तर्लीन) कर ली थी, वे चौदह पूर्वों के ज्ञाता और चतुर्ज्ञानसम्पन्न सर्वाक्षर-सन्निपाती थे ।

सूत्र - ९

तत्पश्चात् जातश्रद्ध (प्रवृत्त हुई श्रद्धा वाले), जातसंशय, जातकुतूहल, संजातश्रद्ध, समुत्पन्न श्रद्धा वाले, समुत्पन्न कुतूहल वाले गौतम अपने स्थान से उठकर खड़े होते हैं ।

उत्थानपूर्वक खड़े होकर श्रमण गौतम जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं, उस ओर आते हैं । निकट आकर श्रमण भगवान महावीर को उनके दाहिनी ओर से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं । फिर वन्दन-नमस्कार करते हैं । नमस्कार करके वे न तो बहुत पास और न बहुत दूर भगवान के समक्ष विनय से ललाट पर हाथ जोड़े हुए भगवान के वचन सूनना चाहते हुए उन्हें नमन करके व उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-हे भदन्त ! क्या यह निश्चित कहा जा सकता है कि १. जो चल रहा हो, वह चला ?, २. जो उदीरा जा रहा है, वह उदीर्ण हुआ?, ३. जो वेदा जा रहा है, वह वेदा गया ?, ४. जो गिर रहा है, वह गिरा ?, ५. जो छेदा जा रहा है, वह छिन्न हुआ ?, ६. जो भेदा जा रहा है, वह भिन्न हुआ ?, ७. जो दग्ध हो रहा है, वह दग्ध हुआ ?, ८. जो मर रहा है, वह मरा ?, ९. जो निर्जरित हो रहा है, वह निर्जीर्ण हुआ ?

हाँ, गौतम ! जो चल रहा हो, वह चला, यावत् निर्जरित हो रहा है, वह निर्जीर्ण हुआ ।

सूत्र - १०

भगवन् ! क्या ये नौ पद, नानाघोष और नाना व्यञ्जनों वाले एकार्थक हैं ? अथवा नाना घोष वाले और नाना व्यञ्जनों वाले भिन्नार्थक पद हैं ?

हे गौतम ! १. जो चल रहा है, वह चला; २. जो उदीरा जा रहा है, वह उदीर्ण हुआ; ३. जो वेदा जा रहा है, वह वेदा गया; ४. और जो गिर (नष्ट) हो रहा है, वह गिरा (नष्ट हुआ), ये चारों पद उत्पन्न पक्ष की अपेक्षा से एकार्थक, नाना-घोष वाले और नाना-व्यञ्जनों वाले हैं । तथा १. जो छेदा जा रहा है, वह छिन्न हुआ, २. जो भेदा जा रहा है, वह भिन्न हुआ, ३. जो दग्ध हो रहा है, वह दग्ध हुआ; ४. जो मर रहा है, वह मरा; और ५. जो निर्जीर्ण किया जा रहा है, वह निर्जीर्ण हुआ, ये पाँच पद विगतपक्ष की अपेक्षा से नाना अर्थ वाले, नाना-घोष वाले और नाना-व्यञ्जनों वाले हैं ।

सूत्र - ११

भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही है ? हे गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम की है ।

भगवन् ! नारक कितने काल (समय) में श्वास लेते हैं और कितने समय में श्वास छोड़ते हैं-कितने काल में उच्छ्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं ? (प्रज्ञापना-सूत्रोक्त) उच्छ्वास पद (सातवें पद) के अनुसार समझना चाहिए

भगवन् ! क्या नैरयिक आहारार्थी होते हैं ? गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के आहारपद के प्रथम उद्देशक के अनुसार समझ लेना ।

सूत्र - १२

नारक जीवों की स्थिति, उच्छ्वास तथा आहार-सम्बन्धी कथन करना चाहिए । क्या वे आहार करते हैं ? वे समस्त आत्मप्रदेशों से आहार करते हैं ? वे कितने भाग का आहार करते हैं या वे सर्व-आहारक द्रव्यों का आहार करते हैं ? और वे आहारक द्रव्यों को किस रूप में बार-बार परिणमाते हैं ?

सूत्र - १३

भगवन् ! नैरयिकों द्वारा पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए ? आहारित तथा (वर्तमान में) आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत हुए ? अथवा जो पुद्गल अनाहारित हैं, वे तथा जो पुद्गल आहार के रूप में ग्रहण किए जाएंगे, वे परिणत हुए ? अथवा जो पुद्गल अनाहारित हैं और आगे भी आहारित नहीं होंगे, वे परिणत हुए ?

हे गौतम ! नारकों द्वारा पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए; १. (इसी तरह) आहार किये हुए और

आहार किये जाते हुए पुद्‌गल परिणत हुए परिणत होते हैं, २. किन्तु नहीं आहार किये हुए (अनाहारित) पुद्‌गल परिणत नहीं हुए, तथा भविष्य में जो पुद्‌गल आहार के रूप में ग्रहण किये जाएंगे, वे परिणत होंगे, ३. अनाहारित पुद्‌गल परिणत नहीं हुए, तथा जिन पुद्‌गलों का आहार नहीं किया जाएगा, वे भी परिणत नहीं होंगे ४. ।

सूत्र – १४, १५

हे भगवन्‌ ! नैरयिकों द्वारा पहले आहारित पुद्‌गल चय को प्राप्त हुए ? हे गौतम ! जिस प्रकार वे परिणत हुए, उसी प्रकार चय को प्राप्त हुए; उसी प्रकार उपचय को प्राप्त हुए; उदीरणा को प्राप्त हुए, वेदन को प्राप्त हुए तथा निर्जरा को प्राप्त हुए ।

परिणत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण, इस एक-एक पद में चार प्रकार के पुद्‌गल (प्रश्नोत्तर के विषय) होते हैं ।

सूत्र - १६

हे भगवन्‌ ! नारकजीवों द्वारा कितने प्रकार के पुद्‌गल भेदे जाते हैं ? गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा दो प्रकार के पुद्‌गल भेदे जाते हैं । अणु (सूक्ष्म) और बादर ।

भगवन्‌ ! नारक जीवों द्वारा कितने प्रकार के पुद्‌गल चय किये जाते हैं ? गौतम ! आहार द्रव्यवर्गणा की अपेक्षा वे दो प्रकार के पुद्‌गलों का चय करते हैं, वे इस प्रकार हैं-अणु और बादर २.; इसी प्रकार उपचय समझना।

भगवन्‌ ! नारक जीव कितने प्रकार के पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं ? गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा दो प्रकार के पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं । वह इस प्रकार है-अणु और बादर । शेष पद भी इसी प्रकार कहने चाहिए;- वेदते हैं, निर्जरा करते हैं, अपवर्त्तन को प्राप्त हुए, अपवर्त्तन को प्राप्त हो रहे हैं, अपवर्त्तन को प्राप्त करेंगे, संक्रमण किया, संक्रमण करते हैं, संक्रमण करेंगे, निधत्त हुए, निधत्त होते हैं, निधत्त होंगे, निकाचित हुए, निकाचित होते हैं, निकाचित होंगे, इन सब पदों में भी कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा (अणु और बादर पुद्‌गलों का कथन करना चाहिए) ।

सूत्र - १७

भेदे गए, चय को प्राप्त हुए, उपचय को प्राप्त हुए, उदीर्ण हुए, वेद गए और निर्जीण हुए (इसी प्रकार) अपवर्त्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन (इन पिछले चार) पदोंमें भी तीनों प्रकार काल कहना चाहिए । हे भगवन्‌! नारक जीव जिन पुद्‌गलों को तैजस और कार्मणरूप में ग्रहण करते हैं, उन्हें क्या अतीत काल में ग्रहण करते हैं ? प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) काल में ग्रहण करते हैं ? अथवा अनागत (भविष्य) काल में ग्रहण करते हैं ? गौतम! अतीत काल में ग्रहण नहीं करते; वर्तमान काल में ग्रहण करते हैं; भविष्यकाल में ग्रहण नहीं करते ।

हे भगवन्‌ ! नारक जीव तैजस और कार्मणरूप में ग्रहण किये हुए जिन पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं, सो क्या अतीत काल में गृहीत पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं ? या वर्तमान काल में ग्रहण किये जाते हुए पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं ? अथवा जिनका उदयकाल आगे आने वाला है, ऐसे पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं ? हे गौतम ! वे अतीत काल में गृहीत पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं, (परन्तु) वर्तमान काल में ग्रहण किये जाते हुए पुद्‌गलों की उदीरणा नहीं करते, तथा आगे ग्रहण किये जाने वाले पुद्‌गलों की भी उदीरणा नहीं करते । इसी प्रकार अतीत काल में गृहीत पुद्‌गलों को वेदते हैं, और उनकी निर्जरा करते हैं ।

सूत्र - १८

भगवन्‌ ! क्या नारक जीवप्रदेशों से चलित कर्म को बाँधते हैं, या अचलित कर्म को बाँधते हैं ? गौतम ! (वे) चलित कर्म को नहीं बाँधते, (किन्तु) अचलित कर्म को बाँधते हैं । इसी प्रकार अचलित कर्म की उदीरणा करते हैं, अचलित कर्म का ही वेदन करते हैं, अपवर्त्तन करते हैं, संक्रमण करते हैं, निधत्ति करते हैं और निकाचन करते हैं। इन सब पदों में अचलित (कर्म) कहना चाहिए, चलित (कर्म) नहीं ।

भगवन्‌ ! क्या नारक जीवप्रदेश से चलित कर्म की निर्जरा करते हैं अथवा अचलित कर्म की निर्जरा करते हैं ? गौतम ! (वे) चलित कर्म की निर्जरा करते हैं, अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते ।

सूत्र - २०

बन्ध, उदय, वेदन, अपवर्त्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन के विषय में अचलित कर्म समझना चाहिए और निर्जरा के विषय में चलित कर्म समझना चाहिए ।

सूत्र - २१

इसी तरह स्थिति और आहार के विषय में भी समझ लेना । जिस तरह स्थिति पद में कहा गया है उसी तरह स्थिति विषय में कहना चाहिए । सर्व जीव संबंधी आहार भी पन्नवणा सूत्र के प्रथम उद्देशक में कहा गया है उसी तरह कहना चाहिए ।

भगवन् ! असुरकुमारों की स्थिति कितने काल की है ? हे गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक की है । भगवन् ! असुरकुमार कितने समय में श्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं? गौतम ! जघन्य सात स्तोकरूप काल में और उत्कृष्ट एक पक्ष से (कुछ) अधिक काल में श्वास लेते और छोड़ते हैं ।

हे भगवन् ! क्या असुरकुमार आहार के अभिलाषी होते हैं ? हाँ, गौतम ! (वे) आहार के अभिलाषी होते हैं। हे भगवन् ! असुरकुमारों को कितने काल में आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ? गौतम ! असुरकुमारों को आहार दो प्रकार का कहा गया है; जैसे कि–आभोगनिवर्त्तित और अनाभोग-निवर्त्तित । इन दोनों में से जो अनाभोग-निर्वर्त्तित आहार है, वह विरहरहित प्रतिसमय (सतत) होता रहता है । (किन्तु) आभोगनिवर्त्तित आहार की अभिलाषा जघन्य चतुर्थभक्त अर्थात्–एक अहोरात्र से और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष से कुछ अधिक काल में होती है।

भगवन् ! असुरकुमार किन पुद्‌गलों का आहार करते हैं ? गौतम ! द्रव्य से अनन्तप्रदेशी द्रव्यों का आहार करते हैं । क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से प्रज्ञापनासूत्र का वही वर्णन जान लेना चाहिए, जो नैरयिकों के प्रकरण में कहा गया है ।

हे भगवन् ! असुरकुमारों द्वारा आहार किये हुए पुद्‌गल किस रूप में बार-बार परिणत होते हैं ? हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय रूप में, सुन्दर रूप में, सुवर्णरूप में, इष्ट रूप में, ईच्छित रूप में, मनोहर (अभिलषित) रूप में, ऊर्ध्वरूप में परिणत होते हैं, अधःरूप में नहीं; सुखरूप में परिणत होते हैं, किन्तु दुःखरूप में परिणत नहीं होते ।

हे भगवन् ! क्या असुरकुमारों द्वारा आहृत-पुद्‌गल परिणत हुए ? गौतम ! असुरकुमारों के अभिलाप में, अर्थात्–नारकों के स्थान पर 'असुरकुमार' शब्द का प्रयोग करके अचलित कर्म की निर्जरा करते हैं, यहाँ तक सभी आलापक नारकों के समान ही समझना ।

हे भगवन् ! नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की है । हे भगवन् ! नागकुमार देव कितने समय में श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं? गौतम ! जघन्यतः सात स्तोक में और उत्कृष्टतः मुहूर्त्त-पृथक्त्व में श्वासोच्छ्‌वास लेते हैं । भगवन् ! क्या नागकुमार देव आहारार्थी होते हैं ? हाँ, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं ।

भगवन् ! नागकुमार देवों को कितने काल के अनन्तर आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ? गौतम ! नागकुमार देवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है–आभोगनिवर्त्तित और अनाभोग-निवर्त्तित । इनमें जो अनाभोग-निवर्त्तित आहार है, वह प्रतिसमय विरहरहित (सतत) होता है; किन्तु आभोगनिवर्त्तित आहार की अभिलाषा जघन्यतः चतुर्थभक्त (एक अहोरात्र) पश्चात् और उत्कृष्टतः दिवस-पृथक्त्व के बाद उत्पन्न होती है । शेष 'चलित कर्म की निर्जरा करते हैं, किन्तु अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते' यहाँ तक सारा वर्णन असुरकुमार देवों की तरह समझ लेना चाहिए ।

इसी तरह सुपर्णकुमार देवों से लेकर स्तनितकुमार देवों तक के भी (स्थिति से लेकर चलित कर्म-निर्जरा तक के) सभी आलापक (पूर्ववत्) कह देने चाहिए ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, और

उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है । भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल में श्वास-निःश्वास लेते हैं ? गौतम ! (वे) विमात्रा से-विविध या विषम काल में श्वासोच्छ्वास लेते हैं । भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव आहार के अभिलापी होते हैं? हाँ, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं । भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ? हे गौतम ! (उन्हें) प्रतिसमय विरहरहित निरन्तर आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव क्या आहार करते हैं ? गौतम ! वे द्रव्य से अनन्तप्रदेशी द्रव्यों का आहार करते हैं, इत्यादि सब बातें नैरयिकों के समान जानना चाहिए । यावत् पृथ्वीकायिक जीव व्याघात न होतो छहों दिशाओं से आहार लेते हैं । व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच दिशाओं से आहार लेते हैं । वर्ण की अपेक्षा से काला, नीला, पीला, लाल, हारिद्र तथा शुक्ल वर्ण के द्रव्यों का आहार करते हैं । गन्ध की अपेक्षा से सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध, दोनों गन्ध वाले, रस की अपेक्षा से तिक्त आदि पाँचों रस वाले, स्पर्श की अपेक्षा से कर्कश आदि आठों स्पर्श वाले द्रव्यों का आहार करते हैं । शेष सब वर्णन पूर्ववत् ही समझना । सिर्फ भेद यह है-भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीव कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का स्पर्श-आस्वादन करते हैं ? गौतम ! वे असंख्यातवे भाग का आहार करते हैं और अनन्तवे भाग का स्पर्श-आस्वादन करते हैं । यावत्-'हे गौतम ! स्पर्शेन्द्रिय के रूप में साता-असातारूप विविध प्रकार से बार-बार परिणत होते हैं । (यावत्) 'अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते', यहाँ तक का सब वर्णन नैरयिकों के समान समझना ।

इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय तक के जीवों के विषय में समझ लेना चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि जिसकी जितनी स्थिति हो उसकी उतनी स्थिति कह देनी चाहिए तथा इन सबका उच्छ्वास भी विमात्रा से-विविध प्रकार से-जानना चाहिए; द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कह लेनी चाहिए । उनका श्वासोच्छ्वास विमात्रा से कहना । द्वीन्द्रिय जीवों के आहार के विषय में (यों) पृच्छा करना । भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा होती है ? अनाभोग-निवर्त्तित आहार पहले के ही समान समझना । जो आभोग-निवर्त्तित आहार है, उसकी अभिलाषा विमात्रा से असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त्त में होती है । शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना

भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव जिन पुद्‌गलों को आहाररूप से ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सबका आहार कर लेते हैं? अथवा उन सबका आहार नहीं करते ? गौतम ! द्वीन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है, जैसे कि-रोमाहार और प्रक्षेपाहार । जिन पुद्‌गलों को वे रोमाहार द्वारा ग्रहण करते हैं, उन सबका सम्पूर्णरूप से आहार करते हैं; जिन पुद्‌गलों को वे प्रक्षेपाहाररूप से ग्रहण करते हैं, उन पुद्‌गलों में से असंख्यातवाँ भाग आहार ग्रहण किया जाता है, और (शेष) अनेक-सहस्त्रभाग बिना आस्वाद किये और बिना स्पर्श किये ही नष्ट हो जाते हैं । हे भगवन् ! इन बिना आस्वादन किये हुए और बिना स्पर्श किये हुए पुद्‌गलों में से कौन-से पुद्‌गल, किन पुद्‌गलों से अल्प हैं, बहुत हैं, अथवा तुल्य हैं, या विशेषाधिक हैं ? हे गौतम ! आस्वाद में नहीं आए हुए पुद्‌गल सबसे थोड़े हैं, स्पर्श में नहीं आए हुए पुद्‌गल उनसे अनन्तगुणा हैं । भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव जिन पुद्‌गलों को आहाररूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्‌गल उनके किस रूप में बार-बार परिणत होते हैं ? गौतम ! वे पुद्‌गल उनके विविधतापूर्वक जिह्वेन्द्रिय रूप में और स्पर्शेन्द्रिय रूप में बार-बार परिणत होते हैं । हे भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों को क्या पहले आहार किये हुए पुद्‌गल परिणत हुए हैं ? ये 'चलित कर्म की निर्जरा करते हैं' यहाँ तक सारा वर्णन पहले की तरह समझना ।

त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति में भेद है । यावत् अनेक-सहस्रभाग बिना सूँघे, बिना चखे तथा बिना स्पर्श किये ही नष्ट हो जाते हैं । भगवन् ! इन नहीं सूँघे हुए, नहीं चखे हुए और नहीं स्पर्श किये हुए पुद्‌गलों में से कौन किससे थोड़ा, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ? नहीं सूँघे हुए पुद्‌गल सबसे थोड़े हैं, उनसे अनन्तगुने नहीं चखे हुए पुद्‌गल हैं, और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्‌गल नहीं स्पर्श किये हुए हैं । त्रीन्द्रिय जीवों द्वारा किया हुआ आहार घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के रूप में बार-बार परिणत होता है ।

चतुरिन्द्रिय जीवों द्वारा किया हुआ आहार चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के रूप में बार-बार परिणत होता है ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कहकर उनका उच्छ्वास विमात्रा से कहना चाहिए, उनका अनाभोगनिवर्त्तित आहार प्रतिसमय विरहरहित होता है । आभोगनिवर्त्तित आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त में और उत्कृष्ट षष्ठभक्त होने पर होता है । शेष वक्तव्य 'अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते,' तक चतुरिन्द्रिय जीवों के समान समझना ।

मनुष्यों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही जानना चाहिए; किन्तु इतना विशेष है कि उनका आभोगनिवर्त्तित आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त में, उत्कृष्ट अष्टमभक्त अर्थात् तीन दिन बीतने पर होता है । पंचेन्द्रिय जीवों द्वारा गृहीत आहार श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, और स्पर्शनेन्द्रिय, इन पाँचों इन्द्रियों के रूप में विमात्रा से बार-बार परिणत होता है । शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए; यावत् वे 'अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते ।'

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति में भिन्नता है । शेष समस्त वर्णन नागकुमारदेवों की तरह समझना चाहिए । इसी तरह ज्योतिष्क देवों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि उनका उच्छ्वास जघन्य मुहूर्त्त-पृथक्त्व और उत्कृष्ट भी मुहूर्त्तपृथक्त्व के बाद होता है । उनका आहार जघन्य दिवसपृथक्त्व से और उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्व के पश्चात् होता है । शेष सारा वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

वैमानिक देवों की औघिक स्थिति कहनी चाहिए । उनका उच्छ्वास जघन्य मुहूर्त्तपृथक्त्व से, और उत्कृष्ट तैंतीस पक्ष के पश्चात् होता है । उनका आभोगनिवर्त्तित आहार जघन्य दिवसपृथक्त्व से और उत्कृष्ट ३३००० वर्ष के पश्चात् होता है । वे 'चलित कर्म की निर्जरा करते हैं, अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते,' इत्यादि, शेष वर्णन पूर्ववत्

सूत्र - २२

हे भगवन् ! क्या जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं, अथवा अनारम्भी हैं ? हे गौतम ! कितने ही जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और उभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं है । कितने ही जीव आत्मारम्भी नहीं हैं, परारम्भी भी नहीं हैं, और न ही उभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं ।

भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि कितने ही जीव आत्मारम्भी भी हैं ? इत्यादि । गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार के हैं-संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक । उनमें से जो जीव असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध हैं और सिद्ध भगवान न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं और न ही उभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं । जो संसार-समापन्नक जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं-संयत और असंयत। उनमें जो संयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं; जैसे कि-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत । उनमें जो अप्रमत्तसंयत हैं, वे न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं और न उभयारम्भी हैं; किन्तु अनारम्भी हैं । जो प्रमत्तसंयत हैं, वे शुभ योग की अपेक्षा न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, और न उभयारम्भी हैं; किन्तु अनारम्भी हैं । अशुभयोग की अपेक्षा वे आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और उभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं । जो असंयत हैं, वे अविरति की अपेक्षा आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, उभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी नहीं हैं । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि कितने ही जीव आत्मारम्भी भी हैं, यावत् अनारम्भी भी हैं । भगवन् ! नैरयिक जीव क्या आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, उभयारम्भी हैं, या अनारम्भी हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, और उभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं । भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा से, अविरति होने के कारण नैरयिक जीव आत्मारम्भी, परारम्भी और उभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं ।

इसी प्रकार असुरकुमार देवों के विषय में भी जान लेना चाहिए, यावत् तिर्यंचपंचेन्द्रिय तक का भी (आलापक) इसी प्रकार कहना चाहिए ।

मनुष्यों में भी सामान्य जीवों की तरह जान लेना । विशेष यह है कि सिद्धों का कथन छोड़कर । वाण-व्यन्तर देवों से वैमानिक देवों तक नैरयिकों की तरह कहना चाहिए ।

लेश्या वाले जीवों के विषय में सामान्य जीवों की तरह कहना चाहिए । कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वाले जीवों के सम्बन्ध में सामान्य जीवों की भाँति ही सब कथन समझना चाहिए; किन्तु इतना विशेष है

कि (सामान्य जीवों के आलापक में उक्त) प्रमत्त और अप्रमत्त यहाँ नहीं कहना चाहिए । तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीवों के विषय में भी औघिक जीवों की तरह कहना चाहिए; किन्तु इतना विशेष है कि सामान्य जीवों में से सिद्धों के विषय का कथन यहाँ नहीं करना चाहिए ।

सूत्र - २३

हे भगवन् ! क्या ज्ञान इहभविक है ? परभविक है ? या तदुभयभविक है ? गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, परभविक भी है, और तदुभयभविक भी है । इसी तरह दर्शन भी जान लेना चाहिए । हे भगवन् ! क्या चारित्र इहभविक है, परभविक है या तदुभयभविक है ? गौतम ! चारित्र इहभविक है, वह परभविक नहीं है और न तदुभय भविक है । इसी प्रकार तप और संयम के विषय में भी जान लेना चाहिए ।

सूत्र - २४

भगवन् ! असंवृत अनगार क्या सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, निर्वाण प्राप्त करता है तथा समस्त दुःखों का अन्त करता है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! वह किस कारण से सिद्ध नहीं होता, यावत् सब दुःखों का अन्त नहीं करता ? गौतम ! असंवृत्त अनगार आयुकर्म को छोड़कर शेष शिथिलबन्धन से बद्ध सात कर्मप्रकृतियों को गाढ़बन्धन से बद्ध करता है; अल्पकालीन स्थिति वाली कर्मप्रकृतियों को दीर्घ-कालिक स्थिति वाली करता है; मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियों को तीव्र अनुभाग वाली करता है; अल्पप्रदेश वाली प्रकृतियों को बहुत प्रदेश वाली करता है और आयुकर्म को कदाचित् बाँधता है, एवं कदाचित् नहीं बाँधता; असाता-वेदनीय कर्म का बार-बार उपार्जन करता है; तथा अनादि अनवदग्र-अनन्त दीर्घभाग वाले चतुर्गति वाले संसाररूपी अरण्य में बार-बार पर्यटन-करता है; हे गौतम ! इस कारण से असंवृत्त अनगार सिद्ध नहीं होता, यावत् समस्त दुःखों का अन्त नहीं करता ।

भगवन् ! क्या संवृत्त अनगार सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ? हाँ, गौतम ! वह सिद्ध हो जाता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है । भगवन् ! वह किस कारण से सिद्ध हो जाता है, यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है ? गौतम ! संवृत्त अनगार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष गाढ़बन्धन से बद्ध सात कर्म-प्रकृतियों को शिथिलबन्धनबद्ध कर देता है; दीर्घकालिक स्थिति वाली कर्मप्रकृतियों को ह्रस्व काल की स्थिति वाली कर देता है, तीव्ररस वाली प्रकृतियों को मन्द रस वाली कर देता है; बहुत प्रदेश वाली प्रकृतियों को अल्प प्रदेश वाली कर देता है, और आयुष्यकर्म को नहीं बाँधता । वह असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता, अनादि-अनन्त दीर्घमार्ग वाले चातुर्गतिरूप संसार-अरण्य का उल्लंघन कर जाता है । इस कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि संवृत्त अनगार सिद्ध हो जाता है, यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है ।

सूत्र - २५

भगवन् ! असंयत, अविरत, तथा जिसने पापकर्म का हनन एवं त्याग नहीं किया है, वह जीव इस लोक में च्यव (मर) कर क्या परलोक में देव होता है ? गौतम ! कोई जीव देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता । भगवन् ! यहाँ से च्यवकर परलोक में कोई जीव देव होता है, और कोई जीव देव नहीं होता; इसका क्या कारण है? गौतम ! जो ये जीव ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम, सन्निवेश आदि स्थानों में अकाम तृषा से, अकाम क्षुधा से, अकाम ब्रह्मचर्य से, अकाम शीत, आतप तथा डांस-मच्छरों के काटने के दुःख को सहने से अकाम अस्नान, पसीना, जल्ल, मैल तथा पंक से होने वाले परिदाह से, थोड़े समय तक या बहुत समय तक अपने आत्मा को क्लेशित करते हैं; वे अपने आत्मा को क्लेशित करके मृत्यु के समय पर मरकर वाणव्यन्तर देवों के किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होते हैं ।

भगवन् ! उन वाणव्यन्तर देवों के देवलोक किस प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक में नित्य कुसुमित, मयूरित, लवकित, फूलों के गुच्छों वाला, लतासमूह वाला, पत्तों के गुच्छों वाला, यमल (समान श्रेणी के) वृक्षों वाला, युगलवृक्षों वाला, फल-फूल के भार से नमा हुआ, फल-फूल के झूकने की प्रारम्भिक अवस्था वाला, विभिन्न प्रकार की बालों और मंजरियों रूपी मुकुटों को धारण करने वाला अशोकवन, सप्तवर्ण वन, चम्पक वन,

आम्रवन, तिलकवृक्षों का वन, तूम्बे की लताओं का वन, वटवृक्षों का वन, छत्रौधवन, अशनवृक्षों का वन, सन (पटसन) वृक्षों का वन, अलसी के पौधों का वन, कुसुम्बवृक्षों का वन, सफेद सरसों का वन, दुपहरिया वृक्षों का वन, इत्यादि वन से अतीव-अतीव उपशोभित होता है; इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के देवलोक जघन्य दस हजार वर्ष की तथा उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले एवं बहुत-से वाणव्यन्तरदेवों से और उनकी देवियों से आकीर्ण, व्याकीर्ण–एकदूसरे पर आच्छादित, परस्पर मिले हुए, स्फुट प्रकाश वाले, अत्यन्त अवगाढ़ श्री-शोभासे अतीव-अतीव सुशोभित रहते हैं । हे गौतम ! उन वाणव्यन्तर देवों के देवलोक इसी प्रकार के हैं । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि असंयत जीव मरकर यावत् कोई देव होता है और कोई देव नहीं होता ।

हे भगवन् ! 'यह इसी प्रकार है,' 'यह इसी प्रकार है', ऐसा कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं; वन्दना-नमस्कार कर के संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं ।

शतक-१ – उद्देशक-२

सूत्र - २६

राजगृह नगरमें (भगवान का) समवसरण हुआ । परीषद् नीकली । यावत् (श्री गौतमस्वामी) इस प्रकार बोले–

भगवन् ! क्या जीव स्वयंकृत दुःख (कर्म) को भोगता है ? गौतम ! किसी को भोगता है, किसी को नहीं भोगता। भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ? गौतम ! उदीर्ण दुःख को भोगता है, अनुदीर्ण दुःख-कर्म को नहीं भोगता; इसीलिए कहा गया है कि किसी कर्म को भोगता है और किसी कर्म को नहीं भोगता ।

भगवन् ! क्या (बहुत-से) जीव स्वयंकृत दुःख भोगते हैं ? गौतम ! किसी कर्म (दुःख) को भोगते हैं, किसी को नहीं भोगते । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उदीर्ण (कर्म) को भोगते हैं, अनुदीर्ण को नहीं भोगते । इस कारण ऐसा कहा गया है कि किसी कर्म को भोगते हैं, किसी को नहीं भोगते । इसी प्रकार यावत् नैरयिक से लेकर वैमानिक तक चौबीस दण्डकों के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर समझ लेना चाहिए ।

भगवन् ! क्या जीव स्वयंकृत आयु को भोगता है ? हे गौतम ! किसी को भोगता है, किसी को नहीं भोगता। जैसे दुःख-कर्म के विषय में दो दण्डक कहे गए हैं, उसी प्रकार आयुष्य(कर्म) के सम्बन्ध में भी एकवचन और बहुवचन वाले दो दण्डक कहने चाहिए । एकवचन से यावत् वैमानिकों तक कहना, बहुवचन से भी (वैमानिकों तक) कहना ।

सूत्र - २७

भगवन् ! क्या सभी नारक समान आहार वाले, समान शरीर वाले, तथा समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले होते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं; जैसे कि–महाशरीरी और अल्पशरीरी । इनमें जो बड़े शरीर वाले हैं, वे बहुत पुद्‌गलों का आहार करते हैं, बहुत पुद्‌गलों का परिणमन करते हैं, बहुत पुद्‌गलों को उच्छ्वास रूप में ग्रहण करते हैं और बहुत पुद्‌गलों को निःश्वासरूप से छोड़ते हैं तथा वे बार-बार आहार लेते हैं, बार-बार उसे परिणमाते हैं, तथा बारबार उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । तथा जो छोटे शरीर वाले नारक हैं, वे थोड़े पुद्‌गलों का आहार करते हैं, थोड़े-से पुद्‌गलों का परिणमन करते हैं, और थोड़े पुद्‌गलों को उच्छ्वास रूप से ग्रहण करते हैं, तथा थोड़े-से पुद्‌गलों को निःश्वास-रूप से छोड़ते हैं । वे कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् उसे परिणमाते हैं और कदाचित् उच्छ्वास तथा निःश्वास लेते हैं । हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि सभी नारक जीव समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं हैं ।

भगवन् ! क्या सभी नारक समान कर्म वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं; वह इस प्रकार हैं–पहले उत्पन्न हुए और पीछे उत्पन्न हुए । इनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं वे अल्पकर्म वाले हैं और उनमें जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले हैं, इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी नारक समान कर्म वाले नहीं हैं ।

भगवन् ! क्या सभी नारक समवर्ण वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! पूर्वोक्त कथनवत् नारक दो प्रकार के हैं-पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक । इनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे विशुद्ध वर्ण वाले हैं, जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे अविशुद्ध वर्ण वाले हैं, इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है ।

भगवन् ! क्या सब नैरयिक समान लेश्या वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से कहा जाता है कि सभी नैरयिक समान लेश्या वाले नहीं हैं ? गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे कि-पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक । इनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे विशुद्ध लेश्या वाले और जो इनमें पश्चादुपपन्नक हैं, वे अविशुद्ध लेश्या वाले हैं, इस कारण हे गौतम ! कहा जाता है कि सभी नारक समान लेश्या वाले नहीं हैं ।

भगवन् ! क्या सब नारक समान वेदना वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-संज्ञीभूत और असंज्ञीभूत । इनमें जो संज्ञीभूत हैं, वे महावेदना वाले हैं और जो इनमें असंज्ञीभूत हैं, वे (अपेक्षाकृत) अल्पवेदना वाले हैं । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सब नारक समान वेदना वाले नहीं हैं ।

हे भगवन् ! क्या सभी नैरयिक समानक्रिया वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! नारक तीन प्रकार के कहे गए हैं यथा-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) । इनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, उनके चार क्रियाएं कही गई हैं, जैसे कि-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानक्रिया । इनमें जो मिथ्यादृष्टि हैं, उनके पाँच क्रियाएं कही गई हैं, वे इस प्रकार-आरम्भिकी से लेकर मिथ्यादर्शनप्रत्यया । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि के भी पाँचों क्रियाएं समझनी चाहिए । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सब नारक समान क्रिया वाले नहीं हैं ।

भगवन् ! क्या सभी नारक समान आयुष्य वाले हैं और समोपपन्नक-एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं ? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! नारक जीव चार प्रकार के हैं । वह इस प्रकार-समायुष्क समोपपन्नक (समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए), समायुष्क विषमोपपन्नक (समान आयु वाले और पहले-पीछे उत्पन्न हुए), विषमायुष्क समोपपन्नक (विषम आयु वाले, किन्तु एक साथ उत्पन्न हुए), और विषमायुष्क-विषमोपपन्नक (विषम आयु वाले और पहले-पीछे उत्पन्न हुए) । इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी नारक समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न होने वाले नहीं हैं ।

भगवन् ! क्या सब असुरकुमार समान आहार वाले और समान शरीर वाले हैं ? (इत्यादि) गौतम ! असुर कुमारों के सम्बन्ध में सब वर्णन नैरयिकों के समान कहना चाहिए । विशेषता यह है कि-असुरकुमारों के कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिकों से विपरीत कहना चाहिए; अर्थात्-पूर्वोपपन्नक असुरकुमार महाकर्म वाले, अविशुद्ध वर्ण वाले और अशुद्ध लेश्या वाले हैं, जबकि पश्चादुपपन्नक प्रशस्त हैं । शेष सब पहले के समान जानना चाहिए । इसी प्रकार (नागकुमारों से लेकर) यावत् स्तनितकुमारों (तक) समझना चाहिए । पृथ्वीकायिक जीवों का आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिकों के समान समझना चाहिए ।

भगवन् ! क्या सब पृथ्वीकायिक जीव समान वेदना वाले हैं ? हाँ, गौतम ! वे समान वेदना वाले हैं । भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? हे गौतम ! समस्त पृथ्वीकायिक जीव असंज्ञी हैं और असंज्ञीभूत जीव वेदना को अनिर्धारित रूप से वेदते हैं । इस कारण, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं ।

भगवन् ! क्या सभी पृथ्वीकायिक जीव समान क्रिया वाले हैं ? हाँ, गौतम ! वे सभी समान क्रिया वाले हैं । भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक जीव मायी और मिथ्यादृष्टि हैं । इसलिए उन्हें नियम से पाँचों क्रियाएं लगती हैं । वे पाँच क्रियाएं यह हैं-आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सभी पृथ्वीकायिक जीव समानक्रिया वाले हैं ।

जैसे नारक जीवों में समायुष्क और समोपपन्नक आदि चार भंग कहे गए हैं, वैसे ही पृथ्वीकायिक जीवों में

भी कहने चाहिए । जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के आहारादि के सम्बन्ध में निरूपण किया गया है, उसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तक के जीवों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए ।

पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों के आहारादि के सम्बन्ध में कथन भी नैरयिकों के समान समझना चाहिए; केवल क्रियाओं में भिन्नता है ।

भगवन् ! क्या सभी पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव समानक्रियावाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ? गौतम ! पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव तीन प्रकार के हैं, यथा-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि । उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे दो प्रकार के हैं, असंयत और संयतासंयत। उनमें जो संयतासंयत हैं, उन्हें तीन क्रियाएं लगती हैं । आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया । उनमें जो असंयत हैं, उन्हें अप्रत्याख्यानी सहित चार क्रियाएं लगती हैं । जो मिथ्यादृष्टि हैं तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं, उन्हें पाँचों क्रियाएं लगती हैं

मनुष्यों का आहारादि सम्बन्धित निरूपण नैरयिकों के समान समझना चाहिए । उनमें अन्तर इतना ही है कि जो महाशरीर वाले हैं, वे बहुतर पुद्गलों का आहार करते हैं, और वे कभी-कभी आहार करते हैं, इसके विपरीत जो अल्पशरीर वाले हैं, वे अल्पतर पुद्गलों का आहार करते हैं, और बार-बार करते हैं । वेदनापर्यन्त सब वर्णन नारकों के समान समझना ।

''भगवन् ! क्या सब मनुष्य समान क्रिया वाले हैं ?'' ''गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! यह आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! मनुष्य तीन प्रकार के हैं; सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि । उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकार के हैं, संयत, संयतासंयत और असंयत । उनमें जो संयत हैं, वे दो प्रकार के हैं, सरागसंयत और वीतरागसंयत । उनमें जो वीतरागसंयत हैं, वे क्रियारहित हैं, तथा जो इनमें सरागसंयत हैं, वे भी दो प्रकार के हैं, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत । उनमें जो अप्रमत्तसंयत हैं, उन्हें एक मायाप्रत्यया क्रिया लगती है । उनमें जो प्रमत्तसंयत हैं, उन्हें दो क्रियाएं लगती हैं, आरम्भिकी और मायाप्रत्यया । तथा उनमें जो संयतासंयत हैं, उन्हें आदि की तीन क्रियाएं लगती हैं, आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया । असंयतों को चार क्रियाएं लगती हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानी क्रिया । मिथ्यादृष्टियों को पाँचों क्रियाएं लगती हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानी क्रिया और मिथ्यादर्शनप्रत्यया । सम्यग्मिथ्यादृष्टियों को भी यह पाँचों क्रियाएं लगती हैं ।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक के आहारादि के सम्बन्ध में सब वर्णन असुरकुमारों के समान समझना चाहिए । विशेषता यह कि इनकी वेदना में भिन्नता है । ज्योतिष्क और वैमानिकों में जो मायी-मिथ्यादृष्टि के रूप में उत्पन्न हुए हैं, वे अल्पवेदना वाले हैं, और जो अमायी सम्यग्दृष्टि के रूप में उत्पन्न हुए हैं, वे महावेदना वाले होते हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

भगवन् ! क्या लेश्या वाले समस्त नैरयिक समान आहार वाले होते हैं ? हे गौतम ! औघिक, सलेश्य एवं शुक्ललेश्या वाले इन तीनों का एक गम-पाठ कहना चाहिए । कृष्णलेश्या और नीललेश्या वालों का एक समान पाठ कहना चाहिए, किन्तु उनकी वेदना में इस प्रकार भेद है-मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्न और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक कहने चाहिए । तथा कृष्णलेश्या और नीललेश्या (के सन्दर्भ) में मनुष्यों के सरागसंयत, वीतरागसंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत (भेद) नहीं कहना चाहिए । तथा कापोतलेश्या में भी यही पाठ कहना चाहिए । भेद यह है कि कापोतलेश्या वाले नैरयिकों को औघिक दण्डक के समान कहना चाहिए । तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों को भी औघिक दण्डक के समान कहना चाहिए । विशेषता यह है कि इन मनुष्यों में सराग और वीतराग का भेद नहीं कहना चाहिए; क्योंकि तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले मनुष्य सराग ही होते हैं ।

सूत्र - २८

दु:ख (कर्म) और आयुष्य उदीर्ण हो तो वेदते हैं । आहार, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और आयुष्य, इन

सबकी समानता के सम्बन्ध में पहले कहे अनुसार ही समझना ।

सूत्र - २९

'भगवन् ! लेश्याएं कितनी कही हैं ?' गौतम ! लेश्याएं छह कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं–कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के लेश्यापद का द्वीतिय उद्देशक ऋद्धि की वक्तव्यता तक कहना चाहिए ।

सूत्र - ३०

भगवन् ! अतीतकाल में आदिष्ट-नारक आदि विशेषण-विशिष्ट जीव का संसार-संस्थानकाल कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! संसार-संस्थान-काल चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है–नैरयिकसंसार-संस्थानकाल, तिर्यंचसंसार-संस्थानकाल, मनुष्यसंसार-संस्थानकाल और देवसंसार-संस्थानकाल ।

भगवन् ! नैरयिकसंसार-संस्थानकाल कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार–शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल । भगवन् ! तिर्यंचसंसार-संस्थानकाल कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार–अशून्यकाल और मिश्रकाल ।

मनुष्यों और देवों के संसारसंस्थानकाल का कथन नारकों के समान समझना ।

भगवन् ! नारकों के संसारसंस्थानकाल के जो तीन भेद हैं–शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल, इनमें से कौन किससे कम, बहुत, तुल्य, विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे कम अशून्यकाल है, उससे मिश्रकाल अनन्त गुणा है और उसकी अपेक्षा भी शून्यकाल अनन्तगुणा है । तिर्यंचसंसार-संस्थानकाल के दो भेदों में से सबसे कम अशून्यकाल है और उसकी अपेक्षा मिश्रकाल अनन्तगुणा है । मनुष्यों और देवों के संसारसंस्थानकाल का अल्प-बहुत्व नारकों के संसारसंस्थानकाल की न्यूनाधिकता के समान ही समझना चाहिए ।

भगवन् ! नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, इन चारों के संसारसंस्थानकालों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोड़ा मनुष्यसंसार-संस्थानकाल है, उससे नैरयिक संसारसंस्थानकाल असंख्यातगुणा, उससे देव संसारसंस्थानकाल असंख्यातगुणा है और उससे तिर्यंचसंसारसंस्थानकाल अनन्तगुणा है

सूत्र - ३१

हे भगवन् ! क्या जीव अन्तक्रिया करता है ? गौतम ! कोई जीव अन्तक्रिया करता है, कोई जीव नहीं करता । इस सम्बन्ध में प्रज्ञापनासूत्र का अन्तक्रिया पद जान लेना ।

सूत्र - ३२

भगवन् ! असंयतभव्यद्रव्यदेव, अखण्डित संयम वाला, खण्डित संयम वाला, अखण्डित संयमासंयम वाला, खण्डित संयमासंयम वाला, असंज्ञी, तापस, कान्दर्पिक, चरकपरिव्राजक, किल्बिषिक, तिर्यंच, आजीविक, आभियोगिक, दर्शन भ्रष्ट वेषधारी, ये देवलोक में उत्पन्न हों तो, किसका कहाँ उपपात होता है ? असंयतभव्यद्रव्य-देवों का उत्पाद जघन्यतः भवनवासियों में और उत्कृष्टतः ऊपर के ग्रैवयकों में है । अखण्डित संयम वालों का जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध में, खण्डित संयम वालों का जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में, अखण्डित संयमासंयम का जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट अच्युतकल्प में, खण्डित संयमा-संयम वालों का जघन्य भवनवासिययों में और उत्कृष्ट ज्योतिष्क देवों में, असंज्ञी जीवों का जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाण-व्यन्तर देवों में और शेष सबका उत्पाद जघन्य भवनवासियों में होता है, उत्कृष्ट उत्पाद तापसों ज्योतिष्कों में, कान्दर्पिकों सौधर्मकल्प में, चरकपरिव्राजकों ब्रह्मलोककल्प में, किल्विषिकों लान्तककल्प में, तिर्यंचों सहस्रारकल्प में, आजीविकों तथा आभियोगिकों अच्युतकल्प में, और श्रद्धाभ्रष्टवेषधारियों ग्रैवेयकों तक उत्पाद होता है ।

सूत्र - ३३

भगवन् ! असंज्ञी का आयुष्य कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! असंज्ञी का आयुष्य चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है–नैरयिक-असंज्ञी आयुष्य, तिर्यंच-असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य-असंज्ञी आयुष्य और देव-असंज्ञी आयुष्य ।

भगवन् ! असंज्ञी जीव क्या नरक का आयुष्य उपार्जन करता है, तिर्यंचयोनिक का आयुष्य उपार्जन करता है, मनुष्य का आयुष्य भी उपार्जन करता है या देव का आयुष्य उपार्जन करता है ? हाँ, गौतम ! वह नरक का आयुष्य भी उपार्जन करता है, तिर्यंच का आयुष्य भी उपार्जन करता है, मनुष्य का आयुष्य भी उपार्जन करता है और देव का आयुष्य भी उपार्जन करता है । नारक का आयुष्य उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग का उपार्जन करता है । तिर्यंचयोनि का आयुष्य उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग का उपार्जन करता है । मनुष्य का आयुष्य भी इतना ही उपार्जन करता है और देव आयुष्य का उपार्जन भी नरक के आयुष्य के समान करता है ।

हे भगवन् ! नारक-असंज्ञी-आयुष्य, तिर्यंच-असंज्ञी-आयुष्य, मनुष्य-असंज्ञी-आयुष्य और देव-असंज्ञी-आयुष्य; इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! देव-असंज्ञी-आयुष्य सबसे कम है, उसकी अपेक्षा मनुष्य-असंज्ञी-आयुष्य असंख्यातगुणा है, उससे तिर्यंच असंज्ञी-आयुष्य असंख्यात-गुणा है और उससे भी नारक-असंज्ञी-आयुष्य असंख्यातगुणा है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।' ऐसा कहकर गौतम स्वामी संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

शतक-१ - उद्देशक-३

सूत्र - ३४

भगवन् ! क्या जीवों का कांक्षामोहनीय कर्म कृतक्रियानिष्पादित (किया हुआ) है ? हाँ, गौतम ! वह कृत है। भगवन् ! क्या वह देश से देशकृत है, देश से सर्वकृत है, सर्व से देशकृत है अथवा सर्व से सर्वकृत है ? गौतम ! वह देश से देशकृत नहीं है, देश से सर्वकृत नहीं है, सर्व से देशकृत नहीं है, सर्व से सर्वकृत है ।

भगवन् ! क्या नैरयिकों का कांक्षामोहनीय कर्म कृत है ? हाँ, गौतम ! कृत, यावत् 'सर्व से सर्वकृत है' इस प्रकार से यावत् चौबीस ही दण्डकों में वैमानिकपर्यन्त कहना ।

सूत्र - ३५

भगवन् ! क्या जीवों ने कांक्षामोहनीय कर्म का उपार्जन किया है ? हाँ, गौतम ! किया है । भगवन् ! क्या वह देश से देशकृत है ? पूर्वोक्त प्रश्न वैमानिक तक करना । इस प्रकार 'कहते हैं' यह आलापक भी यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए । इसी प्रकार 'करते हैं' यह आलापक भी यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए । इसी प्रकार 'करेंगे' यह आलापक भी यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए ।

इसी प्रकार चित किया, चय करते हैं, चय करेंगे; उपचित-उपचय किया, उपचय करते हैं, उपचय करेंगे; उदीरणा की, उदीरणा करते हैं, उदीरणा करेंगे; वेदन किया, वेदन करते हैं, वेदन करेंगे; निर्जीर्ण किया, निर्जीर्ण करते हैं, निर्जीर्ण करेंगे; इन सब पदों का चौबीस ही दण्डकों के सम्बन्ध में पूर्ववत् कथन करना चाहिए ।

सूत्र - ३६

कृत, चित, उपचित, उदीर्ण, वेदित और निर्जीर्ण; इतने अभिलाप यहाँ कहने हैं । इनमें से कृत, चित और उपचित में एक-एक के चार-चार भेद हैं; अर्थात्-सामान्य क्रिया, भूतकाल की क्रिया, वर्तमान काल की क्रिया और भविष्यकाल की क्रिया । पीछले तीन पदों में सिर्फ तीन काल की क्रिया कहनी है ।

सूत्र - ३७

'भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ?' हाँ, गौतम ! वेदन करते हैं । भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म को किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! उन-उन (अमुक-अमुक) कारणों से शंकायुक्त, कांक्षायुक्त, विचिकित्सायुक्त, भेदसमापन्न एवं कलुषसमापन्न होकर; इस प्रकार जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ।

सूत्र - ३८

भगवन् ! क्या वही सत्य और निःशंक हैं, जो जिन-भगवंतों ने निरूपित किया है? हाँ, गौतम ! वही सत्य और निःशंक है, जो जिनेन्द्रों द्वारा निरूपित है ।

सूत्र - ३९

भगवन् ! (वही सत्य और निःशंक है, जो जिनेन्द्रों द्वारा प्ररूपित है) इस प्रकार मन में धारण (निश्चय) करता हुआ, उसी तरह आचरण करता हुआ, यों रहता हुआ, इसी तरह संवर करता हुआ जीव क्या आज्ञा का आराधक होता है ? हाँ, गौतम ! इसी प्रकार मन में निश्चय करता हुआ यावत् आज्ञा का आराधक होता है ।

सूत्र - ४०

भगवन् ! क्या अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है, तथा नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है ? हाँ, गौतम ! अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है । भगवन् ! वह जो अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, सो क्या वह प्रयोग (जीव के व्यापार) से परिणत होता है अथवा स्वभाव से (विश्रसा) ? गौतम ! वह प्रयोग से भी परिणत होता है और स्वभाव से भी परिणत होता है ।

भगवन् ! जैसे आपके मत से अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है ? और जैसे आपके मत से नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है ? गौतम ! जैसे मेरे मत से अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है और जिस प्रकार मेरे मत से नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है ।

भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्व में गमनीय है ? हे गौतम ! जैसे-'परिणत होता है' इस पद के आलापक कहे हें; उसी प्रकार यहाँ 'गमनीय' पद के साथ भी दो आलापक कहने चाहिए; यावत् 'मेरे मत से अस्तित्व, अस्तित्व में गमनीय है ।'

सूत्र - ४१

भगवन् ! जैसे आपके मत में यहाँ (स्वात्मा में) गमनीय है, उसी प्रकार इह (परात्मा में भी) गमनीय है, जैसे आपके मत में इह (परात्मा में) गमनीय है, उसी प्रकार यहाँ (स्वात्मा में) भी गमनीय है ? हाँ, गौतम ! जैसे मेरे मत में यहाँ (स्वात्मा में) गमनीय है, यावत् उसी प्रकार यहाँ (स्वात्मा में) गमनीय है ।

सूत्र - ४२

भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म बाँधते हैं ? हाँ, गौतम ! बाँधते हैं । भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार बाँधते हैं ? गौतम ! प्रमाद के कारण और योग के निमित्त से (जीव कांक्षामोहनीय कर्म बाँधते हैं)।

'भगवन् ! प्रमाद किससे उत्पन्न होता है ?' गौतम ! प्रमाद, योग से उत्पन्न होता है ।

'भगवन् ! योग किससे उत्पन्न होता है ?' गौतम ! योग, वीर्य से उत्पन्न होता है ।

'भगवन् ! वीर्य किससे उत्पन्न होता है ?' गौतम ! वीर्य, शरीर से उत्पन्न होता है ।

'भगवन् ! शरीर किससे उत्पन्न होता है ?' गौतम ! शरीर जीव से उत्पन्न होता है । और ऐसा होने में जीव का उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम होता है ।

सूत्र - ४३

भगवन् ! क्या जीव अपने आपसे ही उस (कांक्षामोहनीय कर्म) की उदीरणा करता है, अपने आप से ही उसकी गर्हा करता है और अपने आप से ही उसका संवर करता है ? हाँ, गौतम ! जीव अपने आप से ही उसकी उदीरणा, गर्हा और संवर करता है ।

भगवन् ! वह जो अपने आप से ही उसकी उदीरणा करता है, गर्हा करता है और संवर करता है, तो क्या उदीर्ण की उदीरणा करता है ? अनुदीर्ण की उदीरणा करता है ? या अनुदीर्ण उदीरणाभविक कर्म की उदीरणा करता है ? अथवा उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की उदीरणा करता है ? गौतम ! उदीर्ण की उदीरणा नहीं करता, अनुदीर्ण की भी उदीरणा नहीं करता, तथा उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की भी उदीरणा नहीं करता, किन्तु अनुदीर्ण-उदीरणाभविक कर्म की उदीरणा करता है ।

भगवन् ! यदि जीव अनुदीर्ण-उदीरणाभविक की उदीरणा करता है, तो क्या उत्थान से, कर्म से, बल से, वीर्य से और पुरुषकार-पराक्रम से उदीरणा करता है, अथवा अनुत्थान से, अकर्म से, अबल से, अवीर्य से और अपुरुषकार-पराक्रम से उदीरणा करता है ? गौतम ! वह अनुदीर्ण-उदीरणा-भविक कर्म की उदीरणा उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से करता है, अनुत्थान से, अकर्म से, यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से उदीरणा नहीं करता । अत एव उत्थान है, कर्म है, बल है, वीर्य है और पुरुषकार पराक्रम है ।

भगवन् ! क्या वह अपने आप से ही (कांक्षा-मोहनीय कर्म का) उपशम करता है, अपने आप से ही गर्हा करता है और अपने आप से ही संवर करता है ? हाँ, गौतम ! यहाँ भी उसी प्रकार 'पूर्ववत्' कहना चाहिए । विशेषता यह है कि अनुदीर्ण का उपशम करता है, शेष तीनों विकल्पों का निषेध करना चाहिए ।

भगवन् ! जीव यदि अनुदीर्ण कर्म का उपशम करता है, तो क्या उत्थान से यावत् पुरुषकार-पराक्रम से करता है या अनुत्थान से यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से करता है ? गौतम ! पूर्ववत् जानना–यावत् पुरुषकार-पराक्रम से उपशम करता है ।

भगवन् ! क्या जीव अपने आप से ही वेदन करता है और गर्हा करता है ? गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त समस्त परिपाटी पूर्ववत् समझनी चाहिए । विशेषता यह है कि उदीर्ण को वेदता है, अनुदीर्ण को नहीं वेदता । इसी प्रकार यावत् पुरुषकार पराक्रम से वेदता है, अनुत्थानादि से नहीं वेदता है ।

भगवन् ! क्या जीव अपने आप से ही निर्जरा करता है और गर्हा करता है ? गौतम ! यहाँ भी समस्त परिपाटी 'पूर्ववत्' समझनी चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की निर्जरा करता है । इसी प्रकार यावत् पुरुषकार-पराक्रम से निर्जरा और गर्हा करता है । इसलिए उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम है ।

सूत्र - ४४

भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदन करते हैं । सामान्य (औघिक) जीवों के सम्बन्ध में जैसे आलापक कहे थे, वैसे ही नैरयिकों के सम्बन्ध में यावत् स्तनितकुमारों तक समझ लेने चाहिए ।

भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ? हाँ, गौतम ! वे वेदन करते हैं । भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव किस प्रकार कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ? गौतम ! उन जीवों को ऐसा तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन अथवा वचन नहीं होता कि 'हम कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं'; किन्तु वे उसका वेदन अवश्य करते हैं ।

भगवन् ! क्या वही सत्य और निःशंक है, जो जिन-भगवंतों द्वारा प्ररूपित है ? हाँ, गौतम ! यह सब पहले के समान जानना चाहिए ।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक जानना चाहिए । जैसे सामान्य जीवों के विषय में कहा है, वैसे ही पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीवों से लेकर यावत् वैमानिक तक कहना ।

सूत्र - ४५

भगवन् ! क्या श्रमणनिर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं । भगवन् ! श्रमणनिर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन किस प्रकार करते हैं ? गौतम ! उन-उन कारणों से ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकान्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर और प्रमाणान्तरों के द्वारा शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर श्रमणनिर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ।

भगवन् ! क्या वही सत्य और निःशंक है, जो जिन भगवंतों ने प्ररूपित किया है ? हाँ, गौतम ! वही सत्य है, निःशंक है, जो जिन भगवंतों द्वारा प्ररूपित है, यावत् पुरुषकार-पराक्रम से निर्जरा होती है; हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यही सत्य है ।

शतक-१ – उद्देशक-४

सूत्र - ४६

भगवन् ! कर्म-प्रकृतियाँ कितनी कही है ? गौतम ! आठ । यहाँ 'कर्मप्रकृति' नामक तेईसवें पद का (यावत्) अनुभाग तक सम्पूर्ण जान लेना ।

सूत्र - ४७

कितनी कर्मप्रकृतियाँ हैं ? जीव किस प्रकार कर्म बाँधता है ? कितने स्थानों से कर्मप्रकृतियों को बाँधता है? कितनी प्रकृतियों का वेदन करता है ? किस प्रकृति का कितने प्रकार का अनुभाग (रस) है ?

सूत्र - ४८

भगवन् ! कृतमोहनीय कर्म जब उदीर्ण हो, तब जीव उपस्थान-परलोक की क्रिया के लिए उद्यम करता है? हाँ, गौतम ! करता है । भगवन् ! क्या जीव वीर्यता-सवीर्य होकर उपस्थान करता है या अवीर्यता से ? गौतम ! जीव वीर्यता से उपस्थान करता है, अवीर्यता से नहीं करता । भगवन् ! यदि जीव वीर्यता से उपस्थान करता है, तो क्या बालवीर्य से करता है, अथवा पण्डितवीर्य से या बाल-पण्डितवीर्य से करता है ? गौतम ! वह बालवीर्य से उप-स्थान करता है, किन्तु पण्डितवीर्य से या बालपण्डितवीर्य से उपस्थान नहीं करता । भगवन् ! कृतमोहनीय कर्म जब उदय में आया हो, तब क्या जीव अपक्रमण करता है; हाँ, गौतम ! करता है । भगवन् ! वह बालवीर्य से अपक्रमण करता है, अथवा पण्डितवीर्य से या बाल-पण्डितवीर्यसे ? गौतम ! वह बालवीर्य से अपक्रमण करता है, पण्डितवीर्य से नहीं करता; कदाचित् बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण करता है ।

जैसे उदीर्ण पद के साथ दो आलापक कहे गए हैं, वैसे ही 'उपशान्त' पद के साथ दो आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ जीव पण्डितवीर्य से उपस्थान करता है और अपक्रमण करता है–बालपण्डित वीर्य से । भगवन् ! क्या जीव आत्मा (स्व) से अपक्रमण करता है अथवा अनात्मा (पर) से करता है ? गौतम ! आत्मा से अपक्रमण करता है, अनात्मा से नहीं करता । भगवन् ! मोहनीय कर्म को वेदता हुआ यह (जीव) क्यों अपक्रमण करता है ? गौतम ! पहले उसे इस प्रकार (जिनेन्द्र द्वारा कथित तत्त्व) रुचता है और अब उसे इस प्रकार नहीं रुचता; इस कारण यह अपक्रमण करता है ।

सूत्र - ४९

भगवन् ! नारक तिर्यंचयोनिक, मनुष्य या देव ने जो पापकर्म किये हैं, उन्हें भोगे बिना क्या मोक्ष नहीं होता? हाँ, गौतम ! नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ने जो पापकर्म किये हैं, उन्हें भोगे बिना मोक्ष नहीं होता । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! मैंने कर्म के दो भेद बताए हैं । प्रदेशकर्म और अनुभाग-कर्म । इनमें जो प्रदेशकर्म है, वह अवश्य भोगना पड़ता है, और इनमें जो अनुभागकर्म है, वह कुछ वेदा जाता है, कुछ नहीं वेदा जाता । यह बात अर्हन्त द्वारा ज्ञात है, स्मृत है, और विज्ञात है कि यह जीव इस कर्म को आभ्युप-गमिक वेदना से वेदेगा और वह जीव इस कर्म को औपक्रमिक वेदना से वेदेगा । बाँधे हुए कर्मों के अनुसार, निकरणों के अनुसार जैसा-तैसा भगवान ने देखा है, वैसा-वैसा वह विपरिणाम पाएगा । गौतम ! इस कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि–यावत् किये हुए कर्मों को भोगे बिना नारक, तिर्यंच, मनुष्य या देव का मोक्ष नहीं है ।

सूत्र - ५०

भगवन् ! क्या यह पुद्गल–परमाणु अतीत, अनन्त, शाश्वत काल में था–ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! यह पुद्गल अतीत, अनन्त, शाश्वतकाल में था, ऐसा कहा जा सकता है । भगवन् ! क्या यह पुद्गल वर्तमान शाश्वत है ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! ऐसा कहा जा सकता है । हे भगवन् ! क्या यह पुद्गल अनन्त और शाश्वत भविष्यकाल में रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! कहा जा सकता है ।

इसी प्रकार के 'स्कन्ध' के साथ भी तीन आलापक कहने चाहिए ।

इसी प्रकार 'जीव' के साथ भी तीन आलापक कहने चाहिए ।

सूत्र - ५१

भगवन् ! क्या बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में छद्मस्थ मनुष्य केवल संयम से, केवल संवर से, केवल ब्रह्मचर्यवास से और केवल (अष्ट) प्रवचनमाता (के पालन) से सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करने वाला हुआ है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ? गौतम ! जो भी कोई मनुष्य कर्मों का अन्त करने वाले, चरम शरीरी हुए हैं, अथवा समस्त दुःखों का जिन्होंने अन्त किया है, जो अन्त करते हैं या करेंगे, वे सब उत्पन्नज्ञानदर्शनधारी, अर्हन्त, जिन, और केवली होकर तत्पश्चात् सिद्ध हुए हैं, बुद्ध हुए हैं, मुक्त हुए हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं, और उन्होंने समस्त दुःखों का अन्त किया है, करते हैं और करेंगे; इसी कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा है कि यावत् समस्त दुःखों का अन्त किया ।

वर्तमान काल में भी इसी प्रकार जानना । विशेष यह है कि 'सिद्ध होते हैं', ऐसा कहना चाहिए । तथा भविष्यकाल में भी इसी प्रकार जानना । विशेष यह है कि 'सिद्ध होंगे', ऐसा कहना चाहिए । जैसा छद्मस्थ के विषय में कहा है, वैसा ही आधोवधिक और परमाधोवधिक के विषय में जानना और उसके तीन-तीन आलापक कहने चाहिए ।

भगवन् ! बीते हुए अनन्त शाश्वतकाल में केवली मनुष्य ने यावत् सर्व-दुःखों का अन्त किया है ? हाँ, गौतम! वह सिद्ध हुआ, यावत् उसने समस्त दुःखों का अन्त किया । यहाँ भी छद्मस्थ के समान ये तीन आलापक कहने चाहिए । विशेष यह है कि सिद्ध हुआ, सिद्ध होता है और सिद्ध होगा, इस प्रकार तीन आलापक कहने चाहिए । भगवन् ! बीते हुए अनन्त शाश्वतकाल में, वर्तमान शाश्वतकाल में और अनन्त शाश्वत भविष्यकाल में जिन अन्तकरों ने अथवा चरमशरीरी पुरुषों ने समस्त दुःखों का अन्त किया है, करते हैं या करेंगे; क्या वे सब उत्पन्नज्ञान-दर्शनधारी, अर्हन्त, जिन और केवली होकर तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध आदि होते हैं, यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ? हाँ, गौतम ! बीते हुए अनन्त शाश्वतकाल में यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे । भगवन् ! वह उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अर्हन्त, जिन और केवली 'अलमस्तु' अर्थात्-पूर्ण है, ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न ज्ञानदर्शनधारी, अर्हन्त, जिन और केवली पूर्ण है, ऐसा कहा जा सकता है । 'हे भगवन् ! यह ऐसा ही है, भगवन् ! यह ऐसा ही है ।'

शतक-१ – उद्देशक-५

सूत्र - ५२

भगवन् ! (अधोलोक में) कितनी पृथ्वीयाँ (नरकभूमियाँ) कही गई हैं ? गौतम ! सात पृथ्वीयाँ हैं । रत्नप्रभा से लेकर यावत् तमस्तमःप्रभा तक ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने लाख नारकावास कहे गए हैं ? गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नारकावास हैं । नारकावासों की संख्या बताने वाली गाथा–

सूत्र - ५३

प्रथम पृथ्वी (नरकभूमि) में तीस लाख, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दस लाख, पाँचवी में तीन लाख, छठी में पाँच कम एक लाख और सातवीं में केवल पाँच नारकावास हैं ।

सूत्र - ५४

भगवन् ! असुरकुमारों के कितने लाख आवास हैं ? गौतम ! इस प्रकार हैं ।

सूत्र - ५५

असुरकुमारों के चौंसठ लाख आवास कहे हैं । नागकुमारों के चौरासी लाख, सुपर्णकुमारों के ७२ लाख, वायुकुमारों के ९६ लाख, तथा–

सूत्र - ५६

द्वीपकुमार, दिक्कुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार, इन छह युगलकों दक्षिणवर्ती और उत्तरवर्ती दोनों के ७६-७६ लाख आवास कहे गए हैं ।

सूत्र - ५७

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने लाख आवास कहे गए हैं ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवास कहे गए हैं । इसी प्रकार यावत् ज्योतिष्क देवों तक के असंख्यात लाख विमानावास कहे गए हैं । भगवन् ! सौधर्मकल्प में कितने विमानावास हैं ? गौतम ! बत्तीस लाख विमानावास कहे हैं ।

सूत्र – ५८-६०

इस प्रकार क्रमशः बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चार लाख, पचास हजार तथा चालीस हजार, विमानावास जानना चाहिए । सहस्रार कल्प में छ हजार विमानावास हैं ।

आणत और प्राणत कल्प में चार सौ, आरण और अच्युत में तीन सौ, इस तरह चारों में मिलकर सात सौ विमान हैं ।

अधस्तन (नीचले) ग्रैवेयक त्रिक में एक सौ ग्यारह, मध्यम (बीच के) ग्रैवेयक त्रिक में एक सौ सात और ऊपर के ग्रैवेयक त्रिक में एक सौ विमानावास हैं । अनुत्तर विमानावास पाँच ही हैं ।

सूत्र - ६१

पृथ्वी (नरकभूमि) आदि जीवावासों में १. स्थिति, २. अवगाहना, ३. शरीर, ४. संहनन, ५. संस्थान, ६. लेश्या, ७. दृष्टि, ८. ज्ञान, ९. योग और १०. उपयोग इन दस स्थानों पर विचार करना है ।

सूत्र - ६२

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में रहने वाले नारक जीवों के कितने स्थिति-स्थान कहे गए हैं ? गौतम ! उनके असंख्य स्थान हैं । वे इस प्रकार हैं–जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, वह एक समय अधिक, दो समय अधिक–इस प्रकार यावत् जघन्य स्थिति असंख्यात समय अधिक है, तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति भी ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में कम से कम स्थिति में वर्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं, मानोपयुक्त हैं, मायोपयुक्त हैं अथवा लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! वे सभी क्रोधोपयुक्त होते हैं १, अथवा बहुत से नारक क्रोधोपयुक्त और एक नारक मानोपयुक्त होता है २, अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त और बहुत से मानोपयुक्त होते हैं ३, अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त और एक मानोपयुक्त होता है ४, अथवा बहुत-से क्रोधोपयुक्त और बहुत-से मायोपयुक्त होते हैं ५, अथवा बहुत-से क्रोधोपयुक्त और एक लोभोपयुक्त होता है ६, अथवा बहुत-से क्रोधोपयुक्त और बहुत-से लोभोपयुक्त होते हैं ७ । अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त और एक मायोपयुक्त होता है १, बहुत-से क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त और बहुत-से मायोपयुक्त होते हैं २, बहुत-से क्रोधोपयुक्त, बहुत-से मानोपयुक्त और एक मायोपयुक्त होता है ३, बहुत-से क्रोधोपयुक्त, बहुत मानोपयुक्त और बहुत मायोपयुक्त होते हैं ४, इसी तरह क्रोध, मान और लोभ के चार भंग क्रोध, माया और लोभ के भी चार भंग कहने चाहिए । फिर मान, माया और लोभ के साथ क्रोध को जोड़ने से चतुष्क-संयोगी आठ भंग कहने चाहिए । इसी तरह क्रोध को नहीं छोड़ते हुए कुल २७ भंग समझ लेने चाहिए ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में एक समय अधिक जघन्य स्थिति में वर्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं, मानोपयुक्त होते हैं, मायोपयुक्त होते हैं अथवा लोभोपयुक्त होते हैं ? गौतम! उनमें से कोई-कोई क्रोधोपयुक्त, कोई मानोपयुक्त, कोई मायोपयुक्त और कोई लोभोपयुक्त होता है । अथवा बहुत-से क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त और लोभोपयुक्त होते हैं । अथवा कोई-कोई क्रोधोपयुक्त और मानोपयुक्त होता है, या कोई-कोई क्रोधोपयुक्त और बहुत-से मानोपयुक्त होते हैं । इत्यादि प्रकार से अस्सी भंग समझने चाहिए । इसी प्रकार यावत् दो समय अधिक जघन्य स्थिति से लेकर संख्येय समयाधिक जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों के लिए समझना । असंख्येय समयाधिक स्थिति वालों में तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में सत्ताईस भंग कहने चाहिए ।

सूत्र - ६३

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में रहने वाले नारकों के अवगाहना स्थान कितने हैं ? गौतम ! उनके अवगाहना स्थान असंख्यात हैं । जघन्य अवगाहना (अंगुल के असंख्यातवें भाग), (मध्यम अवगाहना) एक प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना, द्विप्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना, यावत् असंख्यात प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना, तथा उसके योग्य उत्कृष्ट अवगाहना जानना ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं, मानोपयुक्त हैं, मायोपयुक्त हैं अथवा लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! जघन्य अवगाहना वालों में अस्सी भंग कहने चाहिए, यावत् संख्यात देश अधिक जघन्य अवगाहना वालों के भी अस्सी भंग कहने चाहिए । असंख्यात-प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना वाले और उसके योग्य उत्कृष्ट अवगाहना वाले, इन दोनों प्रकार के नारकों में सत्ताईस भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में बसने वाले नारक जीवों के शरीर कितने हैं ? गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं-वैक्रिय, तैजस और कार्मण ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास में बसने वाले वैक्रिय शरीरी नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं इत्यादि ? गौतम ! उनके क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए । और इस प्रकार शेष दोनों शरीरों (तैजस और कार्मण) सहित तीनों के संबंध में यही बात (आलापक) कहनी चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास बसनेवाले नैरयिकों के शरीरों का कौन-सा संहनन है ? गौतम ! उनका शरीर संहननरहित है, उनके शरीर में हड्डी, शिरा और स्नायु नहीं होती। जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनोहर हैं, वे पुद्गल नारकों के शरीर-संघात रूप परिणत होते हैं । भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासोंमें से प्रत्येक नारकावास में रहने वाले और छ संहननोंमें जिनके एक भी संहनन नहीं है, वे नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं, यावत् अथवा लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! इनके सत्ताईस भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास में रहने वाले नैरयिकों के शरीर किस संस्थान वाले हैं ? गौतम ! उन नारकों का शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-भव-धारणीय और उत्तरवैक्रिय । उनमें जो भवधारणीय शरीर वाले हैं, वे हुण्डक संस्थान वाले होते हैं, और जो शरीर उत्तरवैक्रियरूप हैं, वे भी हुण्डकसंस्थान वाले कहे गए हैं । भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में यावत् हुण्डकसंस्थान में वर्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त इत्यादि हैं ? गौतम ! इनके भी क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नैरयिकों में कितनी लेश्याएं हैं ? गौतम ! उनमें केवल एक कापोतलेश्या कही गई है । भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले कापोतलेश्या वाले नारक जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं, यावत् लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! इनके भी सत्ताईस भंग कहने चाहिए ।

सूत्र - ६४

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नारक जीव क्या सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, या सम्यग्मिथ्या-दृष्टि (मिश्रदृष्टि) हैं ? हे गौतम ! वे तीनों प्रकार के होते हैं । भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में बसने वाले सम्यग्दृष्टि नारक क्या क्रोधोपयुक्त यावत् लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! इनके क्रोधोपयुक्त आदि सत्ताईस भंग कहने चाहिए । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि के भी क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए । सम्यग्मिथ्यादृष्टि के अस्सी भंग कहने चाहिए । भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले नारक जीव क्या ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! उनमें ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं, उनमें नियमपूर्वक तीन ज्ञान होते हैं, और जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले आभिनिबोधिक ज्ञानी नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त यावत् लोभोपयुक्त होते हैं ? गौतम ! उन आभिनिबोधिक ज्ञान वाले नारकों के क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए । इसी प्रकार

तीनों ज्ञान वाले तथा तीनों अज्ञान वाले नारकों में क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले नारक जीव क्या मनोयोगी हैं, वचनयोगी हैं अथवा काययोगी हैं? गौतम ! वे प्रत्येक तीनों प्रकार के हैं; भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले और यावत् मनोयोग वाले नारक जीव क्या क्रोधोपयुक्त यावत् लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! उनके क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए । इसी प्रकार वचनयोगी और काययोगी के भी क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए । भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारक जीव क्या साकारोपयोग से युक्त हैं अथवा अनाकारोपयोग से युक्त हैं ? गौतम ! वे साकारोपयोग युक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं । भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के साकारोपयोगयुक्त नारक जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं; यावत् लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! इनमें क्रोधोपयुक्त इत्यादि २७ भंग कहने चाहिए । इसी प्रकार अनाकारोपयोगयुक्त में भी क्रोधोपयुक्त इत्यादि सत्ताईस भंग कहने चाहिए । रत्नप्रभा पृथ्वी के विषय में दस द्वारों का वर्णन किया है, उसी प्रकार सातों पृथ्वीयों के विषय में जान लेना चाहिए । किन्तु लेश्याओं में विशेषता है । वह इस प्रकार है–

सूत्र - ६५

पहली और दूसरी नरकपृथ्वी में कापोतलेश्या है, तीसरी नरकपृथ्वी में मिश्र लेश्याएं हैं, चौथी में नील लेश्या है, पाँचवी में मिश्र लेश्याएं हैं, छठी में कृष्ण लेश्या और सातवी में परम कृष्ण लेश्या होती है ।

सूत्र - ६६

भगवन् ! चौसठ लाख असुरकुमारावासों में से एक-एक असुरकुमारावास में रहने वाले असुरकुमारों के कितने कितने स्थिति-स्थान कहे गए हैं ? गौतम ! उनके स्थिति-स्थान असंख्यात कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं–जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्य स्थिति, इत्यादि सब वर्णन नैरयिकों के समान जानना चाहिए । विशेषता यह है कि इनमें जहाँ सत्ताईस भंग आते हैं, वहाँ प्रतिलोम समझना । वे इस प्रकार हैं–समस्त असुरकुमार लोभोपयुक्त होते हैं, अथवा बहुत-से लोभोपयुक्त और एक मायोपयुक्त होता है; अथवा बहुत-से लोभोपयुक्त और मायोपयुक्त होते हैं, इत्यादि रूप से जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना । विशेषता यह है कि संहनन, संस्थान, लेश्या आदि में भिन्नता जाननी चाहिए ।

सूत्र - ६७

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवासों में से एक-एक आवास में बसने वाले पृथ्वीकायिकों के कितने स्थिति-स्थान कहे गए हैं ? गौतम ! उनके असंख्येय स्थिति-स्थान हैं । वे इस प्रकार हैं–उनकी जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्यस्थिति, दो समय अधिक जघन्यस्थिति, यावत् उनके योग्य उत्कृष्ट स्थिति ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवासों में से एक-एक आवास में बसने वाले और जघन्य स्थितिवाले पृथ्वीकायिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं, मानोपयुक्त हैं, मायोपयुक्त हैं या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! वे क्रोधोपयुक्त भी हैं, यावत् लोभोपयुक्त भी हैं । इस प्रकार पृथ्वीकायिकों के सब स्थानोंमें अभंगक है विशेष यह कि तेजोलेश्या में अस्सी भंग कहने चाहिए । इसी प्रकार अप्काय के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए । तेजस्काय और वायुकाय के सब स्थानों में अभंगक हैं । वनस्पतिकायिक जीवों के सम्बन्ध में पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिए ।

सूत्र - ६८

जिन स्थानों में नैरयिक जीवों के अस्सी भंग कहे गए हैं, उन स्थानों में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के भी अस्सी भंग होते हैं । विशेषता यह है कि सम्यक्त्व, आभिनिबोधिक ज्ञान, और श्रुतज्ञान–इन तीन स्थानों में भी द्वीन्द्रिय आदि जीवों के अस्सी भंग होते हैं, इतनी बात नारक जीवों से अधिक है । तथा जिन स्थानों में नारक जीवों के सत्ताईस भंग कहे हैं, उन सभी स्थानों में यहाँ अभंगक हैं ।

जैसा नैरयिकों के विषय में कहा, वैसा ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के विषय में कहना चाहिए । विशेषता यह है कि जिन-जिन स्थानों में नारक-जीवों के सत्ताईस भंग कहे गए हैं, उन-उन स्थानों में यहाँ अभंगक कहना चाहिए, और जिन स्थानों में नारकों के अस्सी भंग कहे हैं, उन स्थानों में पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों के भी अस्सी

भंग कहने चाहिए ।

नारक जीवों में जिन-जिन स्थानों में अस्सी भंग कहे गए हैं, उन-उन स्थानों में मनुष्यों के भी अस्सी भंग कहना । नारक जीवों में जिन-जिन स्थानोंमें २७ भंग कहे गए हैं उनमें मनुष्यों में अभंगक कहना । विशेषता यह है कि मनुष्यों के जघन्य स्थिति में और आहारक शरीर में अस्सी भंग होते हैं, यही नैरयिकों की अपेक्षा मनुष्यों में अधिक हैं ।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन भवनपति देवों के समान समझना । विशेषता यह है कि जो जिसका नानात्व-भिन्नत्व है, यावत् अनुत्तरविमान तक कहना । भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कहकर यावत् विचरण करते हैं ।

शतक-१ – उद्देशक-६

सूत्र - ६९

भगवन् ! जितने जितने अवकाशान्तर से अर्थात्-जितनी दूरी से उदय होता हुआ सूर्य आँखो से शीघ्र देखा जाता है, उतनी ही दूरी से क्या अस्त होता हुआ सूर्य भी दिखाई देता है ? हाँ, गौतम ! जितनी दूर से उदय होता हुआ सूर्य आँखो से दीखता है, उतनी ही दूरी से अस्त होता सूर्य भी आँखों से दिखाई देता है ।

भगवन् ! उदय होता हुआ सूर्य अपने ताप द्वारा जितने क्षेत्र को सब प्रकार से, चारों ओर से सभी दिशाओं-विदिशाओं को प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और अत्यन्त तपाता है, क्या उतने ही क्षेत्र को अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने ताप द्वारा सभी दिशाओं-विदिशाओं को प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और बहुत तपाता है ? हाँ, गौतम ! उदय होता हुआ सूर्य जितने क्षेत्र को प्रकाशित करता है, यावत् अत्यन्त तपाता है, उतने ही क्षेत्र को अस्त होता हुआ सूर्य भी यावत् अत्यन्त तपाता है ।

भगवन् ! सूर्य जिस क्षेत्र को प्रकाशित करता है, क्या वह क्षेत्र सूर्य से स्पृष्ट होता है, या अस्पृष्ट होता है ? गौतम ! वह क्षेत्र सूर्य से स्पृष्ट होता है और यावत् उस क्षेत्र को छहों दिशाओं में प्रकाशित करता है । इसी प्रकार उद्योतित करता है, तपाता है और बहुत तपाता है, यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओंमें अत्यन्त तपाता है ।

भगवन् ! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है, या अस्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है ? गौतम ! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है, यावत् छहों दिशाओं में स्पर्श करता है ।

सूत्र - ७०

भगवन् ! क्या लोक का अन्त अलोक के अन्त को स्पर्श करता है ? क्या अलोक का अन्त लोक के अन्त को स्पर्श करता है ? हाँ, गौतम ! लोक का अन्त अलोक के अन्त को स्पर्श करता है, और अलोक का अन्त लोक के अन्त को स्पर्श करता है । भगवन् ! वह जो स्पर्श करता है, क्या वह स्पृष्ट है या अस्पृष्ट है ? गौतम ! यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं में स्पृष्ट होता है ।

भगवन् ! क्या द्वीप का अन्त समुद्र के अन्त को और समुद्र का अन्त द्वीप के अन्त को स्पर्श करता है ? हाँ, गौतम ! यावत्-छहों दिशाओं में स्पर्श करता है । भगवन् ! क्या इसी प्रकार पानी का किनारा, पोत के किनारे को और पोत का किनारा पानी के किनारे को, क्या छेद का किनारा वस्त्र के किनारे को और वस्त्र का किनारा छेद के किनारे को और क्या छाया का अन्त आतप के अन्त को और आतप का अन्त छाया के अन्त को स्पर्श करता है? हाँ, गौतम ! यावत् छहों दिशाओं को स्पर्श करता है ।

सूत्र - ७१

भगवन् ! क्या जीवों द्वारा प्राणातिपातक्रिया की जाती है ? भगवन् ! की जाने वाली वह प्राणातिपातक्रिया क्या स्पृष्ट है या अस्पृष्ट है ? गौतम ! यावत् व्याघात न हो तो छहों दिशाओं को और व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं को, कदाचित् चार दिशाओं को और कदाचित् पाँच दिशाओं को स्पर्श करती है ।

भगवन् ! क्या वह (प्राणातिपात) क्रिया 'कृत' है अथवा अकृत ? गौतम ! वह क्रिया कृत है, अकृत नहीं । भगवन् ! की जाने वाली वह क्रिया क्या आत्मकृत है, परकृत है, अथवा उभयकृत है ? गौतम ! वह क्रिया आत्म-कृत

है, किन्तु परकृत या उभयकृत नहीं । भगवन् ! जो क्रिया की जाती है, वह क्या अनुक्रमपूर्वक की जाती है, या बिना अनुक्रम से ? गौतम ! वह अनुक्रमपूर्वक की जाती है, बिना अनुक्रमपूर्वक नहीं ।

भगवन् ! क्या नैरयिकों द्वारा प्राणातिपातक्रिया की जाती है ? हाँ, गौतम ! की जाती है । भगवन् ! नैरयिकों द्वारा जो क्रिया की जाती है, वह स्पृष्ट की जाती है या अस्पृष्ट की जाती है ? गौतम ! वह यावत् नियम से छहों दिशाओं में की जाती है । भगवन् ! नैरयिकों द्वारा जो क्रिया की जाती है, वह क्या कृत है अथवा अकृत है ? गौतम ! वह पहले की तरह जानना चाहिए, यावत्-वह अनुक्रमपूर्वक कृत है, अननुपूर्वक नहीं; ऐसा कहना चाहिए। नैरयिकों के समान एकेन्द्रिय को छोड़कर यावत् वैमानिकों तक सब दण्डकों में कहना चाहिए । एकेन्द्रियों के विषय में सामान्य जीवों की भाँति कहना चाहिए ।

प्राणातिपात (क्रिया) के समान मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक इन अठारह ही पापस्थानों के विषय में चौबीस दण्डक कहना । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।' यों कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करके यावत् विचरते हैं।

सूत्र - ७२

उस काल और उस समयमें भगवान महावीर के अन्तेवासी रोह नामक अनगार थे । वे प्रकृति से भद्र, मृदु, विनीत, उपशान्त, अल्प, क्रोध, मान, माया, लोभवाले, अत्यन्त निरहंकारतासम्पन्न, गुरु समाश्रित, किसी को संताप न पहुँचाने वाले, विनयमूर्ति थे । वे रोह अनगार ऊर्ध्वजानु और नीचे की ओर सिर झुकाए हुए, ध्यान रूपी कोष्ठक में प्रविष्ट, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर के समीप विचरते थे । तत्पश्चात् वह रोह अनगार जातश्रद्ध होकर यावत् भगवान की पर्युपासना करते हुए बोले-भगवन् ! पहले लोक है, और पीछे अलोक है ? अथवा पहले अलोक और पीछे लोक है ? रोह ! लोक और अलोक, पहले भी हैं और पीछे भी हैं । ये दोनों ही शाश्वभाव हैं । हे रोह ! इन दोनों में 'यह पहला और यह पीछला' ऐसा क्रम नहीं है । भगवन् ! पहले जीव और पीछे अजीव है, या पहले अजीव और पीछे जीव है ? रोह ! लोक और अलोक के विषय में कहा है वैसा ही यहाँ समझना । इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, सिद्धि और असिद्धि तथा सिद्ध और संसारी के विषय में भी जानना ।

भगवन् ! पहले अण्डा और फिर मुर्गी है ? या पहले मुर्गी और फिर अण्डा है ? हे रोह ! वह अण्डा कहाँ से आया ? भगवन् ! वह मुर्गी से आया । वह मुर्गी कहाँ से आई ? भगवन् ! वह अण्डे से हुई । इसी प्रकार हे रोह ! मुर्गी और अण्डा पहले भी है, और पीछे भी है । ये दोनों शाश्वतभाव हैं । हे रोह ! इन दोनों में पहले-पीछे का क्रम नहीं है । भगवन् ! पहले लोकान्त और फिर अलोकान्त है ? अथवा पहले अलोकान्त और फिर लोकान्त है ? रोह! इन दोनों में यावत् कोई क्रम नहीं है । भगवन् ! पहले लोकान्त है और फिर सातवा अवकाशान्तर है ? अथवा पहले सातवा अवकाशान्तर है और पीछे लोकान्त है ? हे रोह ! इन दोनों में पहले-पीछे का क्रम नहीं है । इसी प्रकार लोकान्त और सप्तम तनुवात, घनवात, घनोदधि और सातवी पृथ्वी के लिए समझना । इस प्रकार निम्नलिखित स्थानों में से प्रत्येक के साथ लोकान्त को जोड़ना यथा-

सूत्र - ७३, ७४

अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर, वर्ष (क्षेत्र), नारक आदि जीव (चौबीस दण्डक के प्राणी), अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या । तथा दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्य, प्रदेश, पर्याय और काल ।

सूत्र - ७५

क्या ये पहले हैं और लोकान्त पीछे है ? अथवा हे भगवन् ! क्या लोकान्त पहले और सर्वाद्धा (सर्व काल) पीछे हैं ? जैसे लोकान्त के साथ (पूर्वोक्त) सभी स्थानों का संयोग किया, उसी प्रकार अलोकान्त के इन सभी स्थानों को जोड़ना चाहिए ।

भगवन् ! पहले सप्तम अवकाशान्तर है और पीछे सप्तम तनुवात है ? हे रोह ! इसी प्रकार सप्तम अवकाशान्तर को पूर्वोक्त सब स्थानों के साथ जोड़ना चाहिए । इसी प्रकार यावत् सर्वाद्धा तक समझना चाहिए । भगवन्!

पहले सप्तम तनुवात है और पीछे सप्तम घनवात हैं ? रोह ! यह भी उसी प्रकार यावत् सर्वाद्धा तक जानना चाहिए। इस प्रकार ऊपर के एक-एक (स्थान) का संयोग करते हुए और नीचे का जो-जो स्थान हो, उसे छोड़ते हुए पूर्ववत् समझना, यावत् अतीत और अनागत काल और फिर सर्वाद्धा तक, यावत् हे रोह ! इसमें कोई पूर्वापर का क्रम नहीं होगा । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कहकर रोह अनगार तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे

सूत्र - ७६

'हे भगवन् !' ऐसा कहकर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से यावत् कहा-भगवन् ! लोक की स्थिति कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! आठ प्रकार की । वह इस प्रकार है-आकाश के आधार पर वायु (तनुवात) टिका हुआ है; वायु के आधार पर उदधि है; उदधि के आधार पर पृथ्वी है, त्रस और स्थावर जीव पृथ्वी के आधार पर हैं; अजीव जीवों के आधार पर टिके हैं; (सकर्मक जीव) कर्म के आधार पर हैं; अजीवों को जीवों ने संग्रह कर रखा है, जीवों को कर्मों ने संग्रह कर रखा है ।

भगवन् ! इस प्रकार कहने का क्या कारण है कि लोक की स्थिति आठ प्रकार की है और यावत् जीवों को कर्मों ने संग्रह कर रखा है ? गौतम ! जैसे कोई पुरुष चमड़े की मशक को वायु से फुलावे; फिर उस मशक का मुख बाँध दे, तत्पश्चात् मशक के बीच के भाग में गाँठ बाँधे; फिर मशक का मुँह खोल दे और उसके भीतर की हवा नीकाल दे; तदनन्तर उस मशक के ऊपर के भाग में पानी भरे; फिर मशक का मुख बंद कर दे, तत्पश्चात् उस मशक की बीच की गाँठ खोल दे, तो हे गौतम ! वह भरा हुआ पानी क्या उस हवा के ऊपर ही ऊपर के भाग में रहेगा ? (गौतम-) हाँ, भगवन् ! रहेगा । (भगवन्-) 'हे गौतम ! इसीलिए मैं कहता हूँ कि यावत्-कर्मों को जीवों ने संग्रह कर रखा है ।

अथवा हे गौतम ! कोई पुरुष चमड़े की उस मशक को हवा से फूलाकर अपनी कमर पर बाँध ले, फिर वह पुरुष अथाह, दुस्तर और पुरुष-परिमाण से भी अधिक पानी में प्रवेश करे; तो वह पुरुष पानी की ऊपरी सतह पर ही रहेगा ? हाँ, भगवन् ! रहेगा । हे गौतम ! इसी प्रकार यावत्-कर्मों ने जीवों को संगृहीत कर रखा है ।

सूत्र - ७७

भगवन् ! क्या जीव और पुद्‌गल परस्पर सम्बद्ध हैं ?, परस्पर एक दूसरे से स्पृष्ट हैं ?, परस्पर गाढ़ सम्बद्ध हैं, परस्पर स्निग्धता से प्रतिबद्ध हैं, (अथवा) परस्पर घट्टित होकर रहे हुए हैं ? हाँ, गौतम ! ये परस्पर इसी प्रकार रहे हुए हैं। भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! जैसे-एक तालाब हो, वह जल से पूर्ण हो, पानी से लबालब भरा हुआ हो, पानी से छलक रहा हो और पानी से बढ़ रहा हो, वह पानी से भरे हुए घड़े के समान है । उस तालाब में कोई पुरुष एक ऐसी बड़ी नौका, जिसमें सौ छोटे छिद्र हों और सौ बड़े छिद्र हों; डाल दे तो वह नौका, उन-उन छिद्रों द्वारा पानी से भरती हुई, जल से परिपूर्ण, पानी से लबालब भरी हुई, पानी से छलकती हुई, बढ़ती हुई क्या भरे हुए घड़े के समान हो जाएगी ? हाँ, भगवन् ! हो जाएगी । इसलिए हे गौतम ! मैं कहता हूँ-यावत् जीव और पुद्‌गल परस्पर घट्टित होकर रहे हुए हैं ।

सूत्र - ७८

भगवन् ! क्या सूक्ष्म स्नेहकाय, सदा परिमित पड़ता है ? हाँ, गौतम ! पड़ता है । भगवन् ! वह सूक्ष्म स्नेह-काय ऊपर पड़ता है, नीचे पड़ता है या तीरछा पड़ता है ? गौतम ! वह ऊपर भी पड़ता है, नीचे भी पड़ता है और तीरछा भी पड़ता है । भगवन् ! क्या वह सूक्ष्म स्नेहकाय स्थूल अप्काय की भाँति परस्पर समायुक्त होकर बहुत दीर्घकाल तक रहता है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है; क्योंकि वह (सूक्ष्म स्नेहकाय) शीघ्र ही विध्वस्त हो जाता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-१ – उद्देशक-७

सूत्र - ७९

भगवन् ! नारकों में उत्पन्न होता हुआ नारक जीव एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है या एक भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है, या सर्वभाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता

अथवा सब भागों को आश्रय करके उत्पन्न होता है ? गौतम ! नारक जीव एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता; एक भाग से सर्वभाग को आश्रित करके भी उत्पन्न नहीं होता, और सर्वभाग से एक भाग को आश्रित करके भी उत्पन्न नहीं होता; किन्तु सर्वभाग से सर्वभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है । नारकों के समान वैमानिकों तक इसी प्रकार समझना चाहिए ।

सूत्र - ८०

नारकों में उत्पन्न होता हुआ नारक जीव क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, एक भाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार करता है, सर्वभागों से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, अथवा सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके आहार करता है ? गौतम ! वह एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता, एक भाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार नहीं करता, किन्तु सर्वभागों से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, अथवा सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके आहार करता है । नारकों के समान ही वैमानिकों तक इसी प्रकार जानना ।

भगवन् ! नारकों में से - नीकलता हुआ नारक जीव क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके नीकलता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न । गौतम ! जैसे उत्पन्न होते हुए नैरयिक आदि के विषय में कहा था, वैसे ही उद्-वर्तमान नैरयिक आदि के विषय में दण्डक कहना । भगवन् ! नैरयिकों से उद्वर्तमान नैरयिक क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् । गौतम ! यह भी पूर्वसूत्र के समान जानना; यावत् सर्वभागों से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, अथवा सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके आहार करता है । इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिए । भगवन् ! नारकों में उत्पन्न हुआ नैरयिक क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् । गौतम ! यह दण्डक भी उसी प्रकार जानना, यावत्-सर्वभाग से सर्वभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है । उत्पद्यमान और उद्वर्तमान के समान उत्पन्न और उद्वृत्त के विषय में भी चार दण्डक कहने चाहिए ।

भगवन् ! नैरयिकों में उत्पन्न होता हुआ नारक जीव क्या अर्द्ध भाग की आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या अर्द्धभाग से सर्वभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? अथवा सर्वभाग से अर्द्ध भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्वभाग से सर्वभाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? गौतम ! जैसे पहलेवालों के साथ आठ दण्डक कहे हैं, वैसे ही 'अर्द्ध' के साथ भी आठ दण्डक कहने चाहिए । विशेषता इतनी है कि-जहाँ 'एक भाग से एक को आश्रित करके उत्पन्न होता है,' ऐसा पाठ आए, वहाँ 'अर्द्ध भाग से अर्द्ध भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है,' ऐसा पाठ बोलना चाहिए । बस यही भिन्नता है । ये सब मिलकर कुल सोलह दण्डक होते हैं ।

सूत्र - ८१

भगवन् ! क्या जीव विग्रहगतिसमापन्न-विग्रहगति को प्राप्त होता है, अथवा विग्रहगतिसमापन्न-विग्रहगति को प्राप्त नहीं होता ? गौतम ! कभी (वह) विग्रहगति को प्राप्त होता है, और कभी विग्रहगति को प्राप्त नहीं होता । इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त जानना चाहिए ।

भगवन् ! क्या बहुत से जीव विग्रहगति को प्राप्त होते हैं अथवा विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते ? गौतम ! बहुत से जीव विग्रहगति को प्राप्त होते हैं और बहुत से जीव विग्रहगति को प्राप्त नहीं भी होते । भगवन् ! क्या नैरयिक विग्रहगति को प्राप्त होते हैं या विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते ? गौतम ! (कभी) वे सभी विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते, अथवा (कभी) बहुत से विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते और कोई-कोई विग्रहगति को प्राप्त नहीं होता, अथवा (कभी) बहुत से जीव विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते और बहुत से (जीव) विग्रहगति को प्राप्त होते हैं। यों जीव सामान्य और एकेन्द्रिय को छोड़कर सर्वत्र इसी प्रकार तीन-तीन भंग कहने चाहिए ।

सूत्र - ८२

भगवन् ! महान् ऋद्धि वाला, महान् द्युति वाला, महान् बल वाला, महायशस्वी, महाप्रभावशाली, मरण काल

में च्यवने वाला, महेश नामक देव लज्जा के कारण, घृणा के कारण, परीषह के कारण कुछ समय तक आहार नहीं करता, फिर आहार करता है और ग्रहण किया हुआ आहार परिणत भी होता है । अन्त में उस देव की वहाँ की आयु सर्वथा नष्ट हो जाती है । इसलिए वह देव जहाँ उत्पन्न होता है, वहाँ की आयु भोगता है; तो हे भगवन्उसकी वह आयु तिर्यंच की समझी जाए या मनुष्य की आयु समझी जाए ? हाँ, गौतम ! उस महा ऋद्धि वाले देव का यावत् च्यवन के पश्चात् तिर्यंच का आयुष्य अथवा मनुष्य का आयुष्य समझना चाहिए ।

सूत्र - ८३

भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव, क्या इन्द्रियसहित उत्पन्न होता है अथवा इन्द्रियरहित उत्पन्न होता है? गौतम ! इन्द्रियसहित भी उत्पन्न होता है, इन्द्रियरहित भी उत्पन्न होता है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! द्रव्येन्द्रियों की अपेक्षा वह बिना इन्द्रियों का उत्पन्न होता है और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियों सहित उत्पन्न होता है, इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है ।

भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव, क्या शरीर-सहित उत्पन्न होता है, अथवा शरीररहित उत्पन्न होता है ? गौतम ! शरीरसहित भी उत्पन्न होता है, शरीररहित भी उत्पन्न होता है । भगवन् ! यह आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों की अपेक्षा शरीररहित उत्पन्न होता है तथा तैजस, कार्मण शरीरों की अपेक्षा शरीरसहित उत्पन्न होता है । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा है ।

भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होते ही जीव सर्वप्रथम क्या आहार करता है ? गौतम ! परस्पर एक दूसरे में मिला हुआ माता का आर्तव (रज) और पिता का शुक्र (वीर्य), जो कि कलुष और किल्बिष है, जीव गर्भ में उत्पन्न होते ही सर्वप्रथम उसका आहार करता है । भगवन् ! गर्भ में गया (रहा) हुआ जीव क्या आहार करता है ? गौतम ! उसकी माता जो नाना प्रकार की (दुग्धादि) रसविकृतियों का आहार करती है; उसके एक भाग के साथ गर्भगत जीव माता के आर्तव का आहार करता है ।

भगवन् ! क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मल होता है, मूत्र होता है, कफ होता है, नाक का मैल होता है, वमन होता है, पित्त होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है–गर्भगत जीव के ये सब नहीं होते हैं । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? हे गौतम ! गर्भ में जाने पर जीव जो आहार करता है, जिस आहार का चय करता है, उस आहार को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में तथा हड्डी, मज्जा, केश, दाढ़ी-मूँछ, रोम और नखों के रूप में परिणत करता है । इसलिए हे गौतम ! गर्भ में गए हुए जीव के मल-मूत्रादि नहीं होते ।

भगवन् ! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव मुख से कवलाहार करने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है– भगवन् ! यह आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! गर्भगत जीव सब ओर से आहार करता है, सारे शरीर से परिणमाता है, सर्वात्मना उच्छ्वास लेता है, सर्वात्मना निःश्वास लेता है, बार-बार आहार करता है, बार-बार (उसे) परिणमाता है, बार-बार उच्छ्वास लेता है, बार-बार निःश्वास लेता है, कदाचित् आहार करता है, कदाचित् परिणमाता है, कदाचित् उच्छ्वास लेता है, कदाचित् निःश्वास लेता है, तथा पुत्र (-पुत्री) के जीव को रस पहुँचाने में कारणभूत और माता के रस लेने में कारणभूत जो मातृजीवरसहरणी नाम की नाड़ी है वह माता के जीव के साथ सम्बद्ध है और पुत्र (-पुत्री) के जीव के साथ स्पृष्ट–जुड़ी हुई है । उस नाड़ी द्वारा वह (गर्भगत जीव) आहार लेता है और आहार को परिणमाता है । तथा एक और नाड़ी है, जो पुत्र (-पुत्री) के जीव के साथ सम्बद्ध है और माता के जीव के साथ स्पृष्ट–जुड़ी हुई होती है, उससे (गर्भगत) पुत्र (या पुत्री) का जीव आहार का चय करता है और उपचय करता है । इस कारण से हे गौतम ! गर्भगत जीव मुख द्वारा कवलरूप आहार को लेने में समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! (जीव के शरीर में) माता के अंग कितने कहे गए हैं ? गौतम ! माता के तीन अंग कहे गए हैं; मांस, शोणित और मस्तक का भेजा । भगवन् ! पिता के कितने अंग कहे गए हैं ? गौतम ! पिता के तीन अंग कहे गए हैं । –हड्डी, मज्जा और केश, दाढ़ी-मूँछ, रोम तथा नख । भगवन् ! माता और पिता के अंग सन्तान के शरीर में कितने काल तक रहते हैं ? गौतम ! संतान का भवधारणीय शरीर जितने समय तक रहता है, उतने समय तक वे अंग रहते हैं; और

जब भवधारणीय शरीर समय-समय पर हीन होता हुआ अन्तिम समय में नष्ट हो जाता है; तब माता-पिता के वे अंग भी नष्ट हो जाता है ।

सूत्र - ८४

भगवन् ! गर्भ में रहा हुआ जीव क्या नारकों में उत्पन्न होता है ? गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं उत्पन्न होता । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय और समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त (परिपूर्ण) जीव, वीर्यलब्धि द्वारा, वैक्रियलब्धि द्वारा शत्रुसेना का आगमन सूनकर, अवधारण (विचार) करके अपने आत्मप्रदेशों को गर्भ से बाहर नीकालता है, बाहर नीकालकर वैक्रियसमुद्घात से समवहत होकर चतुरंगिणी सेना की विक्रिया करता है । चतुरंगिणी सेना की विक्रिया करके उस सेना से शत्रुसेना के साथ युद्ध करता है । वह अर्थ का कामी, राज्य का कामी, भोग का कामी, काम का कामी, अर्थाकांक्षी, राज्याकांक्षी, भोगाकांक्षी, कामाकांक्षी तथा अर्थ का प्यासा, राज्य का प्यासा, भोग-पिपासु एवं कामपिपासु, उन्हीं चित्त वाला, उन्हीं में मन वाला, उन्हीं में आत्मपरिणाम वाला, उन्हीं में अध्यवसित, उन्हीं में प्रयत्नशील, उन्हीं में सावधानता-युक्त, उन्हीं के लिए क्रिया करने वाला, और उन्हीं भावनाओं से भावित, यदि उसी (समय के) अन्तर में मृत्यु को प्राप्त हो तो वह नरक में उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! यावत्-कोई जीव नरक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं उत्पन्न होता ।

भगवन् ! गर्भस्थ जीव क्या देवलोक में जाता है ? हे गौतम ! कोई जीव जाता है, और कोई नहीं जाता । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय और सब पर्याप्तियों से पर्याप्त जीव, तथारूप श्रमण या माहन के पास एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन सूनकर, अवधारण करके शीघ्र ही संवेग से धर्मश्रद्धालु बनकर, धर्म में तीव्र अनुराग से रक्त होकर, वह धर्म का कामी, पुण्य का कामी, स्वर्ग का कामी, मोक्ष का कामी, धर्माकांक्षी, पुण्याकांक्षी, स्वर्ग का आकांक्षी, मोक्षाकांक्षी तथा धर्मपीपासु, पुण्यपीपासु, स्वर्गपीपासु एवं मोक्षपीपासु, उसी में चित्त वाला, उसी में मन वाला, उसी में आत्मपरिणाम वाला, उसी में अध्यवसित, उसी में तीव्र प्रयत्नशील, उसी में सावधानतायुक्त, उसी के लिए अर्पित होकर क्रिया करने वाला, उसी की भावनाओं से भावित जीव ऐसे ही अन्तर में मृत्यु को प्राप्त हो तो देवलोक में उत्पन्न होता है । इसलिए हे गौतम ! कोई जीव देवलोक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं उत्पन्न होता ।

भगवन् ! गर्भ में रहा हुआ जीव क्या चित्त-लेटा हुआ होता है, या करवट वाला होता है, अथवा आम के समान कुबड़ा होता है, या खड़ा होता है, बैठा होता है या पड़ा हुआ होता है, तथा माता जब सो रही हो तो सोया होता है, माता जब जागती हो तो जागता है, माता के सुखी होने पर सुखी होता है, एवं माता के दुःखी होने पर दुःखी होता है ? हाँ, गौतम ! गर्भ में रहा हुआ जीव...यावत्-जब माता दुःखित हो तो दुःखी होता है ।

इसके पश्चात् प्रसवकाल में अगर वह गर्भगत जीव मस्तक द्वारा या पैरों द्वारा (गर्भ से) बाहर आए तब तो ठीक तरह आता है, यदि वह टेढ़ा होकर आए तो मर जाता है । गर्भ से नीकलने के पश्चात् उस जीव के कर्म यदि अशुभरूप में बंधे हों, स्पृष्ट हों, निधत्त हों, कृत हों, प्रस्थापित हों, अभिनिविष्ट हों, अमिसमन्वागत हों, उदीर्ण हों, और उपशान्त न हों, तो वह जीव कुरूप, कुवर्ण दुर्गन्ध वाला, कुरस वाला, कुस्पर्श वाला, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम, हीन स्वर वाला, दीन स्वर वाला, अनिष्ट अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ एवं अमनाम स्वर वाला; तथा अनादेय वचन वाला होता है, और यदि उस जीव के कर्म अशुभरूप में न बँधे हुए हों तो, उसके उपर्युक्त सब बातें प्रशस्त होती हैं...यावत्-वह आदेयवचन वाला होता है ।' 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-१ – उद्देशक-८

सूत्र - ८५

राजगृह नगर में समवसरण हुआ और यावत्-श्री गौतम स्वामी इस प्रकार बोले-भगवन् ! क्या एकान्त-बाल (मिथ्यादृष्टि) मनुष्य, नारक की आयु बाँधता है, तिर्यंच की आयु बाँधता है, मनुष्य की आयु बाँधता है अथवा देव की आयु बाँधता है ? तथा क्या वह नरक की आयु बाँधकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है; तिर्यंच की आयु बाँधकर तिर्यंचों में

उत्पन्न होता है; मनुष्य की आयु बाँधकर मनुष्यों में उत्पन्न होता है अथवा देव की आयु बाँधकर देवलोक में उत्पन्न होता है ? गौतम ! एकान्त बाल मनुष्य नारक की भी आयु बाँधता है, तिर्यंच की भी आयु बाँधता है, मनुष्य की भी आयु बाँधता है और देव की भी आयु बाँधता है; तथा नरकायु बाँधकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है, तिर्यंचायु बाँधकर तिर्यंचों में उत्पन्न होता है, मनुष्यायु बाँधकर मनुष्यों में उत्पन्न होता है और देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है ।

सूत्र - ८६

भगवन् ! एकान्तपण्डित मनुष्य क्या नरकायु बाँधता है ? या यावत् देवायु बाँधता है ? और यावत् देवायु बाँधकर देवलोक में उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! एकान्तपण्डित मनुष्य, कदाचित् आयु बाँधता है और कदाचित् आयु नहीं बाँधता । यदि आयु बाँधता है तो देवायु बाँधता है, किन्तु नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु नहीं बाँधता । वह नरकायु नहीं बाँधने से नारकों में उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार तिर्यंचायु न बाँधने से तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होता और मनुष्यायु न बाँधने से मनुष्यों में भी उत्पन्न नहीं होता; किन्तु देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है कि...यावत्-देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है ? गौतम ! एकान्तपण्डित मनुष्य की केवल दो गतियाँ कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं-अन्तक्रिया और कल्पोपपत्तिका । इस कारण हे गौतम ! एकान्तपण्डित मनुष्य देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है ।

भगवन् ! क्या बालपण्डित मनुष्य नरकायु बाँधता है, यावत्-देवायु बाँधता है ? और यावत्-देवायु बाँधकर देवलोक में उत्पन्न होता है ? गौतम ! वह नरकायु नहीं बाँधता और यावत् देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है कि-बालपण्डित मनुष्य यावत् देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है ? गौतम ! बालपण्डित मनुष्य तथारूप श्रमण या माहन के पास से एक भी आर्य तथा धार्मिक सुवचन सूनकर, अवधारण करके एकदेश से विरत होता है, और एकदेश से विरत नहीं होता । एकदेश से प्रत्याख्यान करता है और एकदेश से प्रत्याख्यान नहीं करता । इसलिए हे गौतम ! देश-विरति और देश-प्रत्याख्यान के कारण वह नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु का बन्ध नहीं करता और यावत्-देवायु बाँधकर देवों में उत्पन्न होता है । इसलिए पूर्वोक्त कथन किया गया है

सूत्र - ८७

भगवन् ! मृगों से आजीविका चलाने वाला, मृगों का शिकारी, मृगों के शिकार में तल्लीन कोई पुरुष मृगवध के लिए नीकला हुआ कच्छ में, द्रह में, जलाशय में, घास आदि के समूह में, वलय में, अन्धकारयुक्त प्रदेश में, गहन में, पर्वत के एक भागवर्ती वन में, पर्वत पर पर्वतीय दुर्गम प्रदेश में, वन में, बहुत-से वृक्षों से दुर्गम वन में, 'ये मृग है', ऐसा सोचकर किसी मृग को मारने के लिए कूटपाश रचे तो हे भगवन् ! वह पुरुष कितनी क्रियाओं वाला कहा गया है ? हे गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है ।

भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'वह पुरुष कदाचित् तीन क्रियाओं यावत् पाँच क्रियाओं वाला होता है ? गौतम ! जब तक वह पुरुष जाल को धारण करता है और मृगों को बाँधता नहीं है तथा मृगों को मारता नहीं है, तब तक वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । जब तक वह जाल को धारण किये हुए है और मृगों को बाँधता है किन्तु मारता नहीं; तब तक वह पुरुष कायिकी आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, और पारितापनिकी, इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । जब वह पुरुष जाल को धारण किये हुए हैं, मृगों को बाँधता है और मारता है, तब वह-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितपनिकी और प्राणातिपातिकी इन पाँचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । इस कारण हे गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पाँचों क्रियाओं वाला कहा जाता है ।

सूत्र - ८८

भगवन् ! कच्छ में यावत्-वनविदुर्ग में कोई पुरुष घास के तिनके इकट्ठे करके उनमें अग्नि डाले तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पाँच क्रियाओं वाला होता है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! जब तक वह पुरुष

तिनके इकट्ठे करता है, तब तक वह तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । जब वह तिनके इकट्ठे कर लेता है, और उनमें अग्नि डालता है, किन्तु जलाता नहीं है, तब तक वह चार क्रियाओं वाला होता है । जब वह तिनके इकट्ठे करता है, उनमें आग डालता है और जलाता है, तब वह पुरुष कायिकी आदि पाँचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । इसलिए हे गौतम! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रियाओं वाला यावत् कदाचित् पाँचों क्रियाओं वाला कहा जाता है ।

सूत्र - ८९

भगवन् ! मृगों से आजीविका चलाने वाला, मृगों का शिकार करने के लिए कृतसंकल्प, मृगों के शिकार में तन्मय, मृगवध के लिए कच्छ में यावत् वनविदुर्ग में जाकर 'ये मृग है' ऐसा सोचकर किसी एक मृग को मारने के लिए बाण फैंकता है, तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है ? हे गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है? गौतम ! जब तक वह पुरुष बाण फैंकता है, परन्तु मृग को बेधता नहीं है, तथा मृग को मारता नहीं है, तब वह पुरुष तीन क्रिया वाला है । जब वह बाण फैंकता है और मृग को बेधता है, पर मृग को मारता नहीं है, तब तक वह चार क्रिया वाला है, और जब वह बाण फैंकता है, मृग को बेधता है और मारता है; तब वह पुरुष पाँच क्रिया वाला कहलाता है । हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा जाता है कि 'कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है ।'

सूत्र - ९०

भगवन् ! कोई पुरुष कच्छ में यावत् किसी मृग का वध करने के लिए कान तक ताने हुए बाण को प्रयत्न-पूर्वक खींच कर खड़ा हो और दूसरा कोई पुरुष पीछे से आकर उस खड़े हुए पुरुष का मस्तक अपने हाथ से तलवार द्वारा काट डाले । वह बाण पहले के खिंचाव से उछलकर उस मृग को बींध डाले, तो हे भगवन् ! वह पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है या (उक्त) पुरुष के वैर से स्पृष्ट है ? गौतम ! जो पुरुष मृग को मारता है, वह मृग के वैर से स्पृष्ट है और जो पुरुष, पुरुष को मारता है, वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट है । भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? हे गौतम ! यह तो निश्चित है न कि 'जो किया जा रहा है, वह किया हुआ' कहलाता है, 'जो मारा जा रहा है, वह मारा हुआ' 'जो जलाया जा रहा है, वह जलाया हुआ' कहलाता है और 'जो फैंका जा रहा है, वह फैंका हुआ, कहलाता है ? हाँ, भगवन् ! जो किया जा रहा है, वह किया हुआ कहलाता है यावत्-जो फैंका जा रहा है, वह फैंका हुआ कहलाता है । इसलिए हे गौतम ! जो मृग को मारता है, वह मृग के वैर से स्पृष्ट और जो पुरुष को मारता है, वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट कहलाता है । यदि मरने वाला छह मास के अन्दर मरे, तो मारने वाला कायिकी आदि यावत् पाँचों क्रियाओं से स्पृष्ट कहलाता है और यदि मरने वाला छह मास के पश्चात् मरे तो मारने वाला पुरुष, कायिकी यावत् पारितापनिकी इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट कहलाता है ।

सूत्र - ९१

भगवन् ! कोई पुरुष किसी पुरुष को बरछी (या भाले) से मारे अथवा अपने हाथ से तलवार द्वारा उस पुरुष का मस्तक काट डाले, तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! जब वह पुरुष उसे बरछी द्वारा मारता है, अथवा अपने हाथ से तलवार द्वारा उस पुरुष का मस्तक काटता है, तब वह पुरुष कायिकी, आधिकर-णिकी यावत् प्राणातिपातिकी इन पाँचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है और वह आसन्नवधक एवं दूसरे के प्राणों की परवाह न करने वाला पुरुष, पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है ।

सूत्र - ९२

भगवन् ! एक सरीखे, एक सरीखी चमड़ी वाले, समानवयस्क, समान द्रव्य और उपकरण वाले कोई दो पुरुष परस्पर एक दूसरे के साथ संग्राम करें, तो उनमें से एक पुरुष जीतता है और एक पुरुष हारता है; भगवन् ! ऐसा क्यों होता है ? हे गौतम ! जो पुरुष सवीर्य होता है, वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है, वह हारता है ? भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिसने वीर्य-विघातक कर्म नहीं बाँधे हैं, नहीं स्पर्श किये हैं यावत् प्राप्त नहीं किए हैं और

उसके वे कर्म उदय में नहीं आए हैं, परन्तु उपशान्त हैं, वह पुरुष जीतता है । जिसने वीर्य विघातक कर्म बाँधे हैं, स्पर्श किए हैं, यावत् उसके वे कर्म उदय में आए हैं, परन्तु उपशान्त नहीं हैं, वह पुरुष पराजित होता है । अत एव हे गौतम ! इस कारण सवीर्य पुरुष विजयी होता है और वीर्यहीन पुरुष पराजित होता है ।

सूत्र - ९३

भगवन् ! क्या जीव सवीर्य है अथवा अवीर्य है ? गौतम ! जीव सवीर्य भी है अवीर्य भी है । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ? गौतम ! जीव दो प्रकार के हैं-संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक । जो जीव असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध जीव हैं, वे अवीर्य हैं । जो जीव संसार-समापन्नक हैं, वे दो प्रकार के हैं, शैलेशी-प्रतिपन्न और अशैलेशीप्रतिपन्न । इनमें जो शैलेशीप्रतिपन्न हैं, वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं । जो अशैलेशीप्रतिपन्न हैं वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं, किन्तु करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं । इसलिए हे गौतम ! जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी ।

भगवन् ! क्या नारक जीव सवीर्य हैं या अवीर्य ? गौतम ! नारक जीव लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिन नैरयिकों में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम हैं, वे नारक लब्धिवीर्य और करणवीर्य, दोनों से सवीर्य हैं, और जो नारक उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम से रहित हैं, वे लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं, किन्तु करणवीर्य से अवीर्य हैं। इसलिए हे गौतम ! इस कारण से पूर्वोक्त कथन किया गया है ।

जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कथन किया गया है, उसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तक के जीवों के लिए समझना चाहिए । मनुष्यों के विषय में सामान्य जीवों के समान समझना चाहिए, विशेषता यह है कि सिद्धों को छोड़ देना चाहिए । वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिकों के समान कथन समझना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-१ – उद्देशक-९

सूत्र - ९४

भगवन् ! जीव किस प्रकार शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं ? गौतम ! प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्ता-दान से, मैथुन से, परिग्रह से, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य से, रति-अरति से, परपरिवाद से, मायामृषा से और मिथ्यादर्शनशल्य से; इस प्रकार हे गौतम ! (इन अठारह ही पापस्थानों का सेवन करने से) जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं ।

भगवन् ! जीव किस प्रकार शीघ्र लघुत्व को प्राप्त करते हैं ? गौतम ! प्राणातिपात से विरत होने से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से विरत होने से जीव शीघ्र लघुत्व को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार जीव प्राणातिपात आदि पापों का सेवन करने से संसार को बढ़ाते हैं, दीर्घकालीन करते हैं, और बार-बार भव-भ्रमण करते हैं, तथा प्राणातिपाति आदि पापों से निवृत्त होने से जीव संसार को परिमित करते हैं, अल्पकालीन करते हैं, और संसार को लाँघ जाते हैं। उनमें से चार प्रशस्त हैं, और चार अप्रशस्त हैं ।

सूत्र - ९५

भगवन् ! क्या सातवाँ अवकाशान्तर गुरु है, अथवा वह लघु है, या गुरुलघु है, अथवा अगुरुलघु है ? गौतम! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरु-लघु नहीं है, किन्तु अगुरुलघु है । भगवन् ! सप्तम तनुवात क्या गुरु है, लघु है या गुरुलघु है अथवा अगुरुलघु है ? गौतम ! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरु-लघु है; अगुरुलघु नहीं है । इस प्रकार सप्तम-घनवात, सप्तम घनोदधि और सप्तम पृथ्वी के विषय में भी जानना चाहिए । जैसा सातवें अवकाशान्तर के विषय में कहा है, वैसा ही सभी अवकाशान्तरों के विषय में समझना चाहिए । तनुवात के विषय में जैसा कहा है, वैसा ही सभी घनवात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र और क्षेत्रों के विषय में भी जानना चाहिए ।

भगवन् ! नारक जीव गुरु हैं, लघु हैं, गुरु-लघु हैं या अगुरुलघु हैं ? गौतम ! नारक जीव गुरु नहीं हैं, लघु नहीं,

किन्तु गुरुलघु हैं और अगुरुलघु भी हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! वैक्रिय और तैजस शरीर की अपेक्षा नारक जीव गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं, अगुरुलघु भी नहीं हैं; किन्तु गुरु-लघु हैं । किन्तु जीव और कार्मणशरीर की अपेक्षा नारक जीव गुरु नहीं हैं, लघु भी नहीं हैं, गुरु-लघु भी नहीं हैं, किन्तु अगुरुलघु हैं । इस कारण हे गौतम ! पूर्वोक्त कथन किया गया है । इसी प्रकार वैमानिकों (अन्तिम दण्डक) तक जानना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि शरीरों में भिन्नता कहना चाहिए ।

धर्मास्तिकाय से लेकर यावत् जीवास्तिकाय तक चौथे पद से (अगुरुलघु) जानना चाहिए । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय क्या गुरु है, लघु है, गुरुलघु है अथवा अगुरुलघु है ? गौतम ! पुद्गलास्तिकाय न गुरु है, न लघु है, किन्तु गुरुलघु है और अगुरुलघु भी है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! गुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा पुद्ग-लास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु है, अगुरुलघु नहीं है । अगुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गलास्ति-काय गुरु नहीं, लघु नहीं है, न गुरु-लघु है, किन्तु अगुरुलघु है ।

समय और कार्मण शरीर अगुरुलघु हैं ।

भगवन् ! कृष्णलेश्या क्या गुरु है, लघु है ? या गुरुलघु है अथवा अगुरुलघु है ? गौतम ! कृष्णलेश्या गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु है और अगुरुलघु भी है । भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! द्रव्यलेश्या की अपेक्षा तृतीय पद से (अर्थात्-गुरुलघु) जानना चाहिए, और भावलेश्या की अपेक्षा चौथे पद से (अर्थात् अगुरुलघु) जानना चाहिए । इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक जानना चाहिए ।

दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान और संज्ञा को भी चतुर्थ पद से (अगुरुलघु) जानना चाहिए । आदि के चारों शरीरों-औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस शरीर-को तृतीय पद से (गुरुलघु) जानना चाहिए, तथा कार्मण शरीर को चतुर्थ पद से (अगुरुलघु) जानना चाहिए । मनोयोग और वचनयोग को चतुर्थ पद से (अगुरुलघु) और काययोग को तृतीय पद से (गुरुलघु) जानना चाहिए । साकारोपयोग और अनाकारोपयोग को चतुर्थ पद से जानना चाहिए । सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश और सर्वपर्याय पुद्गलास्तिकाय के समान समझना चाहिए । अतीतकाल, अनागत काल और सर्वकाल चौथे पद से अर्थात् अगुरुलघु जानना ।

सूत्र - ९६

भगवन् ! क्या लाघव, अल्पईच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता, ये श्रमणनिर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं? हाँ, गौतम! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं । भगवन् ! क्रोधरहितता, मानरहितता, मायारहितता, अलोभत्व, क्या ये श्रमणनिर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं ? हाँ, क्रोधरहितता यावत् अलोभत्व, ये सब श्रमणनिर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं ।

भगवन् ! क्या कांक्षाप्रदोष क्षीण होने पर श्रमणनिर्ग्रन्थ अन्तकर अथवा अन्तिम (चरम) शरीरी होता है ? अथवा पूर्वावस्था में बहुत मोह वाला होकर विहरण करे और फिर संवृत्त होकर मृत्यु प्राप्त करे, तो क्या तत्पश्चात् वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ? हाँ, गौतम ! सब दुःखों का अन्त करता है ।

सूत्र - ९७

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार विशेषरूप से कहते हैं, इस प्रकार बताते हैं, और इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं कि एक जीव एक समय में दो आयुष्य करता (बाँधता) है । वह इस प्रकार-इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य । जिस समय इस भव का आयुष्य करता है, उस समय परभव का आयुष्य करता है और जिस समय परभव का आयुष्य करता है, उस समय इहभव का आयुष्य करता है । इस भव का आयुष्य करने से परभव का आयुष्य करता है और परभव का आयुष्य करने से इस भव का आयुष्य करता है । इस प्रकार एक जीव एक समय में दो आयुष्य करता है-इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य । भगवन् ! क्या यह इसी प्रकार है ?

गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य (करता है); उन्होंने जो ऐसा कहा है, वह मिथ्या कहा है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि-एक जीव एक समय में एक आयुष्य करता है और वह या तो इस भव का आयुष्य करता है अथवा परभव का आयुष्य

करता है । जिस समय इस भव का आयुष्य करता है, उस समय परभव का आयुष्य नहीं करता और जिस समय परभव का आयुष्य करता है, उस समय इस भव का आयुष्य नहीं करता । तथा इस भव का आयुष्य करने से परभव का आयुष्य और परभव का आयुष्य करने से इस भव का आयुष्य नहीं करता । इस प्रकार एक जीव एक समय में एक आयुष्य करता है-इस भव का आयुष्य अथवा परभव का आयुष्य । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

सूत्र - ९८

उस काल और उस समय (भगवान महावीर के शासनकाल) में पार्श्वापत्यीय कालास्यवेषिपुत्र नामक अनगार जहाँ (भगवान महावीर के) स्थविर भगवान बिराजमान थे, वहाँ गए । स्थविर भगवंतों से उन्होंने कहा-'हे स्थविरो ! आप सामयिक को नहीं जानते, सामयिक के अर्थ को नहीं जानते, आप प्रत्याख्यान को नहीं जानते और प्रत्याख्यान के अर्थ को नहीं जानते; आप संयम को नहीं जानते और संयम के अर्थ को नहीं जानते; आप संवर को नहीं जानते, संवर के अर्थ को नहीं जानते; हे स्थविरो ! आप विवेक को नहीं जानते और विवेक के अर्थ को नहीं जानते हैं, तथा आप व्युत्सर्ग को नहीं जानते और न व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते हैं । तब उन स्थविर भगवंतों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा-'हे आर्य ! हम सामायिक को जानते हैं, सामायिक के अर्थ को भी जानते हैं, यावत् हम व्युत्सर्ग को जानते हैं और व्युत्सर्ग के अर्थ को भी जानते हैं ।

उसके पश्चात् कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा-हे आर्यो ! यदि आप सामयिक को (जानते हैं), यावत् व्युत्सर्ग को एवं व्युतसर्ग के अर्थ को जानते हैं, तो बतलाइए कि सामायिक क्या है और सामायिक का अर्थ क्या है ? यावत्...व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है ? तब उन स्थविर भगवंतों ने इस प्रकार कहा कि-हे आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी आत्मा सामायिक का अर्थ है; यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है, हमारी आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है । इस पर कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार पूछा-हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो आप क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करके क्रोधादि की गर्हा-निन्दा क्यों करते हैं ? हे कालास्यवेषिपुत्र ! हम संयम के लिए क्रोध आदि की गर्हा करते हैं ।

तो हे भगवन् ! क्या गर्हा संयम है या अगर्हा संयम है ? हे कालास्यवेषिपुत्र ! गर्हा (पापों की निन्दा) संयम है, अगर्हा संयम नहीं है । गर्हा सब दोषों को दूर करती है-आत्मा समस्त मिथ्यात्व को जानकर गर्हा द्वारा दोष-निवारण करता है । इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में पुष्ट होती है, और इसी प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है ।

वह कालास्यवेषिपुत्र अनगार बोध को प्राप्त हुए और उन्होंने स्थविर भगवंतों को, वन्दना-नमस्कार करके कहा-'हे भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) पदों को न जानने से, पहले सूने हुए न होने से, बोध न होने से, अभिगम न होने से, दृष्ट न होने से, विचारित न होने से, सूने हुए न होने से, विशेषरूप से न जानने से, कहे हुए न होने से, अनिर्णीत होने से, उद्धृत न होने से, और ये पद अवधारण किये हुए न होने से इस अर्थ में श्रद्धा नहीं की थी, प्रतीति नहीं की थी, रुचि नहीं की थी; किन्तु भगवन् ! अब इन (पदों) को जान लेने से, सून लेने से, बोध होने से, अभिगम होने से, दृष्ट होने से, चिन्तित होने से, श्रुत होने से, विशेष जान लेने से, (आपके द्वारा) कथित होने से, निर्णीत होने से, उद्धृत होने से और इन पदों का अवधारण करने से इस अर्थ पर मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ, हे भगवन् ! आप जो यह कहते हैं, वह यथार्थ है, वह इसी प्रकार है । तब उन स्थविर भगवंतों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार से कहा-हे आर्य ! हम जैसा कहते हैं उस पर वैसी ही श्रद्धा करो, आर्य ! उस पर प्रतीति करो, आर्य ! उसमें रुचि रखो ।

तत्पश्चात् कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवंतों को वन्दना की, नमस्कार किया, और तब वह इस प्रकार बोले-'हे भगवन् ! पहले मैंने (भगवान पार्श्वनाथ का) चातुर्यामधर्म स्वीकार किया है, अब मैं आपके पास प्रतिक्रमणसहित पंचमहाव्रतरूप धर्म स्वीकार करके विचरण करना चाहता हूँ । (स्थविर-) हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसे करो । परन्तु (इस शुभकार्य में) विलम्ब न करो । तदनन्तर कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने स्थविर भगवंतों की वन्दना की, नमस्कार किया, और फिर चातुर्याम धर्म के स्थान पर प्रतिक्रमणसहित पंचमहाव्रत वाला धर्म स्वीकार

किया और विचरण करने लगे ।

इसके पश्चात् कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन किया और जिस प्रयोजन से नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, अदन्तधावन, छत्रवर्जन, पैरों में जूते न पहनना, भूमिशयन, फलक पर शय्या, काष्ठ पर शयन, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षार्थ गृहस्थों के घरों में प्रवेश, लाभ और अलाभ, अनुकूल और प्रतिकूल, इन्द्रियसमूह के लिए कण्टकसम चुभने वाले कठोर शब्दादि इत्यादि २२ परीषहों को सहन करना, इन सब का स्वीकार किया, उस अभीष्ट प्रयोजन की सम्यक्रूप से आराधना की । और वह अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए और समस्त दुःखों से रहित हुए ।

सूत्र - ९९

भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया । तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले-भगवन् ! क्या श्रेष्ठी और दरिद्र को, रंक को और क्षत्रिय को अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है ? हाँ, गौतम ! श्रेष्ठी यावत् क्षत्रिय राजा के द्वारा अप्रत्याख्यान क्रिया समान की जाती है; भगवन् ! आप ऐसा किस हेतु से कहते हैं ? गौतम ! (इन चारों की) अविरति को लेकर ऐसा कहा जाता है ।

सूत्र - १००

भगवन् ! आधाकर्मदोषयुक्त आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमणनिर्ग्रन्थ क्या बाँधता है ? क्या करता है? किसका चय (वृद्धि) करता है, और किसका उपचय करता है ? गौतम ! आधाकर्मदोषयुक्त आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमणनिर्ग्रन्थ आयुकर्म को छोड़कर शिथिलबन्धन से बंधी हुई सात कर्मप्रकृतियों को दृढ़-बन्धन से बंधी हुई बना लेता है, यावत्-संसार में बार-बार पर्यटन करता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमणनिर्ग्रन्थ अपने आत्मधर्म का अतिक्रमण करता है । अपने आत्मधर्म का अतिक्रमण करता हुआ (साधक) पृथ्वीकाय के जीवों की अपेक्षा नहीं करता, और यावत्-त्रसकाय के जीवों की चिन्ता नहीं करता और जिन जीवों के शरीरों का वह भोग करता है, उन जीवों की भी चिन्ता नहीं करता । इस कारण हे गौतम ! आधाकर्मदोषयुक्त आहार भोगता हुआ (श्रमण) आयुकर्म को छोड़कर सात कर्मों की शिथिलबद्ध प्रकृतियों को गाढ़बन्धन बद्ध कर लेता है, यावत्-संसार में बार-बार परिभ्रमण करता है ।

हे भगवन् ! प्रासुक और एषणीय आहारादि का उपभोग करने वाला श्रमणनिर्ग्रन्थ क्या बाँधता है ? यावत् किसका उपचय करता है ? गौतम ! प्रासुक और एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमणनिर्ग्रन्थ, आयुकर्म को छोड़कर सात कर्मों की दृढ़बन्धन से बद्ध प्रकृतियों को शिथिल करता है । उसे संवृत अनगार के समान समझना चाहिए । विशेषता यह है कि आयुकर्म को कदाचित् बाँधता है और कदाचित् नहीं बाँधता । शेष उसी प्रकार समझना चाहिए; यावत् संसार को पार कर जाता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमणनिर्ग्रन्थ, अपने आत्मधर्म का उल्लंघन नहीं करता । वह पृथ्वीकाय के जीवों का जीवन चाहता है, यावत्-त्रसकाय के जीवों का जीवन चाहता है और जिन जीवों का शरीर उसके उपभोग में आता है, उनका भी वह जीवन चाहता है । इस कारण से हे गौतम ! वह यावत्-संसार को पार कर जाता है ।

सूत्र - १०१

भगवन् ! क्या अस्थिर पदार्थ बदलता है और स्थिर पदार्थ नहीं बदलता ? क्या अस्थिर पदार्थ भंग होता है और स्थिर पदार्थ भंग नहीं होता ? क्या बाल शाश्वत है तथा बालत्व अशाश्वत है ? क्या पण्डित शाश्वत है और पण्डितत्व अशाश्वत है ? हाँ, गौतम ! अस्थिर पदार्थ बदलता है यावत् पण्डितत्व अशाश्वत है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-१ – उद्देशक-१०

सूत्र - १०२

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि-जो चल रहा है, वह

अचलित है-चला नहीं कहलाता और यावत्-जो निर्जीर्ण हो रहा है, वह निर्जीर्ण नहीं कहलाता । दो परमाणुपुद्गल एक साथ नहीं चिपकते । दो परमाणुपुद्गल एक साथ क्यों नहीं चिपकते ? इसका कारण यह है कि दो परमाणु-पुद्गलों में चिपकनापन नहीं होती 'तीन परमाणुपुद्गल एक दूसरे से चिपक जाते हैं ।' तीन परमाणुपुद्गल परस्पर क्यों चिपक जाते हैं ? इसका कारण यह है कि तीन परमाणुपुद्गलों में स्निग्धता होती है; यदि तीन परमाणुपुद्गलों का भेदन (भाग) किया जाए तो दो भाग भी हो सकते हैं, एवं तीन भाग भी हो सकते हैं । अगर तीन परमाणु-पुद्गलों के दो भाग किये जाए तो एक-एक तरफ डेढ़ परमाणु होता है और दूसरी तरफ भी डेढ़ परमाणु होता है । यदि तीन परमाणुपुद्गलों के तीन भाग किये जाए तो एक-एक करके तीन परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं । इसी प्रकार यावत् चार परमाणु-पुद्गलों के विषय में समझना चाहिए । पाँच परमाणुपुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं और वे दुःखरूप (कर्मरूप) में परिणत होते हैं । वह दुःख (कर्म) भी शाश्वत है, और सदा सम्यक् प्रकार के उपचय को और अपचय को प्राप्त होता है ।

बोलने से पहले की जो भाषा (भाषा के पुद्गल) हैं, वह भाषा है । बोलते समय की भाषा अभाषा है और बोलने का समय व्यतीत हो जाने के बाद की भाषा, भाषा है । यह जो बोलने से पहले की भाषा, भाषा है और बोलते समय की भाषा, अभाषा है तथा बोलने के समय के बाद की भाषा, भाषा है; सो क्या बोलते हुए पुरुष की भाषा है या न बोलते हुए पुरुष की भाषा है ? न बोलते हुए पुरुष की वह भाषा है, बोलते हुए पुरुष की वह भाषा नहीं है ।

करने से जो पूर्व की जो क्रिया है, वह दुःखरूप है, वर्तमान में जो क्रिया की जाती है, वह दुःखरूप नहीं है और करने के समय के बाद की कृतक्रिया भी दुःखरूप है । वह जो पूर्व की क्रिया है, वह दुःख का कारण है, की जाती हुई क्रिया दुःख का कारण नहीं है और करने के समय के बाद की क्रिया दुःख का कारण है; तो क्या वह करने से दुःख का कारण है या न करने से दुःख का कारण है ? न करने से वह दुःख का कारण है, करने से दुःख का कारण नहीं है; ऐसा कहना चाहिए ।

अकृत्य दुःख है, अस्पृश्य दुःख है, और अक्रियमाण कृत दुःख है । उसे न करके प्राण, भूत, जीव और सत्त्व वेदना भोगते हैं, ऐसा कहना चाहिए । श्री गौतमस्वामी पूछते हैं-भगवन् ! क्या अन्यतीर्थिकों का इस प्रकार का यह मत सत्य है ? गौतम ! यह अन्यतीर्थिक जो कहते हैं-यावत् वेदना भोगते हैं, ऐसा कहना चाहिए, उन्होंने यह सब जो कहा है, वह मिथ्या कहा है । हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि जो चल रहा है, वह 'चला' कहलाता है और यावत् जो निर्जर रहा है, वह निर्जीर्ण कहलाता है ।

दो परमाणु पुद्गल आपस में चिपक जाते हैं । इसका क्या कारण है ? दो परमाणु पुद्गलों में चिकनापन है, इसलिए दो परमाणु पुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं । इन दो परमाणु पुद्गलों के दो भाग हो सकते हैं । दो परमाणु पुद्गलों के दो भाग किये जाए तो एक तरफ एक परमाणु और एक तरफ एक परमाणु होता है । तीन परमाणुपुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं । तीन परमाणुपुद्गल परस्पर क्यों चिपक जाते हैं ? तीन परमाणुपुद्गल इस कारण चिपक जाते हैं कि उन परमाणुपुद्गलों में चिकनापन है । उन तीन परमाणुपुद्गलों के दो भाग भी हो सकते हैं और तीन भाग भी हो सकते हैं । दो भाग करने पर एक तरफ परमाणु और एक तरफ दो प्रदेश वाला एक द्व्यणुक स्कन्ध होता है । तीन भाग करने पर एक-एक करके तीन परमाणु हो जाते हैं । इसी प्रकार यावत्-चार परमाणु पुद्गल में भी समझना चाहिए । परन्तु तीन परमाणु के डेढ-डेढ (भाग) नहीं हो सकते । पाँच परमाणु-पुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं और परस्पर चिपककर एक स्कन्धरूप बन जाते हैं । वह स्कन्ध अशाश्वत है और सदा उपचय तथा अपचय पाता है ।

बोलने से पहले की भाषा अभाषा है; बोलते समय की भाषा भाषा है और बोलने के बाद की भाषा भी अभाषा है । वह जो पहले की भाषा अभाषा है, बोलते समय की भाषा भाषा है और बोलने के बाद की भाषा अभाषा है; सो क्या बोलने वाले पुरुष की भाषा है, या नहीं बोलते हुए पुरुष की भाषा है ? वह बोलने वाले पुरुष की भाषा है, नहीं बोलते हुए पुरुष की भाषा नहीं है । (करने से) पहले की क्रिया दुःख का कारण नहीं है, उसे भाषा के समान ही समझना चाहिए । यावत्-वह क्रिया करने से दुःख का कारण है, न करने से दुःख का कारण नहीं है, ऐसा कहना

चाहिए । कृत्य दुःख है, स्पृश्य दुःख है, क्रियमाण कृत दुःख है । उसे कर-करके प्राण, भूत, जीव और वेदना भोगते हैं; ऐसा कहना चाहिए ।

सूत्र - १०३

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं-यावत् प्ररूपणा करते हैं कि एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है । वह इस प्रकार-ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी । जस समय (जीव) एर्यापथिकी क्रिया करता है, उस समय साम्परायिकी क्रिया करता है और जिस समय साम्परायिकी क्रिया करता है, उस समय ऐर्यापथिकी क्रिया करता है । ऐर्यापथिकी क्रिया करने से साम्परायिकी क्रिया करता है और साम्परायिकी क्रिया करने से ऐर्यापथिकी क्रिया करता है; हे भगवन् ! क्या यह इसी प्रकार है ? गौतम ! जो अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं, यावत्-उन्होंने ऐसा जो कहा है, सो मिथ्या कहा है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ कि एक जीव एक समय में एक क्रिया करता है। यहाँ परतीर्थिकों का तथा स्वसिद्धान्त का वक्तव्य कहना चाहिए । यावत् ऐर्यापथिकी अथवा साम्परायिकि क्रिया करता है ।

सूत्र - १०४

भगवन् ! नरकगति कितने समय तक उपपात से विरहित रहती है ? गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक नरकगति उपपात से रहित रहती है । इसी प्रकार यहाँ 'व्युत्क्रान्तिपद' कहना चाहिए । 'हे भगवन् ! यह ऐसा ही है ।'

शतक-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक–२

उद्देशक-१

सूत्र - १०५

द्वीतिय शतक में दस उद्देशक हैं । उनमें क्रमशः इस प्रकार विषय हैं–श्वासोच्छ्वास, समुद्घात, पृथ्वी, इन्द्रियाँ, निर्ग्रन्थ, भाषा, देव, (चमरेन्द्र) सभा, द्वीप (समयक्षेत्र का स्वरूप) और अस्तिकाय (का विवेचन) ।

सूत्र - १०६

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था । भगवान महावीर स्वामी (वहाँ) पधारे । उनका धर्मोपदेश सूनने के लिए परीषद् नीकली । भगवान ने धर्मोपदेश दिया । धर्मोपदेश सूनकर परीषद् वापिस लौट गई । उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी (शिष्य) श्री इन्द्रभूति गौतम अनगार यावत्–भगवान की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–

भगवन् ! ये जो द्वीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव हैं, उनके आभ्यन्तर और बाह्य उच्छ्वास को और आभ्यन्तर एवं बाह्य निःश्वास को हम जानते और देखते हैं, किन्तु जो ये पृथ्वीकाय से यावत् वनस्पतिकाय तक एकेन्द्रिय जीव हैं, उनके आभ्यन्तर एवं बाह्य उच्छ्वास को तथा आभ्यन्तर एवं बाह्य निःश्वास को हम न जानते हैं, और न देखते हैं । तो हे भगवन् ! क्या ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव आभ्यन्तर और बाह्य उच्छ्वास लेते हैं तथा आभ्यन्तर और बाह्य निःश्वास छोड़ते हैं ? हाँ, गौतम ! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भी आभ्यन्तर और बाह्य उच्छ्वास लेते हैं और आभ्यन्तर एवं बाह्य निःश्वास छोड़ते हैं ।

सूत्र - १०७

भगवन् ! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव, किस प्रकार के द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर उच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं, तथा निःश्वास के रूप में छोड़ते हैं ? गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा अनन्तप्रदेश वाले द्रव्यों को, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्येयप्रदेशों में रहे हुए द्रव्यों को, काल की अपेक्षा किसी भी प्रकार की स्थिति वाले द्रव्यों को, तथा भाव की अपेक्षा वर्ण वाले, गन्ध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर उच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं, तथा निःश्वास के रूप में छोड़ते हैं ।

भगवन् ! वे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भाव की अपेक्षा वर्ण वाले जिन द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं, क्या वे द्रव्य एक वर्ण वाले हैं ? हे गौतम ! जैसा कि प्रज्ञापना-सूत्र के अट्ठाईसवें आहारपद में कथन किया है, वैसा ही यहाँ समझना चाहिए । यावत् वे तीन, चार, पाँच दिशाओं की ओर से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं । भगवन् ! नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं ? गौतम ! इस विषय में पूर्वकथनानुसार ही जानना चाहिए और यावत्–वे नियम से छहों दिशा से पुद्गलों को बाह्य एवं आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं। जीवसामान्य और एकेन्द्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहना चाहिए कि यदि व्याघात न हो तो वे सब दिशाओं से और यदि व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशा से, कदाचित् चार दिशा से और कदाचित् पाँच दिशा से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं । शेष सब जीव नियम से छह दिशा से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं ।

सूत्र - १०८

हे भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकायों की ही बाह्य और आभ्यन्तर उच्छ्वास और निःश्वास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? हाँ, गौतम ! वायुकाय, वायुकायों को ही बाह्य और आभ्यन्तर उच्छ्वास और निःश्वास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है । भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाख बार मरकर पुनः पुनः (वायुकाय में ही) उत्पन्न होता है ? हाँ, गौतम ! वह पुनः वहीं उत्पन्न होता है ।

भगवन् ! क्या वायुकाय स्वकायशस्त्र से या परकायशस्त्र से स्पृष्ट होकर क्या मरण पाता है, अथवा अस्पृष्ट ही मरण पाता है ? गौतम ! वायुकाय, स्पृष्ट होकर मरण पाता है, किन्तु स्पष्ट हुए बिना मरण नहीं पाता । भगवन् !

वायुकाय मरकर (जब दूसरी पर्याय में जाता है, तब) सशरीरी होकर जाता है, या अशरीरी होकर जाता है ? गौतम! वह कथंचित् शरीरसहित होकर जाता है, कथंचित् शरीररहित होकर जाता है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! वायुकाय के चार शरीर कहे गए हैं; वे इस प्रकार–औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण । इनमें से वह औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड़कर दूसरे भव में जाता है, इस अपेक्षा से वह शरीररहित जाता है और तैजस तथा कार्मण शरीर को साथ लेकर जाता है, इस अपेक्षा से वह शरीरसहित जाता है । इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वायुकाय मरकर दूसरे भव में कथंचित् सशरीरी जाता है और कथंचित् अशरीरी जाता है ।

सूत्र - १०९

भगवन् ! जिसने संसार का निरोध नहीं किया, संसार के प्रपंचों का निरोध नहीं किया, जिसका संसार क्षीण नहीं हुआ, जिसका संसार-वेदनीय कर्म क्षीण नहीं हुआ, जिसका संसार व्युच्छिन्न नहीं हुआ, जिसका संसार-वेदनीय कर्म व्युच्छिन्न नहीं हुआ, जो निष्ठितार्थ नहीं हुआ, जिसका कार्य समाप्त नहीं हुआ; ऐसा मृतादी (अचित्त, निर्दोष आहार करने वाला) अनगार पुनः मनुष्यभव आदि भवों को प्राप्त होता है ? हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला मृतादीनिर्ग्रन्थ फिर मनुष्यभव आदि भवों को प्राप्त होता है ।

सूत्र - ११०

भगवन् ! पूर्वोक्त निर्ग्रन्थ के जीव को किस शब्द से कहना चाहिए ? गौतम ! उसे कदाचित् 'प्राण' कहना चाहिए, कदाचित् 'भूत' कहना चाहिए, कदाचित् 'जीव' कहना चाहिए, कदाचित् 'सत्य' कहना चाहिए, कदाचित् 'विज्ञ' कहना चाहिए, कदाचित् 'वेद' कहना चाहिए, कदाचित् 'प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, विज्ञ और वेद' कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! उसे 'प्राण' कहना चाहिए, यावत्–'वेद' कहना चाहिए, इसका क्या कारण है ? गौतम ! पूर्वोक्त निर्ग्रन्थ का जीव, बाह्य और आभ्यन्तर उच्छ्वास तथा निःश्वास लेता और छोड़ता है, इसलिए उसे 'प्राण' कहना चाहिए । वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्यकाल में रहेगा इसलिए उसे 'भूत' कहना चाहिए । तथा वह जीव होने से जीता है, जीवत्व एवं आयुष्यकर्म का अनुभव करता है, इसलिए उसे 'जीव' कहना चाहिए । वह शुभ और अशुभ कर्मों से सम्बद्ध है, इसलिए उसे 'सत्त्व' कहना चाहिए । वह तिक्त, (तीखा) कटु, कषाय, खट्टा, मीठा, इन रसों का ज्ञाता है, इसलिए 'विज्ञ' कहना चाहिए, तथा वह सुख-दुःख का वेदन करता है, इसलिए 'वेद' कहना चाहिए ।

सूत्र - १११

भगवन् ! जिसने संसार का निरोध किया है, जिसने संसार के प्रपंच का निरोध किया है, यावत् जिसने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है, ऐसा प्रासुकभोजी अनगार क्या फिर मनुष्यभव आदि भवों को प्राप्त नहीं होता ? हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला निर्ग्रन्थ अनगार फिर मनुष्यभव आदि भवों को प्राप्त नहीं होता ।

हे भगवन् ! पूर्वोक्त स्वरूपवाले निर्ग्रन्थ के जीव को किस शब्द से कहना चाहिए ? हे गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रन्थ को 'सिद्ध' कहा जा सकता है, 'बुद्ध' कहा जा सकता है, 'मुक्त' कहा जा सकता है, 'पारगत' कहा जा सकता है, 'परम्परागत' कहा जा सकता है । उसे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत, अन्तकृत् एवं सर्वदुःख-प्रहीण कहा जा सकता है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है'; यों कहकर भगवान गौतमस्वामी श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करते हैं और फिर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करके विचरण करते हैं । उस काल और उस समय में (एकदा) श्रमण भगवान महावीरस्वामी राजगृह नगर के गुणशील चैत्य से नीकले और बाहर जनपदों में विहार करने लगे ।

सूत्र - ११२

उस काल उस समय में कृतंगला नामकी नगरी थी । उस कृतंगला नगरी के बाहर ईशानकोण में छत्रपलाशक नामका चैत्य था । वहाँ किसी समय उत्पन्न हुए केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे । यावत्–भगवान का समवसरण हुआ । परीषद् धर्मोपदेश सूनने के लिए नीकली ।

उस कृतंगला नगरी के निकट श्रावस्ती नगरी थी । उस श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल नामक परिव्राजक का

शिष्य कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक नामका परिव्राजक रहता था । वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों का धारक, पारक, वेद के छह अंगों का वेत्ता था । वह षष्ठितंत्र में विशारद था, वह गणितशास्त्र, शिक्षाकल्पशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र, निरुक्तशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र, इन सब शास्त्रों में, तथा दूसरे बहुत-से ब्राह्मण और परिव्रजक-सम्बन्धी नीति और दर्शनशास्त्रों में भी अत्यन्त निष्णात था ।

उसी श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक-पिंगल नामक निर्ग्रन्थ था । एकदा वह वैशालिक श्रावक पिंगल नामक निर्ग्रन्थ किसी दिन जहाँ कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक रहता था, वहाँ उसके पास आया और उसने आक्षेपपूर्वक कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक से पूछा-'मागध ! १-लोक सान्त है या अनन्त है ?, २-जीव सान्त है या अनन्त है ?, ३-सिद्धि सान्त है या अनन्त है ?, ४-सिद्ध सान्त है या अनन्त है ?, ५-किस मरण से मरता हुआ संसार बढ़ाता है और किस मरण से मरता हुआ संसार घटाता है ? इतने प्रश्नों का उत्तर दो । इस प्रकार उस कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक तापस से वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ द्वारा पूर्वोक्त प्रश्न आक्षेपपूर्वक पूछे, तब स्कन्दक तापस शंकाग्रस्त हुआ, कांक्षा उत्पन्न हुई; उसके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई; उसकी बुद्धि में भेद उत्पन्न हुआ, उसके मन में कालुष्य उत्पन्न हुआ, इस कारण वह तापस, वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न दे सका । अतः चूपचाप रह गया । इसके पश्चात् उस वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने कात्यायन-गोत्रीय स्कन्दध परिव्राजक से दो बार, तीन बार भी उन्हीं प्रश्नों को साक्षेप पूछा कि मागध ! लोक सान्त है या अनन्त ? यावत्-किस मरण से मरने से जीव बढ़ता या घटता है ?; इतने प्रश्नों का उत्तर दो । जब वैशालिक श्रमण श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक से दो-तीन बार पुनः उन्हीं प्रश्नों को पूछा तो वह पुनः पूर्ववत् शंकित, कांक्षित, विचिकित्साग्रस्त, भेदसमापन्न तथा कालुष्य (शोक) को प्राप्त हुआ, किन्तु वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न दे सका । अतः चूप होकर रह गया ।

उस समय श्रावस्ती नगरी में जहाँ तीन मार्ग, चार मार्ग, और बहुत-से मार्ग मिलते हैं, वहाँ तथा महापथों में जनता की भारी भीड़ व्यूहाकार रूप में चल रही थी, लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे कि 'श्रमण भगवान महावीर स्वामी कृतंगला नगरी के बाहर छत्रपलाशक नामक उद्यान में पधारे हैं ।' परीषद् भगवान महावीर को वन्दना करने के लिए नीकली । उस समय बहुत-से लोगों के मुँह से यह बात सूनकर और उसे अवधारण करके उस कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक तापस के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन, अभिलाषा एवं संकल्प उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर कृतंगला नगरी के बाहर छत्रपलाशक नामक उद्यान में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं । अतः मैं उनके पास जाऊं, उन्हें वन्दना-नमस्कार करूँ । मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके, उनका सत्कार-सम्मान करके, उन कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप भगवान महावीर स्वामी की पर्युपासना करूँ, तथा उनसे इन और इस प्रकार के अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों आदि को पूछूँ ।

यों विचार कर वह स्कन्दक तापस, जहाँ परिव्राजकों का मठ था, वहाँ आया । वहाँ आकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्ष की माला, करोटिका, आसन, केसरिका, त्रिगड़ी, अंकुशक, पवित्री, गणेत्रिका, छत्र, पगरखी, पादुका, धातु से रंगे हुए वस्त्र, इन सब तापस के उपकरणों को लेकर परिव्राजकों के मठ से नीकला । वहाँ से नीकलकर त्रिदण्ड, कुण्डी, कांचनिका, करोटिका, भृशिका, केसरिका, त्रिगडी, अंकुशक, अंगूठी और गणेत्रिका, इन्हें हाथ में लेकर, छत्र और पगरखी से युक्त होकर, तथा धातुरक्त वस्त्र पहनकर श्रावस्ती नगरी के मध्य में से नीकलकर जहाँ कृतंगला नगरी थी, जहाँ छत्रपलाशक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उसी ओर जाने के लिए प्रस्थान किया ।

'हे गौतम !' इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री इन्द्रभूति अनगार को सम्बोधित करके कहा-''गौतम ! (आज) तू अपने पूर्व के साथी को देखेगा ।'' भगवन् ! मैं (आज) किसको देखूँगा? गौतम ! तू स्कन्दक (नामक तापस) को देखेगा । भगवन् ! मैं उसे कब, किस तरह से, और कितने समय बाद देखूँगा ? गौतम ! उस काल उस समय में श्रावस्ती नामकी नगरी थी । उस श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल नामक परिव्राजक का

शिष्य कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता था । यावत्-उस स्कन्दक परिव्राजक ने जहाँ मैं हूँ, वहाँ-मेरे पास आने के लिए संकल्प कर लिया है । वह अपने स्थान से प्रस्थान करके मेरे पास आ रहा है। वह बहुत-सा मार्ग पार करके अत्यन्त निकट पहुँच गया है । अभी वह मार्ग में चल रहा है । यह बीच के मार्ग पर है । हे गौतम ! तू आज ही उसे देखेगा । फिर 'हे भगवन् !' यों कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा-भगवन् ! क्या वह कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक आप देवानु-प्रिय के पास मुण्डित होकर आगार (घर) छोड़कर अनगार धर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! वह समर्थ है । जब श्रमण भगवान महावीर स्वामी गौतम स्वामी से यह बात कह ही रहे थे, कि इतने में वह कात्यायन-गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक उस स्थान में शीघ्र आ पहुँचे ।

तब भगवान गौतम स्कन्दक परिव्राजक को देखकर शीघ्र ही अपने आसन से उठे, उसके सामने गए । स्कन्दक परिव्राजक के पास आकर उससे कहा-हे स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत है, तुम्हारा आगमन अनुरूप है । हे स्कन्दक ! क्या श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुमसे आक्षेप पूर्वक पूछा था कि हे मागध ! लोक सान्त है इत्यादि ? इसके उत्तर के लिए तुम यहाँ आए हो क्या यह सत्य है ?

फिर कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक ने भगवान गौमत से इस प्रकार पूछा-''गौतम ! कौन ऐसा ज्ञानी और तपस्वी पुरुष है, जिसने मेरे मन की गुप्त बात तुमसे शीघ्र कह दी; जिससे तुम मेरे मन की गुप्त बात को जान गए? तब भगवान गौतम ने कहा-'हे स्कन्दक ! मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान महावीर, उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक हैं, अर्हन्त हैं, जिन हैं, केवली हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान काल के ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं; उन्होंने तुम्हारे मन में रही हुई, गुप्त बात मुझे शीघ्र कह दी, जिससे हे स्कन्दक ! मैं तुम्हारी उस गुप्त बात को जानता हूँ । तत्पश्चात् कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक ने भगवान गौतम से कहा-हे गौतम ! (चलो) हम तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास चलें, उन्हें वन्दना-नमस्कार करें, यावत्-उनकी पर्युपासना करें । हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो । विलम्ब मत करो । तदनन्तर भगवान गौतम स्वामी ने कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक के साथ जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ जाने का संकल्प किया । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर व्यावृत्तभोजी थे । इसलिए व्यावृत्त-भोजी श्रमण भगवान महावीर का शरीर उदार, शृंगाररूप, अतिशय शोभासम्पन्न, कल्याणरूप, धन्यरूप, मंगलरूप बिना अलंकार के ही सुशोभित, उत्तम लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त तथा शारीरिक शोभा से अत्यन्त शोभायमान था । अतः व्यावृत्तभोजी श्रमण भगवान महावीर के उदार यावत् शोभा से अतीव शोभायमान शरीर को देखकर कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को अत्यन्त हर्ष हुआ, सन्तोष हुआ, एवं उसका चित्त आनन्दित हुआ। वह आनन्दित, मन में प्रीतियुक्त परम सौमनस्यप्राप्त तथा हर्ष से प्रफुल्लहृदय होता हुआ जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके निकट आकर प्रदक्षिणा की, यावत् पर्युपासना करने लगा ।

तत्पश्चात् 'स्कन्दक !' इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक से इस प्रकार कहा-हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुमसे इस प्रकार आक्षेपपूर्वक पूछा था कि-मागध ! लोक सान्त है या अनन्त ! आदि । यावत्-उसके प्रश्नों से व्याकुल होकर तुम मेरे पास शीघ्र आए हो । हे स्कन्दक ! क्या यह बात सत्य है ? 'हाँ, भगवन् ! यह बात सत्य है ।'

(भगवान ने फरमाया-) हे स्कन्दक ! तुम्हारे मन में जो इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन, अभिलाषा एवं संकल्प समुत्पन्न हुआ था कि 'लोक सान्त है, या अनन्त ?' उस का यह अर्थ (उत्तर) है-हे स्कन्दक ! मैंने चार प्रकार का लोक बतलाया है, वह इस प्रकार है-द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक और भावलोक । उन चारों में से द्रव्य से लोक एक है, और अन्त वाला है, क्षेत्र से लोक असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन तक लम्बा-चौड़ा है असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन की परिधि वाला है, तथा वह अन्तसहित है । काल से ऐसा कोई काल नहीं था, जिसमें लोक नहीं था, ऐसा कोई काल नहीं है, जिसमें लोक नहीं है, ऐसा कोई काल नहीं होगा, जिसमें लोक न होगा । लोक सदा था, सदा है और सदा

रहेगा। लोक ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है । उसका अन्त नहीं है । भाव से लोक अनन्त वर्णपर्यायरूप, गन्धपर्यायरूप, रसपर्यायरूप और स्पर्श-पर्यायरूप है । इसी प्रकार अनन्त संस्थानपर्यायरूप, अनन्त गुरुलघुपर्यायरूप एवं अनन्त अगुरुलघुपर्यायरूप है । उसका अन्त नहीं है । इस प्रकार हे स्कन्दक ! द्रव्य-लोक अन्तसहित है, क्षेत्र-लोक अन्तसहित है, काल-लोक अन्तरहित है और भाव-लोक भी अन्तरहित है । अत एव लोक अन्तसहित भी है और अन्तरहित भी है ।

और हे स्कन्दक ! तुम्हारे मन में यह विकल्प उठा था, कि यावत्-'जीव सान्त है या अन्तरहित है ?' उसका भी अर्थ इस प्रकार है-'यावत् द्रव्य से एक जीव अन्तसहित है । क्षेत्र से-जीव असंख्य प्रदेश वाला है और असंख्य प्रदेशों का अवगाहन किये हुए है, अतः वह अन्तसहित है । काल से-ऐसा कोई काल नहीं था, जिसमें जीव न था, यावत्-जीव नित्य है, अन्तरहित है । भाव से-जीव अनन्त-ज्ञानपर्यायरूप है, अनन्तदर्शनपर्यायरूप है, अनन्त-चारित्रपर्यायरूप है, अनन्त गुरुलघुपर्यायरूप है, अनन्त-अगुरुलघुपर्यायरूप है और उसका अन्त नहीं है । इस प्रकार द्रव्यजीव और क्षेत्रजीव अन्तसहित है, तथा कालजीव और भावजीव अन्तरहित है । अतः हे स्कन्दक ! जीव अन्तसहित भी है और अन्तरहित भी है ।

हे स्कन्दक ! तुम्हारे मन में यावत् जो यह विकल्प उठा था कि सिद्धि सान्त है या अन्तरहित है ? उसका भी यह अर्थ है-हे स्कन्दक ! मैंने चार प्रकार की सिद्धि बताई है । वह इस प्रकार है-द्रव्यसिद्धि, क्षेत्रसिद्धि, काल-सिद्धि और भावसिद्धि । द्रव्य से सिद्धि एक है, अतः अन्तसहित है । क्षेत्र से-सिद्धि ४५ लाख योजन की लम्बी-चौड़ी है, तथा एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार दो सौ उनचास योजन से कुछ विशेषाधिक है, अतः अन्त-सहित है । काल से-ऐसा कोई काल नहीं था, जिसमें सिद्धि नहीं थी, ऐसा कोई काल नहीं है, जिसमें सिद्धि नहीं है तथा ऐसा कोई काल नहीं होगा, जिसमें सिद्धि नहीं रहेगी । अतः वह नित्य है, अन्तरहित है । भाव से सिद्धि-जैसे भाव लोक के सम्बन्ध में कहा था, उसी प्रकार है । इस प्रकार द्रव्यसिद्धि और क्षेत्रसिद्धि अन्तसहित है तथा काल-सिद्धि और भावसिद्धि अन्तरहित है । हे स्कन्दक ! सिद्धि अन्त-सहित भी है और अन्तरहित भी है ।

हे स्कन्दक ! फिर तुम्हें यह संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुआ था कि सिद्ध अन्तसहित हैं या अन्तरहित हैं ? उसका अर्थ भी इस प्रकार है-यावत्-द्रव्य से एक सिद्ध अन्तसहित है । क्षेत्र से-सिद्ध असंख्यप्रदेश वाले तथा असंख्य आकाश-प्रदेशों का अवगाहन किये हुए हैं, अतः अन्तसहित हैं । काल से-(कोई भी एक) सिद्ध आदि-सहित और अन्तरहित है । भाव से-सिद्ध अनन्तज्ञानपर्यायरूप हैं, अनन्तदर्शनपर्यायरूप हैं, यावत्-अनन्त-अगुरु-लघुपर्यायरूप हैं तथा अन्तरहित हैं । इसलिए हे स्कन्दक ! सिद्ध अन्तसहित भी हैं और अन्तरहित भी ।

और हे स्कन्दक ! तुम्हें जो इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन, यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ था कि कौन-से मरण से मरते हुए जीव का संसार बढ़ता है और कौन-से मरण से मरते हुए जीव का संसार घटता है ? उसका भी अर्थ यह है-हे स्कन्दक ! मैंने दो प्रकार के मरण बतलाए हैं । वे इस प्रकार हैं-बालमरण और पण्डितमरण ।

'वह बालमरण क्या है ?' बालमरण बारह प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-(१) बलयमरण (तड़फते हुए मरना), (२) वशार्तमरण (पराधीनतापूर्वक मरना), (३) अन्तःशल्यमरण, (४) तद्भवमरण, (५) गिरि-पतन, (६) तरुपतन, (७) जलप्रवेश, (८) ज्वलनप्रवेश, (९) विषभक्षण (विष खाकर मरना), (१०) शस्त्राघात से मरना, (११) वैहानस मरण (गले में फाँसी लगाने या वृक्ष आदि पर लटकने से होने वाला मरण) और (१२) गृध्रपृष्ठ-मरण (गिद्ध आदि पक्षीयों द्वारा पीठ आदि शरीरावयवों का माँस खाए जाने से होने वाला मरण) । हे स्कन्दक ! इन बारह प्रकार के बालमरणों से मरता हुआ जीव अनन्त बार नारक भवों को प्राप्त करता है, तथा नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, इस चातुर्गतिक अनादि-अनन्त संसाररूप वन में बार-बार परिभ्रमण करता है । यह है-बालमरण का स्वरूप ।

पण्डितमरण क्या है ? पण्डितमरण दो प्रकार का कहा गया है । पादपोपगमन (वृक्ष की कटी हुई शाखा की तरह स्थिर (निश्चल) होकर मरना) और भक्त-प्रत्याख्यान (यावज्जीवन तीन या चारों आहारों का त्याग करने के बाद शरीर की सारसंभाल करते हुए जो मृत्यु होती है) । पादपोपगमन (मरण) क्या है ? पादपोपगमन दो प्रकार का है ।

निर्हारिम और अनिर्हारिम । यह दोनों प्रकार का पादपोपगमन-मरण नियम से अप्रतिकर्म है । भक्तप्रत्याख्यान (मरण) क्या है ? भक्तप्रत्याख्यान मरण दो प्रकार का है । निर्हारिम और अनिर्हारिम । यह दोनों प्रकार का भक्त-प्रत्याख्यान मरण नियम से सप्रतिकर्म होता है ।

हे स्कन्दक ! इन दोनों प्रकार के पण्डितमरणों से मरता हुआ जीव नारकादि अनन्त भवों को प्राप्त नहीं करता; यावत्...संसाररूपी अटवी को उल्लंघन कर जाता है । इस प्रकार इन दोनों प्रकार के पण्डितमरणों से मरते हुए जीव का संसार घटता है । हे स्कन्दक ! इन दो प्रकार के मरणों से मरते हुए जीव का संसार बढ़ता और घटता है ।

सूत्र - ११३

(भगवान महावीर से समाधान पाकर) कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को सम्बोध प्राप्त हुआ । उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके यों कहा–'भगवन् ! मैं आपके पास केवलिप्ररूपित धर्म सूनना चाहता हूँ ।' हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो, शुभकार्य में विलम्ब मत करो । पश्चात् श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को और उस बहुत बड़ी परीषद् को धर्मकथा कही । तत्पश्चात् वह कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक भगवान महावीर के श्रीमुख से धर्मकथा सूनकर एवं हृदयमें अवधारण करके अत्यन्त हर्षित हुआ, सन्तुष्ट हुआ, यावत् उसका हृदय हर्ष से विकसित हो गया । तदनन्तर खड़े होकर और श्रमण भगवान महावीर को दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करके स्कन्दक परिव्राजक ने इस प्रकार कहा–'भगवन् निर्ग्रन्थप्रवचन पर मैं श्रद्धा करता हूँ, निर्ग्रन्थप्रवचन पर मैं प्रतीति करता हूँ, भगवन् ! निर्ग्रन्थ-प्रवचनमें मुझे रुचि है, भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन में अभ्युद्यत होता हूँ । हे भगवन् ! यह (निर्ग्रन्थ प्रवचन) इसी प्रकार है, यह तथ्य है, यह सत्य है, यह असंदिग्ध है, भगवन् ! यह मुझे इष्ट है, प्रतीष्ट है, इष्ट-प्रतीष्ट है । हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं, वैसा ही है ।

यों कहकर स्कन्दक ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया । ऐसा करके उसने ईशानकोण में जाकर त्रिदण्ड, कुण्डिका, यावत् गेरुए वस्त्र आदि परिव्राजक के उपकरण एकान्त में छोड़ दिए । फिर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आकर भगवान महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् नमस्कार करके इस प्रकार कहा–'भगवन् ! वृद्धावस्था और मृत्युरूपी अग्नि से यह लोक आदीप्त-प्रदीप्त है, वह एकदम जल रहा हे और विशेष जल रहा है । जैसे किसी गृहस्थ के घर में आग लग गई हो और वह घर जल रहा हो, तब वह उस जलते घर में से बहुमूल्य और अल्प भार वाले सामान को पहले बाहर नीकालता है, और उसे लेकर वह एकान्त में जाता है । वह यह सोचता है–बाहर नीकाला हुआ यह सामान भविष्य में आगे-पीछे मेरे लिए हितरूप, सुखरूप, क्षेमकुशलरूप, कल्याणरूप एवं साथ चलने वाला होगा । इसी तरह हे देवानुप्रिय भगवन् ! मेरा आत्मा भी एक भाण्ड रूप है । यह मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोरम, स्थिरता वाला, विश्वासपात्र, सम्मत, अनुमत, बहुमत और रत्नों के पिटारे के समान है । इसलिए इसे ठंड न लगे, गर्मी न लगे, यह भूख-प्यास से पीड़ित न हो, इसे चोर, सिंह और सर्प हानि न पहुँचाए, इसे डाँस और मच्छर न सताएं, तथा वात, पित्त, कफ, सन्निपात आदि विविध रोग और आतंक परीषह और उपसर्ग इसे स्पर्श न करें, इस प्रकार मैं इनसे इसकी बराबर रक्षा करता हूँ । मेरा आत्मा मुझे परलोक में हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, कल्याणरूप और अनुगामीरूप होगा । इसलिए भगवन् ! मैं आपके पास स्वयं प्रव्रजित होना, स्वयं मुण्डित होना चाहता हूँ । मेरी ईच्छा है कि आप स्वयं मुझे प्रव्रजित करें, मुण्डित करें, आप स्वयं मुझे प्रतिलेखनादि क्रियाएं सिखाएं, सूत्र और अर्थ पढ़ाएं । मैं चाहता हूँ कि आप मुझे ज्ञानादि आचार, गोचर, विनय, विनय का फल, चारित्र और पिण्ड-विशुद्धि आदि करण तथा संयम यात्रा और संयमयात्रा के निर्वाहक आहारादि की मात्रा के ग्रहणरूप धर्म को कहें ।'

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने स्वयमेव कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को प्रव्रजित किया, यावत् स्वयमेव धर्म की शिक्षा दी कि हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार (यतना) से चलना चाहिए, इस तरह से खड़ा रहना चाहिए, इस तरह से बैठना चाहिए, इस तरह से सोना चाहिए, इस तरह से खाना चाहिए, इस तरह से बोलना चाहिए, इस प्रकार से उठकर सावधानतापूर्वक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व के प्रति संयमपूर्वक वर्ताव करना चाहिए।

इस विषय में जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । तब कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक मुनि ने पूर्वोक्त धार्मिक उपदेश को भलीभाँति स्वीकार किया और जिस प्रकार की भगवान महावीर की आज्ञा अनुसार श्री स्कन्दकमुनि चलने लगे, वैसे ही खड़े रहने लगे, वैसे ही बैठने, सोने, खाने, बोलने आदि क्रियाएं करने लगे; तथा तदनुसार ही प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों के प्रति संयमपूर्वक बर्ताव करने लगे । इस विषय में वे जरा-सा प्रमाद नहीं करते थे।

अब वह कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक अनगार हो गए । वह अब ईर्यासमिति, भाषासमिति, एकणासमिति, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपरिष्ठापनिका समिति, एवं मनःसमिति, वचनसमिति और कायसमिति, इन आठ समितियों का सम्यक् रूप से सावधानतापूर्वक पालन करने लगे । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से गुप्त रहने लगे, वे सबको वश में रखने वाले, इन्द्रियों को गुप्त रखने वाले, गुप्तब्रह्मचारी, त्यागी, लज्जावान, धन्य, क्षमावान, जितेन्द्रिय, व्रतों आदि के शुद्धिपूर्वक आचरणकर्ता, नियाणा न करने वाले, आकांक्षारहित, उतावल से दूर, संयम से बाहर चित्त न रखने वाले, श्रेष्ठ साधुव्रतों में लीन, दान्त स्कन्दक मुनि इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को सम्मुख रखकर विचरण करने लगे ।

सूत्र - ११४

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी कृतंगला नगरी के छत्रपलाशक उद्यान से नीकले और बाहर (अन्य) जनपदों में विचरण करने लगे ।

इसके बाद स्कन्दक अनगार ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । शास्त्र-अध्ययन करने के बाद श्रमण भगवान महावीर के पास आकर वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले-भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो मैं मासिकी भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ। (भगवान-) हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो । शुभ कार्य में प्रतिबन्ध न करो । तत्पश्चात् स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त करके अतीव हर्षित हुए और यावत् भगवान महावीर को नमस्कार करके मासिक भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरण करने लगे । तदनन्तर स्कन्दक अनगार ने सूत्र के अनुसार, यथातत्त्व, सम्यक् प्रकार से स्वीकृत मासिक भिक्षुप्रतिमा का काया से स्पर्श किया, पालन किया, उसे शोभित किया, पार लगाया, पूर्ण किया, उसका कीर्तन किया, अनुपालन किया, और आज्ञापूर्वक आराधन किया ।

उक्त प्रतिमा का काया से सम्यक् स्पर्श करके यावत् उसका आज्ञापूर्वक आराधन करके श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आए यावत् वन्दन-नमस्कार करके यों बोले-भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो मैं द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा स्वीकार करके विचरण करना चाहता हूँ । इस पर भगवान ने कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, शुभकार्य में विलम्ब न करो । तत्पश्चात् स्कन्दक अनगार ने द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा को स्वीकार किया । यावत् सम्यक् प्रकार से आज्ञापूर्वक आराधन किया । इसी प्रकार त्रैमासिकी, चातुर्मासिकी, पंच-मासिकी, षाण्मासिकी एवं सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा की यथावत् आराधना की । तत्पश्चात् प्रथम सप्तरात्रि-दिवस की, द्वीतिय सप्तरात्रि-दिवस की एवं तृतीय सप्तरात्रि-दिवस की फिर एक अहोरात्रि की, तथा एकरात्रि की, इस तरह बारह भिक्षुप्रतिमाओं का सूत्रानुसार यावत् आज्ञापूर्वक सम्यक् आराधन किया ।

फिर स्कन्दक अनगार अन्तिम एकरात्रि की भिक्षुप्रतिमा का यथासूत्र यावत् आज्ञापूर्वक सम्यक् आराधन करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आकर उन्हें वन्दना-नमस्कार करके यावत् इस प्रकार बोले-'भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो मैं 'गुणरत्नसंवत्सर' नामक तपश्चरण अंगीकार करके विचरण करना चाहता हूँ ।' भगवान ने फरमाया-'तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो; धर्मकार्य में विलम्ब न करो ।' स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त करके यावत् उन्हें वन्दना-नमस्कार करके गुणरत्नसंवत्सर नामक तपश्चरण स्वीकार करके विचरण करने लगे । जैसे कि-पहले महीने में निरन्तर उपवास करना, दिन में सूर्य के सम्मुख दृष्टि रखकर आतापनाभूमि में उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य की आतापना लेना और रात्रि में अपावृत (निर्वस्त्र) होकर वीरासन से बैठना एवं शीत सहन करना । इसी तरह निरन्तर बेले-बेले पारणा करना । दिन में उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य

के सम्मुख मुख रखकर आतापनाभूमि में सूर्य की आतापना लेना, रात्रि में अपावृत होकर वीरासन से बैठकर शीत सहन करना । इसी प्रकार तीसरे मास में उपर्युक्त विधि के अनुसार निरन्तर तेले-तेले पारणा करना । इसी विधि के अनुसार चौथे मास में निरन्तर चौले-चौले पारणा करना । पाँचवे मास में पचौले-पचौले पारणा करना। छठे मास में निरन्तर छह-छह उपवास करना । सातवे मास में निरन्तर सात-सात उपवास करना । आठवे मास में निरन्तर आठ-आठ उपवास करना । नौवें मास में निरन्तर नौ-नौ उपवास करना । दसवे मास में निरन्तर दस-दस उपवास करना । ग्यारहवे मास में निरन्तर ग्यारह-ग्यारह उपवास करना । बारहवे मास में निरन्तर बारह-बारह उपवास करना । तेरहवे मास में निरन्तर तेरह-तेरह उपवास करना । निरन्तर चौदहवे मास में चौदह-चौदह उपवास करना । पन्द्रहवें मास में निरन्तर पन्द्रह-पन्द्रह उपवास करना और सोलहवें मास में निरन्तर सोलह-सोलह उपवास करना । इन सभी में दिन में उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य के सम्मुख मुख करके आतापनाभूमि में आतापना लेना, रात्रि के समय अपावृत होकर वीरासन से बैठकर शीत सहन करना ।

तदनन्तर स्कन्दक अनगार ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तपश्चरण की सूत्रानुसार, कल्पानुसार यावत् आराधना की । इसके पश्चात् जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ वे आए और उन्हें वन्दना-नमस्कार किया । और फिर अनेक उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, मासखमण, अर्द्ध मासखमण इत्यादि विविध प्रकार के तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे । इसके पश्चात् वे स्कन्दक अनगार उस उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, श्रीयुक्त, उत्तम, उदग्र, उदात्त, सुन्दर, उदार और महा-प्रभावशाली तपःकर्म से शुष्क हो गए, रूक्ष हो गए, मांसरहित हो गए, वह केवल हड्डी और चमड़ी से ढका हुआ रह गया । चलते समय हड्डियाँ खड़-खड़ करने लगीं, वे कृश-दुर्बल हो गए, उनकी नाड़ियाँ सामने दिखाई देने लगीं, अब वे केवल जीव के बल से चलते थे, जीव के बल से खड़े रहते थे, तथा वे इतने दुर्बल हो गए थे कि भाषा बोलने के बाद, भाषा बोलते-बोलते भी और भाषा बोलूँगा, इस विचार से भी ग्लानि को प्राप्त होते थे, जैसे कोई सूखी लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी हो, पत्तों से भरी हुई गाड़ी हो, पत्ते, तिल और अन्य सूखे सामान से भरी हुई गाड़ी हो, एरण्ड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी हो, या कोयले से भरी हुई गाड़ी हो, सभी गाड़ियाँ धूप में अच्छी तरह सूखाई हुई हों और फिर चलाई जाएं तो खड़-खड़ आवाज करती हुई चलती हैं और आवाज करती हुई खड़ी रहती है, इसी प्रकार जब स्कन्दक अनगार चलते थे, खड़े रहते थे, तब खड़-खड़ आवाज होती थी । यद्यपि वे शरीर से दुर्बल हो गए थे, तथापि वे तप से पुष्ट थे । उनका मांस और रक्त क्षीण हो गए थे, किन्तु राख के ढेर में दबी हुई अग्नि की तरह वे तप और तेज से तथा तप-तेज की शोभा से अतीव-अतीव सुशोभित हो रहे थे ।

सूत्र - ११५

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर में पधारे । समवसरण की रचना हुई । यावत् जनता धर्मोपदेश सूनकर वापिस लौट गई ।

तदनन्तर किसी एक दिन रात्रि के पीछले प्रहर में धर्म-जागरणा करते हुए स्कन्दक अनगार के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं इस प्रकार के उदार यावत् महाप्रभावशाली तपःकर्म द्वारा शुष्क, रूक्ष यावत् कृश हो गया हूँ । यावत् मेरा शारीरिक बल क्षीण हो गया, मैं केवल आत्मबल से चलता हूँ और खड़ा रहता हूँ । यहाँ तक की बोलने के बाद, बोलते समय और बोलने से पूर्व भी मुझे ग्लानि-खिन्नता होती है यावत् पूर्वोक्त गाड़ियों की तरह चलते और खड़े रहते हुए मेरी हड्डियों से खड़-खड़ आवाज होती है । अतः जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम है, जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर सुहस्ती की तरह विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिए श्रेयस्कर है कि इस रात्रि के व्यतीत हो जाने पर कल प्रातःकाल कोमल उत्पलकमलों को विकसित करने वाले, क्रमशः पाण्डुरप्रभा से रक्त अशोक के समान प्रकाशमान, टेसू के फूल, तोते की चोंच, गुंजा के अर्द्ध भाग जैसे लाल, कमलवनों को विकसित करने वाले, सहस्त्ररश्मि, तथा तेज से जाज्वल्यमान दिनकर सूर्य के उदय होने पर मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार यावत् पर्युपासना करके,

आज्ञा प्राप्त करके, स्वयमेव पंचमहाव्रतों का आरोपण करके, श्रमण-श्रमणियों के साथ क्षमापना करके कृतादि तथारूप स्थविर साधुओं के साथ विपुलगिरि पर शनैः शनैः चढ़कर, मेघसमूह के समान काले, देवों के अवतरणस्थानरूप पृथ्वीशिलापट्ट की प्रतिलेखना करके, उस पर डाभ (दर्भ) का संथारा बिछाकर, उस दर्भ संस्तारक पर बैठकर आत्मा को संलेखना तथा झोषणा से युक्त करके, आहार-पानी का सर्वथा त्याग करके पादपोपगमन संथारा करके, मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ विचरण करूँ । इस प्रकार का सम्प्रेक्षण किया और रात्रि व्यतीत होने पर प्रातःकाल यावत् जाज्वल्यमान सूर्य के उदय होने पर स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा में आकर उन्हें वन्दना-नमस्कार करके यावत् पर्युपासना करने लगे ।

तत्पश्चात् 'हे स्कन्दक !' यों सम्बोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने स्कन्दक अनगार से इस प्रकार कहा– ''हे स्कन्दक ! रात्रि के पीछले प्रहर में धर्म जागरणा करते हुए तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि इस उदार यावत् महाप्रभावशाली तपश्चरण से मेरा शरीर अब कृश हो गया है, यावत् अब मैं संलेखना-संथारा करके मृत्यु की आकांक्षा न करके पादपोपगमन अनशन करूँ । ऐसा विचार करके प्रातःकाल सूर्योदय होने पर तुम मेरे पास आए हो । हे स्कन्दक ! क्या यह सत्य है ?'' हाँ, भगवन् ! यह सत्य है । हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो; इस धर्मकार्य में विलम्ब मत करो ।

सूत्र - ११६

तदनन्तर श्री स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर अत्यन्त हर्षित, सन्तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हुए । फिर खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की और वन्दना-नमस्कार करके स्वयमेव पाँच महाव्रतों का आरोपण किया । फिर श्रमण-श्रमणियों से क्षमायाचना की, और तथारूप योग्य कृतादि स्थविरों के साथ शनैः शनैः विपुलाचल पर चढ़े । वहाँ मेघ-समूह के समान काले, देवों के ऊतरने योग्य स्थानरूप एक पृथ्वीशिलापट्ट की प्रतिलेखना की तथा उच्चार-प्रस्रवणादि परिष्ठापनभूमि की प्रतिलेखना की । ऐसा करके उस पृथ्वीशिलापट्ट पर डाभ का संथारा बिछाकर, पूर्वदिशा की ओर मुख करके, पर्यकासन से बैठकर, दसों नख सहित दोनों हाथों को मिलाकर मस्तक पर रखकर, दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले– 'अरिहन्त भगवंतों को, यावत् जो मोक्ष को प्राप्त हो चूके हैं, उन्हें नमस्कार हो । तथा अविचल शाश्वत सिद्ध स्थान को प्राप्त करने की ईच्छा वाले श्रमण भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार हो । तत्पश्चात् कहा–

'वहाँ रहे हुए भगवान महावीर को यहाँ रहा हुआ मैं वन्दना करता हूँ । वहाँ विराजमान श्रमण भगवान महावीर यहाँ पर रहे हुए मुझ को देखें ।' ऐसा कहकर भगवान को वन्दना-नमस्कार करके वे बोले–'मैंने पहले भी श्रमण भगवान महावीर के पास यावज्जीवन के लिए सर्व प्राणातिपात का त्याग किया था, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह ही पापों का त्याग किया था । इस समय भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास यावज्जीवन के लिए सर्व प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह ही पापों का त्याग करता हूँ । और यावज्जीवन के लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का त्याग करता हूँ । तथा यह मेरा शरीर, जो कि मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय है, यावत् जिसकी मैंने बाधा-पीड़ा, रोग, आतंक, परीषह और उपसर्ग आदि से रक्षा की है, ऐसे शरीर का भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक व्युत्सर्ग करता हूँ, यों कहकर संलेखना संथारा करके, भक्त-पान का सर्वथा त्याग करके पादपोपगमन अनशन करके मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचरण करने लगे । स्कन्दक अनगार, श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास ग्यारह अंगों का अध्ययन पूरे बारह वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना से अपनी आत्मा को संलिखित करके साठ भक्त का त्यागरूप अनशन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त करके क्रमशः कालधर्म को प्राप्त हुए ।

सूत्र - ११७

तत्पश्चात् उन स्थविर भगवंतों ने स्कन्दक अनगार को कालधर्म प्राप्त हुआ जानकर उनके परिनिर्वाण सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया । फिर उनके पात्र, वस्त्र आदि उपकरणों को लेकर वे विपुलगिरि से शनैः शनैः नीचे ऊतरे।

ऊतरकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आए । भगवान को वन्दना-नमस्कार करके उन स्थविर मुनियों ने इस प्रकार कहा-हे भगवन् ! आप देवानुप्रिय के शिष्य स्कन्दक अनगार, जो कि प्रकृति से भद्र, प्रकृति से विनीत, स्वभाव से उपशान्त, अल्पक्रोध-मान-माया-लोभ वाले, कोमलता और नम्रता से युक्त, इन्द्रियों को वश में करने वाले, भद्र और विनीत थे, वे आपकी आज्ञा लेकर स्वयमेव पंचमहाव्रतों का आरोपण करके, साधु-साध्वीयों से क्षमापना करके, हमारे साथ विपुलगिरि पर गए थे, यावत् वे पादपोपगमन संथार करके कालधर्म को प्राप्त हो गए हैं । ये उनके धर्मोपकरण हैं । गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके पूछा-भगवन् ! स्कन्दक अनगार काल के अवसर पर कालधर्म को प्राप्त करके कहाँ गए और कहाँ उत्पन्न हुए ? श्रमण भगवान महावीर ने फरमाया-हे गौतम ! मेरा शिष्य स्कन्दक अनगार, प्रकृतिभद्र यावत् विनीत मेरी आज्ञा प्राप्त करके, स्वयमेव पंचमहाव्रतों का आरोपण करके, यावत् संलेखना-संथारा करके समाधि को प्राप्त होकर काल के अवसर पर काल करके अच्युतकल्प में देवरूप में उत्पन्न हुआ है । वहाँ कतिपय देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की है । तदनुसार स्कन्दक देव की स्थिति भी बाईस सागरोपम की है ।

तत्पश्चात् श्री गौतमस्वामी ने पूछा-भगवन् ! स्कन्दक देव वहाँ की आयु का क्षय, भव का क्षय और स्थिति का क्षय करके उस देवलोक से कहाँ जाएंगे और कहाँ उत्पन्न होंगे ? गौतम ! स्कन्दक देव वहाँ की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर महाविदेहवर्ष (क्षेत्र) में जन्म लेकर सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त करेंगे और सभी दु:खों का अन्त करेंगे । श्री स्कन्दक का जीवनवृत्त पूर्ण हुआ ।

शतक-२ – उद्देशक-२

सूत्र - ११८

भगवन् ! कितने समुद्घात कहे गए हैं ? गौतम ! समुद्घात सात कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं-वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात, वैक्रिय-समुद्घात, तैजस-समुद्घात, आहारक-समुद्घात और केवली-समुद्घात । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का छत्तीसवा समुद्घातपद कहना चाहिए, किन्तु उसमें प्रतिपादित छद्मस्थ समुद्घात का वर्णन यहाँ नहीं कहना चाहिए । और इस प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए, तथा कषाय-समुद्घात और अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! भावितात्मा अनगार के क्या केवली-समुद्घात यावत् समग्र भविष्यकाल-पर्यन्त शाश्वत रहता है ? हे गौतम ! यहाँ भी उपर्युक्त कथनानुसार समुद्घातपद जानना ।

शतक-२ – उद्देशक-३

सूत्र - ११९, १२०

भगवन् ! पृथ्वीयाँ कितनी कही गई हैं ? गौतम ! जीवाभिगमसूत्र में नैरयिक उद्देशक में पृथ्वीसम्बन्धी जो वर्णन है, वह सब यहाँ जान लेना चाहिए । वहाँ उनके संस्थान, मोटाई आदि का तथा यावत्-अन्य जो भी वर्णन है, वह सब यहाँ कहना । पृथ्वी, नरकावास का अंतर, संस्थान, बाहल्य, विष्कम्भ, परिक्षेप, वर्ण, गंध और स्पर्श (यह सब कहना चाहिए) ।

सूत्र - १२१

भगवन् ! क्या सब जीव उत्पन्नपूर्व हैं ? हाँ, गौतम ! सभी जीव रत्नप्रभा आदि नरकपृथ्वीयों में अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चूके हैं ।

शतक-२ – उद्देशक-४

सूत्र - १२२

भगवन् ! इन्द्रियाँ कितनी कही गई हैं ? गौतम ! पाँच । श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के, इन्द्रियपद का प्रथम उद्देशक कहना । उसमें कहे अनुसार इन्द्रियों का संस्थान, बाहल्य, चौड़ाई, यावत् अलोक तक समग्र इन्द्रिय-उद्देशक कहना चाहिए ।

शतक-२ – उद्देशक-५

सूत्र - १२३

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बताते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि कोई भी निर्ग्रन्थ मरने पर देव होता है और वह देव, वहाँ दूसरे देवों के साथ, या दूसरे देवों की देवियों के साथ, उन्हें वश में करके या उनका आलिंगन करके, परिचारणा नहीं करता, तथा अपनी देवियों को वशमें करके या आलिंगन करके उनके साथ भी परिचारणा नहीं करता । परन्तु वह देव वैक्रिय से स्वयं अपने ही दो रूप बनाता है । यों दो रूप बनाकर वह, उस वैक्रियकृत देवी के साथ परिचारणा करता है । इस प्रकार एक जीव एक ही समय में दो वेदों का अनुभव करता है, यथा–स्त्री-वेद का और पुरुषवेद का । इस प्रकार परतीर्थिक की वक्तव्यता एक जीव एक ही समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद का अनुभव करता है, यहाँ तक कहना चाहिए । भगवन् ! यह इस प्रकार कैसे हो सकता है ?

हे गौतम ! वे अन्यतीर्थिक जो यह कहते यावत् प्ररूपणा करते हैं कि–यावत् स्त्रीवेद और पुरुषवेद; उनका वह कथन मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बताता हूँ और प्ररूपणा करता हूँ कि कोई एक निर्ग्रन्थ जो मरकर, किन्हीं महर्द्धिक यावत् महाप्रभावयुक्त, दूरगमन करने की शक्ति से सम्पन्न, दीर्घकाल की स्थिति (आयु) वाले देवलोकों में से किसी एक में देवरूप में उत्पन्न होता है, ऐसे देवलोक में वह महती ऋद्धि से युक्त यावत् दशों दिशाओं में उद्योत करता हुआ, विशिष्ट कान्ति से शोभायमान यावत् अतीव रूपवान देव होता है । और वह देव वहाँ दूसरे देवों के साथ, तथा दूसरे देवों की देवियों के साथ, उन्हें वशमें करके, परिचारणा करता है और अपनी देवियों को वशमें करके उनके साथ भी परिचारणा करता है; किन्तु स्वयं वैक्रिय करके अपने दो रूप बनाकर परिचारणा नहीं करता, (क्योंकि) एक जीव एक समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दोनों वेदों में से किसी एक वेद का ही अनुभव करता है । जब स्त्रीवेद को वेदता है, तब पुरुषवेद को नहीं वेदता, जिस समय पुरुषवेद को वेदता है, उस समय स्त्रीवेद को नहीं वेदता । स्त्रीवेद के उदय होने से पुरुषवेद को नहीं वेदता और पुरुषवेद का उदय होने से स्त्रीवेद को नहीं वेदता । अतः एक जीव एक समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दोनों वेदों में से किसी एक वेद को ही वेदता है । जब स्त्रीवेद का उदय होता है, तब स्त्री, पुरुष की अभिलाषा करती हे और जब पुरुषवेद का उदय होता है, तब पुरुष, स्त्री की अभिलाषा करता है ।

सूत्र - १२४

भगवन् ! उदकगर्भ, उदकगर्भ के रूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक उदकगर्भ, उदकगर्भरूप में रहता है । भगवन् ! तिर्यग्योनिकगर्भ कितने समय तक तिर्यग्योनिकगर्भरूप में रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष । भगवन् ! मानुषीगर्भ, कितने समय तक मानुषीगर्भरूप में रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्त-र्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष रहता है ।

सूत्र - १२५

भगवन् ! काय-भवस्थ कितने समय तक काय-भवस्थरूप में रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट चौबीस वर्ष तक रहता है ।

सूत्र - १२६

भगवन् ! मानुषी और पंचेन्द्रियतिर्यंची योनिगत बीज योनिभूतरूप में कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त ।

सूत्र - १२७

भगवन् ! एक जीव, एक भव की अपेक्षा कितने जीवों का पुत्र हो सकता है ? गौतम ! एक जीव, एक भव में जघन्य एक जीव का, दो जीवों का अथवा तीन जीवों का, और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व जीवों का पुत्र हो सकता है ।

सूत्र - १२८

भगवन् ! एक जनीव के एक भव में कितने जीव पुत्ररूप में (उत्पन्न) हो सकते हैं ? गौतम ! जघन्य एक, दो

अथवा तीन जीव और उत्कृष्ट लक्षपृथक्त्व जीव पुत्ररूप में (उत्पन्न) हो सकते हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? हे गौतम ! कर्मकृत योनि में स्त्री और पुरुष का जब मैथुनवृत्तिक संयोग निष्पन्न होता है, तब उन दोनों के स्नेह सम्बन्ध होता है, फिर उसमें से जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट लक्षपृथक्त्व जीव पुत्ररूप में उत्पन्न होते हैं । हे गौतम ! इसीलिए पूर्वोक्त कथन किया गया है ।

सूत्र - १२९

भगवन् ! मैथुनसेवन करते हुए जीव के किस प्रकार का असंयम होता है ? गौतम ! जैसे कोई पुरुष तपी हुई सोने की (या लोहे की) सलाई (डालकर, उस) से बाँस की रूई से भरी हुई नली या बूर नामक वनस्पतिसे भरी नली को जला डालता है, हे गौतम ! ऐसा ही असंयम मैथुन सेवन करते हुए जीव के होता है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

सूत्र - १३०

इसके पश्चात् (एकदा) श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशील उद्यान से नीकलकर बाहर जनपदों में विहार करने लगे । उस काल उस समय में तुंगिका नामकी नगरी थी । उस तुंगिका नगरी के बाहर ईशान कोण में पुष्पवतिक नामका चैत्य था । उस तुंगिकानगरी में बहुत-से श्रमणोपासक रहते थे । वे आढ्य और दीप्त थे । उनके विस्तीर्ण निपुल भवन थे । तथा वे शयनों, आसनों, यानों तथा वाहनों से सम्पन्न थे । उनके पास प्रचुर धन, बहुत-सा सोना-चाँदी आदि था । वे आयोग और प्रयोग करने में कुशल थे । उनके यहाँ विपुल भात-पानी तैयार होता था, और वह अनेक लोगों को वितरित किया जाता था । उनके यहाँ बहुत-सी दासियाँ और दास थे; तथा बहुत-सी गायें, भैंसे, भेड़ें और बकरीयाँ आदि थीं । वे बहुत-से मनुष्यों द्वारा भी अपरिभूत थे । वे जीव और अजीव के स्वरूप को भलीभाँति जानते थे । उन्होंने पुण्य और पाप का तत्त्व उपलब्ध कर लिया था । वे आश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध और मोक्ष के विषय में कुशल थे । वे सहायता की अपेक्षा नहीं रखते थे । (वे निर्ग्रन्थ प्रवचन में इतने दृढ़ थे कि) देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड़, गन्धर्व, महोरग आदि देवगणों के द्वारा निर्ग्रन्थप्रवचन से अनतिक्रमणीय थे । वे निर्ग्रन्थप्रवचन के प्रति निःशंकित थे, निष्कांक्षित थे, तथा विचिकि-त्सारहित थे । उन्होंने शास्त्रों के अर्थों को भलीभाँति उपलब्ध कर लिया था, शास्त्रों के अर्थों को ग्रहण कर लिया था । पूछकर उन्होंने यथार्थ निर्णय कर लिया था । उन्होंने शास्त्रों के अर्थों और उनके रहस्यों को निर्णयपूर्वक जान लिया था । उनकी हड्डियाँ और मज्जाएं (निर्ग्रन्थप्रवचन के प्रति) प्रेमानुराग से रंगी हुई थी । (इसलिए वे कहते थे कि–) ।

'आयुष्मान् बन्धुओ ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ (सार्थक) है, यही परमार्थ है, शेष सब निरर्थक है ।' वे इतने उदार थे कि उनके घरों में दरवाजों के पीछे रहने वाली अर्गला सदैव ऊंची रहती थी । उनके घर के द्वार सदा खुले रहते थे । उनका अन्तःपुर तथा परगृह में प्रवेश विश्वसनीय होता था । वे शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्या-ख्यान, पौषधोपवास आदि का सम्यक् आचरण करते थे, तथा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या और पूर्णिमा, इन पर्व तिथियों में प्रतिपूर्ण पौषक का सम्यक् अनुपालन करते थे । वे श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज आदि प्रतिलाभित करते थे; और यथाप्रतिगृहीत तपःकर्मों से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

सूत्र - १३१

उस काल और उस समय में पार्श्वापत्यीय स्थविर भगवान पाँच सौ अनगारों के साथ यथाक्रम से चर्या करते हुए, ग्रामानुग्राम जाते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए तुंगिका नगरी के पुष्पवतिकचैत्य पधारे । यथारूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए वहाँ विहरण करने लगे । वे स्थविर भगवंत जाति-सम्पन्न, कुलसम्पन्न, बलसम्पन्न, रूपसम्पन्न, विनयसम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, दर्शनसम्पन्न, चारित्रसम्पन्न, लज्जासम्पन्न, लाघवसम्पन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी थे । उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ, निद्रा, इन्द्रियों और परीषहों को जीत लिया था । वे जीवन की आशा और मरण के भय से विमुक्त थे, यावत् वे कुत्रिकापण-भूत थे । वे बहुश्रुत और बहुपरिवार वाले थे ।

सूत्र - १३२

तदनन्तर तुंगिकानगरी के शृंगाटक मार्गमें, त्रिक रास्तोंमें, चतुष्क पथोंमें तथा अनेक मार्ग मिलते हैं, ऐसे मार्गों में, राजमार्गों में एवं सामान्य मार्गों में यह बात फैल गई। परीषद् एक ही दिशामें उन्हें वन्दन करने के लिए जाने लगी।

जब यह बात तुंगिकानगरी के श्रमणोपासकों को ज्ञात हुई तो वे अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्ट हुए, यावत् परस्पर एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे-हे देवानुप्रियो ! (सूना है कि) भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यानु-शिष्य स्थविर भगवंत, जो कि जातिसम्पन्न आदि विशेषण-विशिष्ट हैं, यावत् (यहाँ पधारे हैं) और यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करते हैं। हे देवानुप्रियो ! तथारूप स्थविर भगवंतों के नामगोत्र के श्रवण से भी महाफल होता है, तब फिर उनके सामने जाना, वन्दन-नमस्कार करना, उनका कुशल-मंगल पूछना और उनकी पर्युपासना करना, यावत्...उनसे प्रश्न पूछकर अर्थ-ग्रहण करना, इत्यादि बातों के फल का तो कहना ही क्या ? अतः हे देवानुप्रियो ! हम सब उन स्थविर भगवंतों के पास चलें और उन्हें वन्दन-नमस्कार करें, यावत् उनकी पर्युपासना करें। ऐसा करना अपने लिए इस भव में तथा परभव में हितरूप होगा; यावत् परम्परा से अनुगामी होगा।

इस प्रकार बातचीत करके उन्होंने उस बात को एक दूसरे के सामने स्वीकार किया। स्वीकार करके वे सब श्रमणोपासक अपने-अपने घर गए। घर जाकर स्नान किया, फिर बलिकर्म किया। तदनन्तर कौतुक और मंगल-रूप प्रायश्चित्त किया। फिर शुद्ध, तथा धर्मसभा आदि में प्रवेश करने योग्य एवं श्रेष्ठ वस्त्र पहने। थोड़े-से, किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को विभूषित किया। फिर वे अपने-अपने घरों से नीकले, और एक जगह मिले। (तत्पश्चात्) वे सम्मिलित होकर पैदल चलते हुए तुंगिका नगरी के बीचोबीच होकर नीकले और जहाँ पुष्पवतिक चैत्य था, वहाँ आए। स्थविर भगवंतों के पास पाँच प्रकार के अभिगम करके गए। वे इस प्रकार हैं- (१) सचित्त द्रव्यों का त्याग करना, (२) अचित्त द्रव्यों का त्याग न करना-साथ में रखना; (३) एकशाटिक उत्तरासंग करना, (४) स्थविर-भगवंतों को देखते ही दोनों हाथ जोड़ना, तथा (५) मन को एकाग्र करना।

यों पाँच प्रकार का अभिगम करके वे श्रमणोपासक स्थविर भगवंतों के निकट आकर उन्होंने दाहिनी ओर से तीन बार उनकी प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया यावत् कायिक, वाचिक और मानसिक, इन तीनों प्रकार से उनकी पर्युपासना करने लगे। वे हाथ-पैरों को सिकोड़कर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए, उनके सम्मुख विनय से हाथ जोड़कर काया से पर्युपासना करते हैं। जो-जो बातें स्थविर भगवान फरमा रहे थे, उसे सूनकर-भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह तथ्य है, यही सत्य है, भगवन् ! यह असंदिग्ध है, भगवन् ! यह इष्ट है, यह प्रतीष्ट है, हे भगवन् ! यही इष्ट और विशेष इष्ट है, इस प्रकार वाणी से अप्रतिकूल होकर विनयपूर्वक वाणी से पर्युपासना करते हैं तथा मन से संवेगभाव उत्पन्न करते हुए तीव्र धर्मानुराग में रंगे हुए विग्रह और प्रतिकूलता से रहित बुद्धि होकर, मन को अन्यत्र कहीं न लगाते हुए विनयपूर्वक उपासना करते हैं।

सूत्र - १३३

तत्पश्चात् उन स्थविर भगवंतों ने उन श्रमणोपासकों तथा उस महती परीषद् (धर्मसभा) को केशीश्रमण की तरह चातुर्याम-धर्म का उपदेश दिया। यावत्...वे श्रमणोपासक अपनी श्रमणोपासकता द्वारा आज्ञा के आराधक हुए। यावत् धर्म-कथा पूर्ण हुई।

तदनन्तर वे श्रमणोपासक स्थविर भगवंतों से धर्मोपदेश सूनकर एवं हृदयंगम करके बड़े हर्षित और सन्तुष्ट हुए, यावत् उनका हृदय खिल उठा और उन्होंने स्थविर भगवंतों की दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा की, यावत् उनकी पर्युपासना की और फिर इस प्रकार पूछा-भगवन् ! संयम का क्या फल है ? भगवन् ! तप का क्या फल है? इस पर उन स्थविर भगवंतों ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा-'हे आर्यो ! संयम का फल आश्रवरहितता-है। तप का फल व्यवदान (कर्मपंक से मलिन आत्मा को शुद्ध करना) है।

श्रमणोपासकों ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार पूछा-भगवन् ! यदि संयम का फल अनाश्रवता है और

तप का फल व्यवदान है तो देव देवलोकों में किस कारण से उत्पन्न होते हैं ? कालिकपुत्र नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से यों कहा-'आर्यो ! पूर्वतप के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । मेहिल नाम के स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा-आर्यो ! पूर्व-संयम के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं ।

फिर उनमें से आनन्दरक्षित नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा-आर्यो ! कर्म शेष रहने के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । उनमें से काश्यप नामक स्थविरने उन श्रमणोपासकों से कहा-आर्यो ! संगिता (आसक्त) के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार हे आर्यो ! पूर्व (रागभावयुक्त) तप से, पूर्व (सराग) संयम से, कर्मों के रहने से, तथा संगिता (द्रव्यासक्ति) से, देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । यह बात सत्य है । इसलिए कही है, हमने अपना आत्मभाव बताने की दृष्टि से नहीं कही है ।

तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक, स्थविर भगवंतों द्वारा कहे हुए इन और ऐसे उत्तरों को सूनकर बड़े हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए और स्थविर भगवंतों को वन्दना नमस्कार करके अन्य प्रश्न भी पूछते हैं, प्रश्न पूछकर फिर स्थविर भगवंतों द्वारा दिये गए उत्तरों को ग्रहण करते हैं । तत्पश्चात् वे वहाँ से उठते हैं और तीन बार वन्दना-नमस्कार करते हैं । जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस लौट गए । इधर वे स्थविर भगवंत भी किसी एक दिन तुंगिका नगरी के उस पुष्पवतिक चैत्य से नीकले और बाहर जनपदों में विचरण करने लगे ।

सूत्र - १३४

उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था । वहाँ (श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे । परीषद् वन्दना करने गई यावत् धर्मोपदेश सूनकर) परीषद् वापस लौट गई । उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार थे । यावत्...वे विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में संक्षिप्त करके रखते थे । वे निरन्तर छठ्ठ-छठ्ठ के तपश्चरण से तथा संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए यावत् विचरते थे

इसके पश्चात् छठ्ठ के पारणे के दिन भगवान गौतमस्वामी ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया; द्वीतिय प्रहर में ध्यान ध्याया और तृतीय प्रहर में शारीरिक शीघ्रता-रहित, मानसिक चपलतारहित, आकुलता से रहित होकर मुख-वस्त्रिका की प्रतिलेखना की; फिर पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना की; तदनन्तर पात्रों का प्रमार्जन किया और फिर उन पात्रों को लेकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आए । भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और निवेदन किया-भगवन् ! आज मेरे छठ्ठ तप के पारणे का दिन है । अतः आप से आज्ञा प्राप्त होने पर मैं राजगृह नगर में उच्च, नीच और मध्यम कुलों के गृहसमुदाय में भिक्षाचर्या की विधि के अनुसार, भिक्षाटन करना चाहता हूँ । हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसे करो; किन्तु विलम्ब मत करो ।

भगवान की आज्ञा प्राप्त हो जाने के बाद भगवान गौतमस्वामी श्रमण भगवान महावीर के पास से तथा गुणशील चैत्य से नीकले । फिर वे त्वरा, चपलता और आकुलता से रहित होकर युगान्तर प्रमाण दूर तक की भूमि का अवलोकन करत हुए, अपनी दृष्टि से आगे-आगे के गमन मार्ग का शोधन करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आए । ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के गृह-समुदाय में विधिपूर्वक भिक्षाचरी के लिए पर्यटन करने लगे ।

उस समय राजगृह नगर में भिक्षाटन करते हुए भगवान गौतम ने बहुत-से लोगों के मुख से इस प्रकार के उद्गार सूने-हे देवानुप्रिय ! तुंगिका नगरी के बाहर पुष्पवतिक नामक उद्यान में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवंत पधारे थे, उनसे वहाँ के श्रमणोपासकों ने प्रश्न पूछे थे कि भगवन् ! संयम का क्या फल है, भगवन् ! तप का क्या फल है ? तब उन स्थविर भगवंतों ने उन श्रमणोपासकों से कहा था-आर्यो ! संयम का फल संवर है, और तप का फल कर्मों का क्षय है । यावत्-हे आर्यो ! पूर्वतप से, पूर्वसंयम से, कर्म शेष रहने से और संगिता (आसक्ति) से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । यह बात सत्य है, इसलिए हमने कही है, हमने अपने आत्मभाव वश यह बात नहीं कही है । तो मैं यह बात कैसे मान लूँ ?

इसके पश्चात् श्रमण भगवान गौतम ने इस प्रकार की बात लोगों के मुख से सूनी तो उन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई, और यावत् उनके मन में कुतूहल भी जागा । अतः भिक्षाविधिपूर्वक आवश्यकतानुसार भिक्षा लेकर वे राजगृहनगर से

बाहर नीकले और अत्वरित गति से यावत् ईर्या-शोधन करते हुए जहाँ गुणशीलक चैत्य था, और जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास आए । गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, एषणादोषों की आलोचना की, फिर आहार-पानी भगवान को दिखाया । तत्पश्चात् श्रीगौतमस्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से यावत् निवेदन किया-भगवन् ! मैं आपसे आज्ञा प्राप्त करके राजगृहनगर में उच्च, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा-चर्या की विधिपूर्वक भिक्षाटन कर रहा था, उस समय बहुत-से लोगों के मुख से इस प्रकार के उद्गार सूने कि तुंगिका नगरी के बाहर पुष्पवतिक नामक उद्यान में पार्श्वापत्यीय स्थविर भगवंत पधारे थे, उनसे वहाँ के श्रमणो-पासकों ने इस प्रकार के प्रश्न पूछे थे कि भगवन् ! संयम का क्या फल है ? और तप का क्या फल है ? यावत् यह बात सत्य है, इसलिए कही है, किन्तु हमने आत्मभाव के वश होकर नहीं कही ।

हे भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवंत उन श्रमणोपासकों के प्रश्नों के ये और इस प्रकार के उत्तर देनेमें समर्थ हैं, अथवा असमर्थ हैं ? भगवन् ! उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देनेमें वे सम्यक्रूप से ज्ञानप्राप्त हैं, अथवा असम्पन्न या अनभ्यस्त हैं ? भगवन् ! उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देनेमें वे उपयोगवाले हैं या उपयोगवाले नहीं हैं ? भगवन् क्या वे स्थविर भगवंत उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में विशिष्ट ज्ञानवान् हैं, अथवा विशेष ज्ञानी नहीं हैं कि आर्यो ! पूर्वतप से दवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, तथा पूर्वसंयम से, कर्मिता से और संगिता (आसक्ति) के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । यह बात सत्य है, इसलिए हम कहते हैं, किन्तु अपने अहंभाव वश नहीं कहते हैं ?

हे गौतम ! वे स्थविर भगवंत उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार के उत्तर देने में समर्थ हैं, असमर्थ नहीं; यावत् वे सम्यक् रूप से सम्पन्न हैं अथवा अभ्यस्त हैं; असम्पन्न या अनभ्यस्त नहीं; वे उपयोग वाले हैं, अनुपयोग वाले नहीं; वे विशिष्ट ज्ञानी हैं, सामान्य ज्ञानी नहीं । यह बात सत्य है, इसलिए उन स्थविरों ने कही है, किन्तु अपने अहंभाव के वश होकर नहीं कही । हे गौतम ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बताता हूँ और प्ररूपणा करता हूँ कि पूर्वतप के कारण से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, पूर्वसंयम के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, कर्मिता से देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं तथा संगिता (आसक्ति) के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । आर्यो ! पूर्वतप से, पूर्वसंयम से, कर्मिता और संगिता से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं । यही बात सत्य है; इसलिए उन्होंने कही है, किन्तु अपनी अहंता प्रदर्शित करने के लिए नहीं कही ।

सूत्र - १३५

भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन की पर्युपासना करने वाले मनुष्य को उसकी पर्युपासना का क्या फल मिलता है ? गौतम ! तथारूप श्रमण या माहन के पर्युपासक को उसकी पर्युपासना का फल होता है-श्रवण ।

भगवन् ! उस श्रवण का क्या फल होता है ? गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान है । भगवन् ! उन ज्ञान का क्या फल है ? गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान है । भगवन् ! उस विज्ञान का क्या फल होता है ? गौतम ! विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है । भगवन् ! प्रत्याख्यान का क्या फल होता है ? गौतम ! प्रत्याख्यान का फल संयम है । भगवन् ! संयम का क्या फल होता है ? गौतम ! संयम का फल संवर है । इसी तरह अनाश्रवत्व का फल तप है, तप का फल व्यवदान (कर्मनाश) है और व्यवदान का फल अक्रिया है । भगवन् ! उस अक्रिया का क्या फल है ? गौतम ! अक्रिया का अन्तिम फल सिद्धि है ।

सूत्र - १३६

(पर्युपासना का प्रथम फल) श्रवण, (श्रवण का फल) ज्ञान, (ज्ञान का फल) विज्ञान, (विज्ञान का फल) प्रत्याख्यान, (प्रत्याख्यान का फल) संयम, (संयम का फल) अनाश्रवत्व, (अनाश्रवत्व का फल) तप, (तप का फल) व्यवदान, (व्यवदान का फल) अक्रिया और (अक्रिया का फल) सिद्धि है ।

सूत्र - १३७

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि 'राजगृह नगर के बाहर वैभारगिरि के नीचे एक महान (बड़ा भारी) पानी का ह्रद है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई अनेक योजन है।

उसका अगला भाग अनेक प्रकार के वृक्षसमूह से सुशोभित है, वह सुन्दर है, यावत् प्रतिरूप है । उस ह्रद में अनेक उदार मेघ संस्वेदित (उत्पन्न) होते (गिरते) हैं, सम्मूर्छित होते (बरसते) हैं । इसके अतिरिक्त उसमें से सदा परिमित गर्म-गर्म जल झरता रहता है । भगवन् ! (अन्यतीर्थिकों का) इस प्रकार का कथन कैसा है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थिक जो कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, और प्ररूपणा करते हैं कि राजगृह नगर के बाहर...यावत्... गर्म-गर्म जल झरता रहता है, यह सब वे मिथ्या कहते हैं; किन्तु हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बतलाता हूँ और प्ररूपणा करता हूँ कि राजगृह नगर के बाहर वैभारगिरि के निकटवर्ती एक महातपोपतीर-प्रभव नामक झरना है । वह लम्बाई-चौड़ाई में पाँच-सौ धनुष है । उसके आगे का भाग अनेक प्रकार के वृक्ष-समूह से सुशोभित है, सुन्दर है, प्रसन्नताजनक है, दर्शनीय है, रमणीय है और प्रतिरूप है । उस झरने में बहुत-से उष्ण-योनिक जीव और पुद्गल जल के रूप में उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं, च्यवते हैं और उपचय को प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त उस झरने में सदा परिमित गर्म-गर्म जल झरता रहता है । हे गौतम ! यह महातपोपतीर-प्रभव नामक झरना है, और हे गौतम ! यही महातपोपतीर-प्रभव नामक झरने का अर्थ है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-२ – उद्देशक-६

सूत्र - १३८

भगवन् ! भाषा अवधारिणी है; क्या मैं ऐसा मान लूँ ? गौतम ! उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में प्रज्ञापनासूत्र के भाषापद जान लेना चाहिए ।

शतक-२ – उद्देशक-७

सूत्र - १३९

भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! देव चार प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं– भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ।

भगवन् ! भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? गौतम ! भवनवासी देवों के स्थान इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे हैं; इत्यादि देवों की सारी वक्तव्यता प्रज्ञापनासूत्र के दूसरे स्थान-पद में कहे अनुसार कहनी चाहिए । किन्तु विशेषता इतनी है कि यहाँ भवनवासियों के भवन कहने चाहिए । उनका उपपात लोक के असंख्यातवे भाग में होता है । यह समग्र वर्णन सिद्ध सिद्धगण्डिकापर्यन्त पूरा कहना चाहिए । कल्पों का प्रतिष्ठान उनकी मोटाई, ऊंचाई और संस्थान आदि का सारा वर्णन जीवाभिगमसूत्र के वैमानिक उद्देशक पर्यन्त कहना ।

शतक-२ – उद्देशक-८

सूत्र - १४०

भगवन् ! असुरकुमारों के इन्द्र और अनेक राजा चमर की सुधर्मा-सभा कहाँ पर है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मध्य में स्थित मन्दर (मेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा में तीरछे असंख्य द्वीपों और समुद्रों को लाँघने के बाद अरुणवर द्वीप आता है । उस द्वीप की वेदिका के बाहिरी किनारे से आगे बढ़ने पर अरुणोदय नामक समुद्र आता है । इस अरुणोदय समुद्र में बयालीस लाख योजन जाने के बाद उस स्थान में असुरकुमारों के इन्द्र, असुर-कुमारों के राजा चमर का तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत है । उसकी ऊंचाई १७२१ योजन है । उसक उद्वेध ४३० योजन और एक कोस है । (अर्थात्–तिगिच्छकूट पर्वत का विष्कम्भ मूल में १०२२ योजन है, मध्य में ४२४ योजन है और ऊपर को विष्कम्भ ७२३ योजन है । उसका परिक्षेप मूल में ३२३२ योजन से कुछ विशेषोन है, मध्य में १३४१ योजन तथा कुछ विशेषोन है और ऊपर का परिक्षेप २२८६ योजन तथा कुछ विशेषाधिक है ।) वह मूल में विस्तृत है, मध्य में संकीर्ण है और ऊपर फिर विस्तृत है । उसके बीच का भाग उत्तम वज्र जैसा है, बड़े मुकुन्द के संस्थान का-सा आकार है । पर्वत पूरा रत्नमय है, सुन्दर है, यावत् प्रतिरूप है । वह पर्वत एक पद्मवरवेदिका से और एक वखनण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है ।

उस तिगिच्छकूट नामक उत्पातपर्वत का ऊपरी भू-भाग बहुत ही सम एवं रमणीय है । उस अत्यन्त सम एवं रमणीय ऊपरी भूमिभाग के ठीक बीचोबीच एक महान प्रासादावतंसक है । उसकी ऊंचाई २५० योजन है और उसका विष्कम्भ १२५ योजन है । आठ योजन की मणिपीठिका है । (यहाँ चमरेन्द्र के सिंहासन का वर्णन करना चाहिए ।)

उस तिगिच्छकूट के दक्षिण की ओर अरुणोदय समुद्र में छह सौ पचपन करोड़ पैंतीस लाख, पचास हजार योजन तीरछा जाने के बाद नीचे रत्नप्रभापृथ्वी का ४० हजार योजन भाग अवगाहन करने के पश्चात् यहाँ असुर-कुमारों के इन्द्र–राजा चमर की चमरचंचा नामकी राजधानी है । उस राजधानी का आयाम और विष्कम्भ एक लाख योजन है । वह राजधानी जम्बूद्वीप जितनी है । उसका प्राकार १५० योजन ऊंचा है । उसके मूल का विष्कम्भ ५० योजन है । उसके ऊपरी भाग का विष्कम्भ साढ़े तेरह योजन है । उसके कंगूरों की लम्बाई आधा योजन और विष्कम्भ एक कोस है । कपिशीर्षकों की ऊंचाई आधे योजन से कुछ कम है । उसकी एक-एक भूजा में पाँच-पाँच सौ दरवाजे हैं। उसकी ऊंचाई २५० योजन है । ऊपरी तल का आयाम और विष्कम्भ सोलह हजार योजन है । उसका परिक्षेप ५०५९७ योजन से कुछ विशेषोन है । यहाँ समग्र प्रमाण वैमानिक के प्रमाण से आधा समझना चाहिए । उत्तर पूर्व में सुधर्मासभा, जिनगृह, उसके पश्चात् उपपातसभा, हृद, अभिषेक सभा और अलंकारसभा; यह सारा वर्णन विजय की तरह कहना चाहिए । उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका और सिद्धायतन-सम्बन्धी गम, तथा चमरेन्द्र का परिवार और उसकी ऋद्धिसम्पन्नता; आदि का वर्णन समझ लेना ।

शतक-२ – उद्देशक-९

सूत्र - १४१

भगवन् ! यह समयक्षेत्र किसे कहा जाता है ? गौतम ! अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र इतना यह (प्रदेश) ‘समयक्षेत्र’ कहलाता है । इनमें जम्बूद्वीप नामक द्वीप समस्त द्वीपों और समुद्रों के बीचोबीच है । इस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में कहा हुआ सारा वर्णन यहाँ यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध तक कहना चाहिए; किन्तु ज्योतिष्कों का वर्णन छोड़ देना चाहिए ।

शतक-२ – उद्देशक-१०

सूत्र - १४२

भगवन् ! अस्तिकाय कितने कहे गए हैं ? गौतम ! पाँच हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्ति-काय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

भगवन् ! धर्मास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ? गौतम ! धर्मास्ति-काय वर्णरहित, गन्धरहित, रसरहित और स्पर्शरहित है, अर्थात्–धर्मास्तिकाय अरूपी है, अजीव है, शाश्वत है, अवस्थित लोक (प्रमाण) द्रव्य है । संक्षेप में, धर्मास्तिकाय पाँच प्रकार का कहा गया है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से और गुण से । धर्मास्तिकाय द्रव्य से एक द्रव्य है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है; काल की अपेक्षा कभी नहीं था, ऐसा नहीं; कभी नहीं है, ऐसा नहीं; और कभी नहीं रहेगा, ऐसा भी नहीं; किन्तु वह था, है और रहेगा, यावत् वह नित्य है । भाव की अपेक्षा वर्णरहित, गन्धरहित, रसरहित और स्पर्शरहित है । गुण की अपेक्षा धर्मास्तिकाय गति-गुणवाला है ।

जिस तरह धर्मास्तिकाय का कथन किया गया है, उसी तरह अधर्मास्तिकाय के विषय में भी कहना । विशेष यह कि अधर्मास्तिकाय गुण की अपेक्षा स्थितिगुण वाला है ।

आकाशास्तिकाय के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि क्षेत्र की अपेक्षा आकाशास्तिकाय लोकालोक-प्रमाण है और गुण की अपेक्षा अवगाहना गुण वाला है ।

भगवन् ! जीवास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ? गौतम ! जीवास्ति-काय वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शरहित है वह अरूपी है, जीव है, शाश्वत है, अवस्थित लोकद्रव्य है । संक्षेप में, जीवास्ति-काय के पाँच प्रकार कहे गए हैं । वह इस प्रकार–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण की अपेक्षा जीवास्तिकाय । द्रव्य की अपेक्षा–जीवास्तिकाय अनन्त जीवद्रव्यरूप है । क्षेत्र की अपेक्षा–लोक-प्रमाण है । काल की अपेक्षा–वह कभी नहीं

था, ऐसा नहीं, यावत् वह नित्य है। भाव की अपेक्षा-जीवास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं और स्पर्श नहीं है। गुण की अपेक्षा-जीवास्तिकाय उपयोगगुण वाला है।

भगवन् ! पुद्‌गलास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ? गौतम ! पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श हैं। वह रूपी है, अजीव है, शाश्वत और अवस्थित लोकद्रव्य है। संक्षेप में उसके पाँच प्रकार कहे हैं; यथा-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण से। द्रव्य की अपेक्षा-पुद्‌गलास्तिकाय अनन्तद्रव्यरूप है; क्षेत्र की अपेक्षा-पुद्‌गलास्तिकाय लोक-प्रमाण है, काल की अपेक्षा-वह कभी नहीं था ऐसा नहीं, यावत् नित्य है। भाव की अपेक्षा-वह वर्णवाला, गन्धवाला, रसवाला, स्पर्शवाला है। गुण की अपेक्षा-वह ग्रहण गुणवाला है।

सूत्र - १४३

भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय के दो प्रदेशों, तीन प्रदेशों, चार प्रदेशों, पाँच प्रदेशों, छह प्रदेशों, सात प्रदेशों, आठ प्रदेशों, नौ प्रदेशों, दस प्रदेशों, संख्यात प्रदेशों तथा असंख्येय प्रदेशों को 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! एक प्रदेश से कम धर्मास्तिकाय को क्या 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है ? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं; भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को यावत् एक प्रदेश कम हो, वहाँ तक उसे धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता ? गौतम ! चक्र का खण्ड चक्र कहलाता है या सम्पूर्ण चक्र कहलाता है ? (गौतम-) भगवन् ! चक्र का खण्ड चक्र नहीं कहलाता, किन्तु सम्पूर्ण चक्र, चक्र कहलाता है। (भगवान) इस प्रकार छत्र, चर्म, दण्ड, वस्त्र, शस्त्र और मोदक के विषय में भी जानना चाहिए। इसी कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को, यावत् जब तक उसमें एक प्रदेश भी कम हो, तब तक उसे, धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता। भगवन् ! तब धर्मास्तिकाय किसे कहा जा सकता है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय में असंख्येय प्रदेश हैं, जब वे सब कृत्स्न, परिपूर्ण, निरवशेष तथा एक शब्द से कहने योग्य हो जाएं, तब उसको 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है। इसी प्रकार 'अधर्मास्तिकाय' के विषय में जानना चाहिए। इसी तरह आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय के विषय में भी जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि इन तीनों द्रव्यों के अनन्त प्रदेश कहना चाहिए। बाकी पूर्ववत्।

सूत्र - १४४

भगवन् ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम वाला जीव आत्मभाव से जीवभाव को प्रदर्शित प्रकट करता है; क्या ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है ? गौतम ! जीव आभिनिबोधिक ज्ञान के अनन्त पर्यायों, श्रुतज्ञान के अनन्त पर्यायों, अवधिज्ञान के अनन्त पर्यायों, मनःपर्यवज्ञान के अनन्त पर्यायों एवं केवलज्ञान के अनन्त पर्यायों के तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंग अज्ञान के अनन्तपर्यायों के, एवं चक्षु-दर्शन, अचक्षु-दर्शन, अवधि-दर्शन और केवलदर्शन के अनन्तपर्यायों के उपयोग को प्राप्त करता है, क्योंकि जीव का लक्षण उपयोग है। इसी कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम वाला जीव, आत्मभाव से जीवभाव को प्रदर्शित करता है।

सूत्र - १४५

भगवन् ! आकाश कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! आकाश दो प्रकार का कहा गया है। यथा-लोकाकाश और अलोकाकाश।

भगवन् ! क्या लोकाकाश में जीव हैं ? जीव के देश हैं ? जीव के प्रदेश हैं ? क्या अजीव हैं ? अजीव के देश हैं? अजीव के प्रदेश हैं ? गौतम ! लोकाकाश में जीव भी हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं; अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं और अजीव के प्रदेश भी हैं। जो जीव हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय हैं, द्वीन्द्रिय हैं, त्रीन्द्रिय हैं, चतुरिन्द्रिय हैं, पंचेन्द्रिय हैं और अनिन्द्रिय हैं। जो जीव के देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के देश हैं, यावत् अनि-न्द्रिय के देश हैं। जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं, यावत् अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं। जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के कहे

गए हैं, यथा-रूपी और अरूपी । जो रूपी हैं, वे चार प्रकार के कहे गए हैं-स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणुपुद्गल । जो अरूपी हैं, उनके पाँच भेद कहे गए हैं । वे इस प्रकार-धर्मास्ति-काय, नोधर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय, नोअधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय हैं ।

सूत्र - १४६

भगवन् ! क्या अलोकाकाश में जीव यावत् अजीवप्रदेश हैं ? गौतम ! अलोकाकाश में न जीव हैं, यावत् न ही अजीवप्रदेश हैं । वह एक अजीवद्रव्य देश है, अगुरुलघु है तथा अनन्त अगुरुलघु-गुणों से संयुक्त है; वह अनन्त-भागःकम सर्वाकाशरूप है ।

सूत्र - १४७

भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा कहा गया है ? गौतम ! धर्मास्तिकाय लोकरूप है, लोकमात्र है, लोक-प्रमाण है, लोकस्पृष्ट है, लोकको ही स्पर्श करके कहा हुआ है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्ति-काय और पुद्गलास्तिकाय के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए । इन पाँचों के सम्बन्ध में एक समान अभिलाप है ।

सूत्र - १४८

भगवन् ! धर्मास्तिकाय के कितने भाग को अधोलोक स्पर्श करता है ? गौतम ! अधोलोक धर्मास्तिकाय के आधे से कुछ अधिक भाग को स्पर्श करता है । भगवन् ! धर्मास्तिकाय के कितने भाग को तिर्यग्लोक स्पर्श करता है? पृच्छा० । गौतम ! तिर्यग्लोक धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करता है । भगवन् ! धर्मास्तिकाय के कितने भाग को ऊर्ध्वलोक स्पर्श करता है ? गौतम ! ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकाय के देशोन अर्धभाग को स्पर्श करता है ।

सूत्र - १४९

भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी, क्या धर्मास्तिकाय के संख्यातभाग को स्पर्श करती है या असंख्यातभाग को स्पर्श करती है, अथवा संख्यातभागों को स्पर्श करती है या असंख्यात भागों को स्पर्श करती है अथवा समग्र को स्पर्श करती है? गौतम! यह रत्नप्रभापृथ्वी, धर्मास्तिकाय के संख्यातभाग को स्पर्श नहीं करती, अपितु असंख्यात भाग को स्पर्श करती है । इसी प्रकार संख्यातभागों को, असंख्यातभागों को या समग्र धर्मास्तिकाय को स्पर्श नहीं करती ।

भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी का घनोदधि, धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है; यावत् समग्र धर्मास्तिकाय को स्पर्श करता है ? इत्यादि पृच्छा । हे गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के लिए कहा गया है, उसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि के विषय में कहना चाहिए । और उसी तरह घनवात और तनुवात के विषय में भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का अवकाशान्तर क्या धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है, अथवा असंख्येय भाग को स्पर्श करता है ?, यावत् सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श करता है ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अवकाशान्तर, धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है, किन्तु असंख्येय भाग को, संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को तथा सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श नहीं करता । इसी तरह समस्त अवकाशान्तरों के सम्बन्ध में कहना । रत्नप्रभा पृथ्वी के समान यावत् सातवी पृथ्वी तक कहना ।

[तथा जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र] सौधर्मकल्प से लेकर (यावत्) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक, ये सभी धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं । शेष भागों की स्पर्शना का निषेध करना चाहिए । जैसे धर्मास्तिकाय की स्पर्शना कही, वैसे अधर्मास्तिकाय और लोकाकाशास्तिकाय स्पर्शना के विषयमें भी कहना ।

सूत्र - १५०

पृथ्वी, घनोदधि, घनवात, तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर, सिद्धि (ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी) तथा सात अवकाशान्तर, इनमें से अवकाशान्तर तो धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग का स्पर्श करते हैं और शेष सब धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग का स्पर्श करते हैं ।

शतक-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक-३

उद्देशक-१

सूत्र - १५१

तृतीय शतक में दस उद्देशक हैं । प्रथम उद्देशक में चमरेन्द्र की विकुर्वणा-शक्ति कैसी है ? इत्यादि प्रश्नोत्तर हैं, दूसरे उद्देशक में चमरेन्द्र का उत्पात, तृतीय उद्देशक में क्रियाओं । चतुर्थ में देव द्वारा विकुर्वित यान को साधु जानता है? इत्यादि प्रश्नों । पाँचवे उद्देशक में साधु द्वारा स्त्री आदि के रूपों की विकुर्वणा-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर । छठे में नगर-सम्बन्ध वर्णन । सातवे में लोकपाल-विषयक वर्णन । आठवे में अधिपति-सम्बन्धी वर्णन । नौवे में इन्द्रियों के सम्बन्ध में निरूपण और दसवे में चमरेन्द्र की परीषद् का वर्णन है ।

सूत्र - १५२

उस काल उस समयमें 'मोका' नगरी थी । मोका नगरी के बाहर ईशानकोण में नन्दन चैत्य था । उस काल उस समयमें श्रमण भगवान महावीर स्वामी वहाँ पधारे । परीषद् नीकली । धर्मोपदेश सूनकर परीषद् वापस चली गई

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर के द्वीतिय अन्तेवासी अग्निभूति नामक अनगार जिनका गोत्र गौतम था, तथा जो सात हाथ ऊंचे थे, यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले (पूछने लगे)–'भगवन् ! असुरों का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है ? कितनी बड़ी द्युति-कान्ति वाला है ? कितने महान बल से सम्पन्न है ? कितना महान यशस्वी है ? कितने महान सुखों से सम्पन्न है ? कितने महान प्रभाव वाला है ? और वह कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

गौतम ! असुरों का इन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभावशाली है । वह वहाँ चौंतीस लाख भवनावासों पर, चौंसठ हजार सामानिक देवों पर और तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है । इतनी बड़ी ऋद्धि वाला है, यावत् ऐसे महाप्रभाव वाला है; तथा उसकी विक्रिया करने की शक्ति इस प्रकार है–हे गौतम ! जैसे–कोई युवा पुरुष हाथ से युवती स्त्री के हाथ को पकड़ता है, अथवा जैसे–गाड़ी के पहिये की धूरी आरों से अच्छी तरह जुड़ी हुई एवं सुसम्बद्ध होती है, इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर, वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है, समवहत होकर संख्यात योजन तक लम्बा दण्ड नीकालता है । तथा उसके द्वारा रत्नों के, यावत् रिष्ट रत्नों के स्थूल पुद्गलों को झाड़ देता है और सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करता है । फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है । हे गौतम ! वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा परिपूर्ण जम्बूद्वीप को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ करने में समर्थ है । हे गौतम ! इसके उपरांत वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, अनेक असुरकुमार देव-देवियों द्वारा इस तिर्यग्लोक में भी असंख्यात द्वीपों और समुद्रों तक के स्थल को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है । हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की ऐसी शक्ति है, विषय है, विषयमात्र है, परन्तु चमरेन्द्र ने इस सम्प्राप्ति से कभी विकुर्वण किया नहीं, न ही करता है और न ही करेगा ।

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर जब ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, तब हे भगवन् ! उस असुरराज असुरेन्द्र चमर के सामानिक देवों की कितनी बड़ी ऋद्धि है, यावत् वे कितना विकुर्वण करने में समर्थ हैं ?

हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव, महती ऋद्धिवाले हैं, यावत् महाप्रभावशाली हैं । वे वहाँ अपने-अपने भवनों पर, अपने-अपने सामानिक देवों पर तथा अपनी-अपनी अग्रमहिषियों पर आधिपत्य करते हुए, यावत् दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए विचरते हैं । ये इस प्रकार की बड़ी ऋद्धिवाले हैं, यावत् इतना विकुर्वण करने में समर्थ है–हे गौतम ! विकुर्वण करने के लिए असुरेन्द्र असुरराज चमर का एक-एक सामानिक देव, वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है और यावत् दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है । जैसे कोई युवा पुरुष अपने हाथ से युवती स्त्री के हाथ को पकड़ता है, तो वे दोनों दृढ़ता से संलग्न मालूम होते हैं, अथवा जैसे गाड़ी के

पहिये की धूरी आरों से सुसम्बद्ध होती है, इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर का प्रत्येक सामानिक देव इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप को बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है । इसके उपरांत हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर का एक-एक सामानिक देव, इस तिर्यग्लोक के असंख्य द्वीपों और समुद्रों तक के स्थल को बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है । हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के प्रत्येक सामानिक देव में विकुर्वण करने की शक्ति है, वह विषयरूप है, विषयमात्र-शक्तिमात्र है, परन्तु प्रयोग करके उसने न तो कभी विकुर्वण किया है, न ही करता है और न ही करेगा ।

सूत्र - १५३

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव यदि इस प्रकार की महती ऋद्धि से सम्पन्न हैं, यावत् इतना विकुर्वण करने में समर्थ हैं, तो हे भगवन् ! उस असुरेन्द्र असुरराज चमर के त्रायस्त्रिंशक देव कितनी बड़ी ऋद्धि वाले हैं ? (हे गौतम !) जैसा सामानिक देवों के विषय में कहा था, वैसा ही त्रायस्त्रिंशक देवों के विषय में कहना चाहिए। लोकपालों के विषय में भी इसी तरह कहना चाहिए । किन्तु इतना विशेष कहना चाहिए की लोकपाल संख्येय द्वीप समुद्रों को व्याप्त कर सकते हैं ।

भगवन् ! जब असुरेन्द्र असुरराज चमर के लोकपाल ऐसी महाऋद्धि वाले हैं, तब असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषियाँ कितनी बड़ी ऋद्धि वाली हैं, यावत् वे कितना विकुर्वण करने में समर्थ हैं ? गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषी-देवियाँ महाऋद्धिसम्पन्न हैं, यावत् महाप्रभावशालिनी हैं । वे अपने-अपने भवनों पर, अपने-अपने एक हजार सामानिक देवों पर, अपनी-अपनी महत्तरिका देवियों पर और अपनी-अपनी परीषदाओं पर आधिपत्य करती हुई विचरती हैं; यावत् वे अग्रमहिषियाँ ऐसी महाऋद्धि वाली हैं । शेष सब वर्णन लोकपालों के समान । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

सूत्र - १५४

द्वीतिय गौतम (गोत्रीय) अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार करके जहाँ तृतीय गौतम (-गोत्रीय) वायुभूति अनगार थे, वहाँ आए । उनके निकट पहुँचकर वे, तृतीय गौतम वायुभूति अनगार से यों बोले-हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है, इत्यादि समग्र वर्णन अपृष्ट व्याकरण (प्रश्न पूछे बिना ही उत्तर) के रूप में यहाँ कहना चाहिए । तदनन्तर अग्निभूति अनगार द्वारा कथित, भाषित, प्रज्ञापित और प्ररूपित उपर्युक्त बात पर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार को श्रद्धा नहीं हुई, प्रतीति न हुई, न ही उन्हें रुचिकर लगी । अतः उक्त बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए वे तृतीय गौतम वायुभूति अनगार उत्थान-द्वारा उठे और जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आए और यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-भगवन् ! द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार ने मुझसे इस प्रकार कहा, इस प्रकार भाषण किया, इस प्रकार बतलाया और प्ररूपित किया कि-असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है, यावत् ऐसा महान् प्रभावशाली है कि वह चौंतीस लाख भवनावासों आदि पर आधिपत्य-स्वामित्व करता हुआ विचरता है । तो हे भगवन् ! यह बात कैसे है ?

'हे गौतम !' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान महावीर ने तृतीय गौतम वायुभूति अनगार से इस प्रकार कहा-हे गौतम ! द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार ने तुमसे जो इस प्रकार कहा, भाषित किया, बतलाया और प्ररूपित किया कि हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है, इत्यादि हे गौतम ! यह कथन सत्य है। हे गौतम ! मैं भी इसी तरह कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बतलाता हूँ और प्ररूपित करता हूँ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर महाऋद्धिशाली है, इत्यादि (इसलिए हे गौतम !) यह बात सत्य है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

तृतीय गौतम वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, और फिर जहाँ द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार थे, वहाँ उनके निकट आए । वहाँ आकर द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार को वन्दन-

नमस्कार किया और पूर्वोक्त बात के लिए उनसे सम्यक् विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना की । तदनन्तर द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार उस पूर्वोक्त बात के लिए तृतीय गौतम वायुभूति के साथ सम्यक् प्रकार से विनय-पूर्वक क्षमायाचना कर लेने पर अपने उत्थान से उठे और तृतीय गौतम वायुभूति अनगार के साथ वहाँ आए, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे । वहाँ उनके निकट आकर उन्हें (श्रमण भगवान महावीर को) वन्दन-नमस्कार किया, यावत् उनकी पर्युपासना करने लगे ।

सूत्र - १५५

इसके पश्चात् तीसरे गौतम (-गोत्रीय) वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार किया, और फिर यों बोले–भगवन् ! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर इतनी बड़ी ऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विकुर्व-णाशक्ति से सम्पन्न है, तब हे भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है ? यावत् वह कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि महाऋद्धिसम्पन्न है, यावत् महानुभाग है । वह वहाँ तीस लाख भवनावासों का तथा साठ हजार सामानिक देवों का अधिपति है । चमरेन्द्र के समान बलि के विषय में भी शेष वर्णन जान लेना । अन्तर इतना ही है कि बलि वैरोचनेन्द्र दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से (उत्तरदिशावासी असुरकुमार देव-देवियों का) आधिपत्य यावत् उपभोग करता हुआ विचरता है। चमरेन्द्र की विकुर्वणाशक्ति की तरह बलीन्द्र के विषय में भी युवक युवती का हाथ दृढ़ता से पकड़कर चलता है, तब वे जैसे संलग्न होते हैं, अथवा जैसे गाड़ी के पहिये की धूरी में आरे संलग्न होते हैं, ये दोनों दृष्टान्त जानने चाहिए । विशेषता यह है कि बलि अपनी विकुर्वणा-शक्ति से सातिरेक सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भर देता है । शेष पूर्ववत् समझ लेना ।

भगवन् ! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि इतनी महाऋद्धि वाला है, यावत् उसकी इतनी विकुर्वणाशक्ति है तो उस वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के सामानिक देव कितनी बड़ी ऋद्धि वाले हैं, यावत् उनकी विकुर्वणाशक्ति कितनी है ? (गौतम !) बलि के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक एवं लोकपाल तथा अग्रमहिषियों की ऋद्धि एवं विकुर्वणाशक्ति का वर्णन चमरेन्द्र के सामानिक देवों की तरह समझना चाहिए । विशेषता यह है कि इतनी विकुर्वणाशक्ति सातिरेक जम्बूद्वीप के स्थान तक को भर देने की है; यावत् प्रत्येक अग्रमहिषी की इतनी विकुर्वणा-शक्ति विषयमात्र कही है; यावत् वे विकुर्वणा करेंगी भी नहीं; यहाँ तक पूर्ववत् समझना । हे भगवन् ! जैसा आप कहते हैं, वह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह उसी प्रकार है, यों कहकर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और फिर न अति दूर, न अति निकट रहकर वे यावत् पर्युपासना करने लगे

तत्पश्चात् द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा–भगवन् ! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि इस प्रकार की महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, तो भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है ? यावत् कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! वह नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणेन्द्र महाऋद्धि वाला है, यावत् वह चवालीस लाख भवनावासों पर, छह हजार सामानिक देवों पर, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर, चार लोकपालों पर, परिवार सहित छह अग्रमहिषियों पर, तीन सभाओं पर, सात सेनाओं पर, सात सेनाधिपतियों पर और चौबीस हजार आत्मरक्षक देवों पर तथा अन्य अनेक दाक्षिणात्य कुमार देवों और देवियों पर आधिपत्य, नेतृत्व, स्वामित्व यावत् करता हुआ रहता है । उसकी विकुर्वणाशक्ति इतनी है कि जैसे युवापुरुष युवती स्त्री के करग्रहण के अथवा गाड़ी के पहिये की धूरी में संलग्न आरों के दृष्टान्त से यावत् वह अपने द्वारा वैक्रियकृत बहुत-से नागकुमार देवों और नागकुमारदेवियों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भरने में समर्थ है और तिर्यग्लोक के संख्येय द्वीप-समुद्रों जितने स्थल को भरने की शक्ति वाला है । परन्तु यावत् ऐसा उसने कभी किया नहीं, करता नहीं और भविष्य में करेगा भी नहीं । धरणेन्द्र के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियों की ऋद्धि आदि तथा वैक्रिय शक्ति का वर्णन चमरेन्द्र के वर्णन की तरह कह लेना चाहिए । विशेषता इतनी ही है कि इन सबकी विकुर्वणाशक्ति संख्यात द्वीप-समुद्रों तक के स्थल को भरने की समझनी चाहिए ।

इसी तरह यावत् स्तनितकुमारों तक सभी भवनपतिदेवों के सम्बन्ध में कहना चाहिए । इसी तरह समस्त वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि दक्षिण दिशा के सभी इन्द्रों के विषय में द्वीतिय गौतम अग्निभूति अनगार पूछते हैं और उत्तरदिशा के सभी इन्द्रों के विषय में गौतम वायुभूति अनगार पूछते हैं

द्वीतिय गणधर भगवान गौतमगोत्रीय अग्निभूति अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और (पूछा-) भगवन् ! यदि ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज ऐसी महाऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, तो हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी महाऋद्धि वाला है और कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र महान् ऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभावशाली है । वह वहाँ बत्तीस लाख विमानावासों पर तथा चौरासी हजार सामानिक देवों पर यावत् तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों पर एवं दूसरे बहुत-से देवों पर आधिपत्य-स्वामित्व करता हुआ विचरण करता है । (अर्थात्-) शक्रेन्द्र ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है । उसकी वैक्रिय शक्ति के विषय में चमरेन्द्र की तरह सब कथन करना चाहिये; विशेष यह है कि दो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप जितने स्थल को भरने में समर्थ है; और शेष सब पूर्ववत् है । हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की यह इस रूप की वैक्रियशक्ति तो केवल शक्तिरूप है । किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने ऐसी विक्रिया की नहीं, करता नहीं और न भविष्य में करेगा ।

सूत्र - १५६

भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र ऐसी महान ऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विकुर्वणा करने मे समर्थ है, तो आप देवानुप्रिय का शिष्य 'तिष्यक' नामक अनगार, जो प्रकृति से भद्र, यावत् विनीत था निरन्तर छठ-छठ की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ, पूरे आठ वर्ष तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना से अपनी आत्मा को संयुक्त करके, तथा साठ भक्त अनशन का छेदन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, मृत्यु के अवसर पर मृत्यु प्राप्त करके सौधर्मदेवलोक में गया है । वह वहाँ अपने विमान में, उपपातसभा में, देव-शयनीय में देवदूष्य से ढँके हुए अंगुल के असंख्यात भाग जितनी अवगाहना में देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ है । फिर तत्काल उत्पन्न हुआ वह तिष्यक देव पाँच प्रकार की पर्याप्तियों अर्थात्-आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषामनपर्याप्ति से पर्याप्तिभाव को प्राप्त हुआ । तब सामानिक परीषद् के देवों ने दोनों हाथों को जोड़कर एवं दसों अंगुलियों के दसों नखों को इकट्ठे करके मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाई दी । इसके बाद वे इस प्रकार बोले-अहो ! आप देवानुप्रिय ने यह दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति उपलब्ध की है, प्राप्त की है और दिव्य देव-प्रभाव उपलब्ध किया है, सम्मुख किया है । जैसी दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-कान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रिय ने उपलब्ध, प्राप्त और अभिमुख किया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव देवेन्द्र देवराज शक्र ने उपलब्ध, प्राप्त और अभिमुख किया है; जैसी दिव्य ऋद्धि दिव्य देवकान्ति और दिव्यप्रभाव देवेन्द्र देवराज शक्र ने लब्ध, प्राप्त एवं अभिमुख किया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रिय ने उपलब्ध, प्राप्त और अभिमुख किया है । (अतः अग्निभूति अनगार भगवान से पूछते हैं-) भगवन् ! वह तिष्यक देव कितनी महाऋद्धि वाला है, यावत् कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

गौतम ! वह तिष्यक देव महाऋद्धि वाला है, यावत् महाप्रभाव वाला है । वह वहाँ अपने विमान पर, चार हजार सामानिक देवों पर, सपरिवार चार अग्रमहिषियों पर, तीन परीषदों पर, सात सैन्यों पर, सात सेनाधिपतियों पर एवं सोलह हजार आत्मरक्षक देवों पर, तथा अन्य बहुत-से वैमानिक देवों और देवियों पर आधिपत्य, स्वामित्व एवं नेतृत्व करता हुआ विचरण करता है । यह तिष्यकदेव ऐसी महाऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, जैसे कि कोई युवती युवा पुरुष का हाथ दृढ़ता से पकड़कर चलती है, प्रथवा गाड़ी के पहिये की धूरी आरों से गाढ़ संलग्न होती है, इन्हीं दो दृष्टान्तों के अनुसार वह शक्रेन्द्र जितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है । हे गौतम ! यह जो तिष्यकदेव की इस प्रकार की विकुर्वणाशक्ति कही है, वह उसका सिर्फ विषय है, विषयमात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा

कभी उसने इतनी विकुर्वणा की नहीं, करता भी नहीं और भविष्य में करेगा भी नहीं ।

भगवन् ! यदि तिष्यक देव इतनी महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने की शक्ति रखता है, तो हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के दूसरे सब सामानिक देव कितनी महाऋद्धि वाले हैं यावत् उनकी विकुर्वणाशक्ति कितनी है ? हे गौतम ! तिष्यकदेव के समान शक्रेन्द्र के समस्त सामानिक देवों की ऋद्धि एवं विकुर्वणा शक्ति आदि के विषय में जानना चाहिए, किन्तु हे गौतम ! यह विकुर्वणाशक्ति देवेन्द्र देवराज शक्र के प्रत्येक सामानिक देव का विषय है, विषयमात्र है, सम्प्राप्ति द्वारा उन्होंने कभी इतनी विकुर्वणा की नहीं, करते नहीं और भविष्य में करेंगे भी नहीं ।

शक्रेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषियों के विषय में चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए । किन्तु इतना विशेष कि वे अपने वैक्रियकृत रूपोंसे दो सम्पूर्ण जम्बूद्वीपों को भरने में समर्थ है । शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए । भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कहकर द्वीतिय गौतम अग्निभूत अनगार यावत् विचरण करते हैं

सूत्र - १५७

तृतीय गौतम वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके यावत् इस प्रकार कहा–भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र इतनी महाऋद्धि वाला है, यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, तो हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान कितनी महाऋद्धि वाला है, यावत् कितनी विकुर्वणा करने की शक्ति वाला है ? (गौतम ! शक्रेन्द्र के समान), ही सारा वर्णन ईशानेन्द्र के विषय में जानना । विशेषता यह है कि वह सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भर देता है । शेष वर्णन पूर्ववत् ।

सूत्र - १५८

भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र इतनी बड़ी ऋद्धि से युक्त है, यावत् वह इतनी विकुर्वणाशक्ति रखता है, तो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत, तथा निरन्तर अट्ठम की तपस्या और पारणे में आयंबिल, ऐसी कठोर तपश्चर्या से आत्मा को भावित करता हुआ, दोनों हाथ ऊंचे रखकर सूर्य की ओर मुख करके आतापना-भूमि में आतापना लेने वाला आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुरुदत्तपुत्र अनगार, पूरे छह महीने तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके, अर्द्धमासिक संलेखना से अपनी आत्मा को संसेवित करके, तीस भक्त अनशन (संथारे) का पालन करके, आलोचना एवं प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त करके मरण का अवसर आने पर काल करके, ईशानकल्प में, अपने विमान में, ईशानेन्द्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ है, इत्यादि वक्तव्यता, तिष्यक देव के समान कुरुदत्त पुत्र देव के विषय में भी कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि कुरुदत्तपुत्र देव की सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपों से कुछ अधिक स्थल को मरने की विकुर्वणाशक्ति है । शेष समस्त वर्णन उसी तरह ही समझना चाहिए ।

इसी तरह सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव एवं लोकपाल तथा अग्रमहिषियों के विषय में जानना चाहिए । यावत्–हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान की अग्रमहिषियों की इतनी यह विकुर्वणाशक्ति केवल विषय है, विषयमात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा कभी इतना वैक्रिय क्रिया नहीं, करती नहीं, और भविष्य में करेगी भी नहीं ।

सूत्र - १५९

इसी प्रकार सनत्कुमार देवलोक के देवेन्द्र के विषय में भी समझना चाहिए । विशेषता यह है कि (सनत्-कुमारेन्द्र की विकुर्वणाशक्ति) सम्पूर्ण चार जम्बूद्वीपों जितने स्थल को भरने की है और तीरछे उसकी विकुर्वणा-शक्ति असंख्यात (द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की) है । इसी तरह (सनत्कुमारेन्द्र के) सामानिक देव, त्राय-स्त्रिंशक, लोकपाल एवं अग्रमहिषियों की विकुर्वणाशक्ति असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की है ।

सनत्कुमार से लेकर ऊपर के (देवलोकों के) सब लोकपाल असंख्येय द्वीप समुद्रों (जितने स्थल) को भरने की वैक्रियशक्ति वाले हैं । इसी तरह माहेन्द्र के विषय में भी समझ लेना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण चार जम्बूद्वीपों की विकुर्वणाशक्ति वाले हैं । इसी प्रकार ब्रह्मलोक के विषय में भी जानना चाहिए । विशेषता इतनी है कि वे सम्पूर्ण आठ जम्बूद्वीपों की वैक्रियशक्ति वाले हैं । इसी प्रकार लान्तक नामक छठे देवलोक के इन्द्रादि की ऋद्धि आदि के विषय में समझना चाहिए किन्तु इतना विशेष है कि वे सम्पूर्ण आठ जम्बूद्वीपों से कुछ अधिक स्थल

को भरने की विकुर्वणाशक्ति रखते हैं । महाशुक्र के विषय में इसी प्रकार समझना चाहिए, किन्तु विशेषता इतनी है कि वे सम्पूर्ण सोलह जम्बूद्वीपों को भरने की वैक्रियशक्ति रखते हैं । सहस्रार के विषय में भी यही बात है । विशेषता इतनी है कि वे सम्पूर्ण सोलह जम्बूद्वीपों से कुछ अधिक स्थल को भरने का वैक्रिय-सामर्थ्य रखते हैं । इसी प्रकार प्राणत के विषय में भी जानना चाहिए, इतनी विशेषता है कि वे सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीपों की वैक्रियशक्ति वाले हैं । इसी तरह अच्युत के विषय में भी जानना । विशेषता इतनी है कि वे सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीपों से कुछ अधिक क्षेत्र को भरने का वैक्रिय-सामर्थ्य रखते हैं । शेष सब वर्णन पूर्ववत् । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

इसके पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर स्वामी 'मोका' नगरी के 'नन्दन' नामक उद्यान से बाहर नीकलकर (अन्य) जनपद में विचरण करने लगे ।

सूत्र - १६०

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था । यावत् परीषद् भगवान की पर्युपासना करने लगी । उस काल उस समय में देवेन्द्र देवराज, शूलपाणि वृषभ-वाहन लोक के उत्तरार्द्ध का स्वामी, अट्ठाईस लाख विमानों का अधिपति, आकाश के समान रजरहित निर्मल वस्त्रधारक, सिर पर माला से सुशोभित मुकुटधारी, नवीनस्वर्ण निर्मित सुन्दर, विचित्र एवं चंचल कुण्डलों से कपोल को जगमगाता हुआ यावत् दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करता हुआ ईशानेन्द्र, ईशानकल्प में ईशानावतंसक विमान में यावत् दिव्य देवऋद्धि का अनुभव करता हुआ और यावत् जिस दिशा से आया था उसी दिशा में वापस चला गया ।

'हे भगवन् !' इस प्रकार सम्बोधित करके भगवान गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा–अहो, भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान इतनी महाऋद्धि वाला है । भगवन् ! ईशानेन्द्र की वह दिव्य देवऋद्धि कहाँ चली गई ? कहाँ प्रविष्ट हो गई ? गौतम ! वह दिव्य देवऋद्धि (उसके) शरीर में चली गई, शरीर में प्रविष्ट हो गई है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! जैसे कोई कूटाकार शाला हो, जो दोनों तरफ से लीपी हुई हो, गुप्त हो, गुप्त-द्वार वाली हो, निर्यात हो, वायुप्रवेश से रहित गम्भीर हो, यावत् ऐसी कूटाकार शाला का दृष्टान्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव किस कारण से उपलब्ध किया, किस कारण से प्राप्त किया और किस हेतु से अभिमुख किया ? यह ईशानेन्द्र पूर्वभव में कौन था ? इसका क्या नाम था, क्या गोत्र था ? यह किस ग्राम, नगर अथवा यावत् किस सन्निवेश में रहता था ? इसने क्या सूनकर, क्या देकर, क्या खाकर, क्या करके, क्या सम्यक् आचरण करके, अथवा किस तथारूप श्रमण या माहन के पास से एक भी आर्य एवं धार्मिक सुवचन सूनकर तथा हृदय में धारण करके जिस से देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र ने वह दिव्य देवऋद्धि यावत् उपलब्ध की है, प्राप्त की है और अभिमुख की है ? हे गौतम ! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में ताम्रलिप्ती नगरी थी । उस नगरी में तामली नामका मौर्यपुत्र गृहपति रहता था । वह धनाढ्य था, दीप्तिमान था, और बहुत-से मनुष्यों द्वारा अपराभवनीय था ।

तत्पश्चात् किसी एक दिन पूर्वरात्रि व्यतीत होने पर पीछली रात्रि-काल के समय कुटुम्ब जागरिका जागते हुए उस मौर्यपुत्र तामली गाथापति को इस प्रकार का यह अध्यवसाय यावत् मन में संकल्प उत्पन्न हुआ कि–मेरे द्वारा पूर्वकृत, पुरातन सम्यक् आचरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याणरूप कृतकर्मों का कल्याणफलरूप प्रभाव अभी तक तो विद्यमान है; जिसके कारण मैं हिरण्य से बढ़ रहा हूँ, सुवर्ण से, धन से, धान्य से, पुत्रों से, पशुओं से बढ़ रहा हूँ, तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, चन्द्रकान्त वगैर शैलज मणिरूप पथ्थर, प्रवाल (मूँगा) रक्तरत्न तथा माणिक्यरूप सारभूत धन से अधिकाधिक बढ़ रहा हूँ; तो क्या मैं पूर्वकृत, पुरातन, समाचरित यावत् पूर्वकृतकर्मों का एकान्तरूप से क्षय हो रहा है, इसे अपने सामने देखता रहूँ–इस क्षय की उपेक्षा करता रहूँ ? अतः जब तक मैं चाँदी-सोने यावत् माणिक्य आदि सारभूत पदार्थों के रूप में सुखसामग्री द्वारा दिनानुदिन अतीत-अतीव अभिवृद्धि पा रहा हूँ और जब तक मेरे मित्र, ज्ञातिजन, स्वगोत्रीय कुटुम्बीजन, मातृपक्षीय या श्वसुरपक्षीय सम्बन्धी एवं परिजन, मेरा

आदर करते हैं, मुझे स्वामी रूप में मानते हैं, मेरा सत्कार-सम्मान करते हैं, मुझे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक मेरी पर्युपासना करते हैं; तब तक (मुझे अपना कल्याण कर लेना चाहिए ।) यही मेर लिए श्रेयस्कर है ।

अतः रात्रि के व्यतीत होने पर प्रभात होते ही यावत् जाज्वल्यमान सूर्य के उदय होने पर मैं स्वयं अपने हाथ से काष्ठपात्र बनाऊं और पर्याप्त अशन, पान, खादिम और स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार तैयार कराकर, अपने मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन-सम्बन्धी तथा दास-दासी आदि परिजनों को आमंत्रित करके उन्हें सम्मानपूर्वक अशनादि चारों प्रकार के आहार का भोजन कराऊं; फिर वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, माला और आभूषण आदि द्वारा उनका सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन-सम्बन्धी और परिजनों के समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करके, उन मित्र-ज्ञातिजन-स्वजन-परिजनादि तथा अपने ज्येष्ठपुत्र से पूछकर, मैं स्वयमेव काष्ठ पात्र लेकर एवं मुण्डित होकर 'प्रणामा' नाम की प्रव्रज्या अंगीकार करूँ और प्रव्रजित होते ही मैं इस प्रकार का अभिग्रह धारण करूँ कि मैं जीवनभर निरन्तर छट्ठ-छट्ठ तपश्चरण करूँगा और सूर्य के सम्मुख दोनों भुजाएं ऊंची करके आतापना भूमि में आतापना लेता हुआ रहूँगा और छट्ठ के पारणे के दिन आतापनाभूमि से नीचे ऊतरकर स्वयं काष्ठपात्र हाथमें लेकर ताम्रलिप्ती नगरी के ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के गृहसमुदाय में भिक्षाचरी के लिए पर्यटन करके भिक्षाविधि द्वारा शुद्ध ओदन लाऊंगा और उसे २१ बार धोकर खाऊंगा । इस प्रकार तामली गृहपति ने शुभ विचार किया ।

इस प्रकार का विचार करके रात्रि व्यतीत होते ही प्रभात होने पर यावत् तेज से जाज्वल्यमान सूर्य के उदय होने पर स्वयमेव लकड़ी का पात्र बनाया । फिर अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप आहार तैयार करवाया । उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त किया, शुद्ध और उत्तम वस्त्रों को ठीक-से पहने, और अल्पभार तथा बहुमूल्य आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया । भोजन के समय वह भोजन मण्डप में आकर शुभासन पर सुखपूर्वक बैठा । इसके बाद मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन सम्बन्धी एवं परिजन आदि के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप आहार का आस्वादन करता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ, दूसरों को परोसता हुआ भोजन कराता हुआ–और स्वयं भोजन करता हुआ तामली गृहपति विहरण कर रहा था ।

भोजन करने के बाद उसने पानी से हाथ धोए और चुल्लू में पानी लेकर शीघ्र आचमन किया, मुख साफ करके स्वच्छ हुआ । फिर उन सब मित्र-ज्ञाति-स्वजन-परिजनादि का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, माला, अलंकार आदि से सत्कार-सम्मान किया । फिर उन्हीं के समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया । उन्हीं मित्र-स्वजन आदि तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर और मुण्डित होकर 'प्रणामा' नामकी प्रव्रज्या अंगीकार की और अभिग्रह ग्रहण किया–आज से मेरा कल्प यह होगा कि मैं आजीवन निरन्तर छट्ठ-छट्ठ तप करूँगा, यावत् पूर्वकथितानुसार भिक्षाविधि से केवल भात लाकर उन्हें २१ बार पानी से धोकर उनका आहार करूँगा । इस प्रकार अभिग्रह धारण करके वह तामली तापस यावज्जीवन निरन्तर बेले-बेले तप करके दोनों भुजाएं ऊंची करके आतापनाभूमि में सूर्य के सम्मुख आतापना लेता हुआ विचरण करने लगा । बेले के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे ऊतरकर स्वयं काष्ठपात्र लेकर ताम्रलिप्ती नगरी में ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के गृह-समुदाय से विधिपूर्वक भिक्षा के लिए घूमता था । भिक्षा में वह केवल भात लाता और उन्हें २१ बार पानी से धोता था, तत्पश्चात् आहार करता था ।

भगवन् ! तामली द्वारा ग्रहण की हुई प्रव्रज्या 'प्राणामा' कहलाती है, इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! प्राणामा प्रव्रज्या में प्रव्रजित होने पर वह व्यक्ति जिसे जहाँ देखता है, (उसे वहीं प्रणाम करता है ।) (अर्थात्–) इन्द्र को, स्कन्द को, रुद्र को, शिव को, वैश्रमण को, आर्या को, रौद्ररूपा चण्डिका को, राजा को, यावत् सार्थवाह को, अथवा कौआ, कुत्ता और श्वपाक (आदि सबको प्रणाम करता है ।) इनमें से उच्च व्यक्ति को देखता है, उच्च-रीति से प्रणाम करता है, नीच को देखकर नीची रीति से प्रणाम करता है । इस कारण हे गौतम ! इस प्रव्रज्या का नाम 'प्राणामा' प्रव्रज्या है ।

तत्पश्चात् वह मौर्यपुत्र तामली तापस उस उदार, विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप द्वारा सूख गया, रूक्ष हो गया, यावत् उसके समस्त नाड़ियों का जाल बाहर दिखाई देने लगा । तदनन्तर किसी एक दिन पूर्वरात्रि व्यतीत होने के बाद अपररात्रिकाल के समय अनित्य जागरिका करते हुए उस बालतपस्वी तामली को इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तन यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मैं इस उदार विपुल यावत् उदग्र, उदात्त, उत्तम और महाप्रभावशाली तपःकर्म करने से शुष्क और रूक्ष हो गया हूँ, यावत् मेरा शरीर इतना कृश हो गया है कि नाड़ियों का जाल बाहर दिखाई देने लग गया है । इसलिए जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है, तब तक मेरे लिए (यही) श्रेयस्कर है कि कल प्रातःकाल यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर मैं ताम्रलिप्ती नगरी में जाऊं । वहाँ जो दृष्टभाषित व्यक्ति हैं, जो पापण्ड (व्रतों में) स्थित हैं, या जो गृहस्थ हैं, जो पूर्वपरिचित हैं, या जो पश्चात्परिचित हैं, तथा जो समकालीन प्रव्रज्या-पर्याय से युक्त पुरुष हैं, उनसे पूछकर, ताम्रलिप्ती नगरी के बीचोंबीच से नीकलकर पादुका, कुण्डी आदि उपकरणों तथा काष्ठ-पात्र को एकान्त में रखकर, ताम्रलिप्ती नगरी के ईशान कोण में निवर्तनिक मंडल का आलेखन करके, संलेखना तप से आत्मा को सेवित कर आहार-पानी का सर्वथा त्याग करके पादपोपगमन संथारा करूँ और मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ विचरण करूँ; मेरे लिए यही उचित है । यों विचार करके प्रभातकाल होते ही यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर यावत् पूछा । उस ने एकान्त स्थान में उपकरण छोड़ दिए । फिर यावत् आहार-पानी का सर्वथा प्रत्याख्यान किया और पादपोपगमन नामक अनशन अंगीकार किया ।

सूत्र - १६१

उस काल उस समय में बलिचंचा राजधानी इन्द्रविहीन और पुरोहित से विहीन थी । उन बलिचंचा राजधानी निवासी बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों ने तामली बालतपस्वी को अवधिज्ञान से देखा । देखकर उन्होंने एक दूसरे को बुलाया, और कहा-देवानुप्रियो ! बलिचंचा राजधानी इन्द्र से विहीन और पुरोहित से भी रहित है । हे देवानुप्रियो ! हम सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित (रहे) हैं, अपना सब कार्य इन्द्र की अधीनता में होता है । यह तामली बालतपस्वी ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर ईशान कोण में निवर्तनिक मंडल का आलेखन करके, संलेखना तप की आराधना से अपनी आत्मा को सेवित करके, आहार-पानी का सर्वथा प्रत्याख्यान कर, पादपोपगमन अनशन को स्वीकार करके रहा हुआ है । अतः देवानुप्रियो ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि तामली बालतपस्वी को बलिचंचा राजधानी में (इन्द्र रूप में) स्थिति करने का संकल्प कराएं । ऐसा करके परस्पर एक-दूसरे के पास वचनबद्ध हुए । फिर बलिचंचा राजधानी के बीचोंबीच होकर नीकले और जहाँ रुचकेन्द्र उत्पातपर्वत था, वहाँ आए। उन्होंने वैक्रिय समुद्घात से अपने आपको समवहत किया, यावत् उत्तरवैक्रिय रूपों की विकुर्वणा की । फिर उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जयिनी, छेक सिंहसदृश, शीघ्र, दिव्य और उद्धूत देवगति से तीरछे असंख्येय द्वीप -समुद्रों के मध्य में होते हुए जहाँ जम्बूद्वीप था, जहाँ भारतवर्ष था, जहाँ ताम्रलिप्ती नगरी थी, जहाँ मौर्यपुत्र तामली तापस था, वहाँ आए, और तामली बालतपस्वी के ऊपर (आकाश में) चारों दिशाओं और चारों कोनों में सामने खड़े होकर दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवप्रभाव और बत्तीस प्रकार की दिव्य नाटकविधि बतलाई ।

इसके पश्चात् तामली बालतपस्वी की दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा की, उसे वन्दन-नमस्कार करके बोले-हे देवानुप्रिय ! हम बलिचंचा राजधानी के निवासी बहुत-से असुरकुमार देव और देवीवृन्द आप देवानुप्रिय को वन्दन-नमस्कार करते हैं, यावत् आपकी पर्युपासना करते हैं । हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से विहीन है । और हे देवानुप्रिय ! हम सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित रहने वाले हैं । और हमारे सब कार्य इन्द्राधीन होते हैं । इसलिए हे देवानुप्रिय ! आप बलिचंचा राजधानी (के अधिपतिपद) का आदर करें । उसके स्वामित्व को स्वीकार करें, उसका मन में भलीभाँति स्मरण करें, उसके लिए निश्चय करें, उसका निदान करें, बलिचंचा में उत्पन्न होकर स्थिति करने का संकल्प करें । तभी आप काल के अवसर पर मृत्यु प्राप्त करके बलिचंचा राजधानी में उत्पन्न होंगे । फिर आप हमारे इन्द्र बन जाएंगे और हमारे साथ दिव्य कामभोगों को भोगते हुए विहरण करेंगे ।

जब बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों ने उस तामली बालतपस्वी को

इस प्रकार से कहा तो उसने उनकी बात का आदर नहीं किया, स्वीकार भी नहीं किया, किन्तु मौन रहा । तदनन्तर बलिचंचा-राजधानी-निवासी उन बहुत-से देवों और देवियों ने उस तामली बालतपस्वी की फिर दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करके दूसरी बार, तीसरी बार पूर्वोक्त बात कही कि हे देवानुप्रिय ! हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र-विहीन और पुरोहितरहित है, यावत् आप उसके स्वामी बनकर वहाँ स्थिति करने का संकल्प करिए । उन असुर-कुमार देव-देवियों द्वारा पुर्वोक्त बात दो-तीन बार यावत् दोहराई जाने पर भी तापसी मौर्यपुत्र ने कुछ भी जवाब न दिया यावत् वह मौन धारण करके बैठा रहा । तत्पश्चात् अन्त में जब तामली बालतपस्वी के द्वारा बलिचंचा राजधानी-निवासी उन बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों का अनादर हुआ, और उनकी बात नहीं मानी गई, तब वे (देव-देवीवृन्द) जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस चले गए ।

सूत्र - १६२

उस काल और उस समय में ईशान देवलोक इन्द्रविहीन और पुरोहितरहित भी था । उस समय ऋषि तामली बालतपस्वी, पूरे साठ हजार वर्ष तक तापस पर्याय का पालन करके, दो महीने की संलेखना से अपनी आत्मा को सेवित करके, एक सौ बीस भक्त अनशन में काटकर काल के अवसर पर काल करके ईशान देवलोक के ईशावतंसक विमान में उपपातसभा की देवदूष्य-वस्त्र से आच्छादित देवशय्या में अंगुल के असंख्येय भाग जितनी अवगाहना में, ईशान देवलोक के इन्द्र के विरहकाल में ईशानदेवेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ । तत्काल उत्पन्न वह देवेन्द्र देवराज ईशान, आहारपर्याप्ति से लेकर यावत् भाषा-मनःपर्याप्ति तक, पंचविधि पर्याप्तियों से पर्याप्ति भाव को प्राप्त हुआ-पर्याप्त हो गया ।

उस समय बलिचंचा-राजधानी के निवासी बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों ने जब यह जाना कि तामली बालतपस्वी कालधर्म को प्राप्त हो गया है और ईशानकल्प में वहाँ के देवेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ है, तो यह जानकर वे एकदम क्रोध से मूढ़मति हो गए, अथवा शीघ्र क्रोध से भड़क उठे, वे अत्यन्त कुपित हो गए, उनके चेहरे क्रोध से भयंकर उग्र हो गए, वे क्रोध की आग से तिलमिला उठे और तत्काल वे सब बलिचंचा राजधानी के बीचोंबीच होकर नीकले, यावत् उत्कृष्ट देवगति से इस जम्बूद्वीप में स्थित भरतक्षेत्र की ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर, जहाँ तामली बालतपस्वी का शब (पड़ा) था वहाँ आए । उन्होंने (तामली बालतपस्वी के मृत शरीर के) बाएं पैर को रस्सी से बाँधा, फिर तीन बार उसके मुख में थूँका । तत्पश्चात् ताम्रलिप्ती नगरी के शृंगाटकों-त्रिकोण मार्गों में, चौकों में, प्रांगण में, चतुर्मुख मार्ग में तथा महामार्गों में; उसके मृतशरीर को घसीटा; अथवा इधर-उधर खींचतान की और जोर-जोर से चिल्लाकर उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहने लगे-स्वयमेव तापस का वेष पहन कर 'प्राणामा' प्रव्रज्या अंगीकार करने वाला यह तामली बालतपस्वी हमारे सामने क्या है ? तथा ईशानकल्प में उत्पन्न हुआ देवेन्द्र देवराज ईशान भी हमारे सामने कौन होता है ? यों कहकर वे उस तामली बालतपस्वी के मृत शरीर की हीलना, निन्दा करते हैं, उसे कोसते हैं, उसकी गर्हा करते हैं, उसकी अवमानना, तर्जना और ताड़ना करते हैं । उसकी कदर्थना और भर्त्सना करते हैं, अपनी ईच्छानुसार उसे इधर-उधर घसीटते हैं । इस प्रकार उस शब की हीलना यावत् मनमानी खींचतान करके फिर उसे एकान्त स्थान में डाल देते हैं । फिर वे जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस लौट गए ।

सूत्र - १६३

तत्पश्चात् ईशानकल्पवासी बहुत-से वैमानिक देवों और देवियों ने (इस प्रकार) देखा कि बलिचंचा-निवासी बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा तामली बालतपस्वी के मृत शरीर की हीलना, निन्दा और आक्रोशना की जा रही है, यावत् उस शब को मनचाहे ढंग से इधर-उधर घसीटा या खींचा जा रहा है । अतः इस प्रकार देखकर वे वैमानिक देव-देवीगण शीघ्र ही क्रोध से भड़क उठे यावत् क्रोधानल से दाँत पीसते हुए, जहाँ देवेन्द्र देवराज ईशान था, वहाँ पहुँचे । ईशानेन्द्र के पास पहुँचकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके 'जय हो, विजय हो' इत्यादि शब्दों से बधाया । फिर वे बोले-'हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी निवासी बहुत-से असुरकुमार देव और देवीगण आप देवानुप्रिय को कालधर्म प्राप्त हुए एवं ईशानकल्प में इन्द्ररूप में उत्पन्न हुए देखकर अत्यन्त कोपाय-मान हुए

यावत् आपके मृतशरीर को उन्होंने मनचाहा आड़ा-टेढ़ा खींच-घसीटकर एकान्त में डाल दिया । तत्पश्चात् वे जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस लौट गए ।

उस समय देवेन्द्र देवराज ईशान ईशानकल्पवासी बहुत-से वैमानिक देवों और देवियों से यह बात सूनकर और मन में विचारकर शीघ्र ही क्रोध से आगबबूला हो उठा, यावत् क्रोधाग्नि से तिलमिलाता हुआ, वहीं देवशय्या स्थित ईशानेन्द्र ने ललाट पर तीन सल डालकर एवं भ्रुकुटि तानकर बलिचंचा राजधानी को, नीचे ठीक सामने, चारों दिशाओं से बराबर सम्मुख और चारों विदिशाओं से भी एकदम सम्मुख होकर एक-एक दृष्टि से देखा । इस प्रकार कुपित दृष्टि से बलिचंचा राजधानी को देखने से वह उस दिव्यप्रभाव से जलते हुए अंगारों के समान, अग्नि-कणों के समान, तपतपाती बालू जैसी या तपे हुए गर्म तवे सरीखी, और साक्षात् अग्नि की राशि जैसी हो गई–जलने लगी ।

जब बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों ने उस बलिचंचा राजधानी को अंगारों सरीखी यावत् साक्षात् अग्नि की लपटों जैसी देखी तो वे अत्यन्त भयभीत हुए, भयत्रस्त होकर काँपने लगे, उनका आनन्दरस सूख गया वे उद्विग्न हो गए और भय के मारे चारों ओर इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे । वे एक दूसरे के शरीर से चिपटने लगे अथवा एक दूसरे के शरीर की ओट में छीपने लगे । तब बलिचंचा-राजधानी के बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों ने यह जानकर कि देवेन्द्र देवराज ईशान के परिकुपित होने से (हमारी राजधानी इस प्रकार हो गई है); वे सब असुरकुमार देवगण, ईशानेन्द्र की उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवप्रभाव, और दिव्य तेजोलेश्या को सहन न करते हुए देवेन्द्र देवराज ईशान के चारों दिशाओं में और चारों विदिशाओं में ठीक सामने खड़े होकर ऊपर की ओर समुख करके दसों नख इकट्ठे हों, इस तरह से दोनों हाथ जोड़कर शिरसावर्तयुक्त मस्तक पर अंजलि करके ईशानेन्द्र को जय-विजय शब्दों से अभिनन्दन करके वे इस प्रकार बोले–'अहो ! आप देवानुप्रिय ने दिव्य देव-ऋद्धि यावत् उपलब्ध की है, प्राप्त की है, और अभिमुख कर ली है । हमने आपके द्वारा उपलब्ध, प्राप्त और सम्मुख की हुई दिव्य देवऋद्धि को, यावत् देवप्रभाव को प्रत्यक्ष देख लिया है । अतः हे देवानुप्रिय ! हम आप से क्षमा माँगते हैं । आप देवानुप्रिय हमें क्षमां करें । आप देवानुप्रिय हमें क्षमा करने योग्य हैं । फिर कभी इस प्रकार नहीं करेंगे। इस प्रकार निवेदन करके उन्होंने ईशानेन्द्र से अपने अपराध के लिए विनयपूर्वक अच्छी तरह बार-बार क्षमा माँगी ।

अब जबकि बलिचंचा-राजधानी-निवासी उन बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों ने देवेन्द्र देवराज ईशान से अपने अपराध के लिए सम्यक् विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना कर ली, तब ईशानेन्द्र ने उस दिव्य देव ऋद्धि यावत् छोड़ी हुई तेजोलेश्या को वापस खींच ली । हे गौतम ! तब से बलिचंचा-राजधानी निवासी वे बहुत-से असुरकुमार देव और देवीवृन्द देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं यावत् उसकी पर्युपासना करते हैं । देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा और सेवा में, तथा आदेश और निर्देश में रहते हैं । हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देवऋद्धि यावत् इस प्रकार लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत की है ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! दो सागरोपम से कुछ अधिक है । भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान देव आयुष्य का क्षय होने पर, स्थितिकाल पूर्ण होने पर देवलोक से च्युत होकर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

सूत्र - १६४

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के विमानों से देवेन्द्र देवराज ईशान के विमान कुछ (थोड़े-से) उच्चतर–ऊंचे हैं, कुछ उन्नततर हैं ? अथवा देवेन्द्र देवराज ईशान के विमानों से देवेन्द्र देवराज शक्र के विमान कुछ नीचे हैं, कुछ निम्नतर हैं ? हाँ, गौतम ! यह इसी प्रकार है । यहाँ ऊपर का सारा सूत्रपाठ (उत्तर के रूप में) समझ लेना चाहिए । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है ? गौतम ! जैसे किसी हथेली का एक भाग कुछ ऊंचा और उन्नततर होता है, तथा एक भाग कुछ नीचा और निम्नतर होता है, इसी तरह शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के विमानों के सम्बन्ध में समझना ।

सूत्र - १६५

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के पास प्रकट हो (जाने) में समर्थ हैं ? हाँ, गौतम!

शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र के पास जाने में समर्थ है । भगवन् ! क्या वह आदर करता हुआ जाता है, या अनादर करता हुआ जाता है ? हे गौतम ! वह ईशानेन्द्र का आदर करता हुआ जाता है, किन्तु अनादर करता हुआ नहीं ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान, क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के पास प्रकट होने (जाने) में समर्थ हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! क्या वह आदर करता हुआ जाता है, या अनादर करता हुआ जाता है ? गौतम ! वह आदर करता हुआ भी जा सकता है, और अनादर करता हुआ भी जा सकता है ।

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के समक्ष (चारों दिशाओं में) तथा चारों कोनों में देखने में समर्थ है ? गौतम ! 'प्रादुर्भूत होने' के समान देखने के सम्बन्धमें भी दो आलापक कहने चाहिए । भगवन् क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के साथ आलाप या संलाप करने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! वह आलाप-संलाप करने में समर्थ है । पास जाने के दो आलापक के समान आलाप-संलाप के भी दो आलापक कहने चाहिए ।

सूत्र - १६६

भगवन् ! उन देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशान के बीच में परस्पर कोई कृत्य और करणीय समुत्पन्न होते हैं ? हाँ, गौतम ! समुत्पन्न होते हैं ।

भगवन् ! जब इन दोनों के कोई कृत्य या करणीय होते हैं, तब वे कैसे व्यवहार (कार्य) करते हैं ? गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र को कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज ईशान के समीप प्रकट होता है, और जब देवेन्द्र देवराज ईशान को कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज शक्र के निकट जाता है । उनके परस्पर सम्बोधित करने का तरीका यह है–ऐसा है, हे दक्षिणार्द्ध लोकाधिपति देवेन्द्र देवराज शक्र । ऐसा है, हे उत्तरार्द्ध लोकाधिपति देवेन्द्र देवराज ईशान (यहाँ), दोनों ओर से सम्बोधित करके वे एक दूसरे के कृत्यों और करणीयों को अनुभव करते हुए विचरते हैं ।

(भगवन् ! जब उन दोनों इन्द्रों में परस्पर विवाद उत्पन्न हो जाता है;) तब वे क्या करते हैं ? गौतम ! वे दोनों, देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारेन्द्र का मन में स्मरण करते हैं । देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र द्वारा स्मरण करने पर शीघ्र ही सनत्कुमारेन्द्र देवराज, शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के निकट प्रकट होता है । वह जो भी कहना है, (उसे ये दोनों इन्द्र मान्य करते हैं ।) ये दोनों इन्द्र उसकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश में रहते हैं ।

सूत्र - १६७

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?; सम्यग्दृष्टि हैं, या मिथ्यादृष्टि हैं ? परित्त संसारी हैं या अनन्त संसारी ? सुलभबोधि हैं, या दुर्लभबोधि ?; आराधक है, अथवा विराधक ? चरम है अथवा अचरम ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं; इसी तरह वह सम्यग्दृष्टि है, परित्तसंसारी है, सुलभबोधि है, आराधक है, चरम है, प्रशस्त पद ग्रहण करने चाहिए । भगवन् ! किस कारण से (ऐसा कहा जाता है) ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहुत-से श्रमणी, बहुत-सी श्रमणियाँ, बहुत-से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं का हितकामी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पिक, निश्रेयसिक है । वह उनका हित, सुख और निःश्रेयस का कामी है । इसी कारण, गौतम ! सनत्कुमारेन्द्र भवसिद्धिक है, यावत् (चरम है, किन्तु) अचरम नहीं । भगवन् ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! (उत्कृष्ट) सात सागरोपम । भगवन् ! वह (सनत्कुमारेन्द्र) उस देवलोक से आयु क्षय के बाद, यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! सनत्कुमारेन्द्र उस देवलोक से च्यवकर महाविदेह वर्ष(क्षेत्र)में, सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा । भगवन् ! यह इसी प्रकार है

सूत्र - १६८

तिष्यक श्रमण का तप छट्ठ-छट्ठ था और उसका अनशन एक मास का था । कुरुदत्तपुत्र श्रमण का तप अट्ठम-अट्ठम का था और उसका अनशन था–अर्द्ध मासिक । तिष्यक श्रमण की दीक्षापर्याय आठ वर्ष की थी, और कुरुदत्तपुत्र श्रमण की थी–छह मास की ।

सूत्र - १६९

इसके अतिरिक्त दो इन्द्रों के विमानो की ऊंचाई, एक इन्द्र का दूसरे के पास आगमन, परस्पर प्रेक्षण, उनका

आलाप-संलाप, उनका कार्य, उनमें विवादोत्पत्ति तथा उनका निपटारा, तथा सनत्कुमारेन्द्र की भवसिद्धि-कता आदि विषयों का निरूपण इस उद्देशक में है ।

शतक-३ – उद्देशक-२

सूत्र - १७०

उस काल, उस समय में राजगृह नामका नगर था । यावत् भगवान वहाँ पधारे और परीषद् पर्युपासना करने लगी । उस काल, उस समय में चौंसठ हजार सामानिक देवों से परिवृत्त और चमरचंचा नामक राजधानी में, सुधर्मासभा में चमर नामक सिंहासन पर बैठे असुरेन्द्र असुरराज चमर ने (राजगृह में विराजमान भगवान को अवधिज्ञान से देखा); यावत् नाट्यविधि दिखलाकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस लौट गया ।

'हे भगवन् !' यों कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके पूछा–भगवन् ! क्या असुरकुमार देव इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे रहते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इसी प्रकार यावत् सप्तम पृथ्वी के नीचे भी वे नहीं रहते; और न सौधर्मकल्प-देवलोक के नीचे, यावत् अन्य सभी कल्पों के नीचे वे रहते हैं । भगवन् ! क्या वे असुरकुमार देव ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) पृथ्वी के नीचे रहते हैं ? (हे गौतम !) यह अर्थ भी समर्थ नहीं । भगवन् ! तब ऐसा वह कौन-सा स्थान है, जहाँ असुरकुमार देव निवास करते हैं ? गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बीच में (असुरकुमार देव रहते हैं ।) यहाँ असुरकुमार-सम्बन्धी समस्त वक्तव्यता कहनी चाहिए; यावत् वे दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए विचरण करते हैं ।

भगवन् ! क्या असुरकुमार देवों का अधोगमन-विषयक (सामर्थ्य) है ? हाँ, गौतम ! है । भगवन् ! असुर-कुमार देवों का अधोगमन-विषयक सामर्थ्य कितना है ? गौतम ! सप्तमपृथ्वी तक नीचे जाने की शक्ति उनमें है । वे तीसरी पृथ्वी तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे । भगवन् ! किस प्रयोजन से असुरकुमार देव तीसरी पृथ्वी तक गए हैं, (जाते हैं) और भविष्य में जायेंगे ? हे गौतम ! अपने पूर्व शत्रु को दु:ख देने अथवा अपने पूर्व साथी की वेदना का उपशमन करने के लिए असुरकुमार देव तृतीय पृथ्वी तक गए हैं, (जाते हैं), और जाएंगे ।

भगवन् ! क्या असुरकुमारदेवों में तिर्यग् (तीरछे) गमन करने का सामर्थ्य कहा गया है ? हाँ, गौतम ! है । भगवन् ! असुरकुमार देवों में तीरछा जाने की कितनी शक्ति है ? गौतम ! असुरकुमार देवों में, यावत् असंख्येय द्वीप-समुद्रों तक किन्तु वे नन्दीश्वर द्वीप तक गए हैं, (जाते हैं,) और भविष्य में जायेंगे । भगवन् ! असुरकुमार देव, नन्दीश्वरद्वीप किस प्रयोजन से गए हैं, (जाते हैं) और जाएंगे ? हे गौतम ! अरिहंत भगवान के जन्म-महोत्सव में, निष्क्रमण महोत्सव में, ज्ञानोत्पत्ति होने पर तथा परिनिर्वाण पर महिमा करने के लिए नन्दीश्वरद्वीप गए हैं, जाते हैं और जाएंगे । भगवन् ! क्या असुरकुमार देवों में ऊर्ध्व गमनविषयक सामर्थ्य है ? हाँ, गौतम ! है ।

भगवन् ! असुरकुमार देवों की ऊर्ध्वगमनविषयक शक्ति कितनी है ? गौतम ! असुरकुमार देव अपने स्थान से यावत् अच्युतकल्प तक ऊपर जाने में समर्थ हैं । अपितु वे सौधर्मकल्प तक गए हैं, (जाते हैं) और जाएंगे । भगवन् ! असुरकुमारदेव किस प्रयोजन से सौधर्मकल्प तक गए हैं, (जाते हैं) और जाएंगे ? हे गौतम ! उन (असुर-कुमार) देवों का वैमानिक देवों के साथ भवप्रत्ययिक वैरानुबन्ध होता है । इस कारण वे देव क्रोधवश वैक्रिय शक्ति द्वारा नानारूप बनाते हुए तथा परकीय देवियों के साथ (परिचार) संभोग करते हुए (वैमानिक) आत्मरक्षक देवों को त्रास पहुँचाते हैं, तथा यथोचित छोटे-मोटे रत्नों को ले (चूरा) कर स्वयं एकान्त भाग में चले जाते हैं ।

भगवन् ! क्या उन देवों के पास यथोचित छोटे-मोटे रत्न होते हैं ? हाँ, गौतम ! होते हैं । भगवन् ! जब वे असुरकुमार देव रत्न चूराकर भाग जाते हैं, तब वैमानिक देव उनका क्या करते हैं ? वैमानिक देव उनके शरीर को अत्यन्त व्यथा पहुँचाते हैं ।

भगवन् ! क्या वहाँ (सौधर्मकल्प में) गए हुए वे असुरकुमार देव उन अप्सराओं के साथ दिव्य भोगने योग्य भोगों को भोगने में समर्थ हैं ? (हे गौतम !) यह अर्थ समर्थ नहीं । वे वहाँ से वापस लौट जाते हैं । वहाँ से लौटकर वे यहाँ (अपने स्थान में) आते हैं । यदि वे (वैमानिक) अप्सराएं उनका आदर करें, उन्हें स्वामीरूप में स्वीकारे तो, वे

असुरकुमार देव उन अप्सराओं के साथ दिव्य भोग भोग सकते हैं-यदि आदर न करे, उनका स्वामीरूप में स्वीकार न करे तो, असुरकुमार देव उन अप्सराओं के साथ दिव्य एवं भोग्य भोगों को नहीं भोग सकते । हे गौतम ! इस कारण से असुरकुमार देव सौधर्मकल्प तक गए हैं, (जाते हैं) और जाएंगे ।

सूत्र - १७१

भगवन् ! कितने काल में असुरकुमार देव ऊर्ध्व-गमन करते हैं, तथा सौधर्मकल्प तक ऊपर गए हैं, जाते हैं और जाएंगे ? गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी-काल और अनन्त अवसर्पिणीकाल व्यतीत होने के पश्चात् लोक में आश्चर्यभूत यह भाव समुत्पन्न होता है कि असुरकुमार देव ऊर्ध्वगमन करते हैं, यावत् सौधर्मकल्प तक जाते हैं ।

भगवन् ! किसका आश्रय लेकर असुरकुमार देव ऊर्ध्वगमन करते हैं, यावत् ऊपर सौधर्मकल्प तक जाते हैं? हे गौतम ! जिस प्रकार यहाँ शबर, बर्बर, टंकण या चुर्चुक, प्रश्नक अथवा पुलिन्द जाति के लोग किसी बड़े अरण्य का, गड्ढे का, दुर्ग का, गुफा का, किसी विषम स्थान का, अथवा पर्वत का आश्रय लेकर एक महान् एवं व्यवस्थित अश्ववाहिनी को, गजावाहिनी को, पैदलसेना को अथवा धनुर्धारियों को आकुल-व्याकुल कर देते हैं; इसी प्रकार असुरकुमार देव भी अरिहंतों का या अरिहंतदेव के चैत्यों का, अथवा भावितात्मा अनगारों का आश्रय लेकर ऊर्ध्वगमन करते हैं, यावत् सौधर्मकल्प तक ऊपर जाते हैं ।

भगवन् ! क्या सभी असुरकुमार देव सौधर्मकल्प तक यावत् ऊर्ध्वगमन करते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । किन्तु महती ऋद्धि वाले असुरकुमार देव ही यावत् सौधर्म देवलोक तक ऊपर जाते हैं । हे भगवन् ! क्या असुरेन्द्र असुरराज चमर भी पहले कभी ऊपर-यावत् सौधर्मकल्प तक ऊर्ध्वगमन कर चूका है ? हाँ, गौतम ! यह असुरेन्द्र असुरराज चमर भी पहले ऊपर-यावत् सौधर्मकल्प तक ऊर्ध्वगमन कर चूका है ।

अहो, भगवन् ! (आश्चर्य है), असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि एवं महाद्युति वाला है ! तो हे भगवन् उसकी वह दिव्य देवऋद्धि यावत् दिव्य देवप्रभाव कहाँ गया, कहाँ प्रविष्ट हुआ ? गौतम ! यहाँ भी कूटाकारशाला का दृष्टान्त कहना चाहिए ।

सूत्र - १७२

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि और यावत् वह सब, किस प्रकार उपलब्ध हुई, प्राप्त हुई और अभिसमन्वागत हुई ? हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारत वर्ष (क्षेत्र) में, विन्ध्याचल की तलहटी में 'बेभेल' नामक सन्निवेश था । वहाँ 'पूरण' नामक एक गृहपति रहता था । वह आढ्य और दीप्त था । यहाँ तामली की तरह 'पूरण' गृहपति की सारी वक्तव्यता जान लेनी चाहिए । विशेष यह है कि चार खानों वाला काष्ठमय पात्र बनाकर यावत् विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चतुर्विध आहार बनवाकर ज्ञातिजनों आदि को भोजन करा कर तथा उनके समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर यावत् स्वयमेव चार खानों वाले काष्ठपात्र को लेकर मुण्डित होकर 'दानामा' नामक प्रव्रज्या अंगीकार की ।

प्रव्रजित हो जाने पर उसने पूर्ववर्णित तामली तापस की तरह सब प्रकार से तपश्चर्या की, आतापना भूमि में आतापना लेने लगा, इत्यादि सब कथन पूर्ववत् जानना; यावत् वह आतापना भूमि से नीचे ऊतरा । फिर स्वयमेव चार खानों वाला काष्ठमय पात्र लेकर 'बेभेल' सन्निवेश में ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के गृहसमुदाय से भिक्षा-विधि से भिक्षाचरी करने के लिए घूमा । भिक्षाटन करते हुए उसने इस प्रकार का विचार किया-मेरे भिक्षापात्र के पहले खाने में जो कुछ भिक्षा पड़ेगी उसे मार्ग में मिलने वाले पथिकों को दे देना है, मेरे (पात्र के) दूसरे खाने में जो कुछ (खाद्यवस्तु) प्राप्त होगी, वह मुझे कौओं और कुत्तों को दे देनी है, जो (भोज्यपदार्थ) मेरे तीसरे खाने में आएगा, वह मछलियों और कछुओं को दे देना है और चौथे खाने में जो भिक्षा प्राप्त होगी, वह स्वयं आहार करना है । इस प्रकार भलीभाँति विचार करके कल (दूसरे दिन) रात्रि व्यतीत होने पर प्रभातकालीन प्रकाश होते ही-यावत् वह दीक्षित हो गया, काष्ठपात्र के चौथे खाने में जो भोजन पड़ता है, उसका आहार स्वयं करता है ।

तदनन्तर पूरण बालतपस्वी उस उदार, विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत बालतपश्चरण के कारण शुष्क एवं रूक्ष हो

गया। यहाँ बीच का सारा वर्णन तामलीतापस की तरह (पूर्ववत्) यावत् वह भी 'बेभेल' सन्निवेश के बीचोंबीच होकर नीकला। उसने पादुका और कुण्डी आदि उपकरणों को तथा चार खानों वाले काष्ठपात्र को एकान्त प्रदेश में छोड़ दिया। फिर बिभेल सन्निवेश के अग्निकोण में अर्द्धनिर्वर्तनिक मण्डल रेखा खींचकर बनाया अथवा प्रति-लेखित-प्रमार्जित किया। यों मण्डल बनाकर उसने संलेखना की जूषणा (आराधना) से अपनी आत्मा को सेवित किया। फिर यावज्जीवन आहार-पानी का प्रत्याख्यान करके पूरण बालतपस्वी ने पादपोपगमन अनशन (संथारा) स्वीकार किया।

हे गौतम ! उस काल और उस समय में मैं छद्मस्थ अवस्था में था; मेरा दीक्षापर्याय ग्यारह वर्ष का था। उस समय मैं निरन्तर छट्ठ-छट्ठ तप करता हुआ, संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ, पूर्वानुपूर्वी से विचरण करता हुआ, ग्रामानुग्राम घूमता हुआ, जहाँ सुंसुमारपुर नगर था, और जहाँ अशोकवनषण्ड नामक उद्यान था, वहाँ श्रेष्ठ अशोक के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक के पास आया। मैंने उस समय अशोकतरु के नीचे स्थित पृथ्वी-शिलापट्टक पर अट्ठमभक्त तप ग्रहण किया। मैंने दोनों पैरों को परस्पर इकट्ठा कर लिया। दोनों हाथों को नीचे की ओर लटकाए हुए सिर्फ एक पुद्‌गल पर दृष्टि स्थिर कर, निर्निमेषनेत्र शरीर के अग्रभाग को कुछ झुकाकर, यथा-वस्थित गात्रों से एवं समस्त इन्द्रियों को गुप्त करके एकरात्रिकी महा (भिक्षु) प्रतिमा को अंगीकार करके कायोत्सर्ग किया। उस काल और उस समय में चमरचंचा राजधानी इन्द्रविहीन और पुरोहित रहित थी। (इधर) पूरण नामक बालतपस्वी पूरे बारह वर्ष तक (दानामा) प्रव्रज्या पर्याय का पालन करके, एकमासिक संलेखना की आराधना से अपनी आत्मा को सेवित करके, साठ भक्त अनशन रखकर, मृत्यु के अवसर पर मृत्यु प्राप्त करके चमरचंचा राजधानी की उपपातसभा में यावत् इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उस समय तत्काल उत्पन्न हुआ असुरेन्द्र असुर-राज चमर पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्ति भाव को प्राप्त हुआ। वे पाँच पर्याप्तियाँ इस प्रकार है-आहार-पर्याप्ति से यावत् भाषामनःपर्याप्ति तक।

जब असुरेन्द्र असुरराज चमर पाँच पर्याप्तियों से पर्याप्त हो गया, तब उसने स्वाभाविक रूप से ऊपर सौधर्मकल्प तक अवधिज्ञान का उपयोग किया। वहाँ उसने देवेन्द्र देवराज, मघवा, पाकशासन, शतक्रतु, सहस्राक्ष, वस्त्रापाणि, पुरन्दर शक्र को यावत् दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रकाशित करते हुए देखा। सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक विमान में शक्र नामक सिंहासन पर बैठकर, यावत् दिव्य एवं भोग्य भोगों का उपभोग करते हुए देखा इसे देखकर चमरेन्द्र के मन में इस प्रकार का आन्तरिक चिन्तित, प्रार्थित एवं मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ कि-अरे ! कौन यह अप्रार्थित-प्रार्थक, दूर तक निकृष्ट लक्षण वाला तथा लज्जा और शोभा से रहित, हीनपुण्या चतुर्दशी को जन्मा हुआ है, जो मुझे इस प्रकार की इस दिव्य देव-ऋद्धि यावत् दिव्य देवप्रभाव लब्ध, प्राप्त और अभिमुख समानीत होने पर भी मेरे ऊपर उत्सुकता से रहित होकर दिव्य एवं भोगों का उपभोग करता हुआ विचर रहा है ? इस प्रकार का आत्मस्फुरण करके चमरेन्द्र ने अपनी सामानिक परीषद् में उत्पन्न देवों को बुलाया और उनसे कहा-हे देवानुप्रियो ! यह बताओ कि यह कौन अनिष्ट-यावत् दिव्य एवं भोग्य भोगों का उपभोग करता हुआ विचरता है ?

असुरेन्द्र असुरराज चमर द्वारा सामानिक परीषद् में उत्पन्न देवों से इस प्रकार कहे जाने पर वे चित्त में अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्ट हुए। यावत् हृदय से हृत-प्रभावित होकर उनका हृदय खिल उठा। दोनों हाथ जोड़कर दसों नखों को एकत्रित करके शिरसावर्त्तसहित मस्तक पर अंजलि करके उन्होंने चमरेन्द्र को जय-विजय शब्दों से बधाई दी। फिर वे इस प्रकार बोले-हे देवानुप्रिय ! यह तो देवेन्द्र देवराज शक्र है, जो यावत् दिव्य भोग्य भोगों का उपभोग करता हुआ विचरता है ! तत्पश्चात् उन सामानिक परीषद् में उत्पन्न देवों से इस बात को सूनकर मन में अवधारण करके वह असुरेन्द्र असुरराज चमर शीघ्र ही क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित एवं चण्ड-रौद्र आकृतियुक्त हुआ, और क्रोधावेश में आकर बड़बड़ाने लगा। फिर उसने सामानिक परीषद् में उत्पन्न देवों से इस प्रकार कहा-अरे ! वह देवेन्द्र देवराज शक्र कोई दूसरा है, और यह असुरेन्द्र असुरराज चमर कोई दूसरा है ! देवेन्द्र देवराज शक्र तो महा ऋद्धि वाला है, जबकि असुरेन्द्र असुरराज चमर अल्पऋद्धि वाला ही है, अतः हे देवानुप्रियो ! मैं चाहता हूँ कि मैं स्वयमेव उस देवेन्द्र देवराज शक्र को उसके स्वरूप से भ्रष्ट कर दूँ।' यों कहकर वह चमरेन्द्र (कोपवश) गर्म हो गया, गर्मागर्म हो उठा।

इसके पश्चात् उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया । अवधिज्ञान के प्रयोग से उसने मुझे देखा । मुझे देखकर चमरेन्द्र को इस प्रकार आन्तरिक स्फुरणा यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, सुंसुमारपुर नगर में, अशोकवनषण्ड नामक उद्यान में, श्रेष्ठ अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक पर अट्ठमभक्त तप स्वीकार कर एकरात्रिकी महाप्रतिमा अंगीकार करके स्थित हैं । अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि मैं श्रमण भगवान महावीर के आश्रय से देवेन्द्र देवराज शक्र को स्वयमेव श्रीभ्रष्ट करूँ । वह चमरेन्द्र अपनी शय्या से उठा और उठकर उसने देवदूष्य वस्त्र पहना । फिर, उपपातसभा के पूर्वीद्वार से होकर नीकला । और जहाँ सुधर्मासभा थी, तथा जहाँ चतुष्पाल नामक शस्त्रभण्डार था, वहाँ आया । एक परिघ-रत्न उठाया । फिर वह किसी को साथ लिए बिना अकेला ही उस परिघरत्न को लेकर अत्यन्त रोषाविष्ट होता हुआ चमरचंचा राजधानी के बीचोंबीच होकर नीकला और तिगिच्छकूट नामक उपपातपर्वत के निकट आया । वहाँ उसने वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होकर संख्येय योजनपर्यन्त का उत्तरवैक्रियरूप बनाया । फिर वह उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से यावत् जहाँ पृथ्वीशिलापट्टक था, वहाँ मेरे पास आया । मेरे पास उसने दाहिनी ओर से मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की, मुझे वन्दन-नमस्कार किया और बोला–भगवन् ! मैं आपके आश्रय से स्वयमेव देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हूँ ।

वह वहाँ से सीधा ईशानकोण में चला गया । फिर उसने वैक्रियसमुद्घात किया; यावत् वह दूसरी बार भी वैक्रियसमुद्घात से समवहत हुआ । उसने एक महाघोर, घोराकृतियुक्त, भयंकर, भयंकर आकार वाला, भास्वर, भयानक, गम्भीर, त्रासदायक, काली कृष्णपक्षीय अर्धरात्रि एवं काले उड़दों की राशि के समान काला, एक लाख योजन का ऊंचा, महाकाय शरीर बनाया । वह अपने हाथों को पछाड़ने लगा, पैर पछाड़ने लगा, गर्जना करने लगा, घोड़े की तरह हिनहिनाने लगा, हाथी की तरह किलकिलाहट करने लगा, रथ की तरह घनघनाहट करने लगा, पैरों को जमीन पर जोर से पटकने लगा, भूमि पर जोर से थप्पड़ मारने लगा, सिंहनाद करने लगा, उछलने लगा, पछाड़ मारने लगा, त्रिपदी को छेदने लगा; बाईं भूजा ऊंची करने लगा, फिर दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली और अंगूठे के नख द्वारा अपने मुख को तिरछा फाड़ कर विडम्बित करने लगा और बड़े जोर-जोर से कलकल शब्द करने लगा । यों करता हुआ वह चमरेन्द्र स्वयं अकेला, परिघरत्न लेकर ऊपर आकाश में उड़ा । वह मानो अधोलोक क्षुब्ध करता हुआ, पृथ्वीतल को मानो कंपाता हुआ, तिरछे लोक को खींचता हुआ-सा, गगनतल को मानो फोड़ता हुआ, कहीं गर्जना करता हुआ, कहीं विद्युत् की तरह चमकता हुआ, कहीं वर्षा के समान बरसता हुआ, कहीं धूल का ढ़ेर उड़ाता हुआ, कहीं गाढान्धकार का दृश्य उपस्थित करता हुआ, तथा वाणव्यन्तर देवों को त्रास पहुँचाता हुआ, ज्योतिषीदेवों को दो भागों में विभक्त करता हुआ एवं आत्मरक्षक देवों को भगाता हुआ, परिघरत्न को आकाश में घूमाता हुआ, उसे विशेष रूप से चमकाता हुआ, उस उत्कृष्ट दिव्य देवगति से यावत् तीरछे असंख्येय द्वीपसमुद्रों के बीचोंबीच होकर नीकला । जिस और सौधर्मकल्प था, सौधर्मावतंसक विमान था, और जहाँ सुधर्मासभा थी, उसके निकट पहुँचा । उसने एक पैर पद्मवरवेदिका पर रखा, और दूसरा पैर सुधर्मासभामें रखा । फिर बड़े जोर से हुंकार करके परिघरत्न से तीन बार इन्द्रकील को पीटा और कहा–अरे ! वह देवेन्द्र देवराज शक्र कहाँ है ? कहाँ है उसके वे ८४००० सामानिक देव ? यावत् कहाँ है उसके वे ३३६००० आत्मरक्षक देव ? कहाँ गई वे अनेक करोड़ अप्सराएं ? आज ही मैं उन सबको मार डालता हूँ, आज ही उनका मैं वध कर डालता हूँ । जो अप्सराएं मेरे अधीन नहीं है, वे अभी मेरी वशवर्तिनी हो जाएं । ऐसा करके चमरेन्द्र ने वे अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमोनज्ञ, अमनोहर और कठोर उद्गार नीकले ।

तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र (चमरेन्द्र के) इस अनिष्ट, यावत् अमोनज्ञ और अश्रुतपूर्व कर्णकटु वचन सून-समझ करके एकदम कोपायमान हो गया । यावत् क्रोध से बड़बड़ाने लगा तथा ललाट पर तीन सल पड़े, इस प्रकार से भृकुटि चढ़ाकर शक्रेन्द्र असुरेन्द्र असुरराज चमर से यों बोला–हे ! अप्रार्थित (अनिष्ट-मरण) के प्रार्थक (इच्छुक) ! यावत् हीनपुण्या चतुर्दशी के जन्मे हुए असुरेन्द्र ! असुरराज ! चमर ! आज तू नहीं रहेगा; आज तेरी खैर नहीं है । यों कहकर अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे-बैठे ही शक्रेन्द्र ने अपना वज्र उठाया और उस जाज्वल्यमान, विस्फोट करते हुए,

तड़-तड़ शब्द करते हुए हजारों उल्काएं छोड़ते हुए, हजारों अग्निज्वालाओं को छोड़ते हुए, हजारों अंगारों को बिखेरते हुए, हजारों स्फुलिंगों की ज्वालाओं से उस पर दृष्टि फैंकते ही आँखों के आगे पकाचौंध के कारण रुकावट डालने वाले, अग्नि से अधिक तेज से देदीप्यमान, अत्यन्त वेगवान् खिले हुए किंशुक के फूल के समान लाल-लाल, महाभयावह एवं भयंकर वज्र को असुरेन्द्र असुरराज चमरेन्द्र के वध के लिए छोड़ा ।

तत्पश्चात् उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने जब उस जाज्वल्यमान, यावत् भयंकर वज्र को अपने सामने आता हुआ देखा, तब उसे देखकर चिन्तन करने लगा, फिर (अपने स्थान पर चले जाने की) इच्छा करने लगा, अथवा (वज्र को देखते ही उसने) अपनी दोनों आँखें मूँद लीं और (वहाँ से चले जाने का पुनः) पुनः विचार करने लगा । चिन्तन करके वह ज्यों ही स्पृहा करने लगा त्यों ही उसके मुकुट का छोगा टूट गया, हाथों के आभूषण नीचे लटक गए; तथा पैर ऊपर और सिर नीचा करके एवं कांखों में पसीना-सा टपकाता हुआ, वह असुरेन्द्र चमर उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से तीरछे असंख्य द्वीपसमुद्रों के बीचोंबीच होता हुआ, जहाँ जम्बूद्वीप था, जहाँ भारतवर्ष था, यावत् जहाँ श्रेष्ठ अशोकवृक्ष था, वहाँ पृथ्वीशिलापट्टक पर जहाँ मैं (श्री महावीरस्वामी), वहाँ आया । मेरे निकट आकर भयभीत एवं भय से गद्गद स्वरयुक्त चमरेन्द्र-भगवन् ! आप ही मेरे लिए शरण हैं इस प्रकार बोलता हुआ मेरे दोनों पैरों के बीच में शीघ्रता से वेगपूर्वक गिर पड़ा ।

सूत्र - १७३

उसी समय देवेन्द्र शक्र को इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर इतनी शक्ति वाला नहीं है, न असुरेन्द्र असुरराज चमर इतना समर्थ है, और न ही असुरेन्द्र असुरराज चमर का इतना विषय है कि वह अरिहंत भगवंतों, अर्हन्त भगवान के चैत्यों अथवा भावितात्मा अनगार का आश्रय लिए बिना स्वयं अपने आश्रय से इतना ऊंचा (उठ) कर यावत् सौधर्मकल्प तक आ सके । अतः वह असुरेन्द्र अवश्य अरिहंत भगवंतों यावत् किसी भावितात्मा अनगार के आश्रय से ही इतना ऊपर यावत् सौधर्मकल्प तक आया है । यदि ऐसा है तो उन तथारूप अर्हन्त भगवंतों एवं अनगारों की (मेरे द्वारा फैंके हुए वज्र से) अत्यन्त आशातना होने से मुझे महादुःख होगा । ऐसा विचार करके शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान के प्रयोग से उसने मुझे देखा । मुझे देखते ही 'हा ! हा ! अरे रे ! मैं मारा गया !' इस प्रकार (पश्चात्ताप) करके उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से वज्र के पीछे-पीछे दोड़ा । वह शक्रेन्द्र तिरछी असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीचोंबीच होता हुआ यावत् उस श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे जहाँ मैं था, वहाँ आया और वहाँ मुझसे सिर्फ चार अंगुल दूर रहे हुए उस वज्र को उसने पकड़ लिया ।

सूत्र - १७४

हे गौतम ! (जिस समय शक्रेन्द्र ने वज्र को पकड़ा, उस समय उसने अपनी मुट्ठी इतनी जोर से बन्द की कि) उस मुट्ठी की हवा से मेरे केशाग्र हिलने लगे । तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र ने वज्र को लेकर दाहिनी ओर से मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और मुझे वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके कहा-भगवन् ! आपका ही आश्रय लेकर स्वयं असुरेन्द्र असुरराज चमर मुझे अपनी श्री से भ्रष्ट करने आया था । तब मैंने परिकुपित होकर उस असुरेन्द्र असुरराज चमर के वध के लिए वज्र फैंका था । इसके पश्चात् मुझे तत्काल इस प्रकार का आन्तरिक यावत् मनोगत विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर स्वयं इतना समर्थ नहीं है कि अपने ही आश्रय से इतना ऊंचा-सौधर्मकल्प तक आ सके, इत्यादि पूर्वोक्त सब बातें शक्रेन्द्र ने कह सूनाई यावत् शक्रेन्द्र ने आगे कहा-

भगवन् ! फिर मैंने अवधिज्ञान का योग किया । अवधिज्ञान द्वारा आपको देखा । आपको देखते ही-'हा हा अरे रे ! मैं मारा गया ।' ये उद्गार मेरे मुख से नीकल पड़े । फिर मैं उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से जहाँ आप देवानुप्रिय विराजमान हैं, वहाँ आया; और आप देवानुप्रिय से सिर्फ चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को मैंने पकड़ लिया। मैं वज्र को वापस लेने के लिए ही यहाँ सुंसुमारपुर में और इस उद्यान में आया हूँ और अभी यहाँ हूँ । अतः भगवन् ! मैं आप देवानुप्रिय से क्षमा माँगता हूँ । आप देवानुप्रिय मुझे क्षमा करें । आप देवानुप्रिय क्षमा करने योग्य हैं । मैं ऐसा (अपराध) पुनः नहीं करूँगा ।' यों कहकर शक्रेन्द्र मुझे वन्दन-नमस्कार करके ईशानकोण में चला गया। वहाँ जाकर

शक्रेन्द्र ने अपने बांये पैर को तीन बार भूमि पर पछाड़ा । यों करके फिर असुरेन्द्र असुरराज चमर से इस प्रकार कहा–'हे असुरेन्द्र असुरराज चमर ! आज तो तू श्रमण भगवान महावीर के ही प्रभाव से बच (मुक्त हो) गया है, (जो) अब तुझे मुझसे (किंचित् भी) भय नहीं है; यों कहकर वह शक्रेन्द्र जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया ।

सूत्र - १७५

'हे भगवन् !' यों कहकर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन–नमस्कार किया । वन्दन–नमस्कार करके इस प्रकार कहा (पूछा) भगवन् ! महाऋद्धिसम्पन्न, महाद्युतियुक्त यावत् महाप्रभाव-शाली देव क्या पहले पुद्‌गल को फैंक कर, फिर उसके पीछे जाकर उसे पकड़ लेने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! वह समर्थ है ।

भगवन् ! किस कारण से देव, पहले फैंके हुए पुद्‌गल को, उसका पीछा करके यावत् ग्रहण करने में समर्थ हैं? गौतम ! जब पुद्‌गल फैंका जाता है, तब पहले उसकी गति शीघ्र (तीव्र) होती है, पश्चात् उसकी गति मन्द हो जाती है, जबकि महर्द्धिक देव तो पहले भी और पीछे (बाद में) भी शीघ्र और शीघ्रगति वाला तथा त्वरित और त्वरितगति वाला होता है । अतः इसी कारण से देव, फैंके हुए पुद्‌गल का पीछा करके यावत् उसे पकड़ सकता है ।

भगवन् ! महर्द्धिक देव यावत् पीछा करके फैंके हुए पुद्‌गल को पकड़ने में समर्थ है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को क्यों नहीं पकड़ सका ? गौतम ! असुरकुमार देवों का नीचे गमन का विषय शीघ्र-शीघ्र और त्वरित-त्वरित होता है, और ऊर्ध्वगमन विषय अल्प-अल्प तथा मन्द-मन्द होता है, जबकि वैमानिक देवों का ऊंचे जाने का विषय शीघ्र-शीघ्र तथा त्वरित-त्वरित होता है और नीचे जाने का विषय अल्प-अल्प तथा मन्द-मन्द होता है । एक समय में देवेन्द्र देवराज शक्र, जितना क्षेत्र ऊपर जा सकता है, उतना क्षेत्र–ऊपर जाने में वज्र को दो समय लगते हैं और चमरेन्द्र को तीन समय लगते हैं । (अर्थात्–) देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊपर जाने में लगने वाला कालमान सबसे थोड़ा है, और अधोलोककंडक उसकी अपेक्षा संख्येयगुणा है । एक समय में असुरेन्द्र असुरराज चमर जितना क्षेत्र नीचा जा सकता है, उतना ही क्षेत्र नीचा जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं और उतना ही क्षेत्र नीचा जाने में वज्र को तीन समय लगते हैं । (अर्थात्–) असुरेन्द्र असुरराज चमर का नीचे गमन का कालमान सबसे थोड़ा है और ऊंचा जाने का कालमान उससे संख्येयगुणा है । इस कारण से हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र, अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को पकड़ने में समर्थ न हो सका ।

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्वगमन-विषय, अधोगमन विषय और तिर्यग्गमन विषय, इन तीनों में कौन-सा विषय किन-किन से अल्प है, अधिक है और तुल्य है, अथवा विशेषाधिक है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र एक समय में सबसे कम क्षेत्र नीचे जाता है, तिरछा उससे संख्येय भाग जाता है और ऊपर भी संख्येय भाग जाता है । भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के ऊर्ध्वगमन-विषय, अधोगमन विषय और तिर्यग्गमनविषय में से कौन-सा विषय किन-किन से अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर, एक समय में सबसे कम क्षेत्र ऊपर जाता है; तिरछा, उससे संख्येय भाग अधिक (क्षेत्र) और नीचे उससे भी संख्येय भाग अधिक जाता है । वज्र-सम्बन्धी गमन का विषय (क्षेत्र), जैसे देवेन्द्र शक्र का कहा है, उसी तरह जानना चाहिए । परन्तु विशेषता यह है कि गति का विषय (क्षेत्र) विशेषाधिक कहना चाहिए । भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र का नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल, इन दोनों कालों में कौन-सा काल, किस काल से अल्प है, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊपर जाने का काल सबसे थोड़ा है, और नीचे जाने का काल उससे संख्येयगुणा अधिक है । चमरेन्द्र का गमनविषयक कथन भी शक्रेन्द्र के समान ही जानना चाहिए; किन्तु इतनी विशेषता है कि चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल सबसे थोड़ा है, ऊपर जाने का काल उससे संख्येयगुणा अधिक है । वज्र (के गमन के विषय में) पृच्छा की (तो भगवान ने कहा–) गौतम ! वज्र का ऊपर जान का काल सबसे थोड़ा है, नीचे जाने का काल उससे विशेषाधिक है ।

भगवन् ! यह वज्र, वज्राधिपति–इन्द्र, और असुरेन्द्र असुरराज चमर, इन सब का नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल; इन दोनों कालों में से कौन-सा काल किससे अल्प, बहुत (अधिक), तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम ! शक्रेन्द्र का ऊपर जाने का काल और चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल, ये दोनों तुल्य हैं और सबसे कम हैं। शक्रेन्द्र का नीचे जाने का काल और वज्र का ऊपर जाने का काल, ये दोनों काल तुल्य हैं और (पूर्वोक्त काल से) संख्येयगुणा अधिक है। (इसी तरह) चमरेन्द्र का ऊपर जाने का काल और वज्र का नीचे जाने का काल, ये दोनों काल तुल्य हैं और (पूर्वोक्त काल से) विशेषाधिक हैं।

सूत्र - १७६

इसके पश्चात् वज्र-(प्रहार) के भय से विमुक्त बना हुआ, देवेन्द्र देवराज शक्र के द्वारा महान् अपमान से अपमानित हुआ, चिन्ता और शोक के समुद्र में प्रविष्ट असुरेन्द्र असुरराज चमर, मानसिक संकल्प नष्ट हो जाने से मुख को हथेली पर रखे, दृष्टि को भूमि में गड़ाए हुए आर्तध्यान करता हुआ, चमरचंचा नामक राजधानी में सुधर्मा सभा में, चमर नामक सिंहासन पर विचार करने लगा।

उस समय नष्ट मानसिक संकल्प वाले यावत् आर्तध्यान करते हुए असुरेन्द्र असुरराज चमर को, सामानिक परीषद् में उत्पन्न देवों ने देखा तो वे हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार बोले-'हे देवानुप्रिय ! आज आपका मानसिक संकल्प नष्ट हो गया हो, यावत् क्यों चिन्ता में डूबे हैं ? इस पर असुरेन्द्र असुरराज चमर ने, उन सामानिक परिषद् में उत्पन्न देवों से इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो ! मैंने स्वयमेव श्रमण भगवान महावीर का आश्रय लेकर, देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से नष्टभ्रष्ट करने का मनोगत संकल्प किया था। उससे अत्यन्त कुपित होकर मुझे मारने के लिए शक्रेन्द्र ने मुझ पर वज्र फैंका था। परन्तु देवानुप्रियो ! भला हो, श्रमण भगवान महावीर का, जिनके प्रभाव से मैं, पीड़ा से रहित तथा परिताप-रहित रहा; और सुखशान्ति से युक्त होकर यहाँ आ पाया हूँ, यहाँ समवसृत हुआ हूँ, यहाँ पहुँचा हूँ और आज यहाँ मौजूद हूँ।' अतः हे देवानुप्रियो ! हम सब चलें और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें।

यों विचार करके वह चमरेन्द्र अपने चौसठ हजार सामानिक देवों के साथ, यावत् सर्वऋद्धि-पूर्वक यावत् उस श्रेष्ठ अशोकवृक्ष के नीचे, जहाँ मैं था, वहाँ मेरे समीप आया। तीन बार दाहिनी ओर से मेरी प्रदक्षिणा की। यावत् वन्दना-नमस्कार करके बोला-'हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर मैं स्वयमेव देवेन्द्र देवराज शक्र को, उसकी शोभा से नष्टभ्रष्ट करने के लिए गया था, यावत् आप देवानुप्रिय का भला हो, कि जिनके प्रभाव से मैं क्लेश-रहित होकर यावत् विचरण कर रहा हूँ। अतः हे देवानुप्रिय ! मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।' यावत् ईशानकोण में चला गया। फिर यावत् उसने बत्तीस-विधा से सम्बद्ध नाट्यविधि दिखलाई। फिर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस लौट गया हे गौतम ! इस प्रकार से असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति एवं दिव्य देवप्रभाव उपलब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और अभिसमन्वागत हुआ है। चमरेन्द्र की स्थिति एक सागरोपम की है और वह वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

सूत्र - १७७

भगवन् ! असुरकुमार देव यावत् सौधर्मकल्प तक ऊपर किस कारण से जाते हैं ? गौतम ! (देवलोक में) तत्काल उत्पन्न तथा चरमभवस्थ उन देवों को इस प्रकार का, इस रूप का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न होता है-अहो ! हमने दिव्य देवऋद्धि यावत् उपलब्ध की है, प्राप्त की है, अभिसमन्वागत की है। जैसी दिव्य देवऋद्धि हमने यावत् उपलब्ध की है, यावत् अभिसमन्वागत की है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् देवेन्द्र देवराज शक्र ने उपलब्ध की है यावत् अभिसमन्वागत की है, (इसी प्रकार) जैसी दिव्य देवऋद्धि यावत् देवेन्द्र देवराज शक्र ने उपलब्ध की है यावत् अभिसमन्वागत की है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् हमने भी उपलब्ध यावत् अभिसमन्वागत की है। अतः हम जाएं और देवेन्द्र देवराज शक्र के निकट (सम्मुख) प्रकट हों एवं देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा प्राप्त यावत् अभिसमन्वागत उस दिव्य देवऋद्धि यावत् दिव्य देवप्रभाव को देखें; तथा हमारे द्वारा लब्ध, प्राप्त एवं अभिसमन्वागत उस दिव्य देवऋद्धि यावत् दिव्य देवप्रभाव को देवेन्द्र देवराज शक्र देखें। देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा लब्ध यावत् अभिसमन्वागत दिव्य देवऋद्धि यावत् दिव्य देवप्रभाव को हम जानें, और हमारे द्वारा उपलब्ध यावत्

अभिसमन्वागत उस दिव्य देवऋद्धि यावत् देवप्रभाव को देवेन्द्र देवराज शक्र जानें। हे गौतम ! इस कारण (प्रयोजन) से असुरकुमार देव यावत् सौधर्मकल्प एक ऊपर जाते हैं। 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

शतक-३ – उद्देशक-३

सूत्र - १७८

उस काल और उस समय में 'राजगृह' नामक नगर था; यावत् परिषद् (धर्मकथा सून) वापस चली गई। उस काल और उस समय में भगवान के अन्तेवासी प्रकृति से भद्र मण्डितपुत्र नामक अनगार यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले- भगवन् ! क्रियाएं कितनी कही गई हैं ? हे मण्डितपुत्र ! क्रियाएं पाँच कही गई हैं। -कायिकी, आधिकर-णिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया।

भगवन् ! कायिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ? मण्डितपुत्र ! कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार-अनुपरतकाय-क्रिया और दुष्प्रयुक्तकाय-क्रिया।

भगवन् ! आधिकरणिकी क्रिया कितने प्रकार की है ? मण्डितपुत्र ! दो प्रकार की है। -संयोजनाधिकरण-क्रिया और निर्वर्तनाधिकरण-क्रिया।

भगवन् ! प्राद्वेषिकी क्रिया कितने प्रकार की है ? मण्डितपुत्र ! प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकार की है। जीव-प्राद्वेषिकी और अजीव-प्राद्वेषिकी क्रिया।

भगवन् ! पारितापनिकी क्रिया कितने प्रकार की है ? मण्डितपुत्र ह पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है। स्वहस्तपारितापनिकी और परहस्तपारितापनिकी।

भगवन् ! प्राणातिपात-क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ? मण्डितपुत्र ! प्राणातिपात-क्रिया दो प्रकार की-स्वहस्त-प्राणातिपात-क्रिया और परहस्त-प्राणातिपात-क्रिया।

सूत्र - १७९

भगवन् ! पहले क्रिया होती है, और पीछे वेदना होती है ? अथवा पहले वेदना होती है, पीछे क्रिया होती है? मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया होती है, बाद में वेदना होती है; परन्तु पहले वेदना हो और पीछे क्रिया हो, ऐसा नहीं होता।

सूत्र - १८०

भगवन् ! क्या श्रमण-निर्ग्रन्थों के (भी) क्रिया होती (लगती) है ? हाँ, होती है। भगवन् ! श्रमण निर्ग्रन्थों के क्रिया कैसे हो जाती है ? मण्डितपुत्र ! प्रमाद के कारण और योग के निमित्त से इन्हीं दो कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थों को क्रिया होती (लगती) है।

सूत्र - १८१

भगवन् ! क्या जीव सदा समित (मर्यादित) रूप में काँपता है, विविध रूप में काँपता है, चलता है, स्पन्दन क्रिया करता है, घट्टित होता (घूमता) है, क्षुब्ध होता है, उदीरित होता या करता है; और उन-उन भावों में परिणत होता है ? हाँ, मण्डितपुत्र ! जीव सदा समित-(परिमित) रूप से काँपता है, यावत् उन-उन भावों में परिणत होता है। भगवन् ! जब तक जीव समित-परिमित रूप से काँपता है, यावत् उन-उन भावों में परिणत (परिवर्तित) होता है, तब तक क्या उस जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया होती है ? मण्डितपुत्र ! यह अर्थ समर्थ नहीं है; भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? हे मण्डितपुत्र ! जीव जब तक सदा समित रूप से काँपता है, यावत् उन-उन भावों में परिणत होता है, तब तक वह (जीव) आरम्भ करता है, संरम्भ में रहता है, समारम्भ करता है, आरम्भ में रहता है, संरम्भ में रहता है, और समारम्भ में रहता है। आरम्भ, संरम्भ और समारम्भ करता हुआ तथा आरम्भ में, संरम्भ में, और समारम्भ में, प्रवर्तमान जीव, बहुत-से प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को दुःख पहुँचाने में, शोक कराने में, झुराने में, रुलाने अथवा आँसू गिरवाने में, पिटवाने में, और परिताप देने में प्रवृत्त होता है। इसलिए हे मण्डितपुत्र ! ऐसा कहा जाता है कि जब तक जीव सदा समितरूप से कम्पित होता है, यावत् उन-उन भावों में परिणत होता है, तब तक वह जीव, अन्तिम समय में अन्तक्रिया नहीं कर सकता।

भगवन् ! जीव, सदैव समितरूप से ही कम्पित नहीं होता, यावत् उन-उन भावों में परिणत नहीं होता ? हाँ, मण्डितपुत्र ! जीव सदा के लिए समितरूप से ही कम्पित नहीं होता, यावत् उन-उन भावों में परिणत नहीं होता । भगवन् ! जब वह जीव सदा के लिए समितरूप से कम्पित नहीं होता, यावत् उन-उन भावों में परिणत नहीं होता; तब क्या उस जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया नहीं हो जाती ? हाँ, हो जाती है ।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है कि ऐसे जीव की यावत् अन्तक्रिया-मुक्ति हो जाती है ? मण्डित-पुत्र ! जब वह जीव सदा (के लिए) समितरूप से (भी) कम्पित नहीं होता, यावत् उन-उन भावों में परिणत नहीं होता, तब वह जीव आरम्भ नहीं करता, संरम्भ नहीं करता एवं समारम्भ भी नहीं करता, और न ही वह जीव आरम्भ में, संरम्भ में एवं समारम्भ में प्रवृत्त होता है । आरम्भ, संरम्भ और समारम्भ नहीं करता हुआ तथा आरम्भ, संरम्भ और समारम्भ में प्रवृत्त न होता हुआ जीव, बहुत-से प्राणों, भूतों, जीवो और सत्त्वों को दुःख पहुँचाने में यावत् परिताप उत्पन्न करने में प्रवृत्त नहीं होता ।

(भगवान-) जैसे, कोई पुरुष सूखे घास के पूले को अग्नि में डाले तो क्या मण्डितपुत्र ! वह सूखे घास का पूला अग्नि में डालते ही शीघ्र जल जाता है ? (मण्डितपुत्र-) हाँ, भगवन् ! वह शीघ्र ही जल जाता है । (भगवान-) जैसे कोई पुरुष तपे हुए लोहे के कड़ाह पर पानी की बूँद डाले तो क्या मण्डितपुत्र ! तपे हुए लोहे के कड़ाह पर डाली हुई वह जलबिन्दु अवश्य ही शीघ्र नष्ट हो जाती है ? हाँ, भगवन् ! वह जलबिन्दु शीघ्र नष्ट हो जाती है ।

(भगवान-) कोई एक सरोवर है, जो जल से पूर्ण हो, पूर्णमात्रा में पानी से भरा हो, पानी से लबालब भरा हो, बढ़ते हुए पानी के कारण उसमें से पानी छलक रहा हो, पानी से भरे हुए घड़े के समान क्या उसमें पानी व्याप्त हो कर रहता है ? हाँ, भगवन् ! उसमें पानी व्याप्त होकर रहता है । (भगवान-) अब उस सरोवर में कोई पुरुष, सैकड़ों छोटे छिद्रों वाली तथा सैकड़ों बड़े छिद्रों वाली एक नौका को उतार दे, तो क्या मण्डितपुत्र ! वह नौका उन छिद्रों द्वारा पानी से भरती-भरती जल से परिपूर्ण हो जाती है ? पूर्णमात्रा में उसमें पानी भर जाता है ? पानी से वह लबालब भर जाती है ? उसमें पानी बढ़ने से छलकने लगता है ? (और अन्त में) वह (नौका) पानी से भरे घड़े की तरह सर्वत्र पानी से व्याप्त होकर रहती है ? हाँ, भगवन् ! वह जल से व्याप्त होकर रहती है । यदि कोई पुरुष उस नौका के समस्त छिद्रों को चारों ओर से बन्द कर दे, और वैसा करके नौका की उलीचनी से पानी को उलीच दे तो हे मण्डितपुत्र ! नौका के पानी को उलीचकर खाली करते ही क्या वह शीघ्र ही पानी से ऊपर आ जाती है ? हाँ, भगवन् ! आ जाती है ।

हे मण्डितपुत्र ! इसी तरह अपनी आत्मा द्वारा आत्मा में संवृत्त हुए, ईर्यासमिति आदि पाँच समितियों से समित तथा मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियों से गुप्त, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों से गुप्त, उपयोगपूर्वक गमन करने वाले, ठहरने वाले, बैठने वाले, करवट बदलने वाले तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोञ्छन, रजोहरण के साथ उठाने और रखे वाले अनगार को भी अक्षिनिमेष-मात्र समय में विमात्रापूर्वक सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है । वह (क्रिया) प्रथम समय में बद्ध-स्पृष्ट, द्वीतिय समय में वेदित और तृतीय समय में निर्जीर्ण हो जाती है । इसी कारण से हे मण्डितपुत्र ! ऐसा कहा जाता है कि वह जीव सदा (के लिए) समितरूप से भी कम्पित नहीं होता, यावत् उन-उन भावों में परिणत नहीं होता, तब अन्तिम समय में उसकी अन्तक्रिया हो जाती है ।

सूत्र - १८२

भगवन् ! प्रमत्त-संयम में प्रवर्तमान प्रमत्तसंयत का सब मिलाकर प्रमत्तसंयमकाल कितना होता है ? मण्डितपुत्र ! एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि-होता है । अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होता है ।

भगवन् ! अप्रमत्तसंयम में प्रवर्तमान अप्रमत्तसंयम का सब मिलाकर अप्रमत्तसंयमकाल कितना होता है ? मण्डितपुत्र ! एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि-होता है । अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होता है ।हे भगवन् ! यह, इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है । यों कहकर भगवान मण्डितपुत्र अनगार और विचरण करने लगे ।

सूत्र - १८३

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करके पूछा-भगवन् ! लवणसमुद्र; चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या और पूर्णमासी; इन चार तिथियों में क्यों अधिक बढ़ता या घटता है ? हे गौतम ! जीवाभिगमसूत्र में लवणसमुद्र के सम्बन्ध में जैसा कहा है, वैसा यावत् 'लोकस्थिति' से 'लोकानुभाव' शब्द तक कहना चाहिए। 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

शतक-३ – उद्देशक-४

सूत्र - १८४

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुए और यानरूप से जाते हुए देव को जानता देखता है ? गौतम ! (१) कोई (भावितात्मा अनगार) देव को तो देखता है, किन्तु यान को नहीं देखता; (२) कोई यान को देखता है, किन्तु देव को नहीं देखता; (३) कोई देव को भी देखता है और यान को भी देखता है; (४) कोई न देव को देखता है और न यान को देखता है।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुई और यानरूप से जाती हुई देवी को जानता-देखता है ? गौतम ! जैसा देव के विषय में कहा, वैसा ही देवी के विषय में भी जानना चाहिए। भगवन् ! भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत तथा यानरूप से जाते हुए, देवीसहित देव को जानता-देखता है? गौतम ! कोई देवीसहित देव को तो देखता है, किन्तु यान को नहीं देखता; इत्यादि चार भंग पूर्ववत् जानना।

भगवन् ! भावितात्मा अनगार क्या वृक्ष के आन्तरिक भाग को (भी) देखता है अथवा बाह्य भाग को देखता है? (हे गौतम !) यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से चार भंग कहना। इसी तरह पृच्छा की-क्या वह मूल को देखता है, (अथवा) कन्द को (भी) देखता है ? तथा क्या वह मूल को देखता है, अथवा स्कन्ध को (भी) देखता है ? हे गौतम ! चार-चार भंग पूर्ववत् कहने चाहिए। इसी प्रकार मूल के साथ बीज के चार भंग कहने चाहिए। तथा कन्द के साथ यावत् बीज तक का संयोजन कर लेना चाहिए। इसी तरह यावत् पुष्प के साथ बीज का संयोजन कर लेना चाहिए।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वृक्ष के फल को देखता है, अथवा बीज को (भी) देखता है ? गौतम ! (यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से) चार भंग कहने चाहिए।

सूत्र - १८५

भगवन् ! क्या वायुकाय एक बड़ा स्त्रीरूप, पुरुषरूप, हस्तिरूप, यानरूप, तथा युग्य, गिल्ली, थिल्ली, शिविका, स्यन्दमानिका, इन सबके रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु वायुकाय एक बड़ी पताका के आकार के रूप की विकुर्वणा कर सकता है। भगवन् ! क्या वायुकाय एक बड़ी पताका के आकार की विकुर्वणा करके अनेक योजन तक गमन करने में समर्थ है ?

भगवन् ! क्या वह (वायुकाय) अपनी ही ऋद्धि से गति करता है अथवा पर की ऋद्धि से गति करता है ? गौतम ! वह अपनी ऋद्धि से गति करता है, पर की ऋद्धि से गति नहीं करता। जैसे वायुकाय आत्मऋद्धि से गति करता है, वैसे वह आत्मकर्म से एवं आत्मप्रयोग से भी गति करता है, यह कहना चाहिए।

भगवन् ! क्या वह वायुकाय उच्छितपताका के आकार से गति करता है, या पतित-पताका के आकार से गति करता है ? गौतम ! वह उच्छितपताका और पतित-पताका, इन दोनों के आकार से गति करता है। भगवन् ! क्या वायुकाय एक दिशा में एक पताका के समान रूप बनाकर गति करता है अथवा दो दिशाओं में दो पताकाओं के समान रूप बनाकर गति करता है ? गौतम ! वह एक पताका समान रूप बनाकर गति करता है, किन्तु दो दिशाओं में दो पताकाओं के समान रूप बनाकर गति नहीं करता।

भगवन् ! उस समय क्या वह वायुकाय, पताका है ? गौतम ! वह वायुकाय है, किन्तु पताका नहीं है।

सूत्र - १८६

भगवन् ! क्या बलाहक (मेघ) एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका (म्याने) रूप में परिणत होने में समर्थ है?

हाँ, गौतम ! समर्थ है । भगवन् ! क्या बलाहक एक बड़े स्त्रीरूप में परिणत होकर अनेक योजन तक जाने में समर्थ है? हाँ, गौतम ! समर्थ है ।

भगवन् ! क्या वह बलाहक आत्मऋद्धि से गति करता है या परऋद्धि से ? गौतम ! वह आत्मऋद्धि से गति नहीं करता, परऋद्धि से गति करता है । वह आत्मकर्म से और आत्मप्रयोग से गति नहीं करता, किन्तु परकर्म से और परप्रयोग से गति करता है । वह उच्छितपताका या पतित-पताका दोनों में से किसी एक के आकार से गति करता है ।

भगवन् ! उस समय क्या वह बलाहक स्त्री है ? हे गौतम ! वह बलाहक (मेघ) है, वह स्त्री नहीं है । इसी तरह बलाहक पुरुष, अश्व या हाथी नहीं है; भगवन् ! क्या वह बलाहक, एक बड़े यान के रूप में परिणत होकर अनेक योजन तक जा सकता है ? हे गौतम ! जैसे स्त्री के सम्बन्ध में कहा, उसी तरह यान के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए । परन्तु इतनी विशेषता है कि वह, यान के एक ओर चक्र वाला होकर भी चल सकता है और दोनों ओर चक्र वाला होकर भी चल सकता है । इसी तरह युग्य, गिल्ली, थिल्लि, शिविका और स्यन्दमानिका के रूपों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए ।

सूत्र - १८७

भगवन् ! जो जीव, नैरयिकों में उत्पन्न होने वाला है, वह कौन-सी लेश्या वालों में उत्पन्न होता है ? गौतम ! वह जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है, उसी लेश्या वाले नारकों में उत्पन्न होता है । यथा-कृष्णलेश्या वालों में, नीललेश्या वालों में, अथवा कापोतलेश्या वालों में । इस प्रकार जो जिसकी लेश्या हो, उसकी वह लेश्या कहनी चाहिए । यावत् व्यन्तरदेवों तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! जो जीव ज्योतिष्कों में उत्पन्न होने योग्य है, वह किन लेश्याओं में उत्पन्न होता है ? गौतम ! जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव काल करता है, वैसी लेश्यावालोंमें उत्पन्न होता है । जैसे कि-तेजोलेश्या वालोंमें

भगवन् ! जो जीव वैमानिक देवों में उत्पन्न होने योग्य है, वह किस लेश्या वालों में उत्पन्न होता है ? गौतम! जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव काल करता है, उसी लेश्या वालों में उत्पन्न होता है । जैसे कि-तेजो-लेश्या, पद्मलेश्या अथवा शुक्ललेश्या में ।

सूत्र - १८८

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना वैभारगिरि को उल्लंघ सकता है, अथवा प्रलंघ सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! भावितात्मा अनगार बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके क्या वैभारगिरि को उल्लंघन या प्रलंघन करने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! वह वैसा करने में समर्थ है ।

भगवन् ! भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना राजगृह नगर में जितने भी (पशु पुरुषादि) रूप हैं, उतने रूपों की विकुर्वणा करके तथा वैभार पर्वत में प्रवेश करके क्या सम पर्वत को विषम कर सकता है ? अथवा विषमपर्वत को सम कर सकता है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इसी तरह दूसरा आलापक भी कहना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि वह (भावितात्मा अनगार) बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके पूर्वोक्त प्रकार से (रूपों की विकुर्वणा आदि) करने में समर्थ है ।

भगवन् ! क्या मायी मनुष्य विकुर्वणा करता है, अथवा अमायी मनुष्य विकुर्वणा करता है ? गौतम ! मायी मनुष्य विकुर्वणा करता है, अमायी मनुष्य विकुर्वणा नहीं करता ।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! मायी अनगार प्रणीत पान और भोजन करता है । इस प्रकार बार-बार प्रणीत पान-भोजन करके वह वमन करता है । उस प्रणीत पान-भोजन से उसकी हड्डियाँ और हड्डियों में रही हुई मज्जा सघन हो जाती है; उसका रक्त और मांस पतला हो जाता है । उस भोजन के जो यथा बादर पुद्गल होते हैं, उनका उस-उस रूप में परिणमन होता है । यथा-श्रोत्रेन्द्रिय रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय रूप में तथा हड्डियों, हड्डियों की मज्जा, केश, श्मश्रु, रोम, नख, वीर्य और रक्त के रूप में वे परिणत होते हैं । अमायी मनुष्य तो रूक्ष पान-भोजन का सेवन करता है और ऐसे रूक्ष पान-भोजन का उपभोग करके वह वमन नहीं करता। उस रूक्ष पान-भोजन

से उसकी हड्डियाँ तथा हड्डियों की मज्जा पतली होती है और उसका मांस और रक्त गाढ़ा हो जाता है । उस पान-भोजन के जो यथाबादर पुद्‌गल होते हैं, उनका परिणमन उस-उस रूप में होता है । यथा–उच्चार, प्रस्रवण, यावत् रक्तरूप में अतः इस कारण से अमायी मनुष्य, विकुर्वणा नहीं करता ।

मायी मनुष्य उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना (यदि) काल करता है, तो उसके आराधना नहीं होती । (किन्तु) उस (विराधना–) स्थान के विषय में पश्चात्ताप करके अमायी (बना हुआ) मनुष्य (यदि) आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार।

शतक-३ – उद्देशक-५

सूत्र - १८९

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण किए बिना एक बड़े स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? भगवन् ! भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण करके क्या एक बड़े स्त्रीरूप की यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा कर सकता है ? हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है ।

भगवन् ! भावितात्मा अनगार, कितने स्त्रीरूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? हे गौतम ! जैसे कोई युवक, अपने हाथ से युवती के हाथ को पकड़ लेता है, अथवा जैसे चक्र की धुरी आरों से व्याप्त होती है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को, बहुत-से स्त्रीरूपों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण यावत् कर सकता है; हे गौतम ! भावितात्मा अनगार का यह विषय है, विषयमान है; उसने इतनी वैक्रियशक्ति सम्प्राप्त होने पर भी कभी इतनी विक्रिया की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं । इस प्रकार से यावत् स्यन्दमानिका-रूपविकुर्वणा करने तक कहना ।

(हे भगवन् !) जैसे कोई पुरुष तलवार और चर्मपात्र (हाथ में) लेकर जाता है, क्या उसी प्रकार कोई भावितात्मा अनगार की तलवार और ढाल हाथ में लिए हुए किसी कार्यवश स्वयं आकाश में ऊपर उड़ सकता है ? हाँ, (गौतम !) वह ऊपर उड़ सकता है । भगवन् ! भावितात्मा अनगार कार्यवश तलवार एवं ढ़ाल हाथ में लिए हुए पुरुष के जैसे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ? गौतम ! जैसे कोई युवक अपने हाथ से युवती के हाथ को पकड़ लेता है, यावत् (वैक्रियकृत रूपों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को ठसाठस भर सकता है;) किन्तु कभी इतने वैक्रियकृत रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनायेगा भी नहीं ।

जैसे कोई पुरुष एक पताका लेकर गमन करता है, इसी प्रकार क्या भावितात्मा अनगार भी कार्यवश हाथ में एक पताका लेकर स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ? हाँ, गौतम ! वह आकाश में उड़ सकता है । भगवन् ! भावितात्मा अनगार, कार्यवश हाथ में एक पताका लेकर चलने वाले पुरुष के जैसे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ? गौतम ! यहाँ सब पहले की तरह कहना चाहिए, परन्तु कदापि इतने रूपों की विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं । इसी तरह दोनों ओर पताका लिए हुए पुरुष के जैसे रूपों की विकुर्वणा के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ यज्ञोपवित धारण करके चलता है, उसी तरह क्या भावितात्मा अनगार भी कार्यवश एक तरफ यज्ञोपवित धारण किये हुए पुरुष की तरह स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ? हाँ, गौतम ! उड़ सकता है । भगवन् ! भावितात्मा अनगार कार्यवश एक तरफ यज्ञोपवित धारण किये हुए पुरुष के जैसे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिए । परन्तु इतने रूपों की विकुर्वणा कभी की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं । इसी तरह दोनों ओर यज्ञोपवित धारण किये हुए पुरुष की तरह रूपों की विकुर्वणा करने के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए ।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष, एक तरफ पल्हथी (पालथी) मार कर बैठे, इसी तरह क्या भावितात्मा अनगार भी रूप बनाकर स्वयं आकाश में उड़ सकता है ? हे गौतम ! पूर्ववत् जानना । यावत्–इतने विकुर्वितरूप कभी बनाए नहीं, बनाता नहीं और बनायेगा भी नहीं । इसी तरह दोनों तरफ पल्हथी लगानेवाले पुरुष के समान रूप-विकुर्वणा जानना

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ पर्यंकासन करके बैठे, उसी तरह क्या भावितात्मा अनगार भी उस पुरुष के समान रूप-विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है ? (गौतम !) पहले कहे अनुसार जानना चाहिए । यावत्-इतने रूप कभी विकुर्वित किये नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं । इसी तरह दोनों तरफ पर्यंकासन करके बैठे हुए पुरुष के समान रूप-विकुर्वणा करने के सम्बन्ध में जान लेना चाहिए ।

भगवन् ! भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना एक बड़े अश्व के रूप को, हाथी के रूप को, सिंह, बाघ, भेड़िये, चीते, रींछ, छोटे व्याघ्र अथवा पराशर के रूप का अभियोग करने में समर्थ है ? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है । वह बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके (पूर्वोक्त रूपों का अभियोग करने में) समर्थ है ।

भगवन् ! भावितात्मा अनगार, एक बड़े अश्व के रूप का अभियोजन करके अनेक योजन तक जा सकता है ? हाँ, गौतम ! वह वैसा करने में समर्थ है । भगवन् ! क्या वह (इतने योजन तक) आत्मऋद्धि से जाता है या पर-ऋद्धि से जाता है ? गौतम ! वह आत्मऋद्धि से जाता है, परऋद्धि से नहीं जाता । इसी प्रकार वह अपनी क्रिया (स्वकर्म) से जाता है, परकर्म से नहीं; आत्मप्रयोग से जाता है, किन्तु परप्रयोग से नहीं । वह उच्छितोदय (सीधे खड़े) रूप भी जा सकता है और पतितोदय (पड़े हुए) रूप में भी जा सकता है । वह अश्वरूपधारी भावितात्मा अनगार, क्या अश्व है ? गौतम ! वह अनगार है, अश्व नहीं । इसी प्रकार पराशर तक के रूपों के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! क्या मायी अनगार, विकुर्वणा करता है, या अमायी अनगार करता है ? गौतम ! मायी अनगार विकुर्वणा करता है, अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता । मायी अनगार उस-उस प्रकार की विकुर्वणा करने के पश्चात् उस स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही काल करता है, इस प्रकार वह मृत्यु पाकर आभि-योगिक देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होता है । किन्तु अमायी अनगार उस प्रकार की विकुर्वणाक्रिया करने के पश्चात् पश्चात्तापपूर्वक उक्त प्रमादरूप दोष-स्थान का आलोचन-प्रतिक्रमण करके काल करता है, और वह मरकर अनाभियोगिक देवलोकों में से किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

सूत्र - १९०

स्त्री, तलवार, पताका, यज्ञोपवित, पल्हथी, पर्यंकासन इन सब रूपों के अभियोग और विकुर्वणा-सम्बन्धी वर्णन इस उद्देशक में हैं । तथा ऐसा कार्य मायी करता है ।

शतक-३ – उद्देशक-६

सूत्र - १९१

भगवन् ! राजगृह नगर में रहा हुआ मिथ्यादृष्टि और मायी भावितात्मा अनगार वीर्यलब्धि से, वैक्रियलब्धि से और विभंगज्ञानलब्धि से वाराणसी नगरी की विकुर्वणा करके क्या तद्गत रूपों को जानता-देखता है ? हाँ, गौतम ! वह जानता और देखता है ।

भगवन् ! क्या वह (उन रूपों को) यथार्थरूप से जानता-देखता है, अथवा अन्यथाभाव से जानता-देखता है ? गौतम ! वह तथाभाव से नहीं जानता-देखता, किन्तु अन्यथाभाव से जानता-देखता है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! उस (तथाकथित अनगार) के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि वाराणसी नगरी में रहे हुए मैंने राजगृहनगर की विकुर्वणा की है और विकुर्वणा करके मैं तद्गत रूपों को जानता-देखता हूँ । इस प्रकार उसका दर्शन विपरीत होता है । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वह तथाभाव से नहीं जानता-देखता, किन्तु अन्यथा भाव से जानता-देखता है ।

भगवन् ! वाराणसी में रहा हुआ मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार, यावत् राजगृहनगर की विकुर्वणा करके वाराणसी के रूपों को जानता और देखता है ? हाँ, गौतम ! वह उन रूपों को जानता और देखता है । यावत्-उस साधु के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि राजगृह नगर में रहा हुआ मैं वाराणसी नगरी की विकुर्वणा करके तद्गत रूपों को जानता और देखता हूँ । इस प्रकार उसका दर्शन विपरीत होता है । इस कारण से, यावत्-वह

अन्यथाभाव से जानता-देखता है । भगवन् ! मायी, मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्यलब्धि से, वैक्रियलब्धि से और विभंगज्ञानलब्धि से वाराणसी नगरी और राजगृह नगर के बीचमें एक बड़े जनपद-वर्ग की विकुर्वणा करे और वैसा करके क्या उस बड़े जनपद वर्ग को जानता और देखता है ? हाँ, गौतम ! वह जानता और देखता है । भगवन् ! क्या वह उस जनपदवर्ग को तथाभाव से जानता-देखता है, अथवा अन्यथाभाव से ? गौतम ! वह उस जनपदवर्ग को तथाभाव से नहीं जानता-देखता; किन्तु अन्यथाभाव से जानता-देखता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस अनगार के मन में ऐसा विचार होता है कि यह वाराणसी नगरी है, यह राजगृह नगर है । तथा इन दोनों के बीच में यह एक बड़ा जनपदवर्ग है । परन्तु यह मेरे वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि या विभंग-ज्ञानलब्धि नहीं है; और न ही मेरे द्वारा उपलब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत यह ऋद्धि, द्युति, यश, बल और पुरुष-कार पराक्रम हैं । इस प्रकार का उक्त अनगार का दर्शन विपरीत होता है । इस कारण से, यावत् वह अन्यथाभाव से जानता-देखता है ।

भगवन् ! वाराणसी नगरी में रहा हुआ अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार, अपनी वीर्यलब्धि से, वैक्रिय लब्धि से और अवधिज्ञानलब्धि से राजगृह नगर की विकुर्वणा करके (तद्गत) रूपों को जानता-देखता है ? हाँ, जानता-देखता है । भगवन् ! वह उन रूपों को तथाभाव से जानता-देखता है, अथवा अन्यथाभाव से ? गौतम ! वह उन रूपों को तथाभाव से जानता-देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता-देखता । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! उस अनगार के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि 'वाराणसी नगरी में रहा हुआ मैं राजगृहनगर की विकुर्वणा करके वाराणसी के रूपों को जानता-देखता हूँ ।' इस प्रकार उसका दर्शन अविपरीत होता है । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि वह तथाभाव से जानता-देखता है ।) दूसरा आलापक भी इसी तरह कहना चाहिए । किन्तु विशेष यह है कि विकुर्वणा वाराणसी नगरी की समझनी चाहिए, और राजगृह नगर में रहकर रूपों को जानता-देखता है ।

सूत्र - १९२

भगवन् ! अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार, अपनी वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि और अवधिज्ञानलब्धि से, राजगृहनगर और वाराणसी नगरी के बीच में एक बड़े जनपदवर्ग को जानता-देखता है ?

हाँ (गौतम ! उस जनपदवर्ग को) जानता-देखता है । भगवन् ! क्या वह उस जनपदवर्ग को तथाभाव से जानता और देखता है, अथवा अन्यथाभाव से ? गौतम! वह उस जनपदवर्ग को तथाभाव से जानता और देखता है, परन्तु अन्यथाभाव से जानता-देखता । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार के मन में ऐसा विचार होता है कि न तो यह राजगृह नगर है, और न यह वाराणसी नगरी है, तथा न ही इन दोनों के बीच में यह एक बड़ा जनपदवर्ग है, किन्तु यह मेरी ही वीर्यलब्धि है, वैक्रियलब्धि है और अवधिज्ञानलब्धि है; तथा यह मेरे द्वारा उपलब्ध, प्राप्त एवं अभि-मुखसमागत ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम है । उसका यह दर्शन अविपरीत होता है । इसी कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वह अमायी सम्यग्दृष्टि अनगार तथाभाव से जानता-देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता-देखता । भगवन् ! भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना, एक बड़े ग्रामरूप की, नगररूप की, यावत्-सन्निवेश के रूप की विकुर्वणा कर सकता है ? इसी प्रकार दूसरा आलापक भी कहना चाहिए, किन्तु इसमें विशेष यह है कि बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके वह अनगार, उस प्रकार के रूपों की विकुर्वणा कर सकता है । भगवन् ! भावितात्मा अनगार, कितने ग्रामरूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! जैसे युवक युवती का हाथ अपने हाथ से दृढ़तापूर्वक पकड़ कर चलता है, इस पूर्वोक्त दृष्टान्तपूर्वक समग्र वर्णन यावत्-यह उसका केवल विकुर्वण-सामर्थ्य है, मात्र विषयसामर्थ्य है, किन्तु इतने रूपों की विकुर्वणा कभी की नहीं, इसी तरह से यावत् सन्निवेशरूपों पर्यन्त कहना ।

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरेन्द्र के कितने हजार आत्मरक्षक देव हैं ? गौतम ! दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देव हैं । यहाँ आत्मरक्षक देवों का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र अनुसार समझना । सभी इन्द्रों में से जिस इन्द्र के जितने आत्मरक्षक देव हैं, उन सबका वर्णन यहाँ करना । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-३ – उद्देशक-७

सूत्र - १९४

राजगृह नगर में यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने (पूछा–) भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के कितने लोकपाल कहे गए हैं ? गौतम ! चार । सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । भगवन् ! इन चारों लोकपालों के कितने विमान हैं ? गौतम ! चार । सन्ध्याप्रभ, वरशिष्ट, स्वयंज्वल और वल्गु ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम नामक महाराज का सन्ध्याप्रभ नामक महाविमान कहाँ है? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर (मेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम भूमि भाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप आते हैं । उनसे बहुत योजन ऊपर यावत् पाँच अवतंसक कहे गए हैं– अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चम्पकावतंसक, चूतावतंसक और मध्य में सौधर्मावतंसक है । उस सौधर्मावतंसक महाविमान से पूर्वमें, सौधर्मकल्प से असंख्य योजन दूर जाने के बाद, वहाँ पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–सोम नामक महाराज का सन्ध्याप्रभ नामक महाविमान आता है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है । उसका परिक्षेप उनचालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन से कुछ अधिक है । इस विषय में सूर्याभदेव के विमान की वक्तव्यता, 'अभिषेक' तक कहना । विशेष यह कि सूर्याभदेव के स्थान में 'सोमदेव' कहना

सन्ध्याप्रभ महाविमान के सपक्ष-सप्रतिदेश, अर्थात्–ठीक नीचे, असंख्य लाख योजन आगे (दूर) जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराज की सोमा नाम की राजधानी है, जो एक लाख योजन लम्बी-चौड़ी है, और जम्बूद्वीप जितनी है । इस राजधानी में जो किले आदि हैं, उनका परिमाण वैमानिक देवों के किले आदि के परिमाण से आधा कहना चाहिए । इस तरह यावत् घर के ऊपर के पीठबन्ध तक कहना चाहिए । घर के पीठबन्ध का आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौड़ाई) सोलह हजार योजन है । उसका परिक्षेप (परिधि) पचास हजार पाँच सौ सतानवे योजन से कुछ अधिक कहा गया है । प्रासादों की चार परिपाटियाँ कहनी चाहिए, शेष नहीं ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–सोम महाराज की आज्ञा में, सेवा में, वचन-पालन में और निर्देश में ये देव रहते हैं, यथा–सोमकायिक, अथवा सोमदेवकायिक, विद्युत्कुमार-विद्युत्कुमारियाँ, अग्निकुमार-अग्निकुमारियाँ, वायुकुमार-वायुकुमारियाँ, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप; ये तथा इसी प्रकार के दूसरे सब उसकी भक्ति वाले, उसके पक्ष वाले, उससे भरण-पोषण पाने वाले देव उसकी आज्ञा, सेवा, वचनपालन और निर्देश में रहते हैं ।

इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण में जो ये कार्य होते हैं, यथा–ग्रहदण्ड, ग्रहमूसल, ग्रह-गर्जित, ग्रहयुद्ध, ग्रह-शृंगाटक, ग्रहापसव्य, अभ्र, अभ्रवृक्ष, सन्ध्या, गन्धर्वनगर, उल्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत, धूल की वृष्टि, यूप, यक्षादीप्त, धूमिका, महिका, रजउद्‌घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रति-चन्द्र, इन्द्रधनुष अथवा उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, पूर्वदिशा का वात और पश्चिमदिशा का वात, यावत् संवर्तक वात, ग्रामदाह यावत् सन्निवेशदाह, प्राणक्षय, जनक्षय, धनक्षय, कुलक्षय यावत् व्यसनभूत अनार्य तथा उस प्रकार के दूसरे सभी कार्य देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–सोम महाराज से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत तथा अविज्ञात नहीं होते

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–सोम महाराज के ये देव अपत्यरूप से अभिज्ञात (जाने-माने) होते हैं, जैसे– अंगारक (मंगल), विकालिक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति और राहु ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–सोम महाराज की स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की होती है, और उसके द्वारा अपत्यरूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की होती है । इस प्रकार सोम महाराज, महाऋद्धि और यावत् महाप्रभाव वाला है ।

सूत्र - १९५

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–यम महाराज का वरशिष्ट नामक महाविमान कहाँ है ? गौतम ! सौधर्मावतंसक नाम के महाविमान से दक्षिण में, सौधर्मकल्प से असंख्य हजार योजन आगे चलने पर, देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज का वरशिष्ट नामक महाविमान बताया गया है, जो साढ़े बारह लाख योजन लम्बा-

चौड़ा है, इत्यादि सारा वर्णन सोम महाराज के विमान की तरह, यावत् 'अभिषेक' तक कहना । इसी प्रकार राजधानी और यावत् प्रासादों की पंक्तियों के विषय में कहना ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल यम महाराज की आज्ञा, सेवा, वचनपालन और निर्देश में रहते हैं, यथा–यमकायिक, यमदेवकायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेवकायिक, असुरकुमार-असुरकुमारियाँ, कन्दर्प, निरयपाल, आभियोग; ये और इसी प्रकार के वे सब देव, जो उसकी भक्ति में तत्पर हैं, उसके पक्ष के तथा उससे भरण-पोषण पाने वाले तदधीन भृत्य या उसके कार्यभारवाहक हैं । ये सब यम महाराज की आज्ञा में यावत् रहते हैं ।

जम्बूद्वीप में मेरूपर्वत से दक्षिण में जो कार्य समुत्पन्न होते हैं । यथा–विघ्न, डमर, कलह, बोल, खार, महा युद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्रनिपात अथवा इसी प्रकार महापुरुषों की मृत्यु, महारक्तपात, दुर्भूत, कुलरोग, ग्राम-रोग, मण्डलरोग, नगररोग, शिरोवेदना, नेत्रपीड़ा, कान, नख और दाँत की पीड़ा, इन्द्रग्रह, स्कन्दग्रह, कुमारग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, एकान्तर ज्वर, द्वि-अन्तर तिजारा, चौथिया, उद्वेजक, श्वास, दमा, बलनाशक ज्वर, जरा, दाहज्वर, कच्छ-कोह, अजीर्ण, पाण्डुरोग, अर्शरोग, भगंदर, हृदयशूल, मस्तकपीड़ा, योनिशूल, पार्श्वशूल, कुक्षि शूल, ग्राममारी, नगरमारी, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टण, आश्रम, सम्बाध और सन्निवेश, इन सबकी मारी, प्राणक्षय, धनक्षय, जनक्षय, कुलक्षय, व्यसनभूत अनार्य, ये और इसी प्रकार के दूसरे सब कार्य देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–यम महाराज से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अविस्मृत और अविज्ञात नहीं हैं ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–यम महाराज के देव अपत्यरूप से अभिमत है ।

सूत्र – १९६,१९७

'अम्ब, अम्बरिष, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकाल । तथा–असिपत्र, धनुष, कुम्भ, वालू, वैतरणी, खरस्वर और महाघोष ये पन्द्रह विख्यात हैं ।

सूत्र - १९८

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–यम महाराज की स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की है और उसके अपत्यरूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम है । ऐसी महाऋद्धि वाला यावत् यममहाराज है ।

सूत्र - १९९

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल-वरुण महाराज का स्वयंज्वल नामक महाविमान कहाँ है? गौतम ! उस सौधर्मावतंसक महाविमान से पश्चिम में सौधर्मकल्प से असंख्येय हजार योजन पार करने के बाद, स्वयंज्वल नाम का महाविमान आता है; इसका सारा वर्णन सोममहाराज के महाविमान की तरह जान लेना, राजधानी यावत् प्रासादावतंसकों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार समझना । केवल नामों में अन्तर है ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वरुण महाराज के ये देव आज्ञा में यावत् रहते हैं–वरुणकायिक, वरुण-देवकायिक, नागकुमार-नागकुमारियाँ; उदधिकुमार-उदधिकुमारियाँ, स्तनितकुमार-स्तनितकुमारियाँ; ये और दूसरे सब इस प्रकार के देव, उनकी भक्ति वाले यावत् रहते हैं ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत से दक्षिण दिशा में जो कार्य समुत्पन्न होते हैं, वे इस प्रकार हैं–अति-वर्षा, मन्दरवर्षा, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, पर्वत आदि से नीकलने वाला झरना, सरोवर आदि में जमा हुई जलराशि, पानी का अल्प प्रवाह, प्रवाह, ग्राम का बह जाना, यावत् सन्निवेशवाह, प्राणक्षय यावत् इसी प्रकार के दूसरे सभी कार्य वरुण महाराज से अथवा वरुणकायिक देवों से अज्ञात आदि नहीं हैं ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के (तृतीय) लोकपाल–वरुण महाराज के ये देव अपत्यरूप से अभिमत हैं । यथा–कर्कोटक, कर्दमक, अंजन, शंखपाल, पुण्ड्र, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अयंपुल और कातरिक ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के तृतीय लोकपाल वरुण महाराज की स्थिति देशोन दो पल्योपम की कही गई है और वरुण महाराज के अपत्यरूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है । वरुण महाराज ऐसी महा ऋद्धि यावत् महाप्रभाव वाला है ।

सूत्र - २००

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के (चतुर्थ) लोकपाल–वैश्रमण महाराज का वल्गु नामक महाविमान कहाँ है? गौतम ! सौधर्मावतंसक नामक महाविमान के उत्तरमें है । इस सम्बन्ध में सारा वर्णन सोम महाराज के महा-विमान की तरह जानना चाहिए; और वह यावत् राजधानी यावत् प्रासादावतंसक तक का वर्णन भी उसी तरह जान लेना चाहिए

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज की आज्ञा, सेवा (निकट) वचन और निर्देश में ये देव रहते हैं । यथा–वैश्रमणकायिक, वैश्रमणदेवकायिक, सुवर्णकुमार-सुवर्णकुमारियाँ, द्वीपकुमार-द्वीपकुमारियाँ, दिक् कुमार-दिक्कुमारियाँ, वाणव्यन्तर देव-वाणव्यन्तर देवियाँ, ये और इसी प्रकार के अन्य सभी देव, जो उसकी भक्ति, पक्ष और भृत्यता (या भारवहन) करते हैं, उसकी आज्ञा आदि में रहते हैं ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत से दक्षिण में जो ये कार्य उत्पन्न होते हैं, जैसे कि–लोहे की खानें, रांगे की खानें, ताम्बे की खानें, तथा शीशे की खानें, हिरण्य की, सुवर्ण की, रत्न की और वज्र की खानें, वसुधारा, हिरण्य की, सुवर्ण की, रत्न की, आभरण की, पत्र की, पुष्प की, फल की, बीज की, माला की, वर्ण की, चूर्ण की, गन्ध की और वस्त्र की वर्षा, भाजन और क्षीर की वृष्टि, सुकाल, दुष्काल, अल्पमूल्य, महामूल्य, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्रय-विक्रय सन्निधि, सन्निचय, निधियाँ, निधान, चिर-पुरातन, जिनके स्वामी समाप्त हो गए, जिनकी सारसंभाल करने वाले नहीं रहे, जिनकी कोई खोजखबर नहीं है, जिनके स्वामियों के गोत्र और आगार नष्ट हो गए, जिनके स्वामी उच्छिन्न हो गए, जिनकी सारसंभाल करने वाले छिन्न-भिन्न हो गए, जिनके स्वामियों के गोत्र और घर तक छिन्नभिन्न हो गए, ऐसे खजाने शृंगाटक मार्गों में, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख एवं महापथों, सामान्य मार्गों, नगर के गन्दे नालों में श्मशान, पर्वतगृह गुफा, शान्तिगृह, शैलोपस्थान, भवनगृह इत्यादि स्थानों में गाड़ कर रखा हुआ धन; ये सब पदार्थ देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अविस्मृत और अविज्ञात नहीं हैं ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज के ये देव अपत्यरूप से अभीष्ट हैं; पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमनोभद्र, चक्र-रक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान, सर्वयश, सर्वकामसमृद्ध, अमोघ और असंग ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल–वैश्रमण की स्थिति दो पल्योपम की है; और उनके अपत्यरूप से अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है । इस प्रकार वैश्रमण महाराज बड़ी ऋद्धि वाला यावत् महाप्रभाव वाला है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-३ – उद्देशक-८

सूत्र - २०१

राजगृह नगर में, यावत्...पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा–'भगवन् ! असुरकुमार देवों पर कितने देव आधिपत्य करते रहते हैं ?' गौतम ! असुरकुमार देवों पर दस देव आधिपत्य करते हुए यावत्...रहते हैं । असुरेन्द्र असुरराज चमर, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण तथा वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण

भगवन् ! नागकुमार देवों पर कितने देव आधिपत्य करते हुए, यावत्...विचरते हैं ? हे गौतम ! नागकुमार देवों पर दस देव आधिपत्य करते हुए, यावत्...विचरते हैं । वे इस प्रकार हैं–नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण, कालपाल, कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल । तथा नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द, कालपाल, कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल ।

जिस प्रकार नागकुमारों के इन्द्रों के विषय में यह वक्तव्यता कही गई है, उसी प्रकार इन (देवों) के विषय में भी समझ लेना चाहिए । सुवर्णकुमार देवों पर–वेणुदेव, वेणुदालि, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष (का); विद्युतकुमार देवों पर–हरिकान्त, हरिसिंह, प्रभ, सुप्रभ, प्रभाकान्त और सुप्रभाकान्त (का); अग्निकुमार देवों पर–अग्निसिंह, अग्निमाणव, तेजस् तेजःसिंह तेजस्कान्त और तेजःप्रभ; 'द्वीपकुमार'-देवों पर–पूर्ण, विशिष्ट, रूप रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ; उदधिकुमार देवों पर–जलकान्त, जलप्रभ जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ; दिक्कुमार देवों पर–अमितगति, अमितवाहन, तूर्य-गति, क्षिप्रगति, सिंहगति और सिंहविक्रमगति; वायु-कुमारदेवों पर–

वेलम्ब, प्रभञ्जन, काल, महाकाल, अंजन और रिष्ट; तथा स्तनितकुमारदेवों पर-घोष, महाघोष, आवर्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त और महानन्दिकावर्त (का आधिपत्य रहता है) । इन सबका कथन असुरकुमारों की तरह कहना चाहिए ।

दक्षिण भवनपतिदेवों के अधिपति इन्द्रों के प्रथम लोकपालों के नाम इस प्रकार हैं-सोम, कालपाल, चित्र, प्रभ, तेजस् रूप, जल, त्वरितगति, काल और आयुक्त ।

भगवन् ! पिशाचकुमारों पर कितने देव आधिपत्य करते हुए विचरण करते हैं ? गौतम ! उन पर दो-दो देव (इन्द्र) आधिपत्य करते हुए यावत् विचरते हैं । वे इस प्रकार हैं-

सूत्र - २०२, २०३

(१) काल और महाकाल, (२) सुरूप और प्रतिरूप, (३) पूर्णभद्र और मणिभद्र, (४) भीम और महाभीम । तथा- (५) किन्नर और किम्पुरुष, (६) सत्पुरुष और महापुरुष, (७) अतिकाय और महाकाय, तथा (८) गीतरति और गीतयश । ये सब वाणव्यन्तर देवों के अधिपति-इन्द्र हैं ।

सूत्र - २०४

ज्योतिष्क देवों पर आधिपत्य करते हुए दो देव यावत् विचरण करते हैं । यथा-चन्द्र और सूर्य ।

भगवन् ! सौधर्म और ईशानकल्प में आधिपत्य करते हुए कितने देव विचरण करते हैं ? गौतम ! उन पर आधिपत्य करते हुए यावत् दस देव विचरण करते हैं । यथा-देवेन्द्र देवराज शक्र, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण, देवेन्द्र देवराज ईशान, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण । यह सारी वक्तव्यता सभी कल्पों (देवलोकों) के विषय में कहनी चाहिए और जिस देवलोक का जो इन्द्र है, वह कहना चाहिए । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-३ – उद्देशक-९

सूत्र - २०५

राजगृह नगर में यावत् श्रीगौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा-भगवन् ! इन्द्रियों के विषय कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! इन्द्रियों के विषय पाँच प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं-श्रोत्रेन्द्रिय-विषय इत्यादि । इस सम्बन्ध में जीवाभिगमसूत्र में कहा हुआ ज्योतिष्क उद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिए ।

शतक-३ – उद्देशक-१०

सूत्र - २०६

राजगृह नगर में यावत् श्री गौतम ने इस प्रकार पूछा-भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी परिषदाएं कही गई हैं ? हे गौतम ! उसकी तीन परिषदाएं कही गई हैं । यथा-शमिता, चण्डा और जाता । इसी प्रकार क्रमपूर्वक यावत् अच्युतकल्प तक कहना चाहिए । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक–४

सूत्र - २०७

इस चौथे शतक में दस उद्देशक हैं । इनमें से प्रथम चार उद्देशकों में विमान-सम्बन्धी कथन किया गया है । पाँचवे से लेकर आठवें उद्देशक तक राजधानीयों का वर्णन है । नौवें उद्देशक में नैरयिकों का और दसवें उद्देशक में लेश्या के सम्बन्ध में निरूपण है ।

शतक-४ – उद्देशक-१ से ४

सूत्र - २०८

राजगृह नगर में, यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा–भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान के कितने लोकपाल कहे गए हैं ? हे गौतम ! उसके चार लोकपाल कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं–सोम, यम, वैश्रमण और वरुण ।

भगवन् ! इन लोकपालों के कितने विमान कहे गए हैं ? गौतम ! इनके चार विमान हैं; वे इस प्रकार हैं–सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु और सुवल्गु ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज का 'सुमन' नामक महाविमान कहाँ है ? गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से, यावत् ईशान नामक कल्प कहा है। उसमें यावत् पाँच अवतंसक कहे हैं, वे इस प्रकार हैं–अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक और जातरूपावतंसक; इन चारों अवतंसकों के मध्य में ईशानावतंसक है । उस ईशानावतंसक नामक महाविमान से पूर्व में तीरछे असंख्येय हजार योजन आगे जाने पर देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल सोम महाराज का 'सुमन' नामक महाविमान है । उसकी लम्बाई और चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है । इत्यादि तृतीय शतक में कथित शक्रेन्द्र (के लोकपाल सोम के महाविमान) के समान ईशानेन्द्र (के लोकपाल सोम के महाविमान) के सम्बन्ध में यावत्–अर्चनिका समाप्ति पर्यन्त कहना ।

इस प्रकार चारों लोकपालों में से प्रत्येक के विमान की वक्तव्यता पूरी हो वहाँ एक-एक उद्देशक समझना । चारों विमानों की वक्तव्यता में चार उद्देशक पूर्ण हुए समझना । विशेष यह है कि इनकी स्थिति में अन्तर है ।

सूत्र - २०९

आदि के दो–सोम और यम लोकपाल की स्थिति (आयु) त्रिभागन्यून दो-दो पल्योपम की है, वैश्रमण की स्थिति दो पल्योपम की है और वरुण की स्थिति त्रिभागसहित दो पल्योपम की है । अपत्यरूप देवों की स्थिति एक पल्योपम की है ।

शतक-४ - उद्देशक-५ से ८

सूत्र - २१०

चारों लोकपालों की राजधानीयोंके चार उद्देशक कहने चाहिए यावत् वरुण महाराज इतनी महाऋद्धि वाले हैं

शतक-४ - उद्देशक-९

सूत्र - २११

भगवन् ! जो नैरयिक है, क्या वह नैरयिकों में उत्पन्न होता है, या जो अनैरयिक है, वह नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? (हे गौतम !) प्रज्ञापनासूत्र में कथित लेश्यापद का तृतीय उद्देशक यहाँ कहना चाहिए, और वह यावत् ज्ञानों के वर्णन तक कहना चाहिए ।

शतक-४ – उद्देशक-१०

सूत्र - २१२

भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या नीललेश्या का संयोग पाकर तद्रुप और तद्वर्ण में परिणत हो जाती है ? (हे गौतम !) प्रज्ञापनासूत्र में उक्त लेश्यापद का चतुर्थ उद्देशक यहाँ कहना चाहिए, और वह यावत् परिणाम इत्यादि द्वार-गाथा तक कहना चाहिए ।

सूत्र - २१३

परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध, शुद्ध, अप्रशस्त, संक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाहना, वर्गणा, स्थान और अल्पबहुत्व; (ये सब बातें लेश्याओं के सम्बन्ध में कहनी चाहिए ।)

सूत्र - २१४

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक–५

सूत्र - २१५

पांचवे शतक में ये दस उद्देशक हैं-प्रथम उद्देशक में चम्पा नगरी में सूर्य सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं । द्वीतिय में वायु-सम्बन्धी प्ररूपण । तृतीय में जालग्रन्थी का उदाहरण । चतुर्थ में शब्द-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर । पंचम में छद्मस्थ वर्णन । छठे में आयुष्य सम्बन्धी निरूपण है । सातवे में पुद्‌गलों का कम्पन । आठवे में निर्ग्रन्थी-पुत्र । नौवे में राजगृह नगर है और दशवे में चम्पानगरी में वर्णित चन्द्रमा-सम्बन्धी प्ररूपणा है ।

शतक-५ – उद्देशक-१

सूत्र - २१६

उस काल और उस समय में चम्पा नामकी नगरी थी । उस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामका चैत्य था । वहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे...यावत् परिषद् धर्मोपदेश सूनने के लिए गई और वापस लौट गई । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति अनगार थे, यावत् उन्होंने पूछा–भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य क्या ईशान-कोण में उदय होकर आग्नेय कोण में अस्त होते हैं ? अथवा आग्नेय कोण में उदय होकर नैर्ऋत्य कोण में अस्त होते हैं ? अथवा नैर्ऋत्य कोण में उदय होकर वायव्य कोण में अस्त होते हैं, या फिर वायव्यकोण में उदय होकर ईशान कोण में अस्त होते हैं ? हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीप में सूर्य-ईशान कोण में उदित होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं, यावत् ईशानकोण में अस्त होते हैं । भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है ? और जब जम्बूद्वीप के उत्तरार्द्ध में दिन होता है, तब क्या मेरुपर्वत से पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्धमें दिन में होता है, तब यावत् रात्रि होती है । भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से पूर्वमें दिन होता है, तब क्या पश्चिममें भी दिन होता है ? जब पश्चिम में दिन होता है, तब क्या जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से उत्तर-दक्षिण में रात्रि होती है? गौतम ! हाँ, इसी प्रकार होता है ।

सूत्र - २१७

भगवन् ! जब जम्बूद्वीप नामक द्वीप के दक्षिणार्द्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब क्या जम्बूद्वीप में मन्दर (मेरु) पर्वत से पूर्व-पश्चिम में जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है । भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से पूर्व में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब क्या जम्बूद्वीप के पश्चिम में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है ? और भगवन् ! जब पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिवस होता है, तब क्या जम्बूद्वीप के उत्तर में जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह–यावत्...होता है । हे भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिवस होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिवस होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब क्या जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत से पूर्व पश्चिम दिशा में कुछ अधिक बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होती है; भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के मन्दराचल से पूर्व में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब क्या पश्चिम में भी अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है ? और जब पश्चिम में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब क्या जम्बूद्वीप में मेरु-पर्वत से उत्तर दक्षिण में भी सातिरेक बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यावत् होती है ।

इस प्रकार इस क्रम से दिवस का परिमाण बढ़ाना-घटाना और रात्रि का परिमाण घटाना-बढ़ाना चाहिए । यथा–जब सत्रह मुहूर्त्त का दिवस होता है, तब तेरह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब सत्रह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब सातिरेक तेरह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब सोलह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब सातिरेक तेरह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब सोलह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब चौदह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब सोलह मुहूर्त्तानन्तर का दिवस होता है, तब सातिरेक चौदह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब पन्द्रह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब सातिरेक पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है, जब चौदह मुहूर्त्त का

दिन होता है, तब सोलह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब चौदह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब सातिरेक सोलह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब चौदह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब सातिरेक सोलह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब तेरह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब सत्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । जब तेरह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तब सातिरेक सत्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिणार्द्ध में जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी (इसी तरह होता है) ? और जब उत्तरार्द्ध में भी इसी तरह होता है, तब क्या जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से पूर्व और पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यावत्... रात्रि होती है । भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व में जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है, तब क्या पश्चिम में भी इसी प्रकार होता है ? और जब पश्चिम में इसी तरह होता है, तब क्या जम्बूद्वीप के मन्दर-पर्वत के उत्तर और दक्षिण में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यावत्...रात्रि होती है ।

सूत्र - २१८

भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में वर्षा (ऋतु) का प्रथम समय होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी वर्षा (ऋतु) का प्रथम समय होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में वर्षाऋतु का प्रथम समय होता है, तब जम्बूद्वीप में मन्दर-पर्वत से पूर्व में वर्षाऋतु का प्रथम समय अनन्तर-पुरस्कृत समय में होता है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है । भगवन् ! जब जम्बूद्वीप में मन्दराचल से पूर्व में वर्षा (ऋतु) का प्रथम समय होता है, तब पश्चिम में भी क्या वर्षा (ऋतु) का प्रथम समय होता है ? और जब पश्चिम में वर्षा (ऋतु) का प्रथम समय होता है, तब, यावत्...मन्दरपर्वत से उत्तर दक्षिण में वर्षा (ऋतु) का प्रथम समय अनन्तर-पश्चात्कृत् समय में होता है ? हाँ, गौतम ! इसी तरह होता है। इसी प्रकार यावत्-उत्तर दक्षिण में वर्षाऋतु का प्रथम समय अनन्तर-पश्चात्कृत् समय में होता है, इसी तरह सारा वक्तव्य कहना चाहिए ।

वर्षाऋतु के प्रथम समय के समान वर्षाऋतु के प्रारम्भ की प्रथम आवलिका के विषयमें भी कहना । इसी प्रकार आन-पान, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, इन सबके विषय में भी समय के अभिलाप की तरह कहना चाहिए ।

भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में हेमन्त ऋतु का प्रथम समय होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी हेमन्तऋतु का प्रथम समय होता है; और जब उत्तरार्द्ध में हेमन्त ऋतु का प्रथम समय होता है, तब क्या जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से पूर्व-पश्चिम में हेमन्त ऋतु का प्रथम समय अनन्तर पुरस्कृत समय में होता है ? इत्यादि प्रश्न है । हे गौतम ! इस विषय का सारा वर्णन वर्षाऋतु के कथन के समान जान लेना । इसी तरह ग्रीष्मऋतु का भी वर्णन कह देना । हेमन्तऋतु और ग्रीष्मऋतु के प्रथम समय की तरह उनकी प्रथम आवलिका, यावत् ऋतुपर्यन्त सारा वर्णन कहना । इस प्रकार वर्षाऋतु, हेमन्तऋतु और ग्रीष्मऋतु; इन तीनों का एक सरीखा वर्णन है । इसलिए इन तीनों के तीस आलापक होते हैं । भगवन् ! जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत से दक्षिणार्द्ध में जब प्रथम 'अयन' होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी प्रथम 'अयन' होता है ? गौतम ! 'समय' के आलापक समान 'अयन' के विषय में भी कहना चाहिए, यावत् उसका प्रथम समय अनन्तर पश्चात्कृत समय में होता है, इत्यादि । 'अयन' के समान संवत्सर के विषय में भी कहना । तथैव युग, वर्षशत, वर्षसहस्त्र, वर्षशतसहस्त्र, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनूपुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम; के सम्बन्ध में भी कहना ।

भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी होती है? और जब उत्तरार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या जम्बूद्वीप के मन्दरपर्वत के पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती ? उत्सर्पिणी नहीं होती ? किन्तु हे आयुष्मान् श्रमणपुंगव ! क्या वहाँ अवस्थित काल कहा गया है ? हाँ, गौतम! इसी तरह होता है। यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन। अवसर्पिणी आलापक समान उत्सर्पिणी के विषयमें भी कहना

सूत्र - २१९

भगवन् ! लवणसमुद्र में सूर्य ईशानकोण में उदय होकर क्या अग्निकोण में जाते हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम!

जम्बूद्वीप में सूर्यों के समान यहाँ लवणसमुद्रगत सूर्यों के सम्बन्ध में भी कहना । विशेष बात यह है कि इस वक्तव्यता में पाठ का उच्चारण इस प्रकार करना । भगवन् ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, इत्यादि यावत् तब लवणसमुद्र के पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है । इसी अभिलाप द्वारा सब वर्णन जान लेना । भगवन् ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी (काल) होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी (काल) होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी (काल) होता है, तब क्या लवणसमुद्र के पूर्व-पश्चिम में अव-सर्पिणी नहीं होती ? उत्सर्पिणी नहीं होती ? किन्तु हे दीर्घजीवी श्रमणपुंगव ! क्या वहाँ अवस्थित काल होता है ? हाँ, गौतम ! (यह इसी तरह होता है) और वहाँ...यावत् अवस्थित काल कहा है ।

भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य, ईशानकोण में उदय होकर क्या अग्निकोण में अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न हे गौतम ! जम्बूद्वीप के समान सारी वक्तव्यता धातकीखण्ड के विषय में भी कहनी चाहिए । परन्तु विशेष यह है कि इस पाठ का उच्चारण करते समय सभी आलापक इस प्रकार कहने चाहिए–

भगवन् ! जब धातकीखण्ड के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है, तब क्या धातकीखण्ड द्वीप के मन्दरपर्वतों से पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह है । भगवन् ! जब धातकीखण्डद्वीप के मन्दरपर्वतों से पूर्व में दिन होता है, तब क्या पश्चिम में भी दिन होता है ? और जब पश्चिम में दिन होता है, तब क्या धातकीखण्डद्वीप के मन्दरपर्वतों से उत्तर-दक्षिण में रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! (इसी तरह है), और इसी अभिलाप से जानना चाहिए, यावत्–भगवन् ! जब दक्षिणार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी होती है ? और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या धातकीखण्ड द्वीप के मन्दरपर्वतों से पूर्व पश्चिम में भी अवसर्पिणी नहीं होती ? यावत् उत्सर्पिणी नहीं होती ? परन्तु आयुष्मान् श्रमणवर्य ! क्या वहाँ अवस्थितकाल होता है ? हाँ, गौतम ! (इसी तरह है), यावत् अवस्थित काल होता है ।

जैसे लवणसमुद्र के विषय में वक्तव्यता कही, वैसे कालोद के सम्बन्ध में भी कह देनी चाहिए । विशेष इतना है कि वहाँ लवणसमुद्र के स्थान पर कालोदधि का नाम कहना ।

भगवन् ! आभ्यन्तरपुष्करार्द्ध में सूर्य, ईशानकोण में उदय होकर अग्निकोण में अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न। धातकीखण्ड की वक्तव्यता के समान आभ्यन्तरपुष्करार्द्ध की वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि धातकीखण्ड के स्थान में आभ्यन्तरपुष्करार्द्ध का नाम कहना; यावत्–आभ्यन्तरपुष्करार्द्ध में मन्दरपर्वतों के पूर्व-पश्चिम में न तो अवसर्पिणी है, और न ही उत्सर्पिणी है, किन्तु हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ सदैव अवस्थित काल कहा गया है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-५ – उद्देशक-२

सूत्र - २२०

राजगृह नगर में...यावत् (श्री गौतमस्वामी ने) इस प्रकार पूछा–भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात (ओस आदि से कुछ स्निग्ध, या गीली हवा), पथ्यवात (वनस्पति आदि के लिए हितकर वायु), मन्दवात (धीमे-धीमे चलने वाली हवा), तथा महावात, प्रचण्ड तूफानी वायु बहती है ? हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त वायु (हवाएं) बहती हैं ।

भगवन् ! पूर्व दिशा से ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात बहती हैं ? हाँ, गौतम ! बहती हैं । इसी तरह पश्चिम में, दक्षिण में, उत्तर में, ईशानकोण में, आग्नेयकोण में, नैऋत्यकोण में और वायव्यकोण में (पूर्वोक्त वायु बहती है) भगवन् ! जब पूर्व में ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात बहती है, तब क्या पश्चिम में भी ईषत्पुरोवात आदि हवाएं बहती हैं ? और जब पश्चिम में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती है, तब क्या पूर्व में भी बहती हैं ? हाँ, गौतम ! जब पूर्व में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब वे सब पश्चिम में भी बहती हैं, और जब पश्चिम में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं, तब वे सब हवाएं पूर्व में भी बहती हैं । इसी प्रकार सब दिशाओं में भी उपर्युक्त कथन करना । इसी प्रकार समस्त विदिशाओं में भी उपर्युक्त आलापक कहना चाहिए ।

भगवन् ! क्या द्वीप में भी ईषत्पुरोवात आदि वायु होती हैं ? हाँ, गौतम ! होती हैं । भगवन् ! क्या समुद्र में भी

ईषत्पुरोवात आदि हवाएं होती हैं ? हाँ, गौतम ! होती हैं ।

भगवन् ! जब द्वीप में ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती है, तब क्या सामुद्रिक ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती है? और जब सामुद्रिक ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती है, तब क्या द्वीपीय ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । हवाएं बहती हैं, तब सामुद्रिक ईषत्पुरोवात आदि हवाएं नहीं बहतीं, और जब सामुद्रिक ईषत्पुरोवात आदि हवाएं बहती हैं, तब द्वीपीय ईषत्पुरोवात आदि हवाएं नहीं बहती ? गौतम ! ये सब वायु परस्पर व्यत्यासरूप से एवं पृथक्-पृथक् बहती हैं । साथ ही, वे वायु लवणसमुद्र की वेला का उल्लंघन नहीं करती । इस कारण यावत् वे वायु पूर्वोक्त रूप से बहती हैं ।

भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात बहती हैं ? हाँ, गौतम ! (ये सब) बहती हैं । भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब बहती हैं ? गौतम ! जब वायुकाय अपने स्वभावपूर्वक गति करता है, तब ईषत्पुरोवात आदि वायु यावत् बहती हैं । भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु (और भी) कभी चलती (बहती) हैं ? हे गौतम ! जब वायुकाय उत्तरक्रियापूर्वक (वैक्रिय शरीर बनाकर) गति करता है, तब (भी) ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती (चलती) हैं ।

भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु (ही) हैं ? हाँ, गौतम ! वे (सब वायु ही) हैं । भगवन् ! ईषत्पुरोवात, पथ्यवात आदि (और) कब (किस समय में) चलती हैं ? गौतम ! जब वायुकुमार देव और वायुकुमार देवियाँ, अपने लिए, दूसरों के लिए या दोनों के लिए वायुकाय की उदीरणा करते हैं, तब ईषत्पुरोवात आदि वायु यावत् चलती (बहती) हैं ।

भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय को ही श्वासरूप में ग्रहण करता है और निःश्वासरूप में छोड़ता है ? गौतम! इस सम्बन्धमें स्कन्दक परिव्राजक के उद्देशकमें कहे अनुसार चार आलापक जानना चाहिए-यावत् (१) अनेक लाख बार मरकर, (२) स्पृष्ट होकर, (३) मरता है और (४) शरीर-सहित नीकलता है ।

सूत्र - २२१

भगवन् ! अब यह बताएं कि ओदन, उड़द और सुरा, इन तीनों द्रव्यों को किन जीवों का शरीर कहना चाहिए? गौतम ! ओदन, कुल्माष और सुरा में जो घन द्रव्य हैं, वे पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा से वनस्पतिजीव के शरीर हैं । उसके पश्चात् जब वे (ओदनादि द्रव्य) शस्त्रातीत हो जाते हैं, शस्त्रपरिणत हो जाते हैं; आग से जलाये अग्नि से सेवित-अग्निसेवित और अग्निपरिणामित हो जाते हैं, तब वे द्रव्य अग्नि के शरीर कहलाते हैं । तथा सुरा में जो तरल पदार्थ हैं, वह पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से अप्कायिक जीवों का शरीर है, और जब वह तरल पदार्थ (पूर्वोक्त प्रकार से) शस्त्रातीत यावत् अग्निपरिणामित हो जाता है, तब वह भाग, अग्निकाय-शरीर कहा जा सकता है ।

भगवन् ! लोहा, ताँबा, त्रपुष्, शीशा, उपल, कोयला और लोहे का काट, ये सब द्रव्य किन (जीवों के) शरीर कहलाते हैं ? गौतम ! ये सब द्रव्य पूर्वप्रज्ञापना की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं, और उसके बाद शस्त्रातीत यावत् शस्त्रपरिणामित होने पर ये अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं ।

भगवन् ! ये हड्डी, अस्थिध्याम (अग्नि से पर्यायान्तर को प्राप्त हड्डी और उसका जला हुआ भाग), चमड़ा, चमड़े का जला हुआ स्वरूपान्तरप्राप्त भाग, रोम, अग्निज्वलित रोम, सींग, अग्नि प्रज्वलित विकृत सींग, खुर, अग्निप्रज्वलित खुर, नख और अग्निप्रज्वलित नख, ये सब किन (जीवों) के शरीर कहे जा सकते हैं ? गौतम ! हड्डी, चमड़ा, रोम, सींग, खुर और नख ये सब त्रसजीवों के शरीर कहे जा सकते हैं, और जली हुई हड्डी, प्रज्वलित विकृत चमड़ा, जले हुए रोम, प्रज्वलित-रूपान्तरप्राप्त सींग, प्रज्वलित खुर और प्रज्वलित नख; ये सब पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा से तो त्रसजीवों के शरीर हैं किन्तु उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्निपरिणामित होने पर ये अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं ।

भगवन् ! अंगार, राख, भूसा और गोबर, इन सबको किन जीवों के शरीर कहे जाएं ? गौतम ! अंगार, राख, भूसा और गोबर ये सब पूर्व-भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से एकेन्द्रियजीवों द्वारा अपने शरीर रूप से, प्रयोगों से -अपने साथ परिणामित एकेन्द्रिय शरीर हैं, यावत् पंचेन्द्रिय जीवों तक के शरीर भी कहे जा सकते हैं, और तत्पश्चात्

शस्त्रातीत यावत् अग्निकाय-परिणामित हो जाने पर वे अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं ।

सूत्र - २२२

भगवन् ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कम्भ कितना कहा गया है ? गौतम ! (लवणसमुद्र के सम्बन्ध में सारा वर्णन) पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिए, यावत् लोकस्थिति लोकानुभाव तक कहना चाहिए । हे भगवन्! यह इसी प्रकार है ।

शतक-५ – उद्देशक-३

सूत्र - २२३

भगवन् ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि जैसे कोई (एक) जालग्रन्थि हो, जिसमें क्रम से गाँठें दी हुई हों, एक के बाद दूसरी अन्तररहित गाँठें लगाई हुई हों, परम्परा से गूँथी हुई हों, परस्पर गूँथी हुई हों, ऐसी वह जालग्रन्थि परस्पर विस्तार रूप से, परस्पर भाररूप से तथा परस्पर विस्तार और भाररूप से, परस्पर संघटित रूप से यावत् रहती है, वैसे ही बहुत-से जीवों के साथ क्रमशः हजारों-लाखों जन्मों से सम्बन्धित बहुत-से आयुष्य परस्पर क्रमशः गूँथे हुए हैं, यावत् परस्पर संलग्न रहते हैं । ऐसी स्थिति में उनमें से एक जीव भी एक समय में दो आयुष्यों को वेदता है । यथा एक ही जीव, इस भव का आयुष्य वेदता है और वही जीव, परभव का भी आयुष्य वेदता है । जिस समय इस भव के आयुष्य का वेदन करता है, उसी समय वह जीव परभव के आयुष्य का भी वेदन करता है; यावत् हे भगवन् ! यह किस तरह है ?

गौतम ! उन अन्यतीर्थिकों ने जो यह कहा है कि...यावत् एक ही जीव, एक ही समय में इस भव का और परभव का-दोनों का आयुष्य वेदता है, उनका यह सब कथन मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि-जैसे कोई एक जालग्रन्थि हो और वह यावत्...परस्पर संघटित रहती है, इसी प्रकार क्रम-पूर्वक बहुत-से सहस्त्रों जन्मों से सम्बन्धित, बहुत-से हजारों आयुष्य, एक-एक जीव के साथ शृंखला की कड़ी के समान परस्पर क्रमशः ग्रथित यावत् रहते हैं । (ऐसा होने से) एक जीव एक समय में एक ही आयुष्य का प्रतिसंवे-दन करता है, जैसे कि-या तो वह इस भव का ही आयुष्य वेदता है अथवा परभव का ही आयुष्य वेदता है । परन्तु जिस समय इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उस समय परभव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन नहीं करता, और जिस समय परभव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उस समय इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन नहीं करता । इस भव के आयुष्य का वेदन करने से परभव का आयुष्य नहीं वेदा जाता और परभव के आयुष्य का वेदन करने से इस भव का आयुष्य नहीं वेदा जाता । इस प्रकार एक जीव एक समय में एक ही आयुष्य का वेदन करता है; वह इस प्रकार-या तो इस भव के आयुष्य का, अथवा परभव के आयुष्य का ।

सूत्र - २२४

भगवन् ! जो जीव नैरयिकों में उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव यहीं से आयुष्य-युक्त होकर नरक में जाता है, अथवा आयुष्य रहित होकर जाता है ? गौतम ! वह यहीं से आयुष्ययुक्त होकर नरक में जाता है, परन्तु आयुष्यरहित होकर नरक में नहीं जाता । हे भगवन् ! उस जीव ने वह आयुष्य कहाँ बाँधा ? और उस आयुष्य-सम्बन्धी आचरण कहाँ किया ? गौतम ! उस (नारक) जीव ने वह आयुष्य पूर्वभव में बाँधा था और उस आयुष्य-सम्बन्धी आचरण भी पूर्वभव में किया था । नैरयिक के समान यावत् वैमानिक तक सभी दण्डकों के विषय में यह बात कहनी चाहिए । भगवन् ! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य होता है, क्या वह जीव, उस योनि सम्बन्धी आयुष्य बाँधता है ? जैसे कि जो जीव नरक योनि में उत्पन्न होने योग्य होता है, क्या वह जीव नरकयोनि का आयुष्य बाँधता है, यावत् देवयोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव क्या देवयोनि का आयुष्य बाँधता है ? हाँ, गौतम ! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने योग्य होता है, वह जीव उस योनिसम्बन्धी आयुष्य को बाँधता है । जैसे कि नरक योनि में उत्पन्न होने योग्य जीव नरकयोनि का आयुष्य बाँधता है, तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव, तिर्यंचयोनि का आयुष्य बाँधता है, मनुष्ययोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव मनुष्ययोनि का आयुष्य बाँधता है यावत् देवयोनि में उत्पन्न होने योग्य जीव

देवयोनि का आयुष्य बाँधता है । जो जीव नरक का आयुष्य बाँधता है, वह सात प्रकार की नरकभूमि में से किसी एक प्रकार की नरकभूमि सम्बन्धी आयुष्य बाँधता है । यथा-रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वी का आयुष्य बाँधता है । जो जीव तिर्यंचयोनि का आयुष्य बाँधता है, वह पाँच प्रकार के तिर्यंचों में से किसी एक प्रकार का तिर्यंच-सम्बन्धी आयुष्य बाँधता है । यथा-एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनि का आयुष्य इत्यादि । तिर्यंच के सभी भेदविशेष विस्तृत रूप से यहाँ कहने चाहिए । जो जीव मनुष्य-सम्बन्धी आयुष्य बाँधता है, वह दो प्रकार के मनुष्यों में से किसी एक प्रकार के मनुष्य-सम्बन्धी आयुष्य को बाँधता है, जो जीव देवसम्बन्धी आयुष्य को बाँधता है, तो वह चार प्रकार के देवों में से किसी एक प्रकार का आयुष्य बाँधता है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-५ – उद्देशक-४

सूत्र - २२५

भगवन् ! छद्मस्थ मनुष्य क्या बजाये जाते हुए वाद्यों (के) शब्दों को सूनता है ? यथा-शंख के शब्द, रणसींगे के शब्द, शंखिका के शब्द, खरमुही के शब्द, पोता के शब्द, परिपीरिता के शब्द, पणव के शब्द, पटह के शब्द, भंभा के शब्द, झल्लरी के शब्द, दुन्दुभि के शब्द, तत शब्द, विततशब्द, घनशब्द, शुषिरशब्द, इत्यादि बाजों के शब्दों को । हाँ, गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य बजाये जाते हुए शंख यावत्-शुषिर आदि वाद्यों के शब्दों को सूनता है ।

भगवन् ! क्या वह (छद्मस्थ) उन शब्दों को स्पृष्ट होने पर सूनता है, या अस्पृष्ट होने पर भी सून लेता है ? गौतम! छद्मस्थ मनुष्य स्पृष्ट शब्दों को सूनता है, अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सूनता; यावत् नियम से छह दिशाओं से आए हुए स्पृष्ट शब्दों को सूनता है । भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य आरगत शब्दों को सूनता है, अथवा पारगत शब्दों को सूनता है ? गौतम ! आरगत शब्दों को सूनता है, पारगत शब्दों को नहीं ।

भगवन् ! जैसे छद्मस्थ मनुष्य आरगत शब्दों को सूनता है, किन्तु पारगत शब्दों को नहीं सूनता, वैसे ही, हे भगवन् ! क्या केवली भी आरगत शब्दों को ही सून पाता है, पारगत शब्दों को नहीं सून पाता ? गौतम ! केवली मनुष्य तो आरगत, पारगत अथवा समस्त दूरवर्ती और निकटवर्ती अनन्त शब्दों को जानता और देखता है । भगवन् इसका क्या कारण है ? गौतम ! केवली पूर्व दिशा की मित वस्तु को भी जानता-देखता है, और अमित वस्तु को भी जानता-देखता है; इसी प्रकार दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा की मित वस्तु को भी जानता-देखता है तथा अमित वस्तु को भी जानता-देखता है । केवलज्ञानी सब जानता है और सब देखता है । केवली भगवान सर्वतः जानता-देखता है, केवली सर्वकाल में, सर्वभावों (पदार्थों) को जानता-देखता है । केवलज्ञानी के अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन होता है । केवलज्ञानी का ज्ञान और दर्शन निरावरण होता है । हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा गया है कि केवली मनुष्य आरगत और पारगत शब्दों को, यावत् सभी प्रकार के दूरवर्ती और निकटवर्ती शब्दों को जानता-देखता है ।

सूत्र - २२६

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य हँसता है तथा उत्सुक (उतावला) होता है ? गौतम ! हाँ, छद्मस्थ मनुष्य हँसता तथा उत्सुक होता है । भगवन् ! जैसे छद्मस्थ मनुष्य हँसता है तथा उत्सुक होता है, वैसे क्या केवली भी हँसता और उत्सुक होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि केवली मनुष्य न तो हँसता है और न उत्सुक होता है ? गौतम ! जीव, चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से हँसते हैं या उत्सुक होते हैं, किन्तु वह कर्म केवली भगवान के नहीं हैं; इस कारण से यह कहा जाता है कि जैसे छद्मस्थ मनुष्य हँसता है अथवा उत्सुक होता है, वैसे केवली मनुष्य न तो हँसता है और न ही उत्सुक होता है ।

भगवन् ! हँसता हुआ या उत्सुक होता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बाँधता है ? गौतम ! सात प्रकार अथवा आठ प्रकार के कर्मों को बाँधता है । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना । जब बहुत जीवों की अपेक्षा पूछा जाए, तो उसके उत्तर में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर कर्मबन्ध से सम्बन्धित तीन भंग कहना ।

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य निद्रा लेता हे अथवा प्रचला नामक निद्रा लेता है ? हाँ, गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य

निद्रा लेता है और प्रचला निद्रा भी लेता है । जिस प्रकार हँसने के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर बतलाए गए हैं, उसी प्रकार निद्रा और प्रचला-निद्रा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर जान लेने चाहिए । विशेष यह है कि छद्मस्थ मनुष्य दर्शना-वरणीय कर्म के उदय से निद्रा अथवा प्रचला लेता है, जबकि केवली भगवान के वह दर्शनावरणीय कर्म नहीं है; इसलिए केवली न तो निद्रा लेता है, न ही प्रचलानिद्रा लेता है । शेष सब पूर्ववत् समझना ।

भगवन् ! निद्रा लेता हुआ अथवा प्रचलानिद्रा लेता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बाँधता है ? गौतम! निद्रा अथवा प्रचला-निद्रा लेता हुआ जीव सात अथवा आठ कर्मों की प्रकृतियों का बन्ध करता है । इसी तरह (एकवचन की अपेक्षा से) वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए । जब उपर्युक्त प्रश्न बहुवचन की अपेक्षा से पूछा जाए, तब (समुच्चय) जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर कर्मबन्ध-सम्बन्धी तीन भंग कहना चाहिए ।

सूत्र - २२७

भगवन् ! इन्द्र (हरि)-सम्बन्धी शक्रदूत हरिनैगमेषी देव जब स्त्री के गर्भ का संहरण करता है, तब क्या वह एक गर्भाशय से गर्भ को उठाकर दूसरे गर्भाशय में रखता है ? या गर्भ को लेकर योनि द्वारा दूसरी (स्त्री) के उदर में रखता है? अथवा योनि से गर्भाशय में रखता है ? या फिर योनि द्वारा गर्भ को पेट में से बाहर नीकालकर योनि द्वारा ही (दूसरी स्त्री के पेट में) रखता है ? हे गौतम ! वह हरिनैगमेषी देव, एक गर्भाशय से गर्भ को उठाकर दूसरे गर्भाशय में नहीं रखता; गर्भाशय से गर्भ को लेकर उसे योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में नहीं रखता; तथा योनि द्वारा गर्भ को बाहर नीकालकर योनि द्वारा दूसरी स्त्री के पेट में नहीं रखता; परन्तु अपने हाथ से गर्भ का स्पर्श कर करके, उस गर्भ को कुछ पीड़ा न हो, इस तरीके से उसे योनि द्वारा बाहर नीकालकर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रख देता है ।

भगवन् ! क्या शक्र का दूत हरिनैगमेषी देव, स्त्री के गर्भ को नखाग्र द्वारा, अथवा रोमकूप (छिद्र) द्वारा गर्भाशय में रखने या गर्भाशय से नीकालने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! हरिनैगमेषी देव उपर्युक्त रीति से कार्य करने में समर्थ है । वह देव उस गर्भ को थोड़ी या बहुत, किञ्चित्मात्र भी पीड़ा नहीं पहुँचाता । हाँ, वह उस गर्भ का छविच्छेद करता है, और फिर उसे बहुत सूक्ष्म करके अंदर रखता है, अथवा इसी तरह अंदर से बाहर नीकालता है।

सूत्र - २२८

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के अन्तेवासी अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण थे । वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे । पश्चात् वह अतिमुक्तक कुमार श्रमण किसी दिन मूसलधार वर्षा पड़ रही थी, तब कांख में अपने रजोहरण तथा पात्र लेकर बाहर स्थण्डिल भूमिका में (बड़ी शंका निवारण) के लिए रवाना हुए ।

तत्पश्चात् (बाहर जाते हुए) उस अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने (मार्ग में) बहता हुआ पानी का एक छोटा-सा नाला देखा । उसे देखकर उसने उस नाले के दोनों ओर मिट्टी की पाल बाँधी । इसके पश्चात् नाविक जिस प्रकार अपनी नौका पानी में छोड़ता है, उसी प्रकार उसने भी अपने पात्र को नौकारूप मानकर, पानी में छोड़ा । फिर 'यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है', यों पात्रीरूपी नौका को पानी में प्रवाहित करते क्रीड़ा करने लगे । इस प्रकार करते हुए उस अतिमुक्तक कुमारश्रमण को स्थविरों ने देखा । स्थविर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आए और निकट आकर उन्होंने उनसे पूछा (कहा)–

भगवन् ! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी जो अतिमुक्तक कुमारश्रमण है, वह अतिमुक्तक कुमारश्रमण कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होगा, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा ? 'हे आर्यो !' इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी उन स्थविरों को सम्बोधित करके कहने लगे–'आर्यो ! मेरा अन्तेवासी अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण, जो प्रकृति से भद्र यावत् प्रकृति से विनीत है; वह अतिमुक्तक कुमारश्रमण इसी भव में सिद्ध होगा, यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा । अतः हे आर्यो ! तुम अतिमुक्तक कुमार श्रमण की हीलना मत करो, न ही उसे झिड़को न ही गर्हा और अवमानना करो । किन्तु हे देवानुप्रियो ! तुम अग्लानभाव से अतिमुक्तक कुमार श्रमण को स्वीकार करो, अग्लानभाव से उसकी सहायता करो, और अग्लानभाव से आहार-पानी से विनय सहित उसकी वैयावृत्य करो; क्योंकि अतिमुक्तक कुमारश्रमण (इसी भव में या संसार का) अन्त करने वाला है और चरम शरीरी है ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा इस प्रकार कहे जान पर (तत्क्षण) उन स्थविर भगवंतों ने

श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार किया । फिर उन स्थविर मुनियों ने अतिमुक्तक कुमार श्रमण को अग्लानभाव से स्वीकार किया और यावत् वे उसकी वैयावृत्य करने लगे ।

सूत्र - २२९

उस काल और उस समय में महाशुक्र कल्प से महासामान नामक महाविमान (विमान) से दो महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव श्रमण भगवान महावीर के पास प्रगट हुए ।

तत्पश्चात् उन देवों ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके उन्होंने मन से ही इस प्रकार का ऐसा प्रश्न पूछा-भगवन् ! आपके कितने सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ? तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उन देवों को भी मन से ही इस प्रकार का उत्तर दिया-हे देवानुप्रियो ! मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे, यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे । इस प्रकार उन देवों द्वारा मन से पूछे गए प्रश्न का उत्तर श्रमण भगवान महावीर ने भी मन से ही इस प्रकार दिया, जिससे वे देव हर्षित, सन्तुष्ट (यावत्) हृदयवाले एवं प्रफुल्लित हुए । फिर उन्होंने भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया । मन से उनकी शुश्रूषा और नमस्कार करते हुए यावत् पर्युपासना करने लगे ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार यावत् न अतिदूर और न ही अतिनिकट उत्कुटुक आसन से बैठे हुए यावत् पर्युपासना करते हुए उनकी सेवा में रहते थे । तत्पश्चात् ध्यानान्तरिका में प्रवृत्त होते हुए भगवान गौतम के मन में इस प्रकार का इस रूप का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ-निश्चय ही महर्द्धिक यावत् महानुभाग दो देव, श्रमण भगवान महावीर स्वामी के निकट प्रकट हुए; किन्तु मैं तो उन देवों को नहीं जानता कि वे कौन-से कल्प से या स्वर्ग से, कौन-से विमान से और किस प्रयोजन से शीघ्र यहाँ आए हैं ? अतः मैं भगवान महावीर स्वामी के पास जाऊं और वन्दना-नमस्कार करूँ; यावत् पर्युपासना करूँ, और ऐसा करके मैं इन और इस प्रकार के उन प्रश्नो को पूछूँ । यों श्री गौतम स्वामी ने विचार किया और अपने स्थान से उठे । फिर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आए यावत् उनकी पर्युपासना करने लगे । इसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा-गौतम ! एक ध्यान की समाप्त करके दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने से पूर्व तुम्हारे मन में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि मैं देवों सम्बन्धी तथ्य जानने के लिए श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा में जाकर उन्हें वन्दन-नमस्कार करूँ, यावत् उनकी पर्युपासना करूँ, उसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रश्न पूछूँ, यावत् इसी कारण से जहाँ मैं हूँ वहाँ तुम मेरे पास शीघ्र आए हो । हाँ, भगवन् ! यह बात ऐसी ही है । (भगवान महावीर स्वामी ने कहा-) गौतम ! तुम जाओ । वे देव ही इस प्रकार की जो भी बातें हुई थी, तुम्हें बताएंगे । तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर द्वारा इस प्रकार की आज्ञा मिलने पर भगवान गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और फिर जिस तरफ वे देव थे, उसी ओर जाने का संकल्प किया ।

इधर उन देवों ने भगवान गौतम स्वामी को अपनी ओर आते देखा तो वे अत्यन्त हर्षित हुए यावत् उनका हृदय प्रफुल्लित हो गया; वे शीघ्र ही खड़े हुए, फुर्ती से उनके सामने गए और जहाँ गौतम स्वामी थे, वहाँ उनके पास पहुँचे । फिर उन्हें यावत् वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले-भगवन् ! महाशुक्रकल्प में, महासामान नामक महाविमान से हम दोनों महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव यहाँ आए हैं ।

हमने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और मन से ही इस प्रकार की ये बातें पूछी कि भगवन् ! आप देवानुप्रिय के कितने शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ? तब हमारे द्वारा मन से ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी से पूछे जाने पर उन्होंने हमें मन से ही इस प्रकार का यह उत्तर दिया-हे देवानुप्रियो ! मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे । इस प्रकार मन से पूछे गए प्रश्न का उत्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी द्वारा मन से ही प्राप्त करके हम अत्यन्त हृष्ट और सन्तुष्ट हुए यावत् हमारा हृदय उनके प्रति खिंच गया । अतएव हम श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करके यावत् उनकी पर्युपासना कर रहे हैं। यों कहकर उन देवों ने भगवान गौतम स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और वे दोनों देव जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस लौट गए ।

सूत्र - २३०

'भगवन् !' इस प्रकार सम्बोधित करके भगवान गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार किया यावत् पूछा-भगवन् ! क्या देवों को 'संयत' कहा जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, यह देवों के लिए अभ्याख्यान है । भगवन् ! क्या देवों को 'असंयत' कहना चाहिए ? गौतम ! यह अर्थ (भी) समर्थ नहीं है । देवों के लिए यह निष्ठुर वचन है । भगवन् ! क्या देवों को 'संयतासंयत' कहना चाहिए ? गौतम ! यह अर्थ (भी) समर्थ नहीं है, यह असद्‌भूत वचन है । भगवन् ! तो फिर देवों को किस नाम से कहना चाहिए ? गौतम ! देवों को 'नोसंयत' कहा जा सकता है ।

सूत्र - २३१

भगवन् ! देव कौन-सी भाषा बोलते हैं ? अथवा (देवों द्वारा) बोली जाती हुई कौन-सी भाषा विशिष्टरूप होती है ? गौतम ! देव अर्धमागधी भाषा बोलते हैं, और बोली जाती हुई वह अर्धमागधी भाषा ही विशिष्टरूप होती है ।

सूत्र - २३२

भगवन् ! क्या केवली मनुष्य संसार का अन्त करने वाले को अथवा चरमशरीरी को जानता-देखता है ? हाँ, गौतम ! वह उसे जानता-देखता है । भगवन् ! जिस प्रकार केवली मनुष्य अन्तकर को, अथवा अन्तिमशरीरी को जानता-देखता है, क्या उसी प्रकार छद्मस्थ-मनुष्य जानता-देखता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, छद्मस्थ मनुष्य किसी से सूनकर अथवा प्रमाण द्वारा अन्तकर और अन्तिम शरीरी को जानता-देखता है ।

भगवन् ! सूनकर का अर्थ क्या है ? हे गौतम ! केवली से, केवली के श्रावक से, केवली की श्राविका से, केवली के उपासक से, केवली की उपासिका से, केवली-पाक्षिक से, केवलीपाक्षिक के श्रावक से, केवली-पाक्षिक की श्राविका से, केवलीपाक्षिक के उपासक से अथवा केवलीपाक्षिक की उपासिका से, इनमें से किसी भी एक से 'सूनकर' छद्मस्थ मनुष्य यावत् जानता और देखता है । यह हुआ 'सून कर' का अर्थ ।

सूत्र - २३३

भगवन् ! वह 'प्रमाण' क्या है ? कितने हैं ? गौतम ! प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है-(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) औपम्य (उपमान) और (४) आगम । प्रमाण के विषय में जिस प्रकार अनुयोग-द्वारसूत्र में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना यावत् न आत्मागम, न अनन्तरागम, किन्तु परम्परागम तक कहना ।

सूत्र - २३४

भगवन् ! क्या केवली मनुष्य चरम कर्म को अथवा चरम निर्जरा को जानता-देखता है ? हाँ, गौतम ! केवली चरम कर्म को या चरम निर्जरा को जानता-देखता है । भगवन् ! जिस प्रकार केवली चरमकर्म को या चरम निर्जरा को जानता-देखता है, क्या उसी तरह छद्मस्थ भी...यावत् जानता-देखता है ? गौतम ! जिस प्रकार 'अन्तकर' के विषय में आलापक कहा था, उसी प्रकार 'चरमकर्म' का पूरा आलापक कहना चाहिए ।

सूत्र - २३५

भगवन् ! क्या केवली प्रकृष्ट मन और प्रकृष्ट वचन धारण करता है ? हाँ, गौतम ! धारण करता है । भगवन् केवली जिस प्रकार के प्रकृष्ट मन और प्रकृष्ट वचन को धारण करता है, क्या उसे वैमानिक देव जानते-देखते हैं ? गौतम ! कितने ही (वैमानिक देव उसे) जानते-देखते हैं, और कितने ही नहीं जानते-देखते । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गए हैं; मायीमिथ्यादृष्टिरूप से उत्पन्न और अमायीसम्यग्दृष्टिरूप से उत्पन्न । जो मायी-मिथ्यादृष्टिरूप से उत्पन्न हुए हैं, वे नहीं जानते-देखते तथा जो अमायी-सम्यग्दृष्टिरूप से उत्पन्न हुए हैं, वे जानते-देखते हैं । भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता हे कि अमायी सम्यग्दृष्टि वैमानिक देव यावत् जानते-देखते हैं ? गौतम ! अमायी सम्यग्दृष्टि वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक । इनमें से जो अनन्तरोपपन्नक हैं, वे नहीं जानते-देखते; किन्तु जो परम्परोपपन्नक हैं, वे जानते-देखते हैं ।

भगवन् ! परम्परोपपन्नक वैमानिक देव जानते-देखते हैं, ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! परम्परोपपन्नक वैमानिक देव दो प्रकार के हैं, यथा–पर्याप्त और अपर्याप्त । इनमें से जो पर्याप्त हैं, वे इसे जानते-देखते हैं; किन्तु जो अपर्याप्त वैमानिक देव हैं, वे नहीं जानते-देखते । इसी तरह अनन्तरोपपन्नक-परम्परोपपन्नक, पर्याप्त-अपर्याप्त, एवं उपयोगयुक्त उपयोगरहित इस प्रकार के वैमानिक देवों में से उपयोगयुक्त वैमानिक देव हैं, वे ही जानते-देखते हैं । इसी कारण से ऐसा कहा गया है कि कितने ही वैमानिक देव जानते-देखते हैं, और कितने ही नहीं जानते-देखते ।

सूत्र - २३६

भगवन् ! क्या अनुत्तरोपपातिक देव अपने स्थान पर रहे हुए ही, यहाँ रहे हुए केवली के साथ आलाप और संलाप करने में समर्थ हैं ? गौतम ! हाँ, हैं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? हे गौतम ! अनुत्तरौपपातिक देव अपने स्थान पर रहे हुए ही, जो अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण अथवा व्याकरण (व्याख्या) पूछते हैं, उसका उत्तर यहाँ रहे हुए केवली भगवान देते हैं । इस कारण से यह कहा गया है कि अनुत्तरौपपातिक देव यावत् आलाप-संलाप करने में समर्थ हैं । भगवन् ! केवली भगवान यहाँ रहे हुए जिस अर्थ, यावत् व्याकरण का उत्तर देते हैं, क्या उस उत्तर को वहाँ रहे हुए अनुत्तरौपपातिक देव जानते-देखते हैं ? हाँ, गौतम ! वे जानते-देखते हैं । भगवन् ऐसा किस कारण से (कहा जाता है) कि जानते-देखते हैं ? गौतम ! उन देवों को अनन्त मनोद्रव्यवर्गणा लब्ध है, प्राप्त है, सम्मुख की हुई है । इस कारण से यहाँ विराजित केवली भगवान द्वारा कथित अर्थ, हेतु आदि को वे वहाँ रहे हुए ही जान-देख लेते हैं ।

सूत्र - २३७

भगवन् ! क्या अनुत्तरौपपातिक देव उदीर्णमोह हैं, उपशान्त-मोह हैं, अथवा क्षीणमोह हैं ? गौतम ! वे उदीर्णमोह नहीं हैं, उपशान्तमोह हैं, क्षीणमोह नहीं हैं ।

सूत्र - २३८

भगवन् ! क्या केवली भगवान आदानों (इन्द्रियों) से जानते और देखते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारण से केवली भगवान इन्द्रियों से नहीं जानते-देखते ? गौतम ! केवली भगवान पूर्वदिशा में सीमित भी जानते-देखते हैं, अमित (असीम) भी जानते-देखते हैं, यावत् केवली भगवान का (ज्ञान और) दर्शन निरावरण है । इस कारण से कहा गया है कि वे इन्द्रियों से नहीं जानते-देखते ।

सूत्र - २३९

भगवन् ! केवली भगवान इस समय में जिन आकाश-प्रदेशों पर अपने हाथ, पैर, बाहू और उरू को अवगाहित करके रहते हैं, क्या भविष्यकाल में भी वे उन्हीं आकाशप्रदेशों पर अपने हाथ आदि को अवगाहित करके रह सकते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! केवली भगवान का जीवद्रव्य वीर्यप्रधान योग वाला होता है, इससे उनके हाथ आदि उपकरण चलायमान होते हैं । हाथ आदि अंगों के चलित होते रहने से वर्तमान समय में जिन आकाशप्रदेशों में केवली भगवान अपने हाथ आदि को अवगाहित करके रहे हुए हैं, उन्हीं आकाशप्रदेशों पर भविष्यकाल में वे हाथ आदि को अवगाहित करके नहीं रह सकते । इसी कारण से यह कहा गया है कि केवली भगवान इसी समय में जिन आकाशप्रदेशों पर अपने हाथ, पैर यावत् उरू को अवगाहित करके रहते हैं, उस समय के पश्चात् आगामी समय में वे उन्हीं आकाशप्रदेशों पर अपने हाथ आदि को अवगाहित करके नहीं रह सकते ।

सूत्र - २४०

भगवन् ! क्या चतुर्दशपूर्वधारी (श्रुतकेवली) एक घड़े में से हजार घड़े, एक वस्त्र में से हजार वस्त्र, एक कट में से हजार कट, एक रथ में से हजार रथ, एक छत्र में से हजार छत्र और एक दण्ड में से हजार दण्ड करके दिखलाने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! वे ऐसा करके दिखलाने में समर्थ हैं ।

भगवन् ! चतुर्दशपूर्वधारी एक घट में से हजार घट यावत् करके दिखलाने में कैसे समर्थ हैं ? गौतम !

चतुर्दशपूर्वधारी श्रुतकेवली ने उत्करिका भेद द्वारा भेदे जाते हुए अनन्त द्रव्यों को लब्ध किया है, प्राप्त किया है तथा अभिसमन्वागत किया है । इस कारण से वह उपर्युक्त प्रकार से एक घट से हजार घट आदि करके दिखलाने में समर्थ हैं । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर यावत् विचरण करने लगे ।

शतक-५ – उद्देशक-५

सूत्र - २४१

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य शाश्वत, अनन्त, अतीत काल में केवल संयम द्वारा सिद्ध हुआ है ? गौतम ! जिस प्रकार प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक में कहा है, वैसा ही आलापक यहाँ भी कहना; यावत् 'अलमस्तु' कहा जा सकता है; यहाँ तक कहना ।

सूत्र - २४२

भगवन् ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि समस्त प्राण, समस्त भूत, समस्त जीव और समस्त सत्त्व, एवंभूत (जिस प्रकार कर्म बाँधा है, उसी प्रकार) वेदना वेदते हैं, भगवन् ! यह ऐसा कैसे है ? गौतम ! वे अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एवंभूत वेदना वेदते हैं, उन्होंने यह मिथ्या कथन किया है । हे गौतम ! मैं यों कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, अनेवंभूत वेदना वेदते हैं ।

भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, जिस प्रकार स्वयं ने कर्म किये हैं, उसी प्रकार वेदना वेदते हैं, वे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं किन्तु जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, जिस प्रकार कर्म किये हैं, उसी प्रकार वेदना नहीं वेदते वे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत वेदना वेदते हैं । इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि कतिपय प्राण भूतादि एवम्भूत वेदना वेदते हैं और कतिपय प्राण भूतादि अनेवंभूत वेदना वेदते हैं ।

भगवन् ! नैरयिक क्या एवंभूत वेदना वेदते हैं, अथवा अनेवंभूत वेदना वेदते हैं ? गौतम ! नैरयिक एवंभूत वेदना भी वेदते हैं और अनेवंभूत वेदना भी वेदते हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना वेदते हैं वे एवंभूत वेदना वेदते हैं और जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मों के अनुसार वेदना नहीं वेदते; वे अनेवंभूत वेदना वेदते हैं । इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त संसारी जीवों के समूह के विषय में जानना चाहिए ।

सूत्र - २४३

भगवन् ! जम्बूद्वीप में, इस भारतवर्ष में, इस अवसर्पिणी काल में कितने कुलकर हुए हैं ? गौतम ! सात । इसी तरह तीर्थंकरों की माता, पिता, प्रथम शिष्याएं, चक्रवर्तियों की माताएं, स्त्रीरत्न, बलदेव, वासुदेव, वासुदेवों के माता-पिता, प्रतिवासुदेव आदि का कथन जिस प्रकार 'समवायांगसूत्र' अनुसार यहाँ भी कहना । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । यह इसी प्रकार है ।'

शतक-५ – उद्देशक-६

सूत्र - २४४

भगवन् ! जीव अल्पायु के कारणभूत कर्म किस कारण से बाँधते हैं ? गौतम ! तीन कारणों से जीव अल्पायु के कारणभूत कर्म बाँधते हैं–(१) प्राणियों की हिंसा करके, (२) असत्य भाषण करके और (३) तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक, अनेषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम–दे कर । जीव अल्पायुष्कफल वाला कर्म बाँधते हैं

भगवन् ! जीव दीर्घायु के कारणभूत कर्म कैसे बाँधते हैं ? गौतम ! तीन कारणों से जीव दीर्घायु के कारण भूत कर्म बाँधते हैं–(१) प्राणातिपात न करने से, (२) असत्य न बोलने से, और (३) तथारूप श्रमण और माहन को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम–देने से । इस प्रकार से जीव दीर्घायुष्क के कर्म का बन्ध करते हैं ।

भगवन् ! जीव अशुभ दीर्घायु के कारणभूत कर्म किन कारणों से बाँधते हैं ? गौतम ! प्राणियों की हिंसा

करके, असत्य बोलकर, एवं तथारूप श्रमण और माहन की हीलना, निन्दा, खिंसना, गर्हा एवं अपमान करके, अमनोज्ञ और अप्रीतिकार अशन, पान, खादिम और स्वादिम दे करके । इस प्रकार जीव अशुभ दीर्घायु के कारण भूत कर्म बाँधते हैं ।

भगवन् ! जीव शुभ दीर्घायु के कारणभूत कर्म किन कारणों से बाँधते हैं ? गौतम ! प्राणिहिंसा न करने से, असत्य न बोलने से, और तथारूप श्रमण या माहन को वन्दना, नमस्कार यावत् पर्युपासना करके मनोज्ञ एवं प्रीति-कारक अशन, पान, खादिम और स्वादिम देने से । इस प्रकार जीव शुभ दीर्घायु का कारणभूत कर्म बाँधते हैं ।

सूत्र - २४५

भगवन् ! भाण्ड बेचते हुए किसी गृहस्थ का वह किराने का माल कोई अपहरण कर ले, फिर उस किराने के सामान की खोज करते हुए उस गृहस्थ को, हे भगवन् ! क्या आरम्भिकी क्रिया लगती है, या पारिग्रहिकी क्रिया लगती है ? अथवा मायाप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी या मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! उनको आरम्भिकी क्रिया लगती है, तथा पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी एवं अप्रत्याख्यानिकी क्रिया भी लगती है, किन्तु मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है, और कदाचित् नहीं लगती । यदि चुराया हुआ सामान वापस मिल जाता है, तो वे सब क्रियाएं अल्प हो जाती हैं ।

भगवन् ! किराना बेचने वाले गृहस्थ से किसी व्यक्ति ने किराने का माल खरीद लिया, उस सौदे को पक्का करने के लिए खरीददार ने सत्यंकार (बयाना) भी दे दिया, किन्तु वह (किराने का माल) अभी तक ले जाया गया नहीं है; भगवन् ! उस भाण्डविक्रेता को उस किराने के माल से आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी क्रियाओं में से कौन-सी क्रिया लगती है ? गौतम ! उस गृहपति को उस किराने के सामान से आरम्भिकी से लेकर अप्रत्या-ख्यानिकी तक चार क्रियाएं लगती हैं । मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती । खरीददार को तो ये सब क्रियाएं प्रतनु (अल्प) हो जाती हैं ।

भगवन् ! किराना बेचने वाले गृहस्थ के यहाँ से यावत् खरीददार उस किराने के माल को अपने यहाँ ले आया, भगवन् ! उस खरीददार को उस किराने के माल से आरम्भिकी से लेकर मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी तक कितनी क्रियाएं लगती हैं ? और उस विक्रेता गृहस्थ को पाँचों क्रियाओं में से कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! खरीददार को उस किराने के सामान से आरम्भिकी से लेकर अप्रत्याख्यानिकी तक चारों क्रियाएं लगती हैं, मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी क्रिया की भजना है; विक्रेता गृहस्थ को तो ये सब क्रियाएं प्रतनु (अल्प) होती हैं । भगवन् ! भाण्ड-विक्रेता गृहस्थ से खरीददार ने किराने का माल खरीद लिया, किन्तु जब तक उस विक्रेता को उस माल का मूल्यरूप धन नहीं मिला, तब तक, हे भगवन् ! उस खरीददार को उस अनुपनीत धन से कितनी क्रियाएं लगती हैं ? उस विक्रेता को कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! यह आलापक भी उपनीत भाण्ड के आलापक के समान समझना चाहिए । चतुर्थ आलापक-यदि धन उपनीत हो तो प्रथम आलापक (जो कि अनुपनीत भाण्ड के विषय में कहा है) के समान समझना चाहिए । (सारांश यह है कि) पहला और चौथा आलापक समान है, इसी तरह दूसरा और तीसरा आलापक समान है ।

भगवन् ! तत्काल प्रज्वलित अग्निकाय क्या महाकर्मयुक्त, तथा महाक्रिया, महाश्रव और महावेदना से युक्त होता है ? और इसके पश्चात् समय-समय में क्रमशः कम होता हुआ-बुझता हुआ तथा अन्तिम समय में अंगारभूत, मुर्मुरभूत और भस्मभूत हो जाता है क्या वह अग्निकाय अल्पकर्मयुक्त तथा अल्पक्रिया, अल्पाश्रव अल्पवेदना से युक्त होता है ? हाँ, गौतम ! तत्काल प्रज्वलित अग्निकाय महाकर्मयुक्त यावत् भस्मभूत हो जाता है, उसके पश्चात् यावत् अल्पवेदनायुक्त होता है ।

सूत्र - २४६

भगवन् ! कोई पुरुष धनुष को स्पर्श करता है, धनुष का स्पर्श करके वह बाण का स्पर्श (ग्रहण) करता है, बाण का स्पर्श करके स्थान पर से आसनपूर्वक बैठता है, उस स्थिति में बैठकर फैंके जाने वाले बाण को कान तक आयात करे-खींचे, खींचकर ऊंचे आकाश में बाण फैंकता है । ऊंचे आकाश में फैंका हुआ वह बाण, वहाँ आकाश में

जिन प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को सामने आते हुए मारे उन्हें सिकोड़ दे, अथवा उन्हें ढक दे, उन्हें परस्पर चिपका दे, उन्हें परस्पर संहत करे, उनका संघट्टा-जोर से स्पर्श करे, उनको परिताप-संताप दे, उन्हें क्लान्त करे-थकाए, हैरान करे, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकाए, एवं उन्हें जीवन से रहित कर दे, तो हे भगवन् ! उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! यावत् वह पुरुष धनुष को ग्रहण करता यावत् बाण को फैंकता है, तावत् वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, और प्राणातिपातिकी, इन पाँच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । जिन जीवों के शरीरों से वह धनुष बना है, वे जीव भी पाँच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं । इसी प्रकार धनुष की पीठ, जीवा (डोरी), स्नायु एवं बाण पाँच क्रियाओं से तथा शर, पत्र, फल और दारू भी पाँच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं ।

सूत्र - २४७

हे भगवन् ! जब वह बाण अपनी गुरुता से, अपने भारीपन से, अपने गुरुसंभारता से स्वाभाविकरूप से नीचे गिर रहा हो, तब वह (बाण) प्राण, भूत, जीव और सत्व को यावत् जीवन से रहित कर देता है, तब उस बाण फैंकने वाले पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! जब वह बाण अपनी गुरुता आदि से नीचे गिरता हुआ, यावत् जीवों को जीवन रहित कर देता है, तब वह बाण फैंकने वाला पुरुष कायिकी आदि चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । जिन जीवों के शरीर से धनुष बना है, वे जीव भी चार क्रियाओं से, धनुष की पीठ चार क्रियाओं से, जीवा और ण्हारू चार क्रियाओं से, बाण तथा शर, पत्र, फल और ण्हारू पाँच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं । 'नीचे' गिरते हुए बाण के अवग्रह में जो जीव आते हैं, वे जीव भी कायिकी आदि पाँच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं ।

सूत्र - २४८

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि जैसे कोई युवक अपने हाथ से युवती का हाथ पकड़े हुए हो, अथवा जैसे आरों से एकदम सटी (जकड़ी) हुई चक्र की नाभि हो, इसी प्रकार यावत् चार सौ-पाँच सौ योजन तक यह मनुष्यलोक मनुष्यों से ठसाठस भरा हुआ है । भगवन् ! यह सिद्धान्त प्ररूपण कैसे है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का यह कथन मिथ्या है । मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि चार-सौ, पाँच सौ योजन तक नरकलोक, नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है ।

सूत्र - २४९

भगवन् ! क्या नैरयिक जीव, एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है, अथवा बहुत से रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! इस विषय में जीवाभिगमसूत्र के समान आलापक यहाँ भी 'दुरहियास' शब्द तक कहना ।

सूत्र - २५०

'आधाकर्म अनवद्य-निर्दोष है', इस प्रकार जो साधु मन में समझता है, वह यदि उस आधाकर्म-स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है, तो उसके आराधना नहीं होती । वह यदि उस (आधाकर्म-) स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है ।

आधाकर्म के आलापकद्वय के अनुसार ही क्रीतकृत, स्थापित रचितक, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, वर्दलिकाभक्त, ग्लानभक्त, शय्यातरपिण्ड, राजपिण्ड, इन सब दोषों से युक्त आहारादि के विषय में प्रत्येक के दो-दो आलापक कहने चाहिए । आधाकर्म अनवद्य है, इस प्रकार जो साधु बहुत-से मनुष्यों के बीच में कहकर, स्वयं ही उस आधाकर्म-आहारादि का सेवन करता है, यदि वह उस स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है तो उसके आराधना नहीं होती, यावत् यदि वह उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है । आधाकर्मसम्बन्धी इस प्रकार के आलापकद्वय के समान क्रीतकृत से लेकर राजपिण्डदोष तक पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्येक के दो-दो आलापक समझ लेने चाहिए ।

'आधाकर्म अनवद्य है', इस प्रकार कहकर, जो साधु स्वयं परस्पर (भोजन करता है) दूसरे साधुओं को दिलाता है, किन्तु उस आधाकर्म दोष स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना काल करता है तो उसके अनाराधना तथा यावत् आलोचनादि करके काल करता है तो उसके आराधना होती है । इसी प्रकार क्रीतकृत से लेकर

राजपिण्ड तक पूर्ववत् यावत् अनाराधना एवं आराधना जान लेनी चाहिए। 'आधाकर्म अनवद्य है', इस प्रकार जो साधु बहुत-से लोगों के बीच में प्ररूपण (प्रज्ञापन) करता है, उसके भी यावत् आराधना नहीं होती, तथा वह यावत् आलोचना-प्रतिक्रमण करके काल करता है, उसके आराधना होती है। इसी प्रकार क्रीतकृत से लेकर यावत् राजपिण्ड तक पूर्वोक्त प्रकार से अनाराधना होती है, तथा यावत् आराधना होती है।

सूत्र - २५१

भगवन् ! अपने विषय में गण को अग्लान (अखेद) भाव से स्वीकार करते (अर्थात्-सूत्रार्थ पढ़ाते) हुए तथा अग्लानभाव से उन्हें सहायता करते हुए आचार्य और उपाध्याय, कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं ? गौतम ! कितने ही आचार्य-उपाध्याय उसी भव से सिद्ध होते हैं, कितने ही दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, किन्तु तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते।

सूत्र - २५२

भगवन् ! जो दूसरे पर सद्भूत का अपलाप और असद्भूत का आरोप करके असत्य मिथ्यादोषारोपण करता है, उसे किस प्रकार के कर्म बंधते हैं ? गौतम ! जो दूसरे पर सद्भूत का अपलाप और असद्भूत का आरोपण करके मिथ्या दोष लगाता है, उसके उसी प्रकार के कर्म बंधते हैं। वह जिस योनि में जाता है, वहीं उन कर्मों को वेदता है और वेदन करने के पश्चात् उनकी निर्जरा करता है। 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

शतक-५ – उद्देशक-७

सूत्र - २५३

भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल काँपता है, विशेष रूप से काँपता है ? यावत् उस-उस भाव में परिणत होता है? गौतम ! परमाणु पुद्गल कदाचित् काँपता है, विशेष काँपता है, यावत् उस-उस भाव में परिणत होता है, कदाचित् नहीं काँपता, यावत् उस-उस भाव में परिणत नहीं होता। भगवन् ! क्या द्विप्रदेशिक स्कन्ध काँपता है, विशेष काँपता है, यावत् उस-उस भाव में परिणत होता है ? हे गौतम ! कदाचित् कम्पित होता है, यावत् परिणत होता है, कदाचित् कम्पित नहीं होता, यावत् परिणत नहीं होता। कदाचित् एक देश से कम्पित होता है, एक देश से कम्पित नहीं होता। भगवन् ! क्या त्रिप्रदेशिक स्कन्ध कम्पित होता है, यावत् परिणत होता है ? गौतम ! कदाचित् कम्पित होता है, कदाचित् कम्पित नहीं होता; कदाचित् एक देश से कम्पित होता है, और एक देश से कम्पित नहीं होता; कदाचित् एक देश से कम्पित होता है, और बहुत देशों से कम्पित नहीं होता; कदाचित् बहुत देशों से कम्पित होता है और एक देश से कम्पित नहीं होता।

भगवन् ! क्या चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध कम्पित होता है ? गौतम ! कदाचित् कम्पित होता है, कदाचित् कम्पित नहीं होता; कदाचित् उसका एकदेश कम्पित होता है, कदाचित् एकदेश कम्पित नहीं होता; कदाचित् एक देश कम्पित होता है, और बहुत देश कम्पित नहीं होते; कदाचित् बहुत देश कम्पित होते हैं और एक देश कम्पित नहीं होता; कदाचित् बहुत देश कम्पित होते हैं और बहुत देश कम्पित नहीं होते। जिस प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार पंचप्रदेशी स्कन्ध यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक कहना।

सूत्र - २५४

भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल तलवार की धार या उस्तरे की धार पर अवगाहन करके रह सकता है ? हाँ, गौतम ! वह अवगाहन करके रह सकता है।

भगवन् ! उस धार पर अवगाहित होकर रहा हुआ परमाणुपुद्गल छिन्न या भिन्न हो जाता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। परमाणुपुद्गल में शस्त्र क्रमण (प्रवेश) नहीं कर सकता। इसी तरह यावत् असंख्यप्रदेशी स्कन्ध तक समझ लेना चाहिए। भगवन् ! क्या अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तलवार की धार पर या क्षुरधार पर अवगाहन करके रह सकता है ? हाँ, गौतम ! वह रह सकता है। भगवन् ! क्या तलवार की धार को या क्षुरधार को अवगाहित करके रहा हुआ अनन्तप्रदेशी स्कन्ध छिन्न या भिन्न हो जाता है ? हे गौतम ! कोई अनन्तप्रदेशी स्कन्ध छिन्न या भिन्न हो जाता है,

और कोई न छिन्न होता है, न भिन्न होता है ।

जिस प्रकार छेदन-भेदन के विषय में प्रश्नोत्तर किये गए हैं, उसी तरह से 'अग्निकाय के बीच में प्रवेश करता है'–इसी प्रकार के प्रश्नोत्तर कहने चाहिए । किन्तु अन्तर इतना ही है कि जहाँ उस पाठ में सम्भावित छेदन-भेदन का कथन किया है, वहाँ इस पाठ में 'जलता है' इस प्रकार कहना । इसी प्रकार पुष्कर-संवर्त्तक नामक महामेघ के मध्य में प्रवेश करता है, इस प्रकार के प्रश्नोत्तर कहने चाहिए । किन्तु वहाँ सम्भावित 'छिन्न-भिन्न होता है' के स्थान पर यहाँ–भीग जाता है, कहना । इसी प्रकार 'गंगा महानदी के प्रतिस्रोत में वह परमाणुपुद्‌गल आता है और प्रतिस्खलित होता है ।' इस तरह के तथा 'उदकावर्त्त या उदकबिन्दु में प्रवेश करता है, और वहाँ वह विनष्ट होता है,' (इस तरह के प्रश्नोत्तर कहना ।)

सूत्र - २५५

भगवन्‌ ! क्या परमाणु-पुद्‌गल सार्ध, समध्य और सप्रदेश है, अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं ? गौतम ! (परमाणुपुद्‌गल) अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है, किन्तु, सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश नहीं है । भगवन्‌ ! क्या द्विप्रदेशिक स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं ? गौतम ! द्विप्रदेशी स्कन्ध, सार्ध, अमध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्ध, समध्य और अप्रदेश नहीं है ।

भगवन्‌ ! क्या त्रिप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं । गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध अनर्ध है, समध्य है और सप्रदेश है; किन्धु सार्ध नहीं है, अमध्य नहीं है, और अप्रदेश नहीं है । द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान समसंख्या वाले स्कन्धों के विषय में कहना चाहिए । तथा विषमसंख्या वाले स्कन्धों के विषय में त्रिप्रदेशी स्कन्ध के अनुसार कहना चाहिए ।

भगवन्‌ ! क्या संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध, सार्ध, समध्य और सप्रदेश है, अथवा अनर्ध, अमध्य और अप्रदेश है? गौतम ! वह कदाचित्‌ सार्ध होता है, अमध्य होता है, और सप्रदेश होता है, और कदाचित्‌ अनर्ध होता है, समध्य होता है और सप्रदेश होता है । जिस प्रकार संख्यातप्रदेशी स्कन्ध के समान असंख्यातप्रदेशी और अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध के विषय में भी जानना ।

सूत्र - २५६

भगवन्‌ ! परमाणुपुद्‌गल, परमाणुपुद्‌गल को स्पर्श करता हुआ १-क्या एकदेश से एकदेश को स्पर्श करता है ?, २-एकदेश से बहुत देशों को स्पर्श करता है ?, ३-अथवा एकदेश से सबको स्पर्श करता है ?, ४-अथवा बहुत देशों से एकदेश को स्पर्श करता है ?, ५-या बहुत देशों से बहुत देशों को स्पर्श करता है ?, ६-अथवा बहुत देशों से सभी को स्पर्श करता है ?, ७-अथवा सर्व से एकदेश को स्पर्श करता है ?, ८-या सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है ? अथवा ९-सर्व से सर्व को स्पर्श करता है ? गौतम ! (परमाणुपुद्‌गल परमाणुपुद्‌गल को) १. एकदेश से एकदेश को स्पर्श नहीं करता, २. एकदेश से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता, ३. एकदेश से सर्व को स्पर्श नहीं करता, ४. बहुत देशों से एकदेश को स्पर्श नहीं करता, ५. बहुत देशों से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता, ६. बहुत देशों से सभी को स्पर्श नहीं करता, ७. न सर्व से एकदेश को स्पर्श करता है, ८. न सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है, अपितु ९. सर्व से सर्व को स्पर्श करता है ।

इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणु-पुद्‌गल सातवे अथवा नौवे, इन दो विकल्पों से स्पर्श करता है । त्रिप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणुपुद्‌गल (उपर्युक्त नौ विकल्पों में से) अन्तिम तीन विकल्पों से स्पर्श करता है । जिस प्रकार एक परमाणुपुद्‌गल द्वारा त्रिप्रदेशीस्कन्ध के स्पर्श करने का आलापक कहा गया है, उसी प्रकार एक परमाणुपुद्‌गल से चतुष्प्रदेशीस्कन्ध, पंचप्रदेशी स्कन्ध यावत्‌ संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध एवं अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक को स्पर्श करने का आलापक कहना ।

भगवन्‌ ! द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणुपुद्‌गल को स्पर्श करता हुआ किस प्रकार स्पर्श करता है ? हे गौतम ! (द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणुपुद्‌गल को) तीसरे और नौवें विकल्प से स्पर्श करता है । द्विप्रदेशीस्कन्ध, द्विप्रदेशीस्कन्ध को

स्पर्श करता हुआ पहले, तीसरे, सातवें और नौवें विकल्प से स्पर्श करता है । द्विप्रदेशीस्कन्ध, त्रिप्रदेशीस्कन्ध को स्पर्श करता हुआ आदिम तीन तथा अन्तिम तीन विकल्पों से स्पर्श करता है । इसमें बीच के तीन विकल्पों को छोड़ देना ।

द्विप्रदेशी स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श के आलापक समान हैं, द्विप्रदेशीस्कन्ध द्वारा चतुष्प्रदेशी-स्कन्ध, यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श का आलापक कहना ।

भगवन् ! अब त्रिप्रदेशीस्कन्ध परमाणुपुद्‌गल को तीसरे, छठे और नौवें विकल्प से; स्पर्श करता है । त्रिप्रदेशी स्कन्ध, द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ पहले, तीसरे, चौथे, छठे, सातवें और नौवें विकल्प से स्पर्श करता है । त्रिप्रदेशीस्कन्ध को स्पर्श करता हुआ त्रिप्रदेशीस्कन्ध पूर्वोक्त सभी स्थानों से स्पर्श करता है । त्रिप्रदेशी-स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशीस्कन्ध को स्पर्श करने के समान त्रिप्रदेशीस्कन्ध द्वारा चतुष्प्रदेशी स्कन्ध, यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करने के सम्बन्ध में कहना चाहिए । जिस प्रकार त्रिप्रदेशीस्कन्ध के द्वारा स्पर्श के स्कन्ध में कहा गया है, वैसे ही यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध द्वारा परमाणुपुद्‌गल से लेकर अनन्तप्रदेशीस्कन्ध तक को स्पर्श करने के सम्बन्ध में कहना ।

सूत्र - २५७

भगवन् ! परमाणुपुद्‌गल काल की अपेक्षा कब तक रहता है ? गौतम ! परमाणुपुद्‌गल (परमाणुपुद्‌गल के रूप में) जघन्य एक समय तक रहता है, और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक रहता है । इसी प्रकार यावत् अनन्त-प्रदेशीस्कन्ध तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! एक आकाश-प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल उस (स्व) स्थान में या अन्य स्थान में काल की अपेक्षा से कब तक सकम्प रहता है ? गौतम ! (एकप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग तक सकम्प रहता है । इसी तरह यावत् असंख्येय प्रदेशावगाढ़ तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! एक आकाशप्रदेश में अवगाढ़ पुद्‌गल काल की अपेक्षा से कब तक निष्कम्प (निरेज) रहता है ? गौतम ! (एक-प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्येय काल तक निष्कम्प रहता है । इसी प्रकार यावत् असंख्येय प्रदेशावगाढ़ तक कहना ।

भगवन् ! एकगुण काला पुद्‌गल काल की अपेक्षा से कब तक (एकगुण काला) रहता है ? गौतम ! जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः असंख्येयकाल तक (एकगुण काला पुद्‌गल रहता है) इसी प्रकार यावत् अनन्तगुण काले पुद्‌गल का कथन करना चाहिए ।

इसी प्रकार (एक गुण) वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पुद्‌गल के विषय में यावत् अनन्तगुण रूक्ष पुद्‌गल तक पूर्वोक्त प्रकार से काल की अपेक्षा से कथन करना चाहिए । इसी प्रकार सूक्ष्म-परिणत पुद्‌गल और इसी प्रकार बादर-परिणत पुद्‌गल के सम्बन्ध में कहना ।

भगवन् ! शब्दपरिणत पुद्‌गल काल की अपेक्षा कब तक (शब्दपरिणत) रहता है ? गौतम ! जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः आवलिका के असंख्येय भाग तक । एकगुण काले पुद्‌गल के समान अशब्दपरिणत पुद्‌गल कहना ।

भगवन् ! परमाणु-पुद्‌गल का काल की अपेक्षा से कितना लम्बा अन्तर होता है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल का अन्तर होता है ।

भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध का काल की अपेक्षा से कितना लम्बा अन्तर होता है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्टतः अनन्तकाल का अन्तर होता है ? इसी तरह (त्रिप्रदेशिकस्कन्ध से लेकर) यावत् अनन्तप्रदेशिकस्कन्ध तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! एकप्रदेशावगाढ़ सकम्प पुद्‌गल का अन्तर कितने काल का होता है ? हे गौतम ! जघन्यतः एक समय का, और उत्कृष्टतः असंख्येयकाल का अन्तर होता है । इसी तरह यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ़ तक का अन्तर कहना चाहिए ।

भगवन् ! एकप्रदेशावगाढ़ निष्कम्प पुद्‌गल का अन्तर कालतः कितने काल का होता है ? गौतम ! जघन्यतः

एक समय का और उत्कृष्टतः आवलिका के असंख्येय भाग का अन्तर होता है । इसी तरह यावत् असंख्येयप्रदेशावगाढ़ तक कहना चाहिए ।

वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शगत, सूक्ष्म-परिणत एवं बादरपरिणत पुद्‌गलों का जो संस्थितिकाल कहा गया है, वही उनका अन्तरकाल समझना चाहिए ।

भगवन् ! शब्दपरिणत पुद्‌गल का अन्तर काल की अपेक्षा कितने काल का है ? गौतम ! जघन्य एक समय का, उत्कृष्टतः असंख्येय काल का अन्तर होता है । भगवन् ! अशब्दपरिणत पुद्‌गल का अन्तर कालतः कितने काल का होता है ? गौतम ! जघन्य एक समय का और उत्कृष्टतः आवलिका के असंख्येय भाग का अन्तर होता है।

सूत्र - २५८

भगवन् ! इन द्रव्यस्थानायु, क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु और भावस्थानायु; इन सबमें कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे कम क्षेत्रस्थानायु है, उससे अवगाहनास्थानायु असंख्येय-गुणा है, उससे द्रव्य-स्थानायु असंख्येयगुणा है और उससे भावस्थानायु असंख्येयगुणा है ।

सूत्र - २५९

क्षेत्रस्थानायु, अवगाहना-स्थानायु, द्रव्यस्थानायु और भावस्थानायु; इनका अल्प-बहुत्व कहना चाहिए । इनमें क्षेत्रस्थानायु सबसे अल्प है, शेष तीन स्थानायु क्रमशः असंख्येयगुणा है ।

सूत्र - २६०

भगवन् ! क्या नैरयिक आरम्भ और परिग्रह से सहित होते हैं, अथवा अनारम्भी एवं अपरिग्रही होते हैं ? गौतम! नैरयिक सारम्भ एवं सपरिग्रह होते हैं, किन्तु अनारम्भी एवं अपरिग्रही नहीं होते । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा है ? गौतम ! नैरयिक पृथ्वीकाय का यावत् त्रसकाय का समारम्भ करते हैं, तथा उन्होंने शरीर परिगृहीत किये हुए हैं, कर्म परिगृहीत किये हुए हैं और सचित्त एवं मिश्र द्रव्य परिगृहीत किये हुए हैं, इस कारण से नैरयिक आरंभ एवं परिग्रहसहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं ।

भगवन् ! असुरकुमार क्या आरम्भयुक्त एवं परिग्रह-सहित होते हैं, अथवा अनारम्भी एवं अपरिग्रही होते हैं? गौतम ! असुरकुमार भी सारम्भ एवं सपरिग्रह होते हैं, किन्तु अनारम्भी एवं अपरीग्रही नहीं होते । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा है ? गौतम ! असुरकुमार पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक का समारम्भ करते हैं, तथा उन्होंने शरीर परीगृहीत किये हुए हैं, कर्म परीगृहीत किये हुए हैं, भवन परीगृहीत किये हुए हैं, वे देव-देवियों, मनुष्य पुरुष-स्त्रियों, तिर्यंच नर-मादाओं को परिगृहीत किये हुए हैं, तथा वे आसन, शयन, भाण्ड मात्रक, एवं विविध उपकरण परीगृहीत किये हुए हैं, एवं सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्य परीगृहीत किये हुए हैं । इस कारण से वे आरम्भयुक्त एवं परिग्रहसहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए ।

नैरयिकों के समान एकेन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए । भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव क्या समारम्भ-सपरिग्रह होते हैं, अथवा अनारम्भी एवं अपरिग्रही होते हैं ? गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव भी आरम्भ-परिग्रह से युक्त हैं, वे अनारम्भी-अपरिगृही नहीं हैं; इसका कारण भी वही पूर्वोक्त है । (वे षट्काय का आरम्भ करते हैं) तथा यावत् उन्होंने शरीर परीगृहीत किये हुए हैं, उनके बाह्य भाण्ड, मात्रक तथा विविध उपकरण परीगृहीत किये हुए होते हैं; एवं सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्य भी परीगृहीत किये हुए होते हैं । इसलिए वे यावत् अनारम्भी, अपरिग्रही नहीं होते । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव क्या आरम्भ-परिग्रहयुक्त हैं, अथवा आरम्भ-परिग्रहरहित हैं ? गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव, आरम्भ-परिग्रह-युक्त हैं, किन्तु आरम्भपरिग्रहरहित नहीं हैं; क्योंकि उन्होंने शरीर यावत् कर्म परीगृहीत किये हैं । तथा उनके टंक, कूट, शैल, शिखरी, एवं प्राग्भार परीगृहीत होते हैं । इसी प्रकार जल, स्थल, बिल, गुफा, लयन भी परीगृहीत होते हैं । उनके द्वारा उज्झर, निर्झर, चिल्लल, पल्लल तथा वप्रीण परीगृहीत होते हैं । उनके द्वारा कूप, तड़ाग, द्रह, नदी, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, सरोवर, सर-पंक्ति, सरसरपंक्ति, एवं बिलपंक्ति परीगृहीत होते हैं । तथा आराम, उद्यान, कानन, वन, वनखण्ड,

वनराजि, ये सब परीगृहीत किये हुए होते हैं । फिर देवकुल, सभा, आश्रम, प्याऊ, स्तूभ, खाई, खाई, ये भी परीगृहीत की होती है; तथा प्राकार, अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर ये सब परीगृहीत किये होते हैं। इनके द्वारा प्रासाद, घर, सरण, लयन, आपण परीगृहीत किये जाते हैं । शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ परिगृहीत होते हैं । शकट, रथ, यान, युग्य, गिल्ली, थिल्ली, शिविका, स्यन्दमानिका आदि परि-गृहीत किये होते हैं । लौही, लोहे की कड़ाही, कुड़छी आदि चीजें परिग्रहरूप में गृहीत होती है । इनके द्वारा भवन भी परीगृहीत होते हैं । देवदेवियाँ, मनुष्य नरनारियाँ, एवं तिर्यंच नर-मादाएं, आसन, शयन, खण्ड, भाण्ड एवं सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य परीगृहीत होते हैं । इस कारण से ये पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव आरम्भ और परीग्रह से युक्त होते हैं, किन्त अनारम्भी-अपरिग्रही नहीं होते । तिर्यंचयोनिक जीवों के समान मनुष्यों के विषय में भी कहना ।

जिस प्रकार भवनवासी देवों के विषय में कहा, वैसे ही वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के (आरम्भ-परिग्रहयुक्त होने के) विषय में (सहेतुक) कहना चाहिए ।

सूत्र - २६१

पाँच हेतु कहे गए हैं, (१) हेतु को जानता है, (२) हेतु को देखता, (३) हेतु का बोध प्राप्त करता- (४) हेतु का अभिसमागम-अभिमुख होकर सम्यक् रूप से प्राप्त-करता है, और (५) हेतुयुक्त छद्मस्थमरणपूर्वक मरता है ।

पाँच हेतु (प्रकारान्तर से) कहे गए हैं । वे इस प्रकार-(१) हेतु द्वारा सम्यक् जानता है, (२) हेतु से देखता है; (३) हेतु द्वारा श्रद्धा करता है, (४) हेतु द्वारा सम्यक्तया प्राप्त करता है, और (५) हेतु से छद्मस्थमरण मरता है ।

पाँच हेतु (मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से) कहे गए हैं । यथा-(१) हेतु को नहीं जानता, (२) हेतु को नहीं देखता, (३) हेतु की बोधप्राप्ति नहीं करता, (४) हेतु को प्राप्त नहीं करता, और (५) हेतुयुक्त अज्ञानमरण मरता है ।

पाँच हेतु हैं । यथा-हेतु से नहीं जानता, यावत् हेतु से अज्ञानमरण मरता है ।

पाँच अहेतु हैं-अहेतु को जानता है; यावत् अहेतुयुक्त केवलिमरण मरता है ।

पाँच अहेतु हैं-अहेतु जानता है, यावत् अहेतु द्वारा केवलिमरण मरता है ।

पाँच अहेतु हैं-अहेतु को नहीं जानता, यावत् अहेतुयुक्त छद्मस्थमरण मरता है ।

पाँच अहेतु कहे गए हैं-(१) अहेतु से नहीं जानता, यावत् (५) अहेतु से छद्मस्थमरण मरता है । 'हे भगवन् यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-५ – उद्देशक-८

सूत्र - २६२

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर पधारे । परीषद् दर्शन के लिए गई, यावत् धर्मोपदेश श्रवण कर वापस लौट गई । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी नारदपुत्र नाम के अनगार थे । वे प्रकृतिभद्र थे यावत् आत्मा को भावित करते विचरते थे । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार थे । वे प्रकृति से भद्र थे, यावत् विचरण करते थे ।

एक बार निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार, जहाँ नारदपुत्र नामक अनगार थे, वहाँ आए और उनके पास आकर उन्होंने पूछा-हे आर्य ! तुम्हारे मतानुसार सब पुद्गल क्या सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं ? नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार से कहा-आर्य; मेरे मतानुसार सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं । तत्पश्चात् उन निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगार से यों कहा-हे आर्य! यदि तुम्हारे मतानुसार सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, तो क्या, हे आर्य ! द्रव्यादेश से वे सर्वपुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ? अथवा हे आर्य ! क्या क्षेत्रादेश से सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश आदि पूर्ववत् हैं ? या कालादेश और भावादेश से समस्त पुद्गल उसी प्रकार हैं ? तदनन्तर वह नारदपुत्र अनगार, निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार से यों कहने लगे-हे आर्य ! मेरे मतानुसार, द्रव्यादेश से भी सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ।

क्षेत्रादेश से सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य आदि उसी तरह हैं, कालादेश तथा भावादेश से भी उसी प्रकार हैं ।

इस पर निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगार से इस प्रकार प्रतिप्रश्न किया-हे आर्य ! तुम्हारे मतानुसार द्रव्यादेश से सभी पुद्गल यदि सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो क्या तुम्हारे मतानुसार परमाणुपुद्गल भी इसी प्रकार सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ? और हे आर्य ! क्षेत्रादेश से भी यदि सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं तो तुम्हारे मतानुसार एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल भी सार्द्ध, समध्य एवं सप्रदेश होने चाहिए । और फिर हे आर्य ! यदि कालादेश से भी समस्त पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो तुम्हारे मतानुसार एक समय की स्थिति वाला पुद्गल भी सार्द्ध, समध्य एवं सप्रदेश होना चाहिए । इसी प्रकार भावादेश से भी हे आर्य ! सभी पुद्गल यदि सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो तदनुसार एकगुण काला पुद्गल भी तुम्हें सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश मानना चाहिए । यदि आपके मतानुसार ऐसा नहीं है, तो फिर आपने जो यह कहा था कि द्रव्यादेश से भी सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, क्षेत्रादेश से भी उसी तरह हैं, कालादेश से और भावादेश से भी उसी तरह हैं, किन्तु वे अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, इस प्रकार का आपका यह कथन मिथ्या हो जाता है । तब नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार से कहा-'हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही हम इस अर्थ को नहीं जानते-देखते । हे देवानुप्रिय ! यदि आपको इस अर्थ के परिकथन में किसी प्रकार की ग्लानि न हो तो मैं आप देवानुप्रिय से इस अर्थ को सूनकर, अवधारणपूर्वक जानना चाहता हूँ ।'

इस पर निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगार से कहा-हे आर्य ! मेरी धारणानुसार द्रव्यादेश से पुद्गल सप्रदेश भी हैं, अप्रदेश भी हैं, और वे पुद्गल अनन्त हैं । क्षेत्रादेश से भी इसी तरह हैं, और कालादेश से तथा भावादेश से भी वे इसी तरह हैं । जो पुद्गल द्रव्यादेश से अप्रदेश हैं, वे क्षेत्रादेश से भी नियमतः अप्रदेश हैं । कालादेश से उनमें से कोई सप्रदेश होते हैं, कोई अप्रदेश होते हैं और भावादेश से भी कोई सप्रदेश तथा कोई अप्रदेश होते हैं । जो पुद्गल क्षेत्रादेश से अप्रदेश होते हैं, उनमें कोई द्रव्यादेश से सप्रदेश और कोई अप्रदेश होते हैं, कालादेश और भावादेश से इसी प्रकार की भजना जाननी चाहिए । जिस प्रकार क्षेत्र से कहा, उसी प्रकार काल से और भाव से भी कहना चाहिए। जो पुद्गल द्रव्य से सप्रदेश होते हैं, वे क्षेत्र से कोई सप्रदेश और कोई अप्रदेश होते हैं; इसी प्रकार काल से और भाव से भी वे सप्रदेश और अप्रदेश समझ लेने चाहिए । जो पुद्गल क्षेत्र से सप्रदेश होते हैं; वे द्रव्य से नियमतः सप्रदेश होते हैं, किन्तु काल से तथा भाव से भजना से जानना चाहिए । जैसे द्रव्य से कहा, वैसे ही काल से और भाव से भी कथन करना ।

हे भगवन् ! (निर्ग्रन्थीपुत्र !) द्रव्यादेश से, क्षेत्रादेश से, कालादेश से और भावादेश से, सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गलों में कौन किनसे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं ? हे नारदपुत्र ! भावादेश से अप्रदेश पुद्गल सबसे थोड़े हैं। उनकी अपेक्षा कालादेश से अप्रदेश पुद्गल असंख्येयगुणा हैं; उनकी अपेक्षा द्रव्यादेश से अप्रदेश पुद्गल असंख्येयगुणा हैं और उनकी अपेक्षा भी क्षेत्रादेश से अप्रदेश पुद्गल असंख्येयगुणा हैं । उनसे क्षेत्रादेश से सप्रदेश पुद्गल असंख्यातगुणा हैं, उनसे द्रव्यादेश से सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं, उनसे कालादेशेन सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं और उनसे भी भावादेशेन सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं । इसके पश्चात् नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार को वन्दन-नमस्कार किया । उनसे सम्यक् विनयपूर्वक बार-बार उन्होंने क्षमायाचना की । क्षमायाचना करके वे संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

सूत्र - २६३

'भगवन् !' यों कहकर भगवान गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी से यावत् इस प्रकार पूछा-भगवन् ! क्या जीव बढ़ते हैं, घटते हैं या अवस्थित रहते हैं ? गौतम ! जीव न बढ़ते हैं, न घटते हैं, पर अवस्थित रहते हैं

भगवन् ! क्या नैरयिक बढ़ते हैं, अथवा अवस्थित रहते हैं ? गौतम ! नैरयिक बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं । जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कहा, इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! सिद्धों के विषय में मेरी पृच्छा है (कि वे बढ़ते हैं, घटते हैं या अवस्थित रहते हैं ?) गौतम ! सिद्ध बढ़ते

हैं, घटते नहीं, वे अवस्थित भी रहते हैं ।

भगवन् ! जीव कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ? गौतम ! सब काल में ।

भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक बढ़ते हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः आवलिका के असंख्यात भाग तक बढ़ते हैं । जिस प्रकार बढ़ने का काल कहा है, उसी प्रकार घटने का काल भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ? गौतम ! (नैरयिक जीव) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चौबीस मुहूर्त्त तक (अवस्थित रहते हैं) इसी प्रकार सातों नरक-पृथ्वीयों के जीव बढ़ते हैं, घटते हैं, किन्तु अवस्थित रहने के काल में इस प्रकार भिन्नता है । यथा–रत्नप्रभापृथ्वी में ४८ मुहूर्त्त का, शर्कराप्रभापृथ्वी में चौबीस अहोरात्रि का, वालुकाप्रभापृथ्वी में एक मास का, पंकप्रभा में दो मास का, धूमप्रभा में चार मास का, तमःप्रभा में आठ मास का और तमस्तमःप्रभा में बारह मास का अवस्थान-काल है ।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों की वृद्धि-हानि के विषय में कहा है, उसी प्रकार असुरकुमार देवों की वृद्धि-हानि के सम्बन्ध में समझना चाहिए । असुरकुमार देव जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट ४८ मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार दस ही प्रकार के भवनपतिदेवों की वृद्धि, हानि और अवस्थिति का कथन करना चाहिए ।

एकेन्द्रिय जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं । इन तीनों का काल जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः आवलिका का असंख्यातवा भाग (समझना चाहिए) द्वीन्द्रिय जीव भी इसी प्रकार बढ़ते-घटते हैं । इनके अवस्थान-काल में भिन्नता इस प्रकार है–ये जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः दो अन्तर्मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं । द्वीन्द्रिय की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों तक (का वृद्धि-हानि-अवस्थिति-काल) कहना ।

शेष सब जीव, बढ़ते-घटते हैं, यह पहले की तरह ही कहना चाहिए । किन्तु उनके अवस्थान-काल में इस प्रकार भिन्नता है, तथा–सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों का दो अन्तर्मुहूर्त्त का; गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यग्यो-निकों का चौबीस मुहूर्त्त का, सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का ४८ मुहूर्त्त का, गर्भज मनुष्यों का चौबीस मुहूर्त्त का, वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और सौधर्म, ईशान देवों का ४८ मुहूर्त्त का, सनत्कुमार देव का अठारह अहोरात्रि तथा चालीस मुहूर्त्त का, माहेन्द्र देवलोक के देवों का चौबीस रात्रिदिन और बीस मुहूर्त्त का, ब्रह्मलोकवर्ती देवों का ४५ रात्रिदिवस का, लान्तक देवों का ९० रात्रिदिवस का, महाशुक्र-देवलोकस्थ देवों का १६० अहोरात्रि का, सहस्रारदेवों का दो सौ रात्रिदिन का, आनत और प्राणत देवलोक के देवों का संख्येय मास का, आरण और अच्युत देवलोक के देवों का संख्येय वर्षों का अवस्थान-काल है । इसी प्रकार नौ ग्रैवेयक देवों के विषय में जान लेना चाहिए । विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी देवों का अवस्थानकाल असंख्येय हजार वर्षों का है । तथा सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी देवों का अवस्थानकाल पल्योपम का संख्यातवा भाग है । और ये सब जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवे भाग तक बढ़ते-घटते हैं; और इनका अवस्थानकाल जो ऊपर कहा गया है, वही है ।

भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक बढ़ते हैं ? गौतम ! जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः आठ समय तक सिद्ध बढ़ते हैं । भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक सिद्ध अवस्थित रहते हैं ।

भगवन् ! क्या जीव सोपचय (उपचयसहित) हैं, सापचय (अपचयसहित) हैं, सोपचय-सापचय हैं या निरु-पचय (उपचयरहित)-निरपचय(अपचयरहित) हैं ? गौतम ! जीव न सोपचय हैं, और न ही सापचय हैं, और न सोपचय-सापचय हैं, किन्तु निरुपचय-निरपचय हैं । एकेन्द्रिय जीवों में तीसरा पद (विकल्प-सोपचय-सापचय) कहना चाहिए । शेष सब जीवों में चारों ही पद (विकल्प) कहने चाहिए । भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान सोपचय हैं, सापचय हैं, सोपचय-सापचय हैं या निरुपचय-निरपचय हैं ? गौतम ! सिद्ध भगवान सोपचय हैं, सापचय नहीं हैं, सोपचय-सापचय भी नहीं हैं, किन्तु निरुपचय-निरपचय हैं ।

भगवन् ! जीव कितने काल तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं ? गौतम ! जीव सर्वकाल तक निरुपचय-

निरपचय रहते हैं । भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सोपचय रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग तक । भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सापचय रहते हैं ? (गौतम !) सोपचय के पूर्वोक्त कालमानानुसार सापचय का काल जानना । और वे सोपचय-सापचय कितने काल तक रहते हैं ? (गौतम!) सोपचय का जितना काल कहा है, उतना ही सोपचय-सापचय का काल जानना । नैरयिक कितने काल तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं ।

सभी एकेन्द्रिय जीव सर्व काल (सर्वदा) सोपचय-सापचय रहते हैं । शेष सभी जीव सोपचय भी हैं, सापचय भी हैं, सोपचय-सापचय भी हैं और निरुपचय-निरपचय भी हैं । इन चारों का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट, आवलिका का असंख्यातवा भाग है । अवस्थितों (निरुपचय-निरपचय) में व्युत्क्रान्तिकाल (विरहकाल) के अनुसार कहना चाहिए ।

भगवन् ! सिद्ध भगवान कितने काल तक सोपचय रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक । और सिद्ध भगवान, निरुपचय-निरपचय कितने काल तक रहते हैं ? (गौतम !) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-५ – उद्देशक-९

सूत्र - २६४

उस काल और उस समय में...यावत् गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार पूछा–

भगवन् ! यह 'राजगृह' नगर क्या है– ? क्या पृथ्वी राजगृह नगर कहलाता है ? अथवा क्या जल राजगृह-नगर कहलाता है ? यावत् वनस्पति क्या राजगृहनगर कहलाता है ? जिस प्रकार 'एजन' नामक उद्देशक में पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की (परिग्रह-विषयक) वक्तव्यता कही गई है, क्या उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए ? यावत् क्या सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य, राजगृह नगर कहलाता है ? गौतम ! पृथ्वी भी राजगृहनगर कहलाती है, यावत् सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य भी राजगृहनगर कहलाता है ।

भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! पृथ्वी जीव-(पिण्ड) है और अजीव-(पिण्ड) भी है, इसलिए यह राजगृह नगर कहलाती है, यावत् सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य भी जीव हैं, और अजीव भी हैं, इसलिए ये द्रव्य (मिलकर) राजगृहनगर कहलाते हैं । हे गौतम ! इसी कारण से पृथ्वी आदि को राजगृहनगर कहा जाता है ।

सूत्र - २६५

हे भगवन् ! क्या दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है ? हाँ, गौतम ! दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है । भगवन् ! किस कारण से दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है ? गौतम ! दिन में शुभ पुद्गल होते हैं अर्थात् शुभ पुद्गल-परिणाम होते हैं, किन्तु रात्रि में अशुभ पुद्गल अर्थात् अशुभपुद्गल-परिणाम होते हैं । इस कारण से दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है ।

भगवन् ! नैरयिकों के (निवासस्थान में) उद्योत होता है, अथवा अन्धकार होता है ? गौतम ! नैरयिक जीवों के (स्थान में) उद्योत नहीं होता, अन्धकार होता है । भगवन् ! किस कारण से नैरयिकों के (स्थान में) उद्योत नहीं होता, अन्धकार होता है ? गौतम ! नैरयिक जीवों के अशुभ पुद्गल और अशुभ पुद्गल परिणाम होते हैं, इस कारण से ।

भगवन् ! असुरकुमारों के क्या उद्योत होता है, अथवा अन्धकार होता है ? गौतम ! असुरकुमारों के उद्योत होता है, अन्धकार नहीं होता । भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! असुरकुमारों के शुभ पुद्गल या शुभ परिणाम होते हैं; इस कारण से कहा जाता है कि उनके उद्योत होता है, अन्धकार नहीं होता । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों तक के लिए कहना चाहिए । जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कथन किया, उसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों से लेकर त्रीन्द्रिय जीवों तक के विषय में कहना चाहिए ।

भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवों के क्या उद्योत है अथवा अन्धकार है ? गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीवों के उद्योत भी है,

अन्धकार भी है । भगवन् ! किस कारण से चतुरिन्द्रिय जीवों के उद्योत भी है, अन्धकार भी है ? गौतम ! चतु-रिन्द्रिय जीवों के शुभ और अशुभ (दोनों प्रकार के) पुद्‌गल होते हैं, तथा शुभ और अशुभ पुद्‌गल परिणाम होते हैं, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि उनके उद्योत भी है और अन्धकार भी है । इसी प्रकार यावत् मनुष्यों तक के लिए कहना चाहिए । जिस प्रकार असुरकुमारों के (उद्योत-अन्धकार) के विषय में कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिए ।

सूत्र - २६६

भगवन् ! क्या वहाँ (नरकक्षेत्र में) रहे हुए नैरयिकों को इस प्रकार का प्रज्ञान होता है, जैसे कि–समय, आवलिका, यावत् उत्सर्पिणी काल (या) अवसर्पिणी काल ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से नरकस्थ नैरयिकों को काल का प्रज्ञान नहीं होता ? गौतम ! यहाँ (मनुष्यलोक में) समयादि का मान है, यहाँ उनका प्रमाण है, इसलिए यहाँ ऐसा प्रज्ञान होता है कि–यह समय है, यावत् यह उत्सर्पिणीकाल है, (किन्तु नरक में न तो समयादि का मान है, न प्रमाण है और न ही प्रज्ञान है) इस कारण से कहा जाता है कि नरकस्थित नैरयिकों को इस प्रकार से यावत् उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का प्रज्ञान नहीं होता । जिस प्रकार नरकस्थित नैरयिकों के विषय में कहा गया है; उसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों तक कहना ।

भगवन् ! क्या यहाँ (मनुष्यलोक में) रहे हुए मनुष्यों को इस प्रकार का प्रज्ञान होता है, कि समय (है), अथवा यावत् (यह) उत्सर्पिणीकाल (है) ? हाँ, गौतम ! होता है । भगवन् ! किस कारण से (ऐसा कहा जाता है) ? गौतम ! यहाँ (मनुष्यलोक में) उनका (समयादि का) मान है, यहाँ उनका प्रमाण है, इसलिए यहाँ उनको उनका (समयादि का) इस प्रकार से प्रज्ञान होता है, यथा–यह समय है, या यावत् यह उत्सर्पिणीकाल है । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यहाँ रहे हुए मनुष्यों को समयादि का प्रज्ञान होता है ।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के (समयादिप्रज्ञान के) विषय में कहना चाहिए ।

सूत्र - २६७

उस काल और उस समय में पार्श्वापत्य स्थविर भगवंत, जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आए । वहाँ आकर वे श्रमण भगवान महावीर से अदूरसामन्त खड़े रहकर इस प्रकार पूछने लगे–भगवन् ! असंख्य लोक में क्या अनन्त रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे; तथा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे ? अथवा परिमित रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे; तथा नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं और नष्ट होंगे ? हाँ, आर्यो ! असंख्य लोक में अनन्त रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, यावत् उपर्युक्त रूप सारा पाठ कहना चाहिए। भगवन् ! किस कारण से असंख्य लोक में अनन्त रात्रि-दिवस उत्पन्न यावत् नष्ट होंगे ? हे आर्यो ! यह निश्चित है कि आपके (गुरुस्वरूप) पुरुषादानीय, अर्हत् पार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत कहा है । इसी प्रकार लोक को अनादि, अनन्त, परिमित, अलोक से परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और उपर विशाल, तथा नीचे पल्यंकाकार, बीच में उत्तम वज्राकार और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकार कहा है । उस प्रकार के शाश्वत, अनादि, अनन्त, परित्त, परिवृत्त, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, तथा नीचे पल्यंकाकार, मध्य में उत्तमवज्राकार और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकारसंस्थित लोक में अनन्त जीवघन उत्पन्न हो-हो कर नष्ट होते हैं और परित्त जीवघन भी उत्पन्न हो-हो कर विनष्ट होते हैं । इसलिए ही तो यह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत है, परिणत है । यह, अजीवों से लोकित–निश्चित होता है, तथा यह (भूत आदि धर्म वाला लोक) विशेषरूप से लोकित–निश्चित होता है । जो (प्रमाण से) लोकित–अवलोकित होता है, वही लोक है न ? (पार्श्वापत्य स्थविर–) हाँ, भगवन् ! (वही लोक है) इसी कारण से, हे आर्यो ! ऐसा कहा जाता है कि असंख्य लोक में इत्यादि सब पूर्ववत् कहना । तब से वे पार्श्वापत्य स्थविर भगवंत श्रमण भगवान महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जानने लगे ।

इसके पश्चात् उन (पार्श्वापत्य) स्थविर भगवंतों ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन–नमस्कार किया । वे

बोले-भगवन् ! चातुर्याम धर्म के बदले हम आपके समीप प्रतिक्रमण सहित पंचमहाव्रतरूप धर्म को स्वीकार करके विचरण करना चाहते हैं । भगवन्-देवानुप्रियो ! जिस प्रकार आपको सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध मत करो। इसके पश्चात् वे पार्श्वापत्य स्थविर भगवन्त...यावत् अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास के साथ सिद्ध हुए यावत् सर्व दुःखों से प्रहीण हुए और कई (स्थविर) देवलोकों में देवरूप से उत्पन्न हुए ।

सूत्र - २६८

भगवन् ! देवगण कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! चार प्रकार के-भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क वैमानिक भवनवासी दस प्रकार के हैं । वाणव्यन्तर आठ प्रकार के हैं, ज्योतिष्क पाँच प्रकार के हैं और वैमानिक दो प्रकार के हैं

सूत्र - २६९

राजगृह नगर क्या है ? दिन में उद्योत और रात्रि में अन्धकार क्यों होता है ? समय आदि काल का ज्ञान किन जीवों को होता है, किनको नहीं ? रात्रि-दिवस के विषय में पार्श्वजिनशिष्यों के प्रश्न और देवलोकविषयक प्रश्न; इतने विषय इस उद्देशक में हैं ।

सूत्र - २७०

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । इसी प्रकार है ।'

शतक-५ - उद्देशक-१०

सूत्र - २७१

उस काल और उस समय में चम्पा नामकी नगरी थी । पंचम शतक के प्रथम उद्देशक समान यह उद्देशक भी कहना । विशेष यह कि यहाँ 'चन्द्रमा' कहना ।

शतक-५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक–६

सूत्र - २७२

१. वेदना, २. आहार, ३. महाश्रव, ४. सप्रदेश, ५. तमस्काय, ६. भव्य, ७. शाली, ८. पृथ्वी, ९. कर्म और १०. अन्यपूथिक-वक्तव्यता; ये दस उद्देशक हैं ।

शतक-६ – उद्देशक-१

सूत्र - २७३

भगवन् ! क्या यह निश्चित है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है और जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है ? तथा क्या महावेदना वाला और अल्पवेदना वाला, इन दोनों में वही जीव श्रेयान् (श्रेष्ठ) है, जो प्रशस्तनिर्जरा वाला है ? हाँ, गौतम ! जो महावेदना वाला है...इत्यादि जैसा ऊपर कहा है, इसी प्रकार समझना चाहिए

भगवन् ! क्या छठी और सातवीं (नरक–) पृथ्वी के नैरयिक महावेदना वाले हैं ? हाँ, गौतम ! वे महावेदना वाले हैं । भगवन् ! तो क्या वे (छठी-सातवीं नरकभूमि के नैरयिक) श्रमण-निर्ग्रन्थों की अपेक्षा भी महानिर्जरा वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! तब यह कैसे कहा जाता है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है, यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला है ? गौतम ! (मान लो) जैसे दो वस्त्र हैं । उनमें से एक कर्दम के रंग से रंगा हुआ है और दूसरा वस्त्र खंजन के रंग से रंगा हुआ है । गौतम ! इन दोनों वस्त्रों में कौन-सा मुश्किल से धूल सकने योग्य, बड़ी कठिनाई से काले धब्बे उतारे जा सकें ऐसा और दुष्परिकर्मतर है और कौन-सा वस्त्र जो सरलता से धोया जा सके, आसानी से जिसके दाग उतारे जा सके तथा सुपरिकर्मतर है ? भगवन् ! उन दोनों वस्त्रों में जो कर्दम रंग से रंगा हुआ है, वही (वस्त्र) दुर्धोततर, दुर्वाम्यतर एवं दुष्परिकर्मतर है । हे गौतम ! इसी तरह नैरयिकों के पाप-कर्म गाढीकृत, चिक्कणी-कृत, निधत्त किये हुए एवं निकाचित हैं, इसलिए वे सम्प्रगाढ वेदना को वेदते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं है तथा महापर्यवसान वाले भी नहीं हैं । अथवा जैसे कोई व्यक्ति जोरदार आवाझ के साथ महाघोष करता हुआ लगातार जोर-जोर से चोट मारकर एरण को कूटता-पीटता हुआ भी उस एरण के स्थूल पुद्गलों को विनष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता; इसी प्रकार हे गौतम ! नैरयिकों के पापकर्म गाढ़ किये हुए हैं;...यावत् इसलिए वे महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाले नहीं हैं

(गौतमस्वामी ने पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर पूर्ण किया–) भगवन् ! उन दोनों वस्त्रों में जो खंजन के रंग से रंगा हुआ है, वह वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुपरिकर्मतर है । हे गौतम ! इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथाबादर कर्म, मन्द विपाक वाले, सत्तारहित किये हुए, विपरिणाम वाले होते हैं । (इसलिए वे) शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं । जितनी कुछ भी वेदना को वेदते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं ।

हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पूले को धधकती अग्नि में डाल दे तो क्या वह सूखे घास का पूला धधकती आग में डालते ही शीघ्र जल उठता है ? हाँ, भगवन् ! वह शीघ्र ही जल उठता है । हे गौतम ! इसी तरह श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथाबादर कर्म शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं, यावत् वे श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा एवं महापर्यव-सान वाले होते हैं । (अथवा) जैसे कोई पुरुष अत्यन्त तपे हुए लोहे के तवे पर पानी की बूँद डाले तो वह यावत् शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है, इसी प्रकार हे गौतम ! श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथाबादर कर्म भी शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं और वे यावत् महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाले होते हैं । इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि जो महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है, यावत् वही श्रेष्ठ है जो प्रशस्तनिर्जरा वाला है ।

सूत्र - २७४

भगवन् ! करण कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! करण चार प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं–मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण ।

भगवन् ! नैरयिक जीवों के कितने प्रकार के करण कहे गए हैं ? गौतम ! चार प्रकार के । मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण । इसी प्रकार समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के ये चार प्रकार के करण कहे गए हैं ।

एकेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार के करण होते हैं-काय-करण और कर्म-करण । विकलेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार के करण होते हैं, यथा-वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण । भगवन् ! नैरयिक जीव करण से वेदना वेदते हैं अथवा अकरण से ? गौतम ! नैरयिक जीव करण से वेदना वेदते हैं, अकरण से वेदना नहीं वेदते । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! नैरयिक-जीवों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं, मन-करण यावत् कर्म-करण । उनके ये चारों करण अशुभ होने से वे करण द्वारा असातावेदना वेदते हैं, अकरण द्वारा नहीं । इस कारण से ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं ।

भगवन् ! असुरकुमार देव क्या करण से वेदना वेदते हैं, अथवा अकरण से ? गौतम ! असुरकुमार करण से वेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! असुरकुमारों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं । यथा-मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण । असुरकुमारों के ये चारों करण शुभ होने से वे करण से सातावेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण से नहीं । इसी तरह यावत् स्तनितकुमार तक कहना ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के लिए भी इसी प्रकार प्रश्न है । गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण द्वारा नहीं ।) विशेष यह है कि इनके ये करण शुभाशुभ होने से ये करण द्वारा विविध प्रकार से वेदना वेदते हैं; किन्तु अकरण द्वारा नहीं ।

औदारिक शरीर वाले सभी जीव शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना (कदाचित् सातावेदना कदाचित् असातावेदना) वेदते हैं । देव शुभकरण द्वारा सातावेदना वेदते हैं ।

सूत्र - २७५

भगवन् ! जीव (क्या) महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं, अथवा अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ? गौतम ! कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं, कई जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं, तथा कई जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार-महावेदना और महानिर्जरा वाला होता है । छठी-सातवीं नरक-पृथ्वीयों के नैरयिक जीव महावेदना वाले, किन्तु अल्पनिर्जरा वाले होते हैं । शैलेशी-अवस्था को प्राप्त अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले होते हैं और अनुत्तरौपपातिक देव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले होते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

सूत्र - २७६

महावेदना, कर्दम और खंजन के रंग से रंगे हुए वस्त्र, अधिकरणी, घास का पूला, लोहे का तवा या कड़ाह, करण और महावेदना वाले जीव; इतने विषयों का निरूपण इस प्रथम उद्देशक में किया गया है ।

शतक-६ – उद्देशक-२

सूत्र - २७७

राजगृह नगर में...यावत् भगवान महावीर ने फरमाया-यहाँ प्रज्ञापना सूत्र में जो आहार-उद्देशक कहा है, वह सम्पूर्ण जान लेना । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-६ – उद्देशक-३

सूत्र – २७८,२७९

१. बहुकर्म, २. वस्त्रमें प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से (विस्रसा) पुद्गल, ३. सादि, ४. कर्मस्थिति, ५. स्त्री, ६. संयत, ७. सम्यग्दृष्टि, ८. संज्ञी, ९. भव्य, १०. दर्शन, ११. पर्याप्त, १२. भाषक, १३. परित्त, १४. ज्ञान, १५. योग, १६. उपयोग, १७. आहारक, १८. सूक्ष्म, १९. चरम-बन्ध २०. अल्पबहुत्व का वर्णन इस उद्देशकमें किया गया है ।

सूत्र - २८०

भगवन् ! क्या निश्चय ही महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाश्रव वाले और महावेदना वाले जीव के सर्वतः

पुद्‌गलों का बन्ध होता है ? सर्वतः पुद्‌गलों का चय होता है ? सर्वतः पुद्‌गलों का उपचय होता है ? सदा सतत पुद्‌गलों का चय होता है ? सदा सतत पुद्‌गलों का उपचय होता है ? क्या सदा निरन्तर उसका आत्मा दुरूपता में, दुर्वर्णता में, दुर्गन्धता में, दुःरसता में, दुःस्पर्शता में, अनिष्टता में, अकान्तता, अप्रियता, अशुभता, अमनोज्ञता और अमनोगमता में, अनिच्छनीयता में, अनभिध्यितता में, अधमता में, अनुर्ध्वता में, दुःखरूप में,-असुखरूप में बार-बार परिणत होता है ? हाँ, गौतम ! महाकर्म वाले जीव के...यावत् ऊपर कहे अनुसार...यावत् परिणत होता है ।

(भगवन् !) किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! जैसे कोई अहत (जो पहना गया न हो), धौत, तन्तुगत वस्त्र हो, वह वस्त्र जब क्रमशः उपयोग में लिया जाता है, तो उसके पुद्‌गल सब ओर से बंधते हैं, सब ओर से चय होते हैं, यावत् कालान्तर में वह वस्त्र अत्यन्त मैला और दुर्गन्धित रूप में परिणत हो जाता है, इसी प्रकार महाकर्म वाला जीव उपर्युक्त रूप से यावत् असुखरूप में बार-बार परिणत होता है ।

भगवन् ! क्या निश्चय ही अल्पकर्म वाले, अल्पक्रिया वाले, अल्प आश्रव वाले और अल्पवेदना वाले जीव के सर्वतः पुद्‌गल भिन्न हो जाते हैं ? सर्वतः पुद्‌गल छिन्न होते जाते हैं ? सर्वतः पुद्‌गल विध्वस्त होते जाते हैं ? सर्वतः पुद्‌गल समग्ररूप से ध्वस्त हो जाते हैं ? क्या सदा सतत पुद्‌गल भिन्न, छिन्न, विध्वस्त और परिविध्वस्त होते हैं ? क्या उसका आत्मा सदा सतत सुरूपता में यावत् सुखरूप में और अदुःखरूप में बार-बार परिणत होता है ? हाँ, गौतम ! अल्पकर्म वाले जीव का...यावत् ऊपर कहे अनुसार ही...यावत् परिणत होता है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! जैसे कोई मैला, पंकित, मैलसहित अथवा धूल से भरा वस्त्र हो और उसे शुद्ध करने का क्रमशः उपक्रम किया जाए, उसे पानी से धोया जाए तो उस पर लगे हुए मैले-अशुभ पुद्‌गल सब ओर से भिन्न होने लगते हैं, यावत् उसके पुद्‌गल शुभरूप में परिणत हो जाते हैं, इसी कारण (हे गौतम ! अल्पकर्म वाले जीव के लिए कहा गया है कि वह...यावत् बारबार परिणत होता है ।)

सूत्र - २८१

भगवन् ! वस्त्र में जो पुद्‌गलों का उपचय होता है, वह क्या प्रयोग (पुरुष-प्रयत्न) से होता है, अथवा स्वाभाविक रूप से ? गौतम ! वह प्रयोग से भी होता है, स्वाभाविक रूप से भी होता है । भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र में पुद्‌गलों का उपचय प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से होता है, तो क्या उसी प्रकार जीवों के कर्मपुद्‌गलों का उपचय भी प्रयोग से और स्वभाव से होता है ? गौतम ! जीवों के कर्मपुद्‌गलों का उपचय प्रयोग से होता है, किन्तु स्वाभाविक रूप से नहीं होता ।

भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! जीवों के तीन प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं-मनः प्रयोग, वचनप्रयोग और कायप्रयोग । इन तीन प्रयोग के प्रयोगों से जीवों के कर्मों का उपचय कहा गया है । इस प्रकार समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार का प्रयोग कहना चाहिए । पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक जीवों तक के एक प्रकार के (काय) प्रयोग से (कर्मपुद्‌गलोपचय होता है) । विकलेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार के प्रयोग होते हैं, यथा-वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग । इस प्रकार उनके इन दो प्रयोगों से कर्म (पुद्‌गलों) का उपचय होता है । अतः समस्त जीवों के कर्मोपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक-रूप से नहीं । इसी कारण से कहा गया है कि...यावत् स्वाभाविक रूप से नहीं होता । इस प्रकार जिस जीव का जो प्रयोग हो, वह कहना चाहिए । यावत् वैमानिक तक प्रयोगों से कर्मोपचय का कथन करना चाहिए ।

सूत्र - २८२

भगवन् ! वस्त्र में पुद्‌गलों का जो उपचय होता है, वह सादि-सान्त है, सादिअनन्त है, अनादि-सान्त है, अथवा अनादि-अनन्त है ? गौतम ! वस्त्र में पुद्‌गलों का जो उपचय होता है, वह सादि-सान्त होता है, किन्तु न तो वह सादि-अनन्त होता है, न अनादि-सान्त होता है और न अनादि-अनन्त होता है ।

हे भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र में पुद्‌गलोपचय सादि-सान्त है, किन्तु सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त नहीं है, क्या उसी प्रकार जीवों का कर्मोपचय भी सादि-सान्त है, सादि-अनन्त है, अनादि-सान्त है,

अथवा अनादि-अनन्त है ? गौतम ! कितने ही जीवों का कर्मोपचय सादि-सान्त है, कितने ही जीवों का कर्मोपचय अनादि-सान्त है और कितने ही जीवों का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है, किन्तु जीवों का कर्मोपचय सादि-अनन्त नहीं है । भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! ईर्यापथिक-बन्धक का कर्मोपचय सादि-सान्त है, भवसिद्धिक जीवों का कर्मोपचय अनादि-सान्त है, अभवसिद्धिक जीवों का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है । इसी कारण हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा है ।

भगवन् ! क्या वस्त्र सादि-सान्त है ? इत्यादि पूर्वोक्त रूप से चार भंग करके प्रश्न करना चाहिए । गौतम ! वस्त्र सादि-सान्त है; शेष तीन भंगों का वस्त्र में निषेध करना चाहिए ।

भगवन् ! जैसे वस्त्र आदि-सान्त है, किन्तु सादि-अनन्त नहीं है, अनादि-सान्त नहीं है और न अनादि-अनन्त है, वैसे जीवों के लिए भी चारों भंगों को लेकर प्रश्न करना चाहिए-गौतम ! कितने ही जीव सादि-सान्त हैं, कितने ही जीव सादि-अनन्त हैं, कई जीव अनादि-सान्त हैं और कितनेक अनादि-अनन्त हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य तथा देव गति और आगति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं; सिद्धगति की अपेक्षा से सिद्धजीव सादि-अनन्त हैं; लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि-सान्त हैं और संसार की अपेक्षा अभवसिद्धिक जीव अनादि-अनन्त हैं ।

सूत्र - २८३

भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई है ? गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय यावत् अन्तराय ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म की बन्धस्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है । उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है । अबाधाकाल जितनी स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेधकाल जानना । इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विषय में भी जानना । वेदनीय कर्म की जघन्य (बन्ध-) स्थिति दो समय की है, उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की जाननी चाहिए मोहनीय कर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। सात हजार वर्ष का अबाधाकाल है । अबाधाकाल की स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेककाल जानना चाहिए ।

आयुष्यकर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक तैंतीस सागरोपम की है । इसका कर्मनिषेक काल (तैंतीस सागरोपम का तथा शेष) अबाधाकाल जानना चाहिए । नामकर्म और गोत्र कर्म की बन्धस्थिति जघन्य आठ मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है । इसका दो हजार वर्ष का अबाधाकाल है । उस अबाधाकाल की स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेक काल होता है । अन्तरायकर्म के विषय में ज्ञानावरणीय कर्म की तरह समझ लेना चाहिए ।

सूत्र - २८४

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या स्त्री बाँधती है ? पुरुष बाँधता है, अथवा नपुंसक बाँधता है ? अथवा नो-स्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बाँधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को स्त्री भी बाँधती है, पुरुष भी बाँधता है और नपुंसक भी बाँधता है, परन्तु नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक होता है, वह कदाचित् बाँधता है, कदाचित् नहीं बाँधता । इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझना चाहिए ।

भगवन् ! आयुष्यकर्म को क्या स्त्री बाँधती है, पुरुष बाँधता है, नपुंसक बाँधता है अथवा नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बाँधता है ? गौतम ! आयुष्यकर्म स्त्री कदाचित् बाँधती है और कदाचित् नहीं बाँधती । इसी प्रकार पुरुष और नपुंसक के विषय में भी कहना चाहिए । नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक आयुष्यकर्म को नहीं बाँधता ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म क्या संयत बाँधता है, असंयत बाँधता है, संयता-संयत बाँधता है अथवा नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत बाँधता है ? गौतम ! संयत कदाचित् बाँधता है और कदाचित् नहीं बाँधता, किन्तु असंयत बाँधता है, संयतासंयत भी बाँधता है, परन्तु नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयता-संयत नहीं बाँधता । इस प्रकार आयुष्यकर्म

को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझना । आयुष्यकर्म के सम्बन्ध में नीचे के तीन–के लिए भजना समझना । नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत आयुष्यकर्म को नहीं बाँधते ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म क्या सम्यग्दृष्टि बाँधता है, मिथ्यादृष्टि बाँधता है अथवा सम्यग्-मिथ्यादृष्टि बाँधता है ? गौतम ! सम्यग्दृष्टि कदाचित् बाँधता है, कदाचित् नहीं बाँधता, मिथ्यादृष्टि बाँधता है और सम्यग्-मिथ्या दृष्टि भी बाँधता है । इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझना । आयुष्य कर्म को नीचे के दो–भजना से बाँधते हैं सम्यग्-मिथ्यादृष्टि नहीं बाँधते । भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या संज्ञी बाँधता है, असंज्ञी बाँधता है अथवा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी बाँधता है ? गौतम ! संज्ञी कदाचित् बाँधता है और कदाचित् नहीं बाँधता । असंज्ञी बाँधता है और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं बाँधता । इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छह कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए । वेदनीयकर्म को आदि के दो बाँधते हैं, किन्तु अन्तिम के लिए भजना है आयुष्यकर्म को आदि के दो–जीव भजना से बाँधते हैं । नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव आयुष्यकर्म को नहीं बाँधते ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या भवसिद्धिक बाँधता है, अभवसिद्धिक बाँधता है अथवा नोभवसिद्धिक - नोअभवसिद्धिक बाँधता है ? गौतम ! भवसिद्धिक जीव भजना से बाँधता है । अभवसिद्धिक जीव बाँधता है और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव नहीं बाँधता । इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए । आयुष्यकर्म को नीचे के दो भजना से बाँधते हैं । ऊपर का नहीं बाँधता ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या चक्षुदर्शनी बाँधता है, अचक्षुदर्शनी बाँधता है, अवधिदर्शनी बाँधता है अथवा केवलदर्शनी बाँधता है ? गौतम ! नीचे के तीन भजना से बाँधते हैं किन्तु–केवलदर्शनी नहीं बाँधता । इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए । वेदनीयकर्म को नीचले तीन बाँधते हैं, किन्तु केवलीदर्शनी भजना से बाँधते हैं ।

भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म को पर्याप्तक जीव बाँधता है, अपर्याप्तक जीव बाँधता है अथवा नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव बाँधता है ? गौतम ! पर्याप्तक जीव भजना से बाँधता है; अपर्याप्तक जीव बाँधता है और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव नहीं बाँधता । इस प्रकार आयुष्यकर्म के सिवाय शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए । आयुष्यकर्म को नीचले दो भजना से बाँधते हैं । अंत का नहीं बाँधता ।

भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म को भाषक जीव बाँधता है या अभाषक ? गौतम ! दोनों–भजना से बाँधते हैं। इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सात के विषय में कहना । वेदनीयकर्म को भाषक बाँधता है, अभाषक भजना से बाँधता है ।

भगवन् ! क्या परित जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बाँधता है, अपरित्त जीव बाँधता है, अथवा नोपरित्त-नोअपरित्त जीव बाँधता है ? गौतम ! परित्त जीव ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से बाँधता, अपरित्त जीव बाँधता है और नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नहीं बाँधता । इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए । आयुष्यकर्म को परित्त जीव भी और अपरित्त जीव भी भजना से बाँधते हैं; नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नहीं बाँधते । भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म क्या आभिनिबोधिक ज्ञानी बाँधता है, श्रुतज्ञानी बाँधता है, अवधि-ज्ञानी बाँधता है, मनःपर्यवज्ञानी बाँधता है अथवा केवलज्ञानी बाँधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को नीचले चार भजना से बाँधते हैं; केवलज्ञानी नहीं बाँधता । इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए । वेदनीयकर्म को नीचले चारों बाँधते हैं; केवलज्ञानी भजना से बाँधता है ।

भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म को मति-अज्ञानी बाँधता है, श्रुत-अज्ञानी बाँधता है या विभंगज्ञानी बाँधता है? गौतम! आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों को ये बाँधते हैं । आयुष्यकर्म को ये तीनों भजना से बाँधते हैं

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या मनोयोगी बाँधता हैं, वचनयोगी बाँधता है, काययोगी बाँधता है या अयोगी बाँधता है ? गौतम ! नीचले तीन–भजना से बाँधते हैं; अयोगी नहीं बाँधता । इसी प्रकार वेदनीय को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए । वेदनीय कर्म को नीचले बाँधते हैं; अयोगी नहीं बाँधता ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय (आदि) कर्म को क्या साकारोपयोग वाला बाँधता है या अनाकारोपयोग वाला बाँधता है ? गौतम ! भजना से (आठों कर्म-प्रकृतियों) बाँधते हैं ।

भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म आहारक जीव बाँधता है या अनाहारक जीव बाँधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को दोनों जीव भजना से बाँधते हैं । इसी प्रकार वेदनीय और आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष छहों कर्म-प्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए । आहारक जीव वेदनीय कर्म को बाँधता है, अनाहारक के लिए भजना है आयुष्यकर्म को आहारक के लिए भजना है; अनाहारक नहीं बाँधता ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या सूक्ष्म जीव बाँधता है, बादर जीव बाँधता है, अथवा नोसूक्ष्म-नोबादर जीव बाँधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को सूक्ष्मजीव बाँधता है, बादर जीव भजना से बाँधता है, किन्तु नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नहीं बाँधता । इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सातों कर्म-प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए। आयुष्यकर्म को सूक्ष्म और बादरजीव भजना से बाँधते, नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नहीं बाँधता । भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय (आदि) कर्म को चरमजीव बाँधता है, अथवा अचरमजीव बाँधता है ? गौतम ! दोनों प्रकार के जीव, आठों कर्मप्रकृतियों को भजना से बाँधते हैं ।

सूत्र - २८५

हे भगवन् ! स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक; इन जीवों में से कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोड़े जीव पुरुषवेदक हैं, उनसे संख्येयगुणा स्त्रीवेदक जीव हैं, उनसे अनन्तगुणा अवेदक हैं और उनसे भी अनन्तगुणा नपुंसकवेदक हैं । इन सर्व पदों का यावत् सबसे थोड़े अचरम जीव हैं और उनसे चरमजीव अनन्तगुणा हैं पर्यन्त अल्पबहुत्व कहना । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-६ – उद्देशक-४

सूत्र - २८६

भगवन् ! क्या जीव कालादेश से सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ? गौतम ! कालादेश से जीव नियमतः सप्रदेश हैं। भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कालादेश से सप्रदेश है या अप्रदेश हैं ? गौतम ! एक नैरयिक जीव कालादेश से कदाचित् सप्रदेश है और कदाचित् अप्रदेश है । इस प्रकार यावत् एक सिद्ध-जीव-पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा बहुत जीव सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ? गौतम ! अनेक जीव कालादेश की अपेक्षा नियमतः सप्रदेश हैं । भगवन् ! नैरयिक जीव कालादेश की अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ? गौतम ! १. सभी (नैरयिक) सप्रदेश हैं, २. बहुत-से सप्रदेश और एक अप्रदेश है, और ३. बहुत-से और बहुत-से अप्रदेश हैं । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश भी है, अप्रदेश भी हैं । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए । नैरयिक जीवों के समान सिद्धपर्यन्त शेष सभी जीवों के लिए कहना चाहिए ।

जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष सभी आहारक जीवों के लिए तीन भंग कहने चाहिए, यथा–(१) सभी प्रदेश, (२) बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश और (३) बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश । अनाहारक जीवों के लिए एकेन्द्रिय को छोड़कर छह भंग इस प्रकार कहने चाहिए, यथा–(१) सभी सप्रदेश, (२) सभी अप्रदेश, (३) एक सप्रदेश और एक अप्रदेश, (४) एक सप्रदेश और बहुत अप्रदेश, (५) बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश और (६) बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश । सिद्धों के लिए तीन भंग कहने चाहिए ।

भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीवों के लिए औघिक जीवों की तरह कहना चाहिए । नौभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्धों में (पूर्ववत्) तीन भंग कहने चाहिए ।

संज्ञी जीवोंमें जीव आदि तीन भंग कहने चाहिए । असंज्ञी जीवोंमें एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहना । नैरयिक, देव और मनुष्योंमें छ भंग कहने चाहिए । नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहना ।

सलेश्य जीवों का कथन, औघिक जीवों की तरह करना चाहिए । कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या वाले जीवों का कथन आहारक जीव की तरह करना चाहिए । किन्तु इतना विशेष है कि जिसके जो लेश्या हो, उसके वह लेश्या कहनी चाहिए । तेजोलेश्या में जीव आदि तीन भंग कहने चाहिए; किन्तु इतनी विशेषता है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में छह भंग कहने चाहिए । पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में जीवादिक तीन भंग कहने चाहिए । अलेश्य जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए तथा अलेश्य मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए

सम्यग्दृष्टि जीवों में जीवादिक तीन भंग कहने चाहिए । विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिए । मिथ्यादृष्टि जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में छह भंग कहने चाहिए ।

संयतों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए । असंयतों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । संयतासंयत जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए । नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए ।

सकषायी जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए । एकेन्द्रिय (सकषायी) में अभंगक कहना चाहिए । क्रोधकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । मानकषायी और मायाकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । नैरयिकों और देवों में छह भंग कहने चाहिए । लोभकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । नैरयिक जीवों में छह भंग कहने चाहिए । अकषायी जीवों, जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए ।

औघिकज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान में जीवादि तीन भंग कहना । विकलेन्द्रियों में छह भंग कहना । अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान में जीवादि तीन भंग कहना । औघिक अज्ञान, मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहना । विभंगज्ञान में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए ।

जिस प्रकार औघिक जीवों का कथन किया, उसी प्रकार सयोगी जीवों का कथन करना चाहिए । मनोयोगी वचनयोगी और काययोगी में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए । विशेषता यह है कि जो काययोगी एकेन्द्रिय होते हैं, उनमें अभंगक होता है । अयोगी जीवों का कथन अलेश्यजीवों के समान कहना चाहिए ।

साकार-उपयोगवाले और अनाकार-उपयोगवाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहना ।

सवेदक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान करना चाहिए । स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवों में तीन भंग कहने चाहिए । विशेष यह है कि नपुंसकवेद में जो एकेन्द्रिय होते हैं, उनमें अभंगक है । जैसे अकषायी जीवों के विषय में कथन किया, वैसे ही अवेदक जीवों के विषय में कहना चाहिए ।

जैसे औघिक जीवों का कथन किया, वैसे ही सशरीरी जीवों के विषय में कहना चाहिए । औदारिक और वैक्रियशरीर वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । आहारक शरीर वाले जीवों में जीव और मनुष्य में छह भंग कहने चाहिए । तैजस और कार्मण शरीर वाले जीवों का कथन औघिक जीवों के समान करना चाहिए । अशरीरी, जीव और सिद्धों के लिए तीन भंग कहने चाहिए ।

आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति वाले जीवों का कथन संज्ञीजीवों के समान कहना । आहारअपर्याप्ति वाले जीवों का कथन अनाहारक जीवों के समान कहना । शरीर-अपर्याप्ति, इन्द्रिय-अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास-अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ तीन भंग कहने चाहिए । (अपर्याप्तक) नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए । भाषा-अपर्याप्ति और मनःअपर्याप्ति वाले जीवों में जीव आदि तीन भंग कहना । नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग जानना ।

सूत्र - २८७

सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति, इन चौदह द्वारों का कथन ऊपर किया गया है ।

सूत्र - २८८

भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी है, अप्रत्याख्यानी है या प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी है ? गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी है, अप्रत्याख्यानी भी है और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी भी हैं । इसी तरह सभी जीवों के सम्बन्ध में प्रश्न है । गौतम ! नैरयिक जीव यावत् चतुरिन्द्रिय जीव अप्रत्याख्यानी है, इन जीवों में शेष दो भंगों का निषेध करना। पंचेन्द्रियतिर्यंच प्रत्याख्यानी नहीं हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी भी हैं । मनुष्य तीनों भंग के स्वामी हैं । शेष जीवों नैरयिकों समान जानना ।

भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान को जानते हैं, अप्रत्याख्यान को जानते हैं और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान को जानते हैं ? गौतम ! जो पंचेन्द्रिय जीव हैं, वे तीनों को जानते हैं । शेष जीव प्रत्याख्यान को नहीं जानते ।

भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान करते हैं, अप्रत्याख्यान करते हैं, प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान करते हैं ? गौतम! औघिक दण्डक के समान प्रत्याख्यान विषय में कहना ।

भगवन् ! क्या जीव, प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं अथवा प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ? गौतम ! जीव और वैमानिक देव प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं, और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं । शेष सभी जीव अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ।

सूत्र - २८९, २९०

प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान का जानना, करना, तीनों का (जानना, करना) तथा आयुष्य की निर्वृत्ति, इस प्रकार ये चार दण्डक सप्रदेश उद्देशक में कहे गए हैं । भगवन् ! यह इसी प्रकार है । यह इसी प्रकार है ।

शतक-६ – उद्देशक-५

सूत्र - २९१

भगवन् ! 'तमस्काय' किसे कहा जाता है ? क्या 'तमस्काय' पृथ्वी को कहते हैं या पानी को ? गौतम ! पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती, किन्तु पानी 'तमस्काय' कहलाता है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा है ? गौतम ! कोई पृथ्वीकाय ऐसा शुभ है, जो देश को प्रकाशित करता है और कोई पृथ्वीकाय ऐसा है, जो देश को प्रकाशित नहीं करता इस कारण से पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती, पानी ही तमस्काय कहलाता है ।

भगवन् ! तमस्काय कहाँ से उत्पन्न होता है और कहाँ जाकर स्थित होता है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर तीरछे असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने के बाद अरुणवरद्वीप की बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणोदयसमुद्र में ४२,००० योजन अवगाहन करने (जाने) पर वहाँ के ऊपरी जलान्त से एक प्रदेश वाली श्रेणी आती है, यहीं से तमस्काय प्रादुर्भूत हुआ है । वहाँ से १७२१ योजन ऊंचा जाने के बाद तीरछा विस्तृत-से-विस्तृत होता हुआ, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र, इन चार देवलोकों को आवृत करके उनसे भी ऊपर पंचम कल्प के रिष्ट विमान प्रस्तट तक पहुँचा है और यहीं संस्थित हुआ है ।

भगवन् ! तमस्काय का संस्थान (आकार) किस प्रकार का है ? गौतम ! तमस्काय नीचे तो मल्लक के मूल के आकार का है और ऊपर कुक्कुटपंजरक आकार का है ।

भगवन् ! तमस्काय का विष्कम्भ और परिक्षेप कितना कहा गया है ? गौतम ! तमस्काय दो प्रकार का कहा गया है–एक तो संख्येयविस्तृत और दूसरा असंख्येयविस्तृत । इनमें से जो संख्येयविस्तृत है, उसका विष्कम्भ संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन है । जो तमस्काय असंख्येयविस्तृत है, उसका विष्कम्भ असंख्येय हजार योजन है और परिक्षेप भी असंख्येय हजार योजन है ।

भगवन् ! तमस्काय कितना बड़ा कहा गया है ? गौतम ! समस्त द्वीप-समुद्रों के सर्वाभ्यन्तर यह जम्बूद्वीप है, यावत् यह एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है । कोई महाऋद्धि यावत् महानुभाव वाला देव–

'यह चला, यह चला' यों करके तीन चुटकी बजाए, उतने समय में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र वापस आ जाए, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरायुक्त यावत् देव की गति से चलता हुआ देव यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दन चले, यावत् उत्कृष्ट छह महीने तक चले तब जाकर कुछ तमस्काय को उल्लंघन कर पाता है, और कुछ तमस्काय को उल्लंघन नहीं कर पाता । हे गौतम ! तमस्काय इतना बड़ा है । भगवन् ! तमस्काय में गृह है अथवा गृहापण है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! तमस्काय में ग्राम है यावत् अथवा सन्निवेश है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! क्या तमस्काय में उदार मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा है । भगवन् ! क्या उसे देव करता है, असुर करता है या नाग करता है ? गौतम ! देव भी, असुर भी, और नाग भी करता है ।

भगवन् ! तमस्काय में क्या बादर स्तनित शब्द है, क्या बादर विद्युत है ? हाँ, गौतम ! है । भगवन् ! क्या उसे देव, असुर या नाग करता है ? गौतम ! तीनों ही करते हैं ।

भगवन् ! क्या तमस्काय में बादर पृथ्वीकाय है और बादर अग्निकाय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । वह निषेध विग्रहगतिसमापन्न के सिवाय समझना । भगवन् ! क्या तमस्काय में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वे (चन्द्रादि) तमस्काय के आसपास हैं । भगवन् ! क्या तमस्काय में चन्द्रमा की आभा या सूर्य की आभा है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है; किन्तु तमस्काय में (जो प्रभा है, वह) अपनी आत्मा को दूषित करने वाली है ।

भगवन् ! तमस्काय वर्ण से कैसा है ? गौतम ! तमस्काय वर्ण से काला, काली कान्ति वाला, गम्भीर, रोमहर्षक, भीम, उत्त्रासजनक और परमकृष्ण कहा गया है । कोई देव भी उस तमस्काय को देखते ही सर्वप्रथम क्षुब्ध हो जाता है । कदाचित् कोई देव तमस्काय में (प्रवेश) करे तो प्रवेश करने के पश्चात् वह शीघ्रातीशीघ्र त्वरित गति से झटपट उसे पार कर जाता है ।

भगवन् ! तमस्काय के कितने नाम कहे गए हैं ? गौतम ! तमस्काय के तेरह नाम कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं- तम, तमस्काय, अन्धकार, महान्धकार, लोकान्धकार, लोकतमिस्र, देवान्धकार, देवतमिस्र, देवारण्य, देवव्यूह, देवपरिघ, देवप्रतिक्षोभ और अरुणोदकसमुद्र ।

भगवन् ! क्या तमस्काय पृथ्वी का परिणाम है, जीव का परिणाम है अथवा पुद्गल का परिणाम है ? गौतम ! तमस्काय पृथ्वी का परिणाम नहीं है, किन्तु जल का परिणाम है, जीव का परिणाम भी है और पुद्गल का परिणाम भी है । भगवन् ! क्या तमस्काय में सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पृथ्वीकायिक रूप में यावत् त्रस-कायिक रूप में पहले उत्पन्न हो चूके हैं ? हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चूके हैं, किन्तु बादर पृथ्वीकायिक रूप में या बादर अग्निकायिक रूप में उत्पन्न नहीं हुए हैं ।

सूत्र - २९२

भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं ? गौतम ! आठ । भगवन् ! ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ है ? गौतम! ऊपर सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों से ऊपर और ब्रह्मलोक देवलोक के अरिष्ट नामक विमान के (तृतीय) प्रस्तट से नीचे, अखाड़ा के आकार की समचतुरस्र संस्थान वाली आठ कृष्णराजियाँ हैं । यथा-पूर्व में दो, पश्चिम में दो, दक्षिण में दो और उत्तर में दो । पूर्वाभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिणदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की हुई है । दक्षिणदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने पश्चिमदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है । पश्चिमदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने उत्तरदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है और उत्तरदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्वदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की हुई है । पूर्व और पश्चिम दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं, उत्तर और दक्षिण की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्रिकोण हैं, पूर्व और पश्चिम की तथा उत्तर और दक्षिण की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं ।

सूत्र - २९३

''पूर्व और पश्चिम की कृष्णराजि षट्कोण हैं, तथा दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण हैं । शेष सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं ।''

सूत्र - २९४

भगवन् ! कृष्णराजियों का आयाम, विष्कम्भ और परिक्षेप कितना है ? गौतम ! कृष्णराजियों का आयाम असंख्येय हजार योजन है, विष्कम्भ संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन कहा गया है ।

भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी बड़ी कही गई हैं ? गौतम ! तीन चुटकी बजाए, उतने समय में इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके आ जाए-इतनी शीघ्र दिव्यगति से कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन, यावत् अर्द्धमास तक चले, तब कहीं वह देव किसी कृष्णराजि को पार कर पाता है और किसी कृष्णराजि को पार नहीं कर पाता । हे गौतम ! कृष्णराजियाँ इतनी बड़ी हैं ।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में गृह हैं अथवा गृहापण हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में ग्राम आदि हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में उदार महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं? हाँ, गौतम ! ऐसा होता है । भगवन् ! क्या इन सबको देव करता है, असुर करता है अथवा नाग करता है ? गौतम ! (वहाँ यह सब) देव ही करता है, किन्तु न असुर करता है और न नाग(कुमार) करता है ।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में बादर स्तनितशब्द है ? गौतम ! उदार मेघों के समान इनका भी कथन करना । भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । यह निषेध विग्रहगतिसमापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए हैं । भगवन् ! क्या कृष्ण-राजियों में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में चन्द्र की कान्ति या सूर्य की कान्ति है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! कृष्णराजियों का वर्ण कैसा है ? गौतम ! कृष्णराजियों का वर्ण काला है, यह काली कान्ति वाला है, यावत् परमकृष्ण है । तमस्काय की तरह अतीव भयंकर होने से इसे देखते ही देव क्षुब्ध हो जाता है; यावत् अगर कोई देव शीघ्रगति से झटपट इसे पार कर जाता है । भगवन् ! कृष्णराजियों के कितने नाम कहे गए हैं ? गौतम ! कृष्णराजियों के आठ नाम कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं-कृष्णराजि, मेघराजि, मघा, माघवती, वातपरिघा, वातपरिक्षोभा, देवपरिघा और देवपरिक्षोभा ।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियाँ पृथ्वी के परिणामरूप हैं, जल के परिणामरूप हैं, या जीव के परिणामरूप हैं, अथवा पुद्गलों के परिणामरूप हैं ? गौतम ! कृष्णराजियाँ पृथ्वी के परिणामरूप हैं, किन्तु जल के परिणामरूप नहीं हैं, वे जीव के परिणामरूप भी हैं और पुद्गलों के परिणामरूप भी हैं ।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पहले उत्पन्न हो चूके हैं ? हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चूके हैं, किन्तु बादर अप्कायरूप से, बादर अग्निकायरूप से और बादर वनस्पतिकायरूप से उत्पन्न नहीं हुए ।

सूत्र - २९५

इन आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक विमान हैं । यथा-अर्चि, अर्चमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूर्याभ, शुक्राभ और सुप्रतिष्ठाभ । इन सबके मध्य में रिष्टाभ विमान है ।

भगवन् ! अर्चि विमान कहाँ है ? गौतम ! अर्चि विमान उत्तर और पूर्व के बीच में हैं । भगवन् ! अर्चिमाली विमान कहाँ हैं ? गौतम ! अर्चिमाली विमान पूर्व में हैं । इसी क्रम से सभी विमानों के विषय में जानना चाहिए यावत्-हे भगवन् ! रिष्ट विमान कहाँ बताया गया है ? गौतम ! रिष्ट विमान बहुमध्यभाग में बताया गया है ।

इन आठ लोकान्तिक विमानों में आठ जाति के लोकान्तिक देव रहते हैं, यथा-

सूत्र - २९६

सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और (बीच में) नवमा रिष्टदेव ।

सूत्र - २९७

भगवन् ! सारस्वत देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! सारस्वत देव अर्चि विमान में रहते हैं । भगवन् ! आदित्य देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! आदित्य देव अर्चिमाली विमान में रहते हैं । इस प्रकार अनुक्रम से रिष्ट विमान तक जान लेना चाहिए । भगवन् ! रिष्टदेव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! रिष्टदेव रिष्ट विमान में रहते हैं ।

भगवन् ! सारस्वत और आदित्य, इन दो देवों के कितने देव हैं और कितने सौ देवों का परिवार कहा गया है ? गौतम ! सारस्वत और आदित्य, इन दो देवों के सात देव हैं और इनके ७०० देवों का परिवार है । वह्नि और वरुण, इन दो देवों के १४ देव स्वामी हैं और १४ हजार देवों का परिवार कहा गया है । गर्दतोय और तुषित देवों के ७ देव स्वामी हैं और ७ हजार देवों का परिवार कहा गया है । शेष तीनों देवों के नौ देव स्वामी और ९०० देवों का परिवार कहा गया है

सूत्र - २९८

प्रथम युगल में ७००, दूसरे युगल में १४,००० तीसरे युगल में ७,००० और शेष तीन देवों के ९०० देवों का परिवार है ।

सूत्र - २९९

भगवन् ! लोकान्तिक विमान किसके आधार पर प्रतिष्ठित है ? गौतम ! लोकान्तिक विमान वायुप्रतिष्ठित है। इस प्रकार-जिस तरह विमानों का प्रतिष्ठान, विमानों का बाहल्य, विमानों की ऊंचाई और विमानों के संस्थान आदि का वर्णन जीवाजीवाभिगमसूत्र के देव-उद्देशक में ब्रह्मलोक की वक्तव्यता में कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए; यावत्-हाँ, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ अनेक बार और अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चूके हैं, किन्तु लोकान्तिक विमानों में देवरूप में उत्पन्न नहीं हुए ।

भगवन् ! लोकान्तिक विमानों में लोकान्तिक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ? गौतम ! आठ सागरोपम की स्थिति कही गई है । भगवन् ! लोकान्तिक विमानों से लोकान्त कितना दूर है ? गौतम ! लोकान्तिक विमानों से असंख्येय हजार योजन दूर लोकान्त कहा गया है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-६ – उद्देशक-६

सूत्र - ३००

भगवन् ! पृथ्वीयाँ कितनी हैं ? गौतम ! सात हैं । यथा-रत्नप्रभा यावत् तमस्तमःप्रभा । रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर अधःसप्तमी पृथ्वी तक, जिस पृथ्वी के जितने आवास हों, उतने कहने चाहिए । भगवन् ! यावत् अनुत्तर-विमान कितने हैं ? गौतम ! पाँच अनुत्तरविमान हैं । -विजय, यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान ।

सूत्र - ३०१

भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से किसी एक नारकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन् ! क्या वह वहाँ जाकर आहार करता है ? आहार को परिणमाता है ? और शरीर बाँधता है ? गौतम ! कोई जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है या शरीर बाँधता है; और कोई जीव वहाँ जाकर वापस लौटता है, वापस लौटकर यहाँ आता है । यहाँ आकर वह फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होता है । समवहत होकर इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से किसी एक नारकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होता है । इसके पश्चात् आहार ग्रहण करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है । इसी प्रकार यावत् अधः सप्तमी पृथ्वी तक कहना

भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर असुरकुमारों के चौंसठ लाख आवासों में से किसी एक आवास में उत्पन्न होने के योग्य है; क्या वह जीव वहाँ जाकर आहार करता है ? उस

आहार को परिणमाता है और शरीर बाँधता है ? गौतम ! नैरयिकों के समान असुरकुमारों से स्तनित-कुमारों तक कहना चाहिए । भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर असंख्येय लाख पृथ्वीकायिक-आवासों में से किसी एक पृथ्वीकायिक-आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन्! वह जीव मंदर (मेरु) पर्वत से पूर्व में कितनी दूर जाता है ? और कितनी दूरी को प्राप्त करता है ? हे गौतम ! वह लोकान्त तक जाता है और लोकान्त को प्राप्त करता है । भगवन् ! क्या उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीव, वहाँ जाकर ही आहार करता है; आहार को परिणमाता है और शरीर बाँधता है ? गौतम ! कोई जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है, उस आहार को परिणमाता है और शरीर बाँधता है; और कोई जीव वहाँ जाकर वापस लौट कर यहाँ आता है, फिर दूसरी बार मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होकर मेरुपर्वत के पूर्व में अंगुल के असंख्येय भागमात्र, या संख्येय भागमात्र, या बालाग्र अथवा बालाग्र-पृथक्त्व, इसी तरह लिक्षा, यूका, यव, अंगुल यावत् करोड़ योजन, कोटा-कोटि योजन, संख्येय हजार योजन और असंख्येय हजार योजन में, अथवा एक प्रदेश श्रेणी को छोड़कर लोकान्त में पृथ्वीकाय के असंख्य लाख आवासों में से किसी आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होता है उसके पश्चात् आहार करता है, यावत् शरीर बाँधता है ।

जिस प्रकार मेरुपर्वत की पूर्वदिशा के विषय में कथन किया गया है, उसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशा के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार से सभी एकेन्द्रिय जीवों के विषय में एक-एक के छह-छह आलापक कहने चाहिए ।

भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होकर द्वीन्द्रिय जीवों के असंख्येय लाख आवासों में से किसी एक आवास में द्वीन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने वाला है; भगवन् ! क्या वह जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है, उस आहार को परिणमाता है, और शरीर बाँधता है ? गौतम ! नैरयिकों के समान द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक सब जीवों के लिए कथन करना । हे भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होकर महान् से महान् महाविमानरूप पंच अनुत्तरविमानों में से किसी एक अनुत्तरविमान में अनुत्तरौपपातिक देव रूप में उत्पन्न होने वाला है, क्या वह जीव वहाँ जाकर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है और शरीर बाँधता है ? गौतम ! पहले कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए...हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-६ – उद्देशक-७

सूत्र - ३०२

भगवन् ! शालि, व्रीहि, गेहूँ, जौ तथा यवयव इत्यादि धान्य कोठे में सुरक्षित रखे हो, बाँस के पल्ले से रखे हों, मंच पर रखे हों, माल में डालकर रखे हों, गोबर से उनके मुख उल्लिप्त हों, लिप्त हों, ढँके हुए हों, मुद्रित हों, लांछित किए हुए हों; तो उन (धान्यों) की योनि कितने काल तक रहती है ? हे गौतम ! उनकी योनि कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त तक और अधिक से अधिक तीन वर्ष तक कायम रहती है । उसके पश्चात् उन की योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वंस को प्राप्त हो जाती है, फिर वह बीज अबीज हो जाता है । इसके पश्चात् उस योनि का विच्छेद हुआ कहा जाता है ।

भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूँग, उड़द, बाल, कुलथ, आलिसन्दक, तुअर, पलिमंथक इत्यादि (धान्य पूर्वोक्त रूप से कोठे आदि में रखे हुए हों तो इन) धान्यों की (योनि कितने काल तक रहती है ?) गौतम ! शाली धान्य के समान इन धान्यों के लिए भी कहना । विशेषता यह कि यहाँ उत्कृष्ट पाँच वर्ष कहना । शेष पूर्ववत् ।

हे भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कांगणी, बरट, राल, सण, सरसों, मूलकबीज आदि धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है ? हे गौतम ! शाली धान्य के समान इन धान्यों के लिए भी कहना । विशेषता इतनी है कि इनकी योनि उत्कृष्ट सात वर्ष तक कायम रहती है । शेष वर्णन पूर्ववत् समझ लेना ।

सूत्र - ३०३

भगवन् ! एक-एक मुहूर्त्त के कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ? गौतम ! असंख्येय समयों के समुदाय की समिति

के समागम से अर्थात् असंख्यात समय मिलकर जितना काल होता है, उसे एक 'आवलिका' कहते हैं । संख्येय आवलिका का एक 'उच्छ्वास' होता है और संख्येय आवलिका का एक 'निःश्वास' होता है ।

सूत्र - ३०४

हृष्टपुष्ट, वृद्धावस्था और व्याधि से रहित प्राथी का एक उच्छ्वास और एक निःश्वास-(ये दोनों मिलकर) एक 'प्राण' कहलाता है ।

सूत्र – ३०५, ३०६

सात प्राणों का एक 'स्तोक' होता है । सात स्तोकों का एक 'लव' होता है । ७७ लवों का एक मुहूर्त्त कहा गया है । अथवा ३७७३ उच्छ्वासों का एक मुहूर्त्त होता है, ऐसा समस्त अनन्तज्ञानियों ने देखा है ।

सूत्र - ३०७

इस मुहूर्त्त के अनुसार तीस मुहूर्त्त का एक 'अहोरात्र' होता है । पन्द्रह 'अहोरात्र' का एक 'पक्ष' होता है । दो पक्षों का एक 'मास' होता है । दो 'मासों' की एक 'ऋतु' होती है । तीन ऋतुओं का एक 'अयन' होता है । दो अयन का एक 'संवत्सर' (वर्ष) होता है । पाँच संवत्सर का एक 'युग' होता है । बीस युग का एक सौ वर्ष होता है । दस वर्षशत का एक 'वर्षसहस्त्र' होता है । सौ वर्षसहस्त्रों का एक 'वर्षशतसहस्त्र' होता है । चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है । चौरासी लाख पूर्वांग का एक 'पूर्व' होता है । ८४ लाख पूर्व का एक त्रुटितांग होता है और ८४ लाख त्रुटितांग का एक 'त्रुटित' होता है । इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियाँ बनती हैं । – अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका । इस संख्या तक गणित है । यह गणित का विषय है । इसके बाद औपमिक काल है ।

भगवन् ! वह औपमिक (काल) क्या है ? गौतम ! दो प्रकार का है । –पल्योपम और सागरोपम । भगवन् ! 'पल्योपम' तथा 'सागरोपम' क्या है ?

सूत्र - ३०८

(हे गौतम !) जो सुतीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा भी छेदा-भेदा न जा सके ऐसे परमाणु को सिद्ध भगवान समस्त प्रमाणों का आदिभूत प्रमाण कहते हैं ।

सूत्र - ३०९

ऐसे अनन्त परमाणुपुद्‌गलों के समुदाय की समितियों के समागम से एक उच्छ्लक्ष्णलक्ष्णिका, श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अंगुल होता है । आठ उच्छ्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका के मिलने से एक श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका होती है । आठ श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका के मिलने से एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु मिलने से एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं के मिलने से एक रथरेणु और आठ रथरेणुओं के मिलने से देवकुरु – उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है, तथा उस आठ बालाग्रों से हरिवर्ष और रम्यक्‌वर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । उस आठ बालाग्रों से हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । उस आठ बालाग्रों से पूर्वविदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । पूर्वविदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से एक लिक्षा, आठ लिक्षा से एक यूका, आठ यूका से एक यवमध्य और आठ यवमध्य से एक अंगुल होता है । इस प्रकार के छह अंगुल का एक पाद, बारह अंगुल की एक वितस्ति, चौबीस अंगुल का एक हाथ, अड़तालीस अंगुल की एक कुक्षि, छियानवे अंगुल का दण्ड, धनुप, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है । दो हजार धनुष का एक गाऊ होता है और चार गाऊ का एक योजन होता है । इस योजन के परिणाम से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा, तिगुणी से अधिक परिधि वाला एक पल्य हो, उस पल्य में एक दिन के उगे हुए, दो दिन के उगे हुए, तीन दिन के उगे हुए, और अधिक से अधिक सात दिन के उगे हुए करोड़ों बालाग्र किनारे तक ऐसे ठूंस-ठूंस कर भरे हों, इकट्ठे किये हों, अत्यन्त भरे हों कि उन बालाग्रों को अग्नि न जला सके और हवा उन्हें उड़ा कर न ले जा सके; वे बालाग्र सड़े नहीं, न

ही नष्ट हों, और न ही वे शीघ्र दुर्गन्धित हों । इसके पश्चात् उस पल्य में सौ-सौ वर्ष में एक-एक बालाग्र को नीकाला जाए । इस क्रम से तब तक नीकाला जाए, जब तक कि वह पल्य क्षीण हो, नीरज हो, निर्मल हो, पूर्ण हो जाए, निर्लेप हो, अपहृत हो और विशुद्ध हो जाए । उतने काल को एक 'पल्योपमकाल' कहते हैं ।

सूत्र - ३१०

इस पल्योपम काल का जो परिमाण ऊपर बतलाया गया है, वैसे दस कोटाकोटि पल्योपमों का एक सागरोपम-कालपरिमाण होता है ।

सूत्र - ३११

इस सागरोपम-परिमाण के अनुसार (अवसर्पिणीकाल में) चार कोटाकोटि सागरोपमकाल का एक सुषम-सुषमा आरा होता है; तीन कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषमा आरा होता है; दो कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषमदु:षमा आरा होता है; बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक दु:षम सुषमा आरा होता है; इक्कीस हजार वर्ष का एक दु:षम आरा होता है और इक्कीस हजार वर्ष का एक दु:षम-दु:षमा आरा होता है । इसी प्रकार उत्सर्पिणीकाल में पुनः इक्कीस हजार वर्ष परिमित काल का प्रथम दु:षमदु:षमा आरा होता है । इक्कीस हजार वर्ष का द्वीतिय दु:षम आरा होता है, बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम-काल का तीसरा दु:षम-दुषमा आरा होता है यावत् चार कोटाकोटि सागरोपम-काल का छठा सुषम-सुषमा आरा होता है । इस दस कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक अवसर्पिणीकाल होता है और दस कोटाकोटि सागरोपम-काल का ही उत्सर्पिणीकाल होता है । यों बीस कोटाकोटि सागरोपमकाल का एक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-कालचक्र होता है ।

सूत्र - ३१२

भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्तमार्थ-प्राप्त इस अवसर्पिणीकाल के सुषम-सुषमा नामक आरे में भरतक्षेत्र के आकार, भाव-प्रत्यवतार किस प्रकार के थे ? गौतम ! भूमिभाग बहुत सम होने से अत्यन्त रमणीय था। जैसे कोई मुरज नामक वाद्य का चर्मचण्डित मुखपट हो, वैसा बहुत ही सम भरतक्षेत्र का भूभाग था । इस प्रकार उस समय के भरतक्षेत्र के लिए उत्तरकुरु की वक्तव्यता के समान, यावत् बैठते हैं, सोते हैं, यहाँ तक वक्तव्यता कहनी चाहिए । उस काल में भारतवर्ष में उन-उन देशों के उन-उन स्थलों में उदार एवं कुद्दालक यावत् कुश और विकुश से विशुद्ध वृक्षमूल थे; यावत् छह प्रकार के मनुष्य थे । यथा–पद्मगन्ध वाले, मृगगन्ध वाले, ममत्व रहित, तेजस्वी एवं रूपवान्, सहा और शनैश्चर थे । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है ।'

शतक-६ – उद्देशक-८

सूत्र - ३१३

भगवन् ! कितनी पृथ्वीयाँ कही गई हैं ? गौतम ! आठ । –रत्नप्रभा यावत् ईषत्प्राग्भारा । भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे गृह अथवा गृहापण हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे महान् मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ? हाँ, गौतम! हैं, ये सब कार्य–देव भी करते हैं, असुर भी करते हैं और नाग भी करते हैं । भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वीमें बादर स्तनितशब्द है ? हाँ, गौतम ! है, जिसे (उपर्युक्त) तीनों करते हैं

भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे बादर अग्निकाय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । यह निषेध विग्रहगतिसमापन्नक जीवों के सिवाय (दूसरे जीवों के लिए समझना चाहिए ।) भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे क्या चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ? (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी में चन्द्रभा, सूर्याभा आदि हैं ? (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

इसी प्रकार दूसरी पृथ्वी के लिए भी कहना चाहिए । इसी प्रकार तीसरी पृथ्वी के लिए भी कहना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ देव भी करते हैं, असुर भी करते हैं, किन्तु नाग (कुमार) नहीं करते । चौथी पृथ्वी में भी इसी प्रकार सब बातें कहनी चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ देव ही अकेले करते हैं, किन्तु असुर और नाग नहीं करते ।

इसी प्रकार पांचवी, छठी और सातवी पृथ्वीयों में केवल देव ही (यह सब) करते हैं ।

भगवन् ! क्या सौधर्म और ईशान कल्पों के नीचे गृह अथवा गृहापण हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे महामेघ हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । (सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे पूर्वोक्त सब कार्य) देव और असुर करते हैं, नागकुमार नहीं करते । इसी प्रकार वहाँ स्तनितशब्द के लिए भी कहना ।

भगवन् ! क्या वहाँ बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । यह निषेध विग्रहगतिसमापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए जानना चाहिए । भगवन् ! क्या वहाँ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या वहाँ ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या वहाँ चन्द्राभा, सूर्याभा आदि हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकों में भी कहना । विशेष यह है कि वहाँ (यह सब) केवल देव ही करते हैं । इसी प्रकार ब्रह्मलोक में भी कहना । इसी तरह ब्रह्मलोक से ऊपर सर्वस्थलों में पूर्वोक्त प्रकार से कहना । इन सब स्थलों में केवल देव ही (पूर्वोक्त कार्य) करते हैं । इन सब स्थलों में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय के विषय में प्रश्न करना । उनका उत्तर भी पूर्ववत् कहना । अन्य सब बातें पूर्ववत् ।

सूत्र - ३१४

तमस्काय में और पाँच देवलोकों तक में अग्निकाय और पृथ्वीकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए । रत्नप्रभा आदि नरकपृथ्वीयों में अग्निकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए । इसी तरह पंचम कल्प-देवलोक से ऊपर सब स्थानों में तथा कृष्णराजियों में अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए ।

सूत्र - ३१५

भगवन् ! आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का है ? गौतम ! छह प्रकार का-जातिनामनिधत्तायु, गतिनामनिध-त्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभागनामनिधत्तायु । यावत् वैमानिकों तक दण्डक कहना ।

भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त हैं ? गतिनामनिधत्त हैं ? यावत् अनुभागनामनिधत्त हैं ? गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्त भी हैं । यह दण्डक यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए । भगवन् क्या जीव जातिनामनिधत्तायुष्क हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्तायुष्क हैं ? गौतम ! जीव जातिनामनिधत्तायुष्क भी हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्तायुष्क भी हैं । यह दण्डक यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए ।

इस प्रकार ये बारह दण्डक कहने चाहिए । भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त हैं ?, जातिनामनिधत्तायु हैं?, जातिनामनियुक्त हैं ?, जातिनामनियुक्तायु हैं ?, जातिगोत्रनिधत्त हैं ?, जातिगोत्रनिधत्तायु हैं ?, जातिगोत्र-नियुक्त हैं ?, जातिनामगोत्रनिधत्त हैं ?, जातिनामगोत्रनिधत्तायु हैं ?, क्या जीव जातिनामगोत्रनियुक्तायु हैं ? यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु हैं ? गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु भी हैं । यह दण्डक यावत् वैमानिकों तक कहना ।

सूत्र - ३१६

भगवन् ! क्या लवणसमुद्र, उछलते हुए जल वाला है, सम जल वाला है, क्षुब्ध जल वाला है अथवा अक्षुब्ध जल वाला है ? गौतम ! लवणसमुद्र उच्छितोदक है, किन्तु प्रस्तृतोदक नहीं है; वह क्षुब्ध जल वाला है, किन्तु अक्षुब्ध जल वाला नहीं है । यहाँ से प्रारम्भ करके जीवाभिगम सूत्र अनुसार यावत् इस कारण से, हे गौतम ! बाहर के (द्वीप-) समुद्र पूर्ण, पूर्वप्रमाण वाले, छलाछल भरे हुए, छलकते हुए और समभर घट के रूप में, तथा संस्थान से एक ही तरह के स्वरूप वाले, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले हैं; द्विगुण-द्विगुण विस्तार वाले हैं; यावत् इस तिर्यक्लोक में असंख्येय द्वीप-समुद्र हैं । सबसे अन्त में 'स्वयम्भूरमणसमुद्र' है । इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गए हैं

भगवन् ! द्वीप-समुद्रों के कितने नाम कहे गए हैं ? गौतम ! इस लोक में जितने भी शुभ नाम, शुभ रूप, शुभ रस, शुभ गन्ध और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही नाम द्वीप-समुद्रों के कहे गए हैं । इस प्रकार सब द्वीप-समुद्र शुभ नामवाले

जानने चाहिए तथा उद्धार, परिणाम और सर्व जीवों का उत्पाद जानना चाहिए । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है ।'

शतक-६ – उद्देशक-९

सूत्र - ३१७

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को बाँधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बाँधता है ? गौतम ! सात प्रकृतियों को बाँधता है, आठ प्रकार को बाँधता है अथवा छह प्रकृतियों को बाँधता है । यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का बंध-उद्देशक कहना चाहिए ।

सूत्र - ३१८

भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महानभाग देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले और एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या वह देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? हाँ, गौतम ! समर्थ है । भगवन् ! क्या वह देव इहगत पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है अथवा तत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है या अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ? गौतम ! वह देव यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता, वह वहाँ के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, किन्तु अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता । इस प्रकार इस गम द्वारा विकुर्वणा के चार भंग कहने चाहिए । एक वर्ण वाला और एक आकार वाला, एक वर्ण वाला और अनेक आकार वाला, अनेक वर्ण और एक आकार वाला तथा अनेक वर्ण वाला और अनेक आकार वाला ।

भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना काले पुद्गल को नीले पुद्गल के रूप में और नीले पुद्गल को काले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है; किन्तु बाहरी पुद्गलों को ग्रहण करके देव वैसा करने में समर्थ हैं । भगवन् ! वह देव इहगत, तत्रगत या अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा करने में समर्थ हैं ? गौतम ! वह इहगत और अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा नहीं कर सकता, किन्तु तत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा परिणत करने में समर्थ है । [विशेष यह है कि यहाँ 'विकुर्वित करने में' के बदले] 'परिणत करने में' कहना चाहिए । इसी प्रकार काले पुद्गल को लाल पुद्गल के रूप में यावत् काले पुद्गल के साथ शुक्ल पुद्गल तक समझना । इसी प्रकार नीले पुद्गल के साथ शुक्ल पुद्गल तक जानना । इसी प्रकार लाल पुद्गल को शुक्ल तक तथा इसी प्रकार पीले पुद्गल को शुक्ल तक (परिणत करने में समर्थ है ।)

इसी प्रकार इस क्रम के अनुसार गन्ध, रस और स्पर्श के विषय में भी समझना चाहिए । यथा–(यावत्) कर्कश स्पर्श वाले पुद्गल को मृदु स्पर्श वाले (पुद्गल में परिणत करने में समर्थ है) । इसी प्रकार दो-दो विरुद्ध गुणों को अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, वर्ण आदि को वह सर्वत्र परिणमाता है । 'परिणमाता है' इस क्रिया के साथ यहाँ इस प्रकार दो-दो आलापक कहने चाहिए, यथा–(१) पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमाता है, (२) पुद्गलों को ग्रहण किये बिना नहीं परिणमाता ।

सूत्र - ३१९

भगवन् ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव असमवहत–आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव को या देवी को या अन्यतर को जानता और देखता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इसी तरह अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? विशुद्ध लेश्या वाला देव

अनुपयुक्त आत्मा द्वारा, अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? [आठों प्रश्नों का उत्तर] गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! विशुद्ध लेश्या वाला देव क्या उपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? हाँ, गौतम ! ऐसा देव जानता-देखता है । इसी प्रकार क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? हाँ, गौतम ! वह जानता-देखता है । विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? विशुद्ध लेश्या वाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से, विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ? हाँ, गौतम ! वह जानता-देखता है । यों पहले कहे गए आठ भंगों वाले देव नहीं जानते-देखते । किन्तु पीछे कहे गए चार भंगों वाले देव जानते-देखते हैं । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

शतक-६ – उद्देशक-१०

सूत्र - ३२०

भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि राजगृह नगर में जितने जीव हैं, उन सबके दुःख या सुख को बेर की गुठली जितना भी, बाल (एक धान्य) जितना भी, कलाय जितना भी, उड़द जितना भी, मूँग-प्रमाण, यूका प्रमाण, लिक्षा प्रमाण भी बाहर नीकाल कर नहीं दिखा सकता । भगवन् ! यह बात यों कैसे हो सकती है ? गौतम ! जो अन्यतीर्थिक कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि सम्पूर्ण लोक में रहे हुए सर्व जीवों के सुख या दुःख को कोई भी पुरुष यावत् किसी भी प्रमाण में बाहर नीकालकर नहीं दिखा सकता । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है? गौतम ! यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधि ३ लाख १६ हजार दो सौ २७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष और १३ अंगुल से कुछ अधिक है । कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव एक बड़े विलेपन वाले गन्धद्रव्य के डिब्बे को लेकर उघाड़े और उघाड़कर तीन चुटकी बजाए, उतने समय में उपर्युक्त जम्बू द्वीप की २१ बार परिक्रमा करके वापस शीघ्र आए तो हे गौतम ! उस देव की इस प्रकार की शीघ्र गति से गन्ध पुद्गलों के स्पर्श से यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नहीं ? हाँ, भगवन् ! वह स्पृष्ट हो गया । हे गौतम ! कोई पुरुष उन गन्धपुद्गलों को बेर की गुठली जितना भी, यावत् लिक्षा जितना भी दिखलाने में समर्थ है ? भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । हे गौतम ! इसी प्रकार जीव के सुख-दुःख को भी बाहर नीकालकर बतलाने में, यावत् कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है ।

सूत्र - ३२१

भगवन् ! क्या जीव चैतन्य है या चैतन्य जीव है ? गौतम ! जीव तो नियमतः चैतन्य स्वरूप है और चैतन्य भी निश्चितरूप से जीवरूप है । भगवन् ! क्या जीव नैरयिक है या नैरयिक जीव है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमतः जीव है और जीव तो कदाचित् नैरयिक भी हो सकता है, कदाचित् नैरयिक से भिन्न भी हो सकता है । भगवन् ! क्या जीव, असुरकुमार है या असुरकुमार जीव है ? गौतम ! असुरकुमार तो नियमतः जीव है, किन्तु जीव तो कदाचित् असुरकुमार भी होता है, कदाचित् असुरकुमार नहीं भी होता । इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए ।

भगवन् ! जो जीता–प्राण धारण करता है, वह जीव कहलाता है, या जो जीव है, वह जीता–प्राण धारण करता है ? गौतम ! जो जीता- है, वह तो नियमतः जीव कहलाता है, किन्तु जो जीव होता है, वह प्राण धारण करता भी है और नहीं भी करता । भगवन् ! जो जीता है, वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है, वह जीता है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमतः जीता है, किन्तु जो जीता है, वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है?

गौतम ! जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है तथा जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक भी होता है, अभवसिद्धिक भी होता है । इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डक कहने चाहिए ।

सूत्र - ३२२

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तदुःखरूप वेदना को वेदते हैं, तो भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ? गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ–कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तदुःखरूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् साता रूप वेदना भी वेदते हैं; कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तसाता रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् असाता रूप वेदना भी वेदते हैं तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व विमात्रा से वेदना वेदते हैं ।

भगवन् ! किस कारण से ऐसा कथन किया जाता है ? गौतम ! नैरयिक जीव, एकान्तदुःखरूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सातारूप वेदना भी वेदते हैं । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एकान्तसाता (सुख) रूप वेदना वेदते हैं, किन्तु कदाचित् असातारूप वेदना भी वेदते हैं तथा पृथ्वीकायिक जीवों से लेकर मनुष्यों पर्यन्त विमात्रा से वेदना वेदते हैं । इसी कारण से हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है ।

सूत्र - ३२३

भगवन् ! नैरयिक जीव जिन पुद्‌गलों का आत्मा (अपने) द्वारा ग्रहण–आहार करते हैं, क्या वे आत्म-शरीरक्षेत्रावगाढ़ पुद्‌गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ़ पुद्‌गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ? अथवा परम्परक्षेत्रावगाढ़ पुद्‌गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ? गौतम ! वे आत्म-शरीरक्षेत्रावगाढ़ पुद्‌गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं, किन्तु न तो अनन्तरक्षेत्रावगाढ़ पुद्‌गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं और न ही परम्परक्षेत्रावगाढ़ पुद्‌गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार नैरयिकों के लिए कहा, उसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त दण्डक कहना चाहिए ।

सूत्र - ३२४

भगवन् ! क्या केवली भगवान इन्द्रियों द्वारा जानते-देखते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! केवली भगवान पूर्व दिशा में मित को भी जानते हैं और अमित को भी जानते हैं; यावत् केवली का (ज्ञान और) दर्शन परिपूर्ण और निरावरण होता है । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है ।

सूत्र - ३२५

जीवों का सुख-दुःख, जीव, जीव का प्राणधारण, भव्य, एकान्तदुःखवेदना, आत्मा द्वारा पुद्‌गलों का ग्रहण और केवली, इतने विषयों दसवें उद्देशक में हैं ।

सूत्र - ३२६

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक–७

सूत्र - ३२७

आहार, विरती, स्थावर, जीव, पक्षी, आयुष्य, अनगार, छद्मस्थ, असंवृत्त और अन्यतीर्थिक; ये दश उद्देशक सातवे शतक में हैं ।

शतक-७ – उद्देशक-१

सूत्र - ३२८

उस काल और उस समय में, यावत् गौतमस्वामी ने पूछा–भगवन् ! (परभव में जाता हुआ) जीव किस समय में अनाहारक होता है ? गौतम ! (परभव में जाता हुआ) जीव, प्रथम समय में कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है; द्वीतिय समय में भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है, तृतीय समय में भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है; परन्तु चौथे समय में नियमतः आहारक होता है । इसी प्रकार नैरयिक आदि चौबीस ही दण्डकों में कहना । सामान्य जीव और एकेन्द्रिय ही चौथे समय में आहारक होते हैं । शेष जीव, तीसरे समय में आहारक होते हैं ।

भगवन् ! जीव किस समय में सबसे अल्प आहारक होता है ? गौतम ! उत्पत्ति के प्रथम समय में अथवा भव के अन्तिम समयमें जीव सबसे अल्प आहारवाला होता है । इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त चौबीस ही दण्डकों में कहना।

सूत्र - ३२९

भगवन् ! लोक का संस्थान किस प्रकार का है ? गौतम ! सुप्रतिष्ठिक के आकार का है । वह नीचे विस्तीर्ण है और यावत् ऊपर मृदंग के आकार का है । ऐसे इस शाश्वत लोक में उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हन्त, जिन, केवली जीवों को भी जानते और देखते हैं तथा अजीवों को भी जानते और देखते हैं । इसके पश्चात् वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होते हैं, यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं ।

सूत्र - ३३०

भगवन् ! श्रमण के उपाश्रय में बैठे हुए सामायिक किये हुए श्रमणोपासक को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती । भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! श्रमणोपाश्रय में बैठे हुए सामयिक किए हुए श्रमणोपासक की आत्मा अधिकरणी होती है । जिसकी आत्मा अधिकरण का निमित्त होती है, उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है । हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा गया है ।

सूत्र - ३३१

भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले से ही त्रस-प्राणियों के समारम्भ का प्रत्याख्यान कर लिया हो, किन्तु पृथ्वीकाय के समारम्भ का प्रत्याख्यान नहीं किया हो, उस श्रमणोपासक से पृथ्वी खोदते हुए किसी त्रसजीव की हिंसा हो जाए, तो भगवन् ! क्या उसके व्रत (त्रसजीववध-प्रत्याख्यान) का उल्लंघन होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वह त्रसजीव के अतिपात (वध) के लिए प्रवृत्त नहीं होता ।

भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले से ही वनस्पति के समारम्भ का प्रत्याख्यान किया हो, पृथ्वी को खोदते हुए किसी वृक्ष का मूल छिन्न हो जाए, तो भगवन् ! क्या उसका व्रत भंग होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वह श्रमणोपासक उस (वनस्पति) के अतिपात (वध) के लिए प्रवृत्त नहीं होता ।

सूत्र - ३३२

भगवन् ! तथारूप श्रमण और माहन को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खादिम और स्वादिम द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को क्या लाभ होता है ? गौतम ! वह श्रमणोपासक तथारूप श्रमण या माहन को समाधि उत्पन्न करता है । उन्हें समाधि प्राप्त कराने वाला श्रमणोपासक उसी समाधि को स्वयं भी प्राप्त करता है । भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक क्या त्याग (या संचय) करता है ?

गौतम ! वह श्रमणोपासक जीवित का त्याग करता–है, दुस्त्यज वस्तु का त्याग करता है, दुष्कर कार्य करता है, दुर्लभ वस्तु का लाभ लेता है, बोधि प्राप्त करता है, सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ।

सूत्र - ३३३

भगवन् ! क्या कर्मरहित जीव की गति होती है ? हाँ, गौतम ! अकर्म जीव की गति होती–है । भगवन् ! अकर्म जीव की गति कैसे होती है ? गौतम ! निःसंगता से, नीरागता से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद हो जाने से, निरिन्धता–(कर्मरूपी इन्धन से मुक्ति) होने से और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है ।

भगवन् ! निःसंगता से, नीरागता से, गतिपरिणाम से यावत् पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है? गौतम ! जैसे कोई पुरुष एक छिद्ररहित और निरुपहत सूखे तुम्बे पर क्रमशः परिकर्म करता-करता उस पर डाभ और कुश लपेटे । उन्हें लपेटकर उस पर आठ बार मिट्टी के लेप लगा दे, फिर उसे धूप में रख दे । बार-बार (धूप में देने से) अत्यन्त सूखे हुए उस तुम्बे को अथाह, अतरणीय, पुरुष-प्रमाण से भी अधिक जल में डाल दे, तो हे गौतम ! वह तुम्बा मिट्टी के उन आठ लेपों से अधिक भारी हो जाने से क्या पानी के उपरितल को छोड़कर नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है ? हाँ, भगवन् ! तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है । गौतम ! आठों ही मिट्टी के लेपों के नष्ट हो जाने से क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड़कर पानी के उपरितल पर आ जाता है ? हाँ, भगवन् ! आ जाता है । हे गौतम ! इसी तरह निःसंगता से, नीरागता से एवं गतिपरिणाम से कर्मरहित जीव की भी (ऊर्ध्व) गति होती है ।

भगवन् ! बन्धन का छेद हो जाने से अकर्मजीव की गति कैसे होती है ? गौतम ! जैसे कोई मटर की फल, मूँग की फली, उड़द की फली, शिम्बलि–और एरण्ड के फल को धूप में रखकर सूखाए तो सूख जाने पर कटता है और उसमें उसका बीज उछलकर दूर जा गिरता है, हे गौतम ! इसी प्रकार कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने पर कर्मरहित जीव की गति होती है । भगवन् ! इन्धनरहित होने से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! जैसे इन्धन से छूटे हुए धूएं की गति रुकावट न हो तो स्वाभाविक रूप से ऊर्ध्व होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! कर्मरूप इन्धन से रहित होने से कर्मरहित जीव की गति होती है । भगवन् ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! जैसे–धनुष से छूटे हुए बाण की गति लक्ष्याभिमुखी होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है । इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि निःसंगता से, यावत् पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की (ऊर्ध्व) गति होती है ।

सूत्र - ३३४

भगवन् ! क्या दुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट होता है अथवा अदुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट होता है ? गौतम ! दुःखी जीव ही दुःख से स्पृष्ट होता है, किन्तु अदुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट नहीं होता । भगवन् ! क्या दुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है या अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है ? गौतम ! दुःखी नैरयिक ही दुःख से स्पृष्ट होता है, अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट नहीं होता । इसी तरह वैमानिक पर्यन्त दण्डकों में कहना चाहिए ।

इसी प्रकार के पांच दण्डक (आलापक) कहने चाहिए, यथा–(१) दुःखी दुःख से स्पृष्ट होता है, (२) दुःखी दुःख का परिग्रहण करता है, (३) दुःखी दुःख की उदीरणा करता है, (४) दुःखी दुःख का वेदन करता है और (५) दुःखी दुःख की निर्जरा करता है ।

सूत्र - ३३५

भगवन् ! उपयोगरहित गमन करते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए या सोते हुए और इसी प्रकार बिना उपयोग के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंछन ग्रहण करते हुए या रखते हुए अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! ऐसे अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो गए, उस को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती । किन्तु जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं हुए, उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती । सूत्र के अनुसार

प्रवृत्ति करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है और उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है । उपयोगरहित गमनादि प्रवृत्ति करने वाला अनगार, सूत्रविरुद्ध प्रवृत्ति करता है । हे गौतम ! इस कारण से उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

सूत्र - ३३६

भगवन् ! अंगारदोष, धूमदोष और संयोजनादोष से दूषित पान भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ? गौतम! जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके उसमें मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करते हैं, हे गौतम ! यह अंगारदोष से दूषित आहार-पानी हैं । जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप आहार ग्रहण करके, उसके प्रति अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक, क्रोध से खिन्नता करते हुए आहार करते हैं, तो हे गौतम ! यह धूमदोष में दूषित आहार-पानी हैं । जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक यावत् आहार ग्रहण करके गुण उत्पन्न करने हेतु दूसरे पदार्थों के साथ संयोग करके आहार-पानी करते हैं, हे गौतम ! वह आहार-पानी संयोजना दोष से दूषित हैं । हे गौतम ! यह अंगारदोष, धूमदोष और संयोजनादोष से दूषित पान-भोजन का अर्थ है ।

भगवन् ! अंगार, धूम और संयोजना, इन तीन दोषों से मुक्त पानी-भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ? गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् अत्यन्त आसक्ति एवं मूर्च्छा रहित आहार करते हैं तो यह अंगारदोष रहित पान भोजन है, अशनादि को ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक यावत् आहार नहीं करता है, हे गौतम ! यह धूम-दोषरहित पान-भोजन है । जैसा मिला है, वैसा ही आहार कर लेते हैं, तो हे गौतम ! यह संयोजनादोषरहित पान-भोजन कहलाता है । हे गौतम ! यह अंगारदोषरहित, धूमदोषरहित एवं संयोजनादोषविमुक्त पान-भोजन का अर्थ कहा गया है ।

सूत्र - ३३७

भगवन् ! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का क्या अर्थ है ? गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप चतुर्विध आहार को सूर्योदय से पूर्व ग्रहण करके सूर्योदय के पश्चात् उस आहार को करते हैं, तो हे गौतम ! यह क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन है । जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् चतुर्विध आहार को प्रथम प्रहर में ग्रहण करके अन्तिम प्रहर तक रखकर सेवन करते हैं, तो हे गौतम ! यह कालातिक्रान्त पान-भोजन है । जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् चतुर्विध आहार को ग्रहण करके आधे योजन की मर्यादा का उल्लंघन करके खाते हैं, तो हे गौतम ! यह मार्गातिक्रान्त पान-भोजन है । जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय यावत् आहार को ग्रहण करके कुक्कुटीअण्डक प्रमाण बत्तीस कवल की मात्रा से अधिक आहार करता है, तो हे गौतम ! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन है ।

कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण आठ कवल की मात्रा में आहार करने वाला साधु 'अल्पाहारी' है । कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण बारह कवल की मात्रा में आहार करने वाला साधु अपार्द्ध अवमोदरिका वाला है । कुक्कुटी-अण्डक-प्रमाण सोलह कवल की मात्रा में आहार करने वाला साधु द्विभागप्राप्त आहार वाला है । कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण चौबीस कवल की मात्रा में आहार करने वाला साधु ऊनोदरिका वाला है । कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण बत्तीस कवल की मात्रा में आहार करने वाला साधु प्रमाणप्राप्त आहारी है । इस से एक भी ग्रास कम आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ 'प्रकामरसभोजी' नहीं है, यह कहा जा सकता है । हे गौतम ! यह क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गाति-क्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का अर्थ है ।

सूत्र - ३३८

भगवन् ! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, व्येषित, सामुदायिक भिक्षारूप पान-भोजन का क्या अर्थ है? गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी शस्त्र और मूसलादि का त्याग किये हुए हैं, पुष्प-माला और विलेपन से रहित हैं, वे यदि उस आहार को करते हैं, जो कृमि आदि जन्तुओं से रहित, जीवच्युत और जीवविमुक्त है, जो साधु के लिए नहीं बनाया गया है, न बनवाया गया है, जो असंकल्पित है, अनाहूत है, अक्रीतकृत है, अनुद्दिष्ट है, नवकोटि-विशुद्ध है, दस दोषों से

विमुक्त है, उद्‌गम और उत्पादना सम्बन्धी एषणा दोषों से रहित है, अंगारदोषरहित है, धूमदोषरहित है, संयोजना-दोषरहित है तथा जो सुरसुर और चपचप शब्द से रहित, बहुत शीघ्रता और अत्यन्त विलम्ब से रहित, आहार को लेशमात्र भी छोड़े बिना, नीचे न गिराते हुए, गाड़ी की धूरी के अंजन अथवा घाव पर लगाए जाने वाले लेप की तरह केवल संयमयात्रा के निर्वाह के लिए और संयम-भार को वहन करने के लिए, जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार जो आहार करते हैं, तो वह शस्त्रातीत, यावत् पान-भोजन का अर्थ है । भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-७ – उद्देशक-२

सूत्र - ३३९

हे भगवन् ! 'मैंने सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव और सभी तत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है', इस प्रकार कहने वाले के सुप्रत्याख्यान होता है या दुष्प्रत्याख्यान होता है ? गौतम ! 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी तत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है', ऐसा कहने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ।

भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है ? गौतम ! 'मैंने समस्त प्राण यावत् सर्व तत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाले को इस प्रकार अवगत नहीं होता कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं;' उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नहीं होता, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान होता है । साथ ही, 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' ऐसा कहने वाला दुष्प्रत्याख्यानी सत्यभाषा नहीं बोलता; किन्तु मृषाभाषा बोलता है । इस प्रकार वह मृषावादी सर्व प्राण यावत् समस्त सत्त्वों के प्रति तीन करण, तीन योग से असंयत, अविरत, पापकर्म से अप्रतिहत और पापकर्म का अप्रत्याख्यानी, क्रियाओं से युक्त, असंवृत, एकान्तदण्ड एवं एकान्तबाल है ।

'मैंने सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' यों कहने वाले जिस पुरुष को यह ज्ञात होता है कि 'ये जीव है, ये अजीव है, ये त्रस है और ये स्थावर हैं,' उस पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान नहीं है । 'मैंने सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है', इस प्रकार कहता हुआ वह सुप्रत्याख्यानी सत्यभाषा बोलता है, मृषाभाषा नहीं बोलता । इस प्रकार वह सुप्रत्याख्यानी सत्य-भाषी, सर्व प्राण यावत् सत्त्वों के प्रति तीन करण, तीन योग से संयत, विरत है । (अतीतकालीन) पापकर्मों को उसने घात कर दिया है, (अनागत पापों को) प्रत्याख्यान से त्याग दिया है, वह अक्रिय है, संवृत है और एकान्त पण्डित है । इसीलिए, ऐसा कहा जाता है कि यावत् कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ।

सूत्र - ३४०

भगवन् ! प्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है । मूलगुणप्रत्याख्यान और उत्तरगुणप्रत्याख्यान ।

भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! दो प्रकार का–सर्वमूलगुणप्रत्या-ख्यान और देशमूलगुणप्रत्याख्यान । भगवन् ! सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का है ? गौतम ! पाँच प्रकार का है । सर्व-प्राणातिपात से विरमण, सर्व-मृषावाद से विरमण, सर्व-अदत्तादान से विरमण, सर्व-मैथुन से विरमण और सर्व-परिग्रह से विरमण । भगवन् ! देशमूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! पाँच प्रकार का कहा गया है । स्थूल-प्राणातिपात से विरमण यावत् स्थूल-परिग्रह से विरमण ।

भगवन् ! उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का है ? गौतम ! दो प्रकार का–सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान और देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान । भगवन् ! सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का है ? गौतम ! दस प्रकार का है-यथा–

सूत्र - ३४१

अनागत, अतिक्रान्त, कोटिसहित, नियंत्रित, साकार, अनाकार, परिणामकृत, निरवशेष, संकेत और अद्धा-प्रत्याख्यान ।

सूत्र - ३४२

देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का है ? गौतम ! सात प्रकार का–दिग्व्रत, उपभोग-परिभोगपरिणाम

अनर्थदण्डविरमण, सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास, अतिथि-संविभाग तथा अपश्चिम मारणान्तिक-संलेखना-जोषणा-आराधना ।

सूत्र - ३४३

भगवन् ! क्या जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं अथवा अप्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! जीव (समुच्चयरूप में) मूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं ।

नैरयिक जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी ? गौतम ! नैरयिक जीव न तो मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और न उत्तरगुणप्रत्याख्यानी, किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं । इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त कहना । पंचेन्द्रियतिर्यंचों और मनुष्यों के विषय में जीवों की तरह कहना । वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के सम्बन्ध में नैरयिक जीवों की तरह कहना । ये सब अप्रत्याख्यानी हैं ।

भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी, इन जीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, (उनसे) उत्तरगुणप्रत्याख्यानी असंख्येयगुणा और (उनसे) अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणा हैं । भगवन् ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि जीवों में पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीव कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यंच जीव सबसे थोड़े, उनसे उत्तरगुणप्रत्याख्यानी असंख्यगुणा और उनसे अप्रत्याख्यानी असंख्यगुणा हैं । भगवन् ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि जीवों में मनुष्य कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोड़े, उनसे उत्तरगुणप्रत्याख्यानी संख्यातगुणा और उनसे अप्रत्याख्यानी मनुष्य असंख्यातगुणा हैं ।

भगवन् ! क्या जीव सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! जीव (समुच्चय में) सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं । भगवन् नैरयिक जीवों के विषय में भी यही प्रश्न है । गौतम ! नैरयिक जीव न तो सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और न ही देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, वे अप्रत्याख्यानी हैं । इसी तरह चतुरिन्द्रियपर्यन्त कहना चाहिए । पंचेन्द्रियतिर्यंच जीवों के विषय में भी यही प्रश्न है । गौतम ! पंचेन्द्रियतिर्यंच सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी नहीं हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं । मनुष्यों के विषय में (औघिक) जीवों की तरह कथन करना चाहिए । वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिकों की तरह कहना चाहिए ।

भगवन् ! इन सर्वमूलप्रत्याख्यानी, देशमूलप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े सर्वमूलप्रत्याख्यानी जीव हैं, उनसे असंख्यातगुणे देशमूलप्रत्याख्यानी जीव हैं और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार तीनों–औघिक जीवों, पंचेन्द्रियतिर्यंचों और मनुष्यों–का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डकमें कहे अनुसार कहना; किन्तु इतना विशेष है कि देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यंच सबसे थोड़े हैं और अप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यंच उनसे असंख्येयगुणे हैं । भगवन् ! जीव क्या सर्व-उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी हैं, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं अथवा अप्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! जीव तीनों प्रकार के हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों का कथन भी इसी तरह करना चाहिए । वैमानिकपर्यन्त शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं ।

भगवन् ! इन सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी एवं अप्रत्याख्यानी जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! इन तीनों का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डक में कहे अनुसार यावत् मनुष्यों तक जान लेना चाहिए ।

भगवन् ! क्या जीव संयत है, असंयत है, अथवा संयतासंयत है ? गौतम ! जीव संयत भी है, असंयत भी है और संयतासंयत भी हैं । इस तरह प्रज्ञापनासूत्र के ३२वे पद में कहे अनुसार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए और अल्पबहुत्व भी तीनों का पूर्ववत् कहना चाहिए । भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं, अथवा प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! तीनों प्रकार के हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी तीनों ही प्रकार के हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव प्रारम्भ के विकल्प से रहित हैं, वे अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी हैं । शेष सभी

जीव यावत् वैमानिक तक अप्रत्याख्यानी हैं ।

भगवन् ! इन प्रत्याख्यानी आदि जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे अल्प जीव प्रत्याख्यानी हैं, उनसे प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी असंख्येयगुणे हैं और उनसे अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणे हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी जीव सबसे थोड़े हैं, और उनसे असंख्यातगुणे अप्रत्याख्यानी हैं। मनुष्यों में प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोड़े हैं, उनसे संख्येयगुणे प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी हैं और उनसे भी असंख्येय गुणे अप्रत्याख्यानी हैं ।

सूत्र - ३४४

भगवन् ! क्या जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ? गौतम ! जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं। भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! द्रव्य की दृष्टि से जीव शाश्वत है और भाव की दृष्टि से जीव अशाश्वत हैं । इस कारण कहा गया है कि जीव कथंचित् शाश्वत हैं, कथंचित् अशाश्वत हैं ।

भगवन् ! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ? जिस प्रकार (औघिक) जीवों का कथन किया गया, उसी प्रकार नैरयिकों का कथन करना चाहिए । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डकों के विषय में कथन करना चाहिए कि वे जीव कथंचित् शाश्वत हैं, कथंचित अशाश्वत हैं । ‘हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है

शतक-७ – उद्देशक-३

सूत्र - ३४५

भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव किस काल में सर्वाल्पाहारी होते और किस काल में सर्वमहाहारी होते हैं ? गौतम ! प्रावृट्-ऋतु (श्रावण और भाद्रपद मास) में तथा वर्षाऋतु (आश्विन और कार्तिक मास) में वनस्पतिकायिक जीव सर्वमहाहारी होते हैं । इसके पश्चात् शरदऋतु में, तदनन्तर हेमन्तऋतु में इसके बाद वसन्तऋतु में और तत्पश्चात् ग्रीष्मऋतु में वनस्पतिकायिक जीव क्रमशः अल्पाहारी होते हैं । ग्रीष्मऋतु में वे सर्वाल्पाहारी होते हैं ।

भगवन् ! यदि ग्रीष्मऋतु में वनस्पतिकायिक जीव सर्वाल्पाहारी होते हैं, तो बहुत-से वनस्पतिकायिक ग्रीष्म ऋतु में पत्तों वाले, फूलों वाले, फलों वाले, हरियाली से देदीप्यमान एवं श्री से अतीव सुशोभित कैसे होते हैं ? हे गौतम! ग्रीष्मऋतु में बहुत-से उष्णयोनि वाले जीव और पुद्‌गल वनस्पतिकाय के रूप में उत्पन्न हो, विशेषरूप से उत्पन्न होते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं और विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं । हे गौतम ! इस कारण ग्रीष्मऋतु में बहुत-से वनस्पतिकायिक पत्तों वाले, फूलों वाले यावत् सुशोभित होते हैं ।

सूत्र - ३४६

भगवन् ! क्या वनस्पतिकायिक के मूल, निश्चय ही मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं, कन्द, कन्द के जीवों से स्पृष्ट, यावत् बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं ? हाँ, गौतम ! मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं ।

भगवन् ! यदि मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं, तो फिर भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार से आहार करते हैं और किस तरह से उसे परिणमाते हैं ? गौतम ! मूल, मूल के जीवों से व्याप्त हैं और वे पृथ्वी के जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, इस तरह से वनस्पतिकायिक जीव आहार करते हैं और उसे परिणमाते हैं । इसी प्रकार कन्द, कन्द के जीवों के साथ स्पृष्ट होते हैं और मूल के जीवों से सम्बद्ध रहते हैं; इसी प्रकार यावत् बीज, बीज के जीवों से व्याप्त होते हैं और फल के जीवों के साथ सम्बद्ध रहते हैं; इससे वे आहार करते और उसे परिणमाते हैं ।

सूत्र - ३४७

अब प्रश्न यह है भगवन् ! आलू, मूला, शृंगबेर, हिरिली, सिरिली, सिस्सिरिली, किट्टिका, छिरिया, छीरविदारिका, वज्रकन्द, सूरणकन्द, खिलूड़ा, भद्रमोथा, पिंडहरिद्रा, रोहिणी, हुथीहू, थिरुगा, मुद्‌गकर्णी, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिहण्डी, मुसुण्ढी, ये और इसी प्रकार की जितनी भी दूसरी वनस्पतियाँ हैं, क्या वे सब अनन्तजीववाली

और विविध (पृथक्-पृथक्) जीव वाली हैं ? हाँ, गौतम ! आलू, मूला, यावत् मुसुण्ढी; ये और इसी प्रकार की जितनी भी दूसरी वनस्पतियाँ हैं, वे सब अनन्तजीव वाली और विविध (भिन्न-भिन्न) जीव वाली हैं ।

सूत्र - ३४८

भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हाँ, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है ।

भगवन् ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हाँ, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है । भगवन् ! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महा-कर्म वाला होता है ? गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहता हूँ ।

इसी प्रकार असुरकुमारों के विषयमें भी कहना चाहिए, परन्तु उनमें एक तेजोलेश्या अधिक होती है । इसी तरह यावत् वैमानिक देवों तक कहना। जिसमें जितनी लेश्याएं हों, उतनी कहनी चाहिए, किन्तु ज्योतिष्क देवों के दण्डक का कथन नहीं करना । भगवन् ! क्या पद्मलेश्यावाला वैमानिक कदाचित् अल्पकर्म वाला और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ? हाँ, गौतम ! कदाचित् होता है । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ? (इसके उत्तरमें) शेष सारा कथन नैरयिक की तरह यावत् 'महाकर्म वाला होता है;' यहाँ तक करना चाहिए ।

सूत्र - ३४९

भगवन् ! क्या वास्तव में जो वेदना है, वह निर्जरा कही जा सकती है ? और जो निर्जरा है, वह वेदना कही जा सकती है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि जो वेदना है, वह निर्जरा नहीं कही जा सकती और जो निर्जरा है, वह वेदना नहीं कही जा सकती ? गौतम ! वेदना कर्म है और निर्जरा नोकर्म है। इस कारण से ऐसा कहा जाता है ।

भगवन् ! क्या नैरयिकों की जो वेदना है, उसे निर्जरा कहा जा सकता है, और जो निर्जरा है, उसे वेदना कहा जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि नैरयिकों की जो वेदना है, उसे निर्जरा नहीं कहा जा सकता और जो निर्जरा है, उसे वेदना नहीं कहा जा सकता ? गौतम ! नैरयिकों की जो वेदना है, वह कर्म है और जो निर्जरा है, वह नोकर्म है । इस कारण से हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! जिन कर्मों का वेदन कर (भोग) लिया, क्या उनको निर्जीर्ण कर लिया और जिन कर्मों को निर्जीर्ण कर लिया, क्या उनका वेदन कर लिया ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जिन कर्मों का वेदन कर लिया, उनको निर्जीर्ण नहीं किया और जिन कर्मों को निर्जीर्ण कर लिया, उनका वेदन नहीं किया ? गौतम ! वेदन किया गया कर्मों का, किन्तु निर्जीर्ण किया गया है-नोकर्मों को, इस कारण से हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा । भगवन् ! नैरयिक जीवों ने जिस कर्म का वेदन कर लिया, क्या उसे निर्जीर्ण कर लिया ? पहले कहे अनुसार नैरयिकों के विषय में भी जान लेना । इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में कथन करना ।

भगवन् ! क्या वास्तव में जिस कर्म को वेदते हैं, उसकी निर्जरा करते हैं और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसको वेदते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! यह आप किस कारण से कहते हैं कि जिसको वेदते हैं, उसकी निर्जरा नहीं करते और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसको वेदते नहीं हैं ? गौतम ! कर्म को वेदते हैं और नोकर्म को निर्जीर्ण करते हैं । इस कारण से हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ । इसी तरह नैरयिकों के विषय में जानना । वैमानिकों पर्यन्त चौबीस ही दण्डकों में इसी तरह कहना ।

भगवन् ! क्या वास्तव में कर्म का वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा करेंगे, और जिस कर्म की निर्जरा करेंगे, उसका

वेदन करेंगे ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि यावत् उसका वेदन नहीं करेंगे ? गौतम ! कर्म का वेदन करेंगे, नोकर्म की निर्जरा करेंगे । इस कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है । इसी तरह नैरयिकों के विषय में जान लेना । वैमानिक पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिए ।

भगवन् ! जो वेदना का समय है, क्या वही निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वही वेदना का समय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! जिस समय में वेदते हैं, उस समय निर्जरा नहीं करते और जिस समय निर्जरा करते हैं, उस समय वेदन नहीं करते । अन्य समय में वेदन करते हैं और अन्य समय में निर्जरा करते हैं । वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है । इसी कारण हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि...यावत् निर्जरा का जो समय है, वह वेदना का समय नहीं है ।

भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों का जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम! नैरयिक जीव जिस समय में वेदन करते हैं, उस समय में निर्जरा नहीं करते और जिस समय में निर्जरा करते हैं, उस समय में वेदन नहीं करते । अन्य समय में वे वेदन करते हैं और अन्य समय में निर्जरा करते हैं । उनके वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है । इस कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि यावत् जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं है । इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना ।

सूत्र - ३५०

भगवन् ! नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! अव्युच्छित्ति नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव शाश्वत है और व्युच्छित्ति नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव अशाश्वत हैं । इन कारण से हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं । इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना । यावत् इसी कारण मैं कहता हूँ वैमानिक देव कथंचित् शाश्वत हैं, कथंचित् अशाश्वत हैं । भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है ।

शतक-७ – उद्देशक-४

सूत्र - ३५१

राजगृह नगर में यावत् भगवान महावीर से इस प्रकार पूछा–भगवन् ! संसारसमापन्नक जीव कितने प्रकार के हैं? गौतम ! छह प्रकार के–पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एवं त्रस-कायिक। इस प्रकार यह समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र में कहे अनुसार सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया पर्यन्त कहना चाहिए हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

सूत्र - ३५२

जीव के छह भेद, पृथ्वीकायिक आदि जीवों की स्थिति, भवस्थिति, सामान्यकायस्थिति, निर्लेपन, अनगार सम्बन्धी वर्णन सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया ।

शतक-७ – उद्देशक-५

सूत्र - ३५३

राजगृह नगर में यावत् भगवान महावीर स्वामी से पूछा–हे भगवन् ! खेचर पंचेन्द्रियतिर्यंच जीवों का योनिसंग्रह कितने प्रकार का है ? गौतम ! तीन प्रकार का । अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम । इस प्रकार जीवा-जीवाभिगमसूत्र में कहे अनुसार यावत् 'उन विमानों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, हे गौतम ! वे विमान इतने महान् कहे गए हैं;' तक कहना । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है ।

सूत्र - ३५४

योनिसंग्रह लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन और जाति-कुलकोटि इतने विषय हैं ।

शतक-७ – उद्देशक-६

सूत्र - ३५५

राजगृह नगर में यावत् पूछा–भगवन् ! जो जीव नारकों में उत्पन्न होने योग्य हैं, क्या वह इस भव में रहता हुआ नारकायुष्य बाँधता है, वहाँ उत्पन्न होता हुआ नारकायुष्य बाँधता है या फिर (नरक में) उत्पन्न होने पर नारका-युष्य बाँधता है ? गौतम ! वह इस भव में रहता हुआ ही नारकायुष्य बाँधता लेता है, परन्तु नरक में उत्पन्न हुआ नारकायुष्य नहीं बाँधता और न नरक में उत्पन्न होने पर नारकायुष्य बाँधता है । इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहना । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना ।

भगवन् ! जो जीव नारकों में उत्पन्न होने वाला है, क्या वह इस भव में रहता हुआ नारकायुष्य का वेदन करता है, या वहाँ उत्पन्न होता हुआ नारकायुष्य का वेदन करता है, अथवा वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् नारकायुष्य का वेदन करता है ? गौतम ! वह इस भव में रहता हुआ नारकायुष्य का वेदन नहीं करता, किन्तु वहाँ उत्पन्न होता हुआ वह नारकायुष्य का वेदन करता है और उत्पन्न होने के पश्चात् भी नारकायुष्य का वेदन करता है । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डकों में कथन करना चाहिए ।

भगवन् ! जो जीव नारकों में उत्पन्न होने वाला है, क्या वह यहाँ रहता हुआ ही महावेदना वाला हो जाता है, या नरक में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला होता है, अथवा नरक में उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है ? गौतम ! वह इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है, कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है । नरक में उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है; किन्तु जब नरक में उत्पन्न हो जाता है, तब वह एकान्तदुःखरूप वेदना वेदता है, कदाचित् सुखरूप (वेदना वेदता है) । भगवन् ! असुरकुमार सम्बन्धी प्रश्न–गौतम ! वह इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है; वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, किन्तु जब वह वहाँ उत्पन्न हो जाता है, तब एकान्तसुख रूप वेदता है, कदाचित् दुःखरूप वेदना वेदता है । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने योग्य जीव सम्बन्धी पृच्छा । गौतम ! वह जीव इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदनायुक्त और कदाचित् अल्पवेदनायुक्त होता है, इसी प्रकार वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह कदाचित् महावेदना और कदाचित् अल्पवेदना से युक्त होता है और जब वहाँ उत्पन्न हो जाता है, तत्पश्चात् वह विविध प्रकार से वेदना वेदता है । इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त कहना । असुरकुमारों के समान वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए भी कहना ।

सूत्र - ३५६

भगवन् ! क्या जीव आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं या अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ? गौतम ! जीव आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले नहीं हैं, किन्तु अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं । इसी प्रकार नैरयिकों के (आयुष्य के) विषय में भी कहना चाहिए । वैमानिकों पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिए ।

सूत्र - ३५७

भगवन् ! क्या जीवों के कर्कश वेदनीय कर्म करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं । भगवन् ! जीव कर्कश-वेदनीय कर्म कैसे बाँधते हैं ? गौतम ! प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से बाँधते हैं । क्या नैरयिक जीव कर्कशवेदनीय कर्म बाँधते हैं ? हाँ, गौतम ! पहले कहे अनुसार बाँधते हैं । इसी प्रकार वैमानिकों तक कहना ।

भगवन् ! क्या जीव अकर्कशवेदनीय कर्म बाँधते हैं ? हाँ, गौतम ! बाँधते हैं । भगवन् ! जीव अकर्कश-वेदनीय कर्म कैसे बाँधते हैं ? गौतम ! प्राणातिपातविरमण से यावत् परिग्रह-विरमण से, इसी तरह क्रोध-विवेक से यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक से बाँधते हैं । भगवन् ! क्या नैरयिक जीव अकर्कशवेदनीय कर्म बाँधते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना । मनुष्यों के विषय में इतना विशेष है कि औघिक जीवों के समान

ही सारा कथन करना चाहिए ।

सूत्र - ३५८

भगवन् ! क्या जीव सातावेदनीय कर्म बाँधते हैं ? हाँ, गौतम ! बाँधते हैं । भगवन् ! जीव सातावेदनीय कर्म कैसे बाँधते हैं ? गौतम ! प्राणों पर अनुकम्पा करने से, भूतों पर अनुकम्पा करने से, जीवों के प्रति अनुकम्पा करने से और सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से; तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख न देने से, उन्हें शोक उत्पन्न न करने से, चिन्ता उत्पन्न न कराने से, विलाप एवं रुदन कराकर आंसू न बहवाने से, उनको न पीटने से, उन्हें परिताप न देने से जीव सातावेदनीय कर्म बाँधते हैं । इसी प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहना चाहिए । इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! जीव असातावेदनीय कर्म बाँधते हैं ? हाँ, गौतम ! बाँधते हैं । भगवन् ! जीव असातावेदनीय कर्म कैसे बाँधते हैं ? गौतम ! दूसरों को दुःख देने से, दूसरे जीवों को शोक उत्पन्न करने से, जीवों को विषाद या चिन्ता उत्पन्न करने से, दूसरों को रुलाने या विलाप कराने से, दूसरों को पीटने से और जीवों को परिताप देने से तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्वों को दुःख पहुँचाने से, शोक उत्पन्न करने से यावत् उनको परिताप देने से हे गौतम ! इस प्रकार से जीव असातावेदनीय कर्म बाँधते हैं । इसी प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में समझना चाहिए। इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए ।

सूत्र - ३५९

भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल का दुःषमदुःषम नामक छठा आरा जब अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त होगा, तब भारतवर्ष का आकारभाव-प्रत्यवतार कैसा होगा ? गौतम ! वह काल हाहाभूत, भंभाभूत (दुःखार्त्त) तथा कोलाहलभूत होगा । काल के प्रभाव से अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन, असह्य, व्याकुल, भयंकर वात एवं संवर्त्तक बात चलेंगी । इस काल में यहाँ बारबार चारों ओर से धूल उड़ने से दिशाएं रज से मलिन और रेत से कलुषित, अन्धकारपटल से युक्त एवं आलोक से रहित होंगी । समय की रूक्षता के कारण चन्द्रमा अत्यन्त शीतलता फैकेंगे; सूर्य अत्यन्त तपेंगे । इसके अनन्तर बारम्बार बहुत से खराब रस वाले मेघ, विपरीत रस वाले मेघ, खारे जल वाले मेघ, खत्तमेघ, अग्निमेघ, विद्युत्मेघ, विषमेघ, अशनिमेघ, न पीने योग्य जल से पूर्ण मेघ, व्याधि, रोग और वेदना को उत्पन्न करने वाले जल से युक्त तथा अमनोज्ञ जल वाले मेघ, प्रचण्ड वायु के आघात से आहत होकर तीक्ष्ण धाराओं के साथ गिरते हुए प्रचुर वर्षा बरसाएंगे; जिससे भारत वर्ष के ग्राम, आकर, नगर, खेड़े, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण और आश्रम में रहने वाले जनसमूह, चतुष्पद, खग, ग्रामों और जंगलों में संचार में रत त्रसप्राणी तथा अनेक प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लताएं, बेलें, घास, दूब, पर्व्वक, हरियाली, शालि आदि धान्य, प्रवाल और अंकुर आदि तृणवनस्पतियाँ, ये सब विनष्ट हो जाएंगी । वैताढ्यपर्वत को छोड़कर शेष सभी पर्वत, छोटे पहाड़, टीले, डुंगर, स्थल, रेगिस्तान, बंजरभूमि आदि सबका विनाश हो जाएगा । गंगा और सिन्धु, इन दो नदियों को छोड़कर शेष नदियाँ, पानी के झरने, गड्ढे, (नष्ट हो जाएंगे) दुर्गम और विषम भूमि में रहे हुए सब स्थल समतल क्षेत्र हो जाएंगे ।

सूत्र - ३६०

भगवन् ! उस समय भारतवर्ष की भूमि का आकार और भावों का आविर्भाव किस प्रकार का होगा ? गौतम ! उस समय इस भरतक्षेत्र की भूमि अंगारभूत, मुर्मूरभूत, भस्मीभूत, तपे हुए लोहे के कड़ाह के समान, तप्तप्राय अग्नि के समान, बहुत धूल वाली, बहुत रज वाली, बहुत कीचड़ वाली, बहुत शैवाल वाली, चलने जितने बहुत कीचड़ वाली होगी, जिस पर पृथ्वीस्थित जीवों का चलना बड़ा ही दुष्कर हो जाएगा । भगवन् ! उस समय में भारतवर्ष के मनुष्यों का आकार और भावों का आविर्भाव कैसा होगा ?

गौतम ! उस समय में भारतवर्ष के मनुष्य अति कुरूप, कुवर्ण, कुगन्ध, कुरस और कुस्पर्श से युक्त, अनिष्ट, अकान्त यावत् अमनोगम, हीनस्वर वाले, दीनस्वर वाले, अनिष्टस्वर वाले यावत् अमनाम स्वर वाले, अनादेय और अप्रतीतियुक्त वचन वाले, निर्लज्ज, कूट-कपट, कलह, वध, बन्ध और वैरविरोध में रत, मर्यादा का उल्लंघन करने में

प्रधान, अकार्य करने में नित्य उद्यत, गुरुजनों के आदेशपालन और विनय से रहित, विकलरूप वाले, बढ़े हुए नख, केश, दाढ़ी, मूँछ और रोम वाले, कालेकलूटे, अत्यन्त कठोर श्यामवर्ण के बिखरे हुए बालों वाले, पीले और सफेद केशों वाले, दुर्दर्शनीय रूप वाले, संकुचित और वलीतरंगों से परिवेष्टित, टेढ़े-मेढ़े अंगोपांग वाले, इसलिए जरापरिणत वृद्धपुरुषों के समान प्रविरल टूटे और सड़े हुए दाँतों वाले, उद्भट घट के समान भयंकर मुख वाले, विषम नेत्रों वाले, टेढ़ी नाक वाले तथा टेढ़े-मेढ़े एवं भुर्रियों से विकृत हुए भयंकर मुख वाले, एक प्रकार की भयंकर खुजली वाले, कठोर एवं तीक्ष्ण नखों से खुजलाने के कारण विकृत बने हुए, दाद, एक प्रकार के कोढ़, सिध्म वाले, फटी हुई कठोर चमड़ी वाले, विचित्र अंग वाले, ऊंट आदि-सी गति वाले, शरीर के जोड़ों के विषम बंधन वाले, ऊंची -नीची विषम हड्डियों एवं पसलियों से युक्त, कुगठनयुक्त, कुसंहनन वाले, कुप्रमाणयुक्त, विषमसंस्थानयुक्त, कुरूप, कुस्थान में बढ़े हुए शरीर वाले, कुशय्या वाले, कुभोजन करने वाले, विविध व्याधियों से पीड़ित, स्खलित गति वाले, उत्साहरहित, सत्त्वरहित, विकृत चेष्टा वाले, तेजोहीन, बारबार शीत, उष्ण, तीक्ष्ण और कठोर बात से व्याप्त, मलिन अंग वाले, अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त अशुभ दु:ख के भागी, प्रायः धर्मसंज्ञा और सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे । उनकी अवगाहना उत्कृष्ट एक रत्निप्रमाण होगी । उनका आयुष्य सोलह वर्ष का और अधिक-से-अधिक बीस वर्ष का होगा । वे बहुत से पुत्र-पौत्रादि परिवार वाले होंगे और उन पर उनका अत्यन्त स्नेह होगा । इनके ७२ कुटुम्ब बीजभूत तथा बीजमात्र होंगे। ये गंगा और सिन्धु महानदियों के बिलों में और वैताढ्यपर्वत की गुफाओं में निवास करेंगे ।

भगवन् ! (उस दु:षमदु:षमकाल के) मनुष्य किस प्रकार का आहार करेंगे ? गौतम ! उस काल और उस समय में गंगा और सिन्धु महानदियाँ रथ के मार्गप्रमाण विस्तार वाली होंगी । रथ की धूरी के प्रवेश करने के छिद्र जितने भागमें आ सके उतना पानी बहेगा । वह पानी भी अनेक मत्स्य, कछुए आदि से भरा होगा और उसमें भी पानी बहुत नहीं होगा । वे बिलवासी मनुष्य सूर्योदय के समय एक मुहूर्त्त और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त्त बिलों से बाहर नीकलेंगे । बिलों से बाहर नीकलकर वे गंगा और सिन्धु नदियों में से मछलियों और कछुओं आदि को पकड़ कर जमीन में गाड़ेंगे । इस प्रकार गाड़े हुए मत्स्य-कच्छपादि ठंड और धूप से सूख जाएंगे । इस प्रकार शीत और आतप से पके हुए मतस्य-कच्छपादि से इक्कीस हजार वर्ष तक जीविका चलाते हुए वे विहरण करेंगे ।

भगवन् ! वे शीलरहित, गुणरहित, मर्यादाहीन, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास से रहित, प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी एवं कुणिमाहारी मनुष्य मृत्यु के समय मरकर कहाँ जाएंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ? गौतम ! वे मनुष्य मरकर प्रायः नरक एवं तिर्यंच-योनियों में उत्पन्न होंगे । भगवन् ! निःशील यावत् कुणिमाहारी सिंह, व्याघ्र, वृक, द्वीपिक, रीछ, तरक्ष और गेंडा आदि मरकर कहाँ जाएंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ? गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होंगे । भगवन् ! निःशील आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त ढंक, कंक, बिलक, मद्दुक, शिखी (आदि पक्षी मरकर कहाँ उत्पन्न होंगे ?) गौतम ! प्रायः नरक एवं तिर्यंच योनियों में उत्पन्न होंगे । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-७ – उद्देशक-७

सूत्र - ३६१

भगवन् ! उपयोगपूर्वक चलते-बैठते यावत् उपयोगपूर्वक करवट बदलते तथा उपयोगपूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन आदि ग्रहण करते और रखते हुए उस संवृत्त अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! उस संवृत्त अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी नहीं ।

भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि उस संवृत्त अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ? गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न हो गए हैं, उसको ही ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, क्योंकि वही यथासूत्र प्रवृत्ति करता है । इस कारण हे गौतम ! उसको यावत् साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ।

सूत्र - ३६२

भगवन् ! काम रूपी है या अरूपी है ? आयुष्मन् श्रमण ! काम रूपी है, अरूपी नहीं है । भगवन् ! काम

सचित्त है अथवा अचित्त है ? गौतम ! काम सचित्त भी हैं और काम अचित्त भी हैं । भगवन् ! काम जीव हैं अथवा अजीव हैं ? गौतम ! काम जीव भी हैं और काम अजीव भी हैं । भगवन् ! काम जीवों के होते हैं या अजीवों के होते हैं ? गौतम ! काम जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते । भगवन् ! काम कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! काम दो प्रकार के कहे गए हैं । शब्द और रूप ।

भगवन् ! भोग रूपी हैं अथवा अरूपी हैं ? गौतम ! भोग रूपी होते हैं, वे (भोग) अरूपी नहीं होते । भगवन् ! भोग सचित्त होते हैं या अचित्त होते हैं ? गौतम ! भोग सचित्त भी होते हैं और अचित्त भी होते हैं । भगवन् ! भोग जीव होते हैं या अजीव होते हैं ? गौतम ! भोग जीव भी होते हैं, और भोग अजीव भी होते हैं । भगवन् ! भोग जीवों के होते हैं या अजीवों के होते हैं? गौतम! भोग जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं । भगवन् ! भोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! भोग तीन प्रकार के कहे गए हैं । वे–गन्ध, रस और स्पर्श । भगवन् ! काम-भोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! कामभोग पाँच प्रकार के कहे गए हैं । शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श ।

भगवन् ! जीव कामी हैं अथवा भोगी हैं ? गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं ? गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा जीव कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा जीव भोगी हैं । इस कारण, हे गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं । भगवन् ! नैरयिक जीव कामी हैं अथवा भोगी हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव भी पूर्ववत् कामी भी हैं, भोगी भी हैं । इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के सम्बन्ध में भी यही प्रश्न है । गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव कामी नहीं हैं, किन्तु भोगी हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि पृथ्वीकायिक जीव कामी नहीं, किन्तु भोगी हैं ? गौतम स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीव भोगी हैं । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों तक कहना चाहिए ।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीव भी भोगी हैं, किन्तु विशेषता यह है कि वे जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । त्रीन्द्रिय जीव भी इसी प्रकार भोगी हैं, किन्तु विशेषता यह है कि वे घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्ष भोगी हैं । भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में भी प्रश्न है । गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी है और भोगी भी है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! (चतुरिन्द्रिय जीव) चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं । शेष वैमानिकों पर्यन्त सभी जीवों के विषय में औघिक जीवों की तरह कहना चाहिए ।

भगवन् ! काम-भोगी, नोकामी-नोभोगी और भोगी, इन जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! कामभोगी जीव सबसे थोड़े हैं, नोकामी-नोभोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं, भोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं ।

सूत्र - ३६३

भगवन् ! ऐसा छद्मस्थ मनुष्य, जो किसी देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! वास्तव में वह क्षीणभोगी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम के द्वारा विपुल और भोगने योग्य भोगों को भोगता हुआ विहरण करने में समर्थ नहीं है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम द्वारा किन्हीं विपुल एवं भोग्य भोगों को भोगने में समर्थ हैं । इसलिए वह भोगी भोगों का परित्याग करता हुआ ही महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है । भगवन् ! ऐसा अधोऽवधिक (नियत क्षेत्र का अवधिज्ञानी) मनुष्य, जो किसी देवलोक में उत्पन्न होने योग्य है, क्या वह क्षीणभोगी उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम द्वारा विपुल एवं भोग्य लोगों को भोगने में समर्थ है । इसके विषय में छद्मस्थ के समान ही कथन जान लेना

भगवन् ! ऐसा परमावधिक मनुष्य जो उसी भवग्रहण से सिद्ध होने वाला यावत् सर्व-दुःखों का अन्त करने वाला है, क्या वह क्षीणभोगी यावत् भोगने योग्य विपुल भोगों को भोगने में समर्थ है ? (हे गौतम !) छद्मस्थ के समान समझना । भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्य भी, जो उसी भव में सिद्ध होने वाला है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करने

वाला है, क्या वह विपुल और भोग्य भोगों को भोगने में समर्थ है ? इसका कथन भी परमावधिज्ञानी की तरह करना चाहिए यावत् वह महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है ।

सूत्र - ३६४

भगवन् ! ये जो असंज्ञी प्राणी हैं, यथा–पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक ये पाँच तथा छठे कई त्रस-कायिक जीव हैं, जो अन्ध हैं, मूढ़ हैं, तामस में प्रविष्ट की तरह हैं, (ज्ञानावरणरूप) तमःपटल और (मोहनीयरूप) मोहजाल से आच्छादित हैं, वे अकामनिकरण (अज्ञान रूप में) वेदना वेदते हैं, क्या ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! जो ये असंज्ञी प्राणी हैं यावत्...ये सब अकामनिकरण वेदना वेदते हैं, ऐसा कहा जा सकता है । भगवन् ! क्या ऐसा होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण वेदना को वेदते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदते हैं । भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण वेदना को कैसे वेदते हैं ? गौतम ! जो जीव समर्थ होते हुए भी अन्धकार में दीपक के बिना रूपों को देखने में समर्थ नहीं होते, जो अवलोकन किये बिना सम्मुख रहे हुए रूपों को देख नहीं सकते, अवेक्षण किये बिना पीछे के भाग को नहीं देख सकते, अवलोकन किये बिना अगल-बगल के रूपों को नहीं देख सकते, आलोकन किये बिना ऊपर के रूपों को नहीं देख सकते और न आलोकन किये बिना नीचे के रूपों को देख सकते हैं, इसी प्रकार हे गौतम ! ये जीव समर्थ होते हुए भी अकामनिकरण वेदना वेदते हैं । भगवन् ! क्या ऐसा भी होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण (तीव्र ईच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदते हैं । भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण वेदना को किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! जो समुद्र के पार जाने में समर्थ नहीं हैं, जो समुद्र के पार रहे हुए रूपों को देखने में समर्थ नहीं है, जो देवलोक में जाने में समर्थ नहीं हैं और जो देवलोक में रहे हुए रूपों को देख नहीं सकते, हे गौतम ! वे समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना को वेदते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । यह इसी प्रकार है ।

शतक-७ – उद्देशक-८

सूत्र - ३६५

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य, अनन्त और शाश्वत अतीतकाल में केवल संयम द्वारा, केवल संवर द्वारा, केवल ब्रह्मचर्य से तथा केवल अष्टप्रवचनमाताओं के पालन से सिद्ध हुआ है, यावत् उसने सर्व दुःखों का अन्त किया है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इस विषय में प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक में जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार वह, यावत् 'अलमत्थु' पाठ तक कहना चाहिए ।

सूत्र - ३६६

भगवन् ! क्या वास्तव में हाथी और कुन्थुए का जीव समान है ? हाँ, गौतम ! हाथी और कुन्थुए का जीव समान है । इस विषय में राजप्रश्नीयसूत्र में कहे अनुसार 'खुड्डियं वा महालियं वा' इस पाठ तक कहना चाहिए ।

सूत्र - ३६७

भगवन् ! नैरयिकों द्वारा जो पापकर्म किया गया है, किया जाता है और किया जाएगा, क्या वह सब दुःख रूप हैं और (उनके द्वारा) जिसकी निर्जरा की गई है, क्या वह सुखरूप है ? हाँ, गौतम ! नैरयिक द्वारा जो पापकर्म किया गया है, यावत् वह सब दुःखरूप है और (उनके द्वारा) जिन (पापकर्मों) की निर्जरा की गई है, वह सब सुखरूप है । इस प्रकार वैमानिकों पर्यन्त चौबीस दण्डकों को जान लेना चाहिए ।

सूत्र - ३६८

भगवन् ! संज्ञाएं कितने प्रकार की कही गई हैं ? गौतम ! दस प्रकार की हैं । आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा, मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा, लोकसंज्ञा और ओघसंज्ञा । वैमानिकों पर्यन्त चौबीस दण्डकों में ये दस संज्ञाएं पाई है ।

नैरयिक जीव दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए रहते हैं । वह इस प्रकार–शीत, उष्ण, क्षुधा, पीपासा, कण्डू, पराधीनता, ज्वर, दाह, भय और शोक ।

सूत्र - ३६९

भगवन् ! क्या वास्तव में हाथी और कुन्थुए के जीव को समान रूप में अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगती है ? हाँ, गौतम ! हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि हाथी और कुन्थुए के यावत् क्रिया समान लगती है ? गौतम ! अविरति की अपेक्षा समान लगती है ।

सूत्र - ३७०

भगवन् ! आधाकर्म का उपयोग करने वाला साधु क्या बाँधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ? गौतम ! इस विषय का सारा वर्णन प्रथम शतक के नौंवे उद्देशक में कहे अनुसार-'पण्डित शाश्वत है और पण्डितत्व अशाश्वत है' यहाँ तक कहना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-७ – उद्देशक-९

सूत्र - ३७१

भगवन् ! क्या असंवृत अनगार बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले, एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! क्या असंवृत अनगार बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण करके एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? हाँ, गौतम ! वह ऐसा करने में समर्थ हैं ।

भगवन् ! वह असंवृत अनगार यहाँ (मनुष्य-लोक में) रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, या वहाँ रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, अथवा अन्यत्र रहे पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ? गौतम ! वह यहाँ (मनुष्यलोक में) रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, किन्तु न तो वहाँ रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है और न ही अन्यत्र रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ।

इस प्रकार एकवर्ण, एकरूप, एकवर्ण अनेकरूप, अनेकवर्ण एकरूप और अनेकवर्ण अनेकरूप, यों चौंभगी का कथन जिस प्रकार छठे शतक के नौंवे उद्देशक में किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए । किन्तु इतना विशेष है कि यहाँ रहा हुआ मुनि यहाँ रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है । शेष सारा वर्णन पूर्ववत् यावत् 'भगवन् ! क्या रूक्ष पुद्‌गलों को स्निग्ध पुद्‌गलों के रूप में परिणित करने में समर्थ है ?' (उ.) हाँ, गौतम ! समर्थ है । (प्र.) भगवन् ! क्या वह यहाँ रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण करके यावत् अन्यत्र रहे हुए पुद्‌गलों को ग्रहण किए बिना विकुर्वणा करता है ? तक कहना ।

सूत्र - ३७२

अर्हन्त भगवान ने यह जाना है, अर्हन्त भगवान ने यह सूना है-तथा अर्हन्त भगवान को यह विशेष रूप से ज्ञात है कि महाशिलाकण्टक संग्राम महाशिलाकण्टक संग्राम ही है । (अतः) भगवन् ! जब महाशिलाकण्टक संग्राम चल रहा था, तब उसमें कौन जीता और कौन हारा ? गौतम ! वज्जी विदेहपुत्र कूणिक राजा जीते, नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी, जो कि काश और कौशलदेश के १८ गणराजा थे, वे पराजित हुए ।

उस समय में महाशिलाकण्टक-संग्राम उपस्थित हुआ जानकर कूणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । उनसे कहा-हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही 'उदायी' नामक हिस्तराज को तैयार करो और अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना सन्नद्ध करो और ये सब करके यावत् शीघ्र ही मेरी आज्ञा मुझे वापिस सौंपो ।

तत्पश्चात् कूणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जान पर वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट हुए, यावत् मस्तक पर अंजलि करके-हे स्वामिन् ! 'ऐसा ही होगा, जैसी आज्ञा'; यों कहकर उन्होंने विनयपूर्वक वचन स्वीकार किया । निपुण आचार्यों के उपदेश से प्रशिक्षित एवं तीक्ष्ण बुद्धि-कल्पना के सुनिपुण विकल्पों से युक्त तथा औपपातिकसूत्र में कहे गए विशेषणों से युक्त यावत् भीम संग्राम के योग्य उदार उदायी नामक हस्तीराज को सुसज्जित किया । साथ ही घोड़े, हाथी, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना भी सुसज्जित की । जहाँ कूणिक राजा था, वहाँ उसके पास आए और करबद्ध होकर उन्होंने कूणिक राजा को आज्ञा वापिस सौंपी । तत्पश्चात् कूणिक राजा जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया, उसने स्नानगृह में प्रवेश किया । फिर स्नान किया, स्नान से सम्बन्धित मर्दनादि बलिकर्म किया, फिर

प्रायश्चित्तरूप कौतुक तथा मंगल किए । समस्त आभूषणों से विभूषित हुआ । सन्नद्धबद्ध हुआ, लोह-कवच को धारण किया, फिर मुड़े हुए धनुर्दण्ड को ग्रहण किया । गले के आभूषण पहने और योद्धा के योग्य उत्तमोत्तम चिह्नपट बाँधे । फिर आयुध तथा प्रहरण ग्रहण किए । फिर कोरण्टक पुष्पों की माला सहित छत्र धारण किया तथा उसके चारों ओर चार चामर ढुलाये जाने लगे । लोगों द्वारा मांगलिक एवं जय-विजय शब्द उच्चारण किये जाने लगे ।

इस प्रकार कूणिक राजा उववाइय में कहे अनुसार यावत् उदायी नामक प्रधान हाथी पर आरूढ हुआ । इसके बाद हारों से आच्छादित वक्षःस्थल वाला कूणिक जनमन में रति-प्रीति उत्पन्न करता हुआ यावत् श्वेत चामरों से बार-बार बिंजाता हुआ, अश्व, हस्ती, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त, महान सुभटों के विशाल समूह से व्याप्त कूणिक राजा जहाँ महाशिलाकण्टक संग्राम था, वहाँ आया । वह महाशिलाकण्टक संग्राम में उतरा । उसके आगे देवराज देवेन्द्र शक्र वज्रप्रतिरूपक अभेद्य एक महान कवच की विकुर्वणा करके खड़ा हुआ । इस प्रकार संग्राम करने लगे; जैसे कि–एक देवेन्द्र और दूसरा मनुजेन्द्र (कूणिक राजा), कूणिक राजा केवल एक हाथी से भी पराजित करने में समर्थ हो गया । तत्पश्चात् उस कूणिक राजा न महाशिलाकण्टक संग्राम करते हुए नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी; जो काशी और कोशल देश के अठारह गणराजा थे, उनके प्रवरवीर योद्धाओं को नष्ट किया, घायल किया और मार डाला । उनकी चिह्नांकित ध्वजा-पताकाएं गिरा दी । उन वीरों के प्राण संकट में पड़ गए, अतः उन्हें युद्धस्थल से दसों दिशाओं में भगा दिया ।

भगवन् ! इस 'महाशिलाकण्टक' संग्राम को महाशिलाकण्टक संग्राम क्यों कहा जाता है ? गौतम ! जब महाशिलाकण्टक संग्राम हो रहा था, तब उस संग्राम में जो भी घोड़ा, हाथी, योद्धा या सारथि आदि तृण से, काष्ठ से, पत्ते से या कंकर आदि से आहत होते, वे सब ऐसा अनुभव करते थे कि हम महाशिला (के प्रहार) से मारे गए हैं। हे गौतम ! इस कारण इस संग्राम को महाशिलाकण्टक संग्राम कहा जाता है । भगवन् ! जब महाशिलाकण्टक संग्राम हो रहा था, तब उसमें कितने लाख मनुष्य मारे गए ? गौतम ! महाशिलाकण्टक संग्राम में चौरासी लाख मनुष्य मारे गए । भगवन् ! शीलरहित यावत् प्रत्याख्यान एवं पौषधोपवास से रहित, रोष में भरे हुए, परिकुपित, युद्ध में घायल हुए और अनुपशान्त वे मनुष्य मरकर कहाँ गए, कहाँ उत्पन्न हुए ? गौतम ! प्रायः नरक और तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न हुए हैं ।

सूत्र - ३७३

भगवन् ! अर्हन्त भगवान ने जाना है, इसे प्रत्यक्ष किया है और विशेषरूप से जाना है कि यह रथमूसल-संग्राम है । भगवन् ! यह रथमूसलसंग्राम जब हो रहा था तब कौन जीता, कौन हारा ? हे गौतम ! वज्री-इन्द्र और विदेहपुत्र (कूणिक) एवं असुरेन्द्र असुरराज चमर जीते और नौ मल्लकी और नौ लिच्छवी राजा हार गए । तदनन्तर रथमूसल-संग्राम उपस्थित हुआ जानकर कूणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । इसके बाद का सारा वर्णन महाशिलाकण्टक की तरह कहना । इतना विशेष है कि यहाँ 'भूतानन्द' नामक हस्तिराज है । यावत् वह कूणिक राजा रथमूसलसंग्राम में ऊतरा । उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र है, यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन कहना । उसके पीछे असुरेन्द्र असुरराज चमर लोहे के बने हुए एक महान् किठिन जैसे कवच की विकुर्वणा करके खड़ा है । इस प्रकार तीन इन्द्र संग्राम करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं । यथा–देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र । अब कूणिक केवल एक हाथी से सारी शत्रु-सेना को पराजित करने में समर्थ है । यावत् पहले कहे अनुसार उसने शत्रु राजाओं को दसों दिशाओं में भगा दिया ।

भगवन् ! इस 'रथमूसलसंग्राम' को रथमूसलसंग्राम क्यों कहा जाता है ? गौतम ! जिस समय रथमूसल-संग्राम हो रहा था, उस समय अश्वरहित, सारथिरहित और योद्धाओं से रहित केवल एक रथमूसल सहित अत्यन्त जनसंहार, जनवध, जन-प्रमर्दन और जनप्रलय के समान रक्त का कीचड़ करता हुआ चारों और दौड़ता था । इसी कारण उस संग्राम को 'रथमूसलसंग्राम' यावत् कहा गया है । भगवन् ! जब रथमूसलसंग्राम हो रहा था, तब उनमें कितने लाख मनुष्य मारे गए ? गौतम ! रथमूसलसंग्राम में छियानवे लाख मनुष्य मारे गए । भगवन् ! निःशील यावत् वे मनुष्य मृत्यु के समय मरकर कहाँ गए, कहाँ उत्पन्न हुए ? गौतम ! उनमें से दस हजार मनुष्य तो एक मछली के उदर में उत्पन्न हुए, एक मनुष्य देवलोक में उत्पन्न हुआ, एक मनुष्य उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ और शेष प्रायः नरक और

तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न हुए ।

सूत्र - ३७४

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर, इन दोनों ने कूणिक राजा को किस कारण से सहायता दी ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र तो कूणिक राजा का पूर्वसंगतिक था और असुरेन्द्र असुरकुमार राजा चमर कूणिक राजा का पर्यायसंगतिक मित्र था । इसीलिए, हे गौतम ! उन्होंने कूणिक राजा को सहायता दी ।

सूत्र - ३७५

भगवन् ! बहुत-से लोग परस्पर ऐसा कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि–अनेक प्रकार के छोटे-बड़े संग्रामों में से किसी भी संग्राम में सामना करते हुए आहत हुए एवं घायल हुए बहुत-से मनुष्य मृत्यु के समय मरकर किसी भी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होते हैं । भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ? गौतम ! बहुत-से मनुष्य, जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि संग्राम में मारे गए मनुष्य देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहने वाले मिथ्या कहते हैं । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ–गौतम ! उस काल और उस समय में वैशाली नामकी नगरी थी । उस वैशाली नगरी में 'वरुण' नामक नागनप्तृक रहता था । वह धनाढ्य यावत् अपरिभूत व्यक्ति था । वह श्रमणोपासक था और जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था, यावत् वह आहारादि द्वारा श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ तथा निरन्तर छठ-छठ की तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता था ।

एक बार राजा के अभियोग से, गण के अभियोग से तथा बल के अभियोग से वरुण नागनप्तृक को रथ-मूसलसंग्राम में जाने की आज्ञा दी गई । तब उसने षष्ठभक्त को बढ़ाकर अष्टभक्त तप कर लिया । तेले की तपस्या करके उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रियो ! चार घण्टों वाला अश्वरथ, सामग्रीयुक्त तैयार करके शीघ्र उपस्थित करो । साथ ही अश्व, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित करो, यावत् वह सब सुसज्जित करके मेरी आज्ञा मुझे वापस सौंपो । तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसकी आज्ञा स्वीकार एवं शिरोधार्य करके यथाशीघ्र छत्रसहित एवं ध्वजासहित चार घण्टाओं वाला अश्वरथ, यावत् तैयार करके उपस्थित किया । साथ ही घोड़े, हाथी, रथ एवं प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को यावत् सुसज्जित किया और सुसज्जित करके यावत् वरुण नागनप्तृक को उसकी आज्ञा वापिस सौंपी ।

तत्पश्चात् वह वरुण नागनप्तृक, जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया । यावत् कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित्त किया, सर्व अलंकारों से विभूषित हुआ, कवच पहना, कोरंटपुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र धारण किया, इत्यादि कूणिक राजा की तरह कहना चाहिए । फिर अनेक गणनायकों, दूतों और सन्धिपालों के साथ परिवृत्त होकर वह स्नानगृह से बाहर नीकलकर बाहर की उपस्थानशाला में आया और सुसज्जित चातुर्घण्ट अश्वरथ पर आरूढ होकर अश्व, गज, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना के साथ, यावत् महान् सुभटों के समूह से परिवृत्त होकर जहाँ रथमूसल-संग्राम होने वाला था, वहाँ आया । रथमूसल-संग्राम में ऊतरा । उस समय रथमूसल-संग्राम में प्रवृत्त होने के साथ ही वरुण नागनप्तृक ने इस प्रकार का अभिग्रह किया–मेरे लिए यही कल्प्य है कि रथमूसल संग्राम में युद्ध करते हुए जो मुझ पर पहले प्रहार करेगा, उसे ही मुझे मारना है, (अन्य) व्यक्तियों को नहीं । यह अभिग्रह करके वह रथमूसल-संग्राम में प्रवृत्त हो गया ।

उसी समय रथमूसल-संग्राम में जूझते हुए वरुण नागनप्तृक के रथ के सामने प्रतिरथी के रूप में एक पुरुष शीघ्र ही आया, जो उसी के सदृश, उसी के समान त्वचा वाला था, उसी के समान उम्र का और उसी के समान अस्त्र - शस्त्रादि उपकरणों से युक्त था । तब उस पुरुष ने वरुण नागनप्तृक को इस प्रकार कहा–'हे वरुण नागनप्तृक ! मुझ पर प्रहार कर, अरे वरुण नागनप्तृक ! मुझ पर वार कर !' इस पर वरुण नागनप्तृक ने उस पुरुष से यों कहा–''हे देवानुप्रिय ! जो मुझ पर प्रहार न करे, उस पर पहले प्रहार करने का मेरा कल्प (नियम) नहीं है । इसलिए तुम (चाहे तो) पहले मुझ पर प्रहार करो ।''

तदनन्तर वरुण नागनप्तृक के द्वारा ऐसा कहने पर उस पुरुष ने शीघ्र ही क्रोध से लाल-पीला होकर यावत्

दाँत पीसते हुए अपना धनुष उठाया । फिर बाण उठाया फिर धनुष पर यथास्थान बाण चढ़ाया । फिर अमुक आसन से अमुक स्थान पर स्थित होकर धनुष को कान तक खींचा । ऐसा करके उसने वरुण नागनप्तृक पर गाढ़ प्रहार किया। गाढ़ प्रहार से घायल हुए वरुण नागनप्तृक ने शीघ्र कुपित होकर यावत् मिसमिसाते हुए धनुष उठाया। फिर उस पर बाण चढ़ाया और उस बाण को कान तक खींचकर उस पुरुष पर छोड़ा । जैसे एक ही जोरदार चोट से पत्थर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार वरुण नागनप्तृक ने एक ही गाढ़ प्रहार से उस पुरुष को जीवन से रहित कर दिया

उस पुरुष के गाढ़ प्रहार से सख्त घायल हुआ वरुण नागनप्तृक अशक्त, अबल, अवीर्य, पुरुषार्थ एवं पराक्रम से रहित हो गया । अतः 'अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा' ऐसा समझकर उसने घोड़ों को रोका, रथ को वापिस फिराया और रथमूसलसंग्राम स्थल से बाहर नीकल गया । एकान्त स्थान में आकर रथ को खड़ा किया । फिर रथ से नीचे ऊतरकर उसने घोड़ों को छोड़कर विसर्जित कर दिया । फिर दर्भ का संथारा बिछाया और पूर्व दिशा की ओर मुँह करके दर्भ के संस्तारक पर पर्यकासन से बैठा और दोनों हाथ जोड़कर यावत् कहा-अरिहन्त भगवंतों को, यावत् जो सिद्धगति को प्राप्त हुए हैं, नमस्कार हो । मेरे धर्मगुरु, धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले यावत् सिद्धगति प्राप्त करने के ईच्छुक हैं । यहाँ रहा हुआ मैं वहाँ रहे हुए भगवान को वन्दन करता हूँ। वहाँ रहे हुए भगवान मुझे देखें । इत्यादि कहकर यावत् वन्दन-नमस्कार करके कहा-

पहले मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का, यावत् स्थूल परिग्रह का जीवनपर्यन्त के लिए प्रत्याख्यान किया था, किन्तु अब मैं उन्हीं अरिहन्त भगवान महावीर के पास (साक्षी से) सर्व प्राणातिपात का जीवनपर्यन्त के लिए प्रत्याख्यान करता हूँ । इस प्रकार स्कन्दक की तरह (अठारह ही पापस्थानों का सर्वथा प्रत्याख्यान कर दिया ।) फिर इस शरीर का भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ व्युत्सर्ग करता हूँ, यों कहकर उसने कवच खोल दिया । लगे हुए बाण को बाहर खींचा । उसने आलोचना की, प्रतिक्रमण किया और समाधियुक्त होकर मरण प्राप्त किया ।

उस वरुण नागनप्तृक का एक प्रिय बालमित्र भी रथमूलसंग्राम में युद्ध कर रहा था । वह भी एक पुरुष द्वारा प्रबल प्रहार करने से घायल हो गया । इससे अशक्त, अबल, यावत् पुरुषार्थ-पराक्रम से रहित बने हुए उसने सोचा-अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा । जब उसने वरुण नागनप्तृक को रथमूसलसंग्राम-स्थल से बाहर नीकलते हुए देखा, तो वह भी अपने रथ को वापिस फिराकर रथमूसलसंग्राम से बाहर नीकला, घोड़ों को रोका और जहाँ वरुण नागनप्तृक ने घोड़ों को रथ से खोलकर विसर्जित किया था, वहाँ उसने भी घोड़ों को विसर्जित कर दिया । फिर दर्भ के संस्तारक को बिछाकर उस पर बैठा । दर्भसंस्तारक पर बैठकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके यावत् दोनों हाथ जोड़कर यों बोला-भगवन् ! मेरे प्रिय बालमित्र वरुण नागनप्तृक के जो शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास हैं, वे सब मेरे भी हों, इस प्रकार कहकर उसने कवच खोला । शरीर में लगे हुए बाण को बाहर नीकाला । वह भी क्रमशः समाधियुक्त होकर कालधर्म को प्राप्त हुआ ।

तदनन्तर उस वरुण नागनप्तृक को कालधर्म प्राप्त हुआ जानकर निकटवर्ती वाणव्यन्तर देवों ने उस पर सुगन्धित जल की वृष्टि की, पाँच वर्ण के फूल बरसाए और दिव्यगीत एवं गन्धर्व-निनाद भी किया । तब से उस वरुण नागनप्तृक की उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव को सूनकर और जानकर बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे, यावत् प्ररूपणा करने लगे-'देवानुप्रियो ! संग्राम करते हुए जो बहुत-से मनुष्य मरते हैं, यावत् देवलोकों में उत्पन्न होते हैं ।'

सूत्र - ३७६

भगवन् ! वरुण नागनप्तृक कालधर्म पाकर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ? गौतम ! वह सौधर्मकल्प में अरुणाभ नामक विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है । उस देवलोक में कतिपय देवों की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है । अतः वहाँ वरुण-देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है । भगवन् ! वह वरुण देव उस देवलोक से आयु-क्षय

होने पर, भव-क्षय होने पर तथा स्थिति-क्षय होने पर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सभी दु:खों का अन्त करेगा ।

भगवन् ! वरुण नागनप्तृक का प्रिय बालमित्र कालधर्म पाकर कहाँ गया ?, कहाँ उत्पन्न हुआ ? गौतम ! वह सुकुल में उत्पन्न हुआ है । भगवन् ! वह वहाँ से काल करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सर्वदु:खों का अन्त करेगा । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-७ – उद्देशक-१०

सूत्र - ३७७

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था । वहाँ गुणशीलक नामक चैत्य था यावत् (एक) पृथ्वी शिलापट्टक था । उस गुणशीलक चैत्य के पास थोड़ी दूर पर बहुत से अन्यतीर्थि रहते थे, यथा–कालोदयी, शैलोदाई शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्नपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ती गृहपति ।

किसी समय सब अन्यतीर्थिक एक स्थान पर आए, एकत्रित हुए और सुखपूर्वक भलीभाँति बैठे । फिर उनमें परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप प्रारम्भ हुआ–'ऐसा (सूना) है कि श्रमण ज्ञातपुत्र पाँच अस्तिकायों का निरूपण करते हैं, यथा–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय । इनमें से चार अस्तिकायों को श्रमण ज्ञातपुत्र 'अजीव-काय' बताते हैं । धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय । एक जीवास्तिकाय को श्रमण ज्ञातपुत्र 'अरूपी' और जीवकाय बतलाते हैं । उन पाँच अस्तिकायों में से चार अस्तिकायों को श्रमण ज्ञातपुत्र अरूपीकाय बतलाते हैं । धर्मास्तिकाय, यावत् जीवास्तिकाय । एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीवकाय कहते हैं । उनकी यह बात कैसे मानी जाए ?

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर यावत् गुणशील चैत्य में पधारे, वहाँ उनका समवसरण लगा । यावत् परीषद् (धर्मोपदेश सूनकर) वापिस चली गई । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक में कहे अनुसार भिक्षाचारी के लिए पर्यटन करते हुए यथापर्याप्त आहार-पानी ग्रहण करके राजगृह नगर से यावत्, त्वरारहित, चपलतारहित, सम्भ्रान्ततारहित, यावत् ईर्यासमिति का शोधन करते-करते अन्यतीर्थिकों के पास से होकर नीकले । तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने भगवान गौतम को थोड़ी दूर से जाते हुए देखा । देखकर उन्होंने एक-दूसरे को बुलाया । बुलाकर एक-दूसरे से इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रियो ! बात ऐसी है कि (पंचास्तिकाय सम्बन्धी) यह बात हमारे लिए–अज्ञात है । यह गौतम हमसे थोड़ी ही दूर पर जा रहे हैं । इसलिए हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए गौतम से यह अर्थ पूछना श्रेयस्कर है, ऐसा विचार करके उन्होंने परस्पर इस सम्बन्ध में परामर्श किया । जहाँ भगवान गौतम थे, वहाँ उनके पास आए । उन्होंने भगवान गौतम से इस प्रकार पूछा–

हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पंच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं, जैसे–धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय । यावत् 'एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीव काय कहते हैं; यहाँ तक अपनी सारी चर्चा उन्होंने गौतम से कही । हे भदन्त गौतम ! यह बात ऐसे कैसे है ? इस पर भगवान गौतम ने उन अन्यतीर्थिकों से कहा–'हे देवानुप्रियो ! हम अस्तिभाव को नास्ति, ऐसा नहीं कहते, इसी प्रकार 'नास्तिभाव' को अस्ति ऐसा नहीं कहते । हे देवानुप्रियो ! हम सभी अस्तिभावों को अस्ति, ऐसा कहते हैं और समस्त नास्तिभावों को नास्ति, ऐसा कहते हैं । अत: हे देवानुप्रियो ! आप स्वयं अपने ज्ञान से इस बात पर चिन्तन करीए ।' जैसा भगवान बतलाते हैं, वैसा ही है । इस प्रकार कहकर श्री गौतमस्वामी गुणशीलक चैत्य में जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास आए और द्वीतिय शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक में बताये अनुसार यावत् आहार-पानी भगवान को दिखलाया । श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करके उनसे न बहुत दूर और न बहुत निकट रहकर यावत् उपासना करने लगे ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर-प्रतिपन्न थे । उसी समय कालोदयी उस स्थल में आ

पहुँचा । श्रमण भगवान महावीर ने कालोदयी से पूछा–'हे कालोदायी ! क्या वास्तव में, किसी समय एक जगह सभी साथ आये हुए और एकत्र सुखपूर्वक बैठे हुए तुम सब में पंचास्तिकाय के सम्बन्ध में विचार हुआ था कि यावत् 'यह बात कैसे मानी जाए ?' क्या यह बात यथार्थ है ? 'हाँ, यथार्थ है ।'

(भगवान–) 'हे कालोदायी ! पंचास्तिकायसम्बन्धी यह बात सत्य है । मैं धर्मास्तिकाय से पुद्‌गलास्तिकाय पर्यन्त पंच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूँ । उनसे चार अस्तिकायों को मैं अजीवकाय बतलाता हूँ । यावत् पूर्व कथितानुसार एक पुद्‌गलास्तिकाय को मैं रूपीकाय बतलाता हूँ । तब कालोदायी ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा–भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, इन अरूपी अजीवकायों पर कोई बैठने, सोने, खड़े रहने, नीचे बैठने यावत् करवट बदलने, आदि क्रियाएं करने में समर्थ है ? हे कालोदायी ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । एक पुद्‌गलास्तिकाय ही रूपी अजीवकाय है, जिस पर कोई भी बैठने, सोने या यावत् करवट बदलने आदि क्रियाएं करने में समर्थ है ।

भगवन् ! जीवों को पापफलविपाक से संयुक्त करने वाले पापकर्म, क्या इस रूपीकाय और अजीवकाय को लगते हैं ? क्या इस रूपीकाय और अजीवकायरूप पुद्‌गलास्तिकाय में पापकर्म लगते हैं ? कालोदायि ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (भगवन् !) क्या इस अरूपी जीवास्तिकाय में जीवों को पापफलविपाक से युक्त पापकर्म लगते हैं ? हाँ, लगते हैं ।

(समाधान पाकर) कालोदायी बोधि को प्राप्त हुआ । फिर उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके उसने कहा–'भगवन् ! मैं आपसे धर्म-श्रवण करना चाहता हूँ ।' भगवान ने उसे धर्म-श्रवण कराया। फिर जैसे स्कन्दक ने भगवान से प्रव्रज्या अंगीकार की थी वैसे ही कालोदायी भगवान के पास प्रव्रजित हुआ । उसी प्रकार उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया...यावत् कालोदायी अनगार विचरण करने लगे ।

सूत्र - ३७८

किसी समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य से नीकलकर बाहर जनपदों में विहार करते हुए विचरण करने लगे । उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था । गुणशीलक नामक चैत्य था । किसी समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी पुनः वहाँ पधारे यावत् उनका समवसरण लगा । यावत् परीषद् धर्मोपदेश सूनकर लौट गई ।

तदनन्तर अन्य किसी समय कालोदायी अनगार, जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ उनके पास आये और श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा–भगवन् ! क्या जीवों को पापफलविपाक से संयुक्त पाप-कर्म लगते हैं ? हाँ, लगते हैं । भगवन् ! जीवों को पापफलविपाकसंयुक्त पापकर्म कैसे लगते हैं ? कालोदायी ! जैसे कोई पुरुष सुन्दर स्थाली में पकाने से शुद्ध पका हुआ, अठारह प्रकार के दाल, शाक आदि व्यंजनों से युक्त विषमिश्रित भोजन का सेवन करता है, वह भोजन उसे आपात में अच्छा लगता है, किन्तु उसके पश्चात् वह भोजन परिणमन होता-होता खराब रूप में, दुर्गन्धरूप में यावत् छठे शतक के तृतीय उद्देशक में कहे अनुसार यावत् बार-बार अशुभ परिणाम प्राप्त करता है । हे कालोदायी ! इसी प्रकार जीवों को प्राणातिपात से लेकर यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पापस्थान का सेवन ऊपर-ऊपर से प्रारम्भ में तो अच्छा लगता है, किन्तु बाद में जब उनके द्वारा बाँधे हुए पापकर्म उदय में आते हैं, तब वे अशुभरूप में परिणत होते-होते दुरूपपने में, दुर्गन्धरूप में यावत् बार-बार अशुभ परिणाम पाते हैं । हे कालोदायी ! इस प्रकार से जीवों के पापकर्म अशुभफलविपाक से युक्त होते हैं ।

भगवन् ! क्या जीवों के कल्याण (शुभ) कर्म कल्याणफलविपाक सहित होते हैं ? हाँ, कालोदायी ! होते हैं। भगवन् ! जीवों के कल्याणकर्म यावत् (कल्याणफलविपाक से संयुक्त) कैसे होते हैं ? कालोदायी ! जैसे कोई पुरुष मनोज्ञ स्थाली में पकाने से शुद्ध पका हुआ और अठारह प्रकार के दाल, शाक आदि व्यंजनों से युक्त औषध-मिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन ऊपर-ऊपर से प्रारम्भ में अच्छा न लगे, परन्तु बाद में परिणत होता-होता जब वह

सुरूपत्वरूप में, सुवर्णरूप में यावत् सुख रूप में बार-बार परिणत होता है, तब वह दुःखरूप में परिणत नहीं होता, इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों के लिए प्राणातिपातविरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोधविवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक प्रारम्भ में अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसके पश्चात् उसका परिणमन होते-होते सुरूपत्वरूप में, सुवर्णरूप में उसका परिणाम यावत् सुखरूप होता है, दुःखरूप नहीं होता । इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों के कल्याण कर्म यावत् (कल्याणफलविपाक संयुक्त) होते हैं ।

सूत्र - ३७९

भगवन् ! (मान लीजिए) समान उम्र के यावत् समान ही भाण्ड, पात्र और उपकरण वाले दो पुरुष एक-दूसरे के साथ अग्निकाय का समारम्भ करें, उनमें से एक पुरुष अग्निकाय को जलाए और एक पुरुष अग्निकाय को बुझाए, तो हे भगवन् ! उन दोनों पुरुषों में से कौन-सा पुरुष महाकर्म वाला, महाक्रिया वाला, महा-आस्रव वाला और महावेदना वाला है और कौन-सा पुरुष अल्पकर्म वाला, अल्पक्रिया वाला, अल्पआस्रव वाला और अल्पवेदना वाला होता है ? हे कालोदायी ! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है वह पुरुष महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है

भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? कालोदायी ! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पृथ्वीकाय का बहुत समारम्भ करता है, अप्काय का बहुत समारम्भ करता है, तेजस्काय का अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का बहुत समारम्भ करता है, वनस्पतिकाय का बहुत समारम्भ करता है और त्रसकाय का बहुत समारम्भ करता है । जो बुझाता है, वह पृथ्वीकाय का अल्प समारम्भ करता है, अप्काय का अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का अल्प समारम्भ करता है, वनस्पतिकाय का अल्प समारम्भ करता है एवं त्रसकाय का भी अल्प समारम्भ करता है, किन्तु अग्निकाय का बहुत समारम्भ करता है । इसलिए हे कालोदायी ! जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला आदि है और जो बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि है ।

सूत्र - ३८०

भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते हैं, वे वस्तुओं को उद्योतित करते हैं, तपाते हैं और प्रकाश करते हैं ? हाँ, कालोदायी ! अचित्त पुद्गल भी यावत् प्रकाश करते हैं । भगवन् ! अचित्त होते हुए भी कौन-से पुद्गल अवभासित होते हैं, यावत् प्रकाश करते हैं ? कालोदायी ! क्रुद्ध अनगार की नीकली हुई तेजोलेश्या दूर जाकर उस देश में गिरती है, जाने योग्य देश में जाकर उस देश में गिरती है । जहाँ वह गिरती है, वहाँ अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते हैं यावत् प्रकाश करते हैं । इसके पश्चात् वह कालोदायी अनगार श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं । बहुत-से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम इत्यादि तप द्वारा यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे; यावत् कालास्यवेषीपुत्र की तरह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सब दुःखों से मुक्त हो गए ।

शतक-७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक–८

सूत्र - ३८१

१. पुद्‌गल, २. आशीविष, ३. वृष, ४. क्रिया, ५. आजीव, ६. प्रासुक, ७. अदत्त, ८. प्रत्यनीक, ९. बन्ध, १०. आराधना, आठवें शतक में ये दस उद्देशक हैं ।

शतक-८ – उद्देशक-१

सूत्र - ३८२

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार पूछा–भगवन् ! पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! पुद्‌गल तीन प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं–प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा परिणत ।

सूत्र - ३८३

भगवन् ! प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गए हैं, एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत यावत्, त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! पाँच प्रकार के पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । भगवन् ! पृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के हैं, सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्‌गल और बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी प्रकार अप्कायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्‌गल भी इसी तरह कहने चाहिए । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल तक प्रत्येक के दो दो भेद कहने चाहिए ।

भगवन् ! अब द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल के प्रकारों के विषय में पृच्छा है । गौतम ! वे अनेक प्रकार के कहे गए हैं । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों और चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के प्रकार के विषय में जानना । पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के विषय में प्रश्न । गौतम ! चार प्रकार के हैं, नारक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, तिर्यंच-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल। नैरयिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलोंके विषयमें प्रश्न । गौतम ! सात प्रकार के, रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल यावत् अधःसप्तमा पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के विषय में प्रश्न । गौतम ! तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल तीन प्रकार के कहे गए हैं । जैसे कि–जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और खेचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल। भगवन् ! जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के–सम्मूर्च्छिम जलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और गर्भज जलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । भगवन् ! स्थलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और परिसर्प-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के सम्मूर्च्छिम चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

इसी प्रकार अभिलाप द्वारा परिसर्प-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल भी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–उरःपरिसर्प-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और भुजपरिसर्प-स्थलचर तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । उरःपरिसर्प (सम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्‌गल) भी दो प्रकार के हैं । सम्मूर्च्छिम और गर्भज । इसी प्रकार भुजपरिसर्प-सम्बन्धी पुद्‌गल और खेचर के भी पूर्ववत् दो-दो भेद कहे गए हैं।

भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल के प्रकारों के लिए प्रश्न । गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं यथा–सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्‌गल औरगर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

भगवन् ! देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गए हैं, जैसे–भवनवासी-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, यावत् वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

भगवन् ! भवनवासी-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल के प्रकारों के लिए प्रश्न । वे दस प्रकार के हैं, असुरकुमार-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल यावत् स्तनितकुमार-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी अभिलाप से पिशाच से गन्धर्व तक आठ प्रकार के वाणव्यन्तरदेव (प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) कहना, ज्योतिष्कदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल पाँच प्रकार के हैं, चन्द्रविमानज्योतिष्कदेव यावत् ताराविमान-ज्योतिष्कदेव (–प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) । वैमानिक देव (–प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) के दो प्रकार हैं, कल्पोपपन्नकवैमानिकदेव और कल्पातीतवैमानिकदेव (–प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) ।

कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव० बारह प्रकार के हैं, यथा–सौधर्मकल्पोपपन्नक से अच्युत कल्पोपपन्नक देव तक कल्पातीत वैमानिकदेव दो प्रकार के हैं, यथा–ग्रैवेयककल्पातीत और अनुत्तरौपपातिककल्पातीत । ग्रैवेयक-कल्पातीत देवों के नौ प्रकार हैं, यथा–अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयककल्पातीत यावत् उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक-कल्पातीत । भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! पाँच प्रकार के–विजय-यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

भगवन् ! सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा–पर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और अपर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी प्रकार बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल के भी दो भेद कहने चाहिए । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक (एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्‌गल) तक प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद और फिर इन दोनों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद कहने चाहिए ।

भगवन् ! द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे–पर्याप्तक द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और अपर्याप्तक-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों और चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के प्रकार के विषय में भी समझ लेना चाहिए ।

भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, पर्याप्तक रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल, अपर्याप्तक-रत्नप्रभा-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी प्रकार यावत् अध:सप्तमीपृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के प्रकारों के विषय में कहना चाहिए ।

भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल प्रकारों के लिए पृच्छा है । गौतम ! वे दो प्रकार के हैं, पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल और अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी प्रकार गर्भज-जलचर सम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्‌गलों के प्रकार के विषय में जानना । इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद स्थलचर तथा गर्भज-चतुष्पद स्थलचर सम्बन्धी प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के विषय में भी जानना । यावत् सम्मूर्च्छिम खेचर और गर्भज खेचर से सम्बन्धित-प्रयोगपरिणत पुद्‌गलों के दो-दो भेद कहना ।

भगवन् ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वे एक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । भगवन् ! गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार–पर्याप्तक और अपर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

भगवन् ! असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–पर्याप्तक-असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत-पुद्‌गल और अपर्याप्तक-असुर कुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल । इसी प्रकार स्तनितकुमार-भवनवासीदेव तक प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों

के, ये दो-दो भेद कहने चाहिए । इसी प्रकार पिशाचों से लेकर गन्धर्वों तक के तथा चन्द्र से लेकर तारा पर्यन्त ज्योतिष्क देवों के एवं सौधर्मकल्पोपपन्नक से अच्युतकल्पोपपन्नक तक के और अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीत से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देवप्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के एवं विजय-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत से अपराजित-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिए । भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के कितने प्रकार हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के हैं, यथा–पर्याप्तक और अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-देव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । जो पुद्‌गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियपर्याप्तक तक के (प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के विषय में) जानना चाहिए । परन्तु विशेष इतना है कि जो पुद्‌गल पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमपृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों तक के सम्बन्धमें कहना ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार पर्याप्तक के सम्बन्ध में जानना चाहिए । गर्भज-अपर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्‌गलों) के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । गर्भज-पर्याप्तक-जलचर-(-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों) के विषय में भी इसी तरह जानना चाहिए । विशेष यह कि पर्याप्तक बादर वायुकायिकवत् उनको चार शरीर (प्रयोग परिणत) कहना चाहिए । जिस तरह जलचरों के चार आलापक कहे हैं, उसी प्रकार चतुष्पद, उरःपरिसर्प, भुजपरिसर्प एवं खेचरों (के प्रयोग-परिणत-पुद्‌गलों) के भी चार-चार आलापक कहने चाहिए ।

जो पुद्‌गल सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार अपर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य के विषय में भी कहना । पर्याप्तक गर्भज-मनुष्य के विषय में भी इसी तरह कहना । विशेषता यह कि इनमें (औदारिक से कार्मण तक) पंचशरीर- (प्रयोग-परिणत पुद्‌गल) कहना ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत हैं, उनका आलापक नैरयिकों की तरह कहना । पर्याप्तक-असुरकुमारदेव-प्रयोग-परिणत पुद्‌गलों के विषय में भी इसी प्रकार जानना । स्तनितकुमार पर्यन्त पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनों में कहना । पिशाच से लेकर गन्धर्व तक वाणव्यन्तर-देव, चन्द्र से लेकर तारा-विमान पर्यन्त ज्योतिष्क-देव और सौधर्मकल्प से लेकर अच्युतकल्प पर्यन्त तथा अधःस्तन अधःस्तन-ग्रैवेयक-कल्पातीत-देव से लेकर उपरितन-उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक-कल्पातीत-देव तक एवं विजय-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-देव से लेकर सर्वार्थसिद्ध-कल्पातीत-वैमानिक-देवों तक पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों भेदों में वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कहना ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । जो पुद्‌गल पर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । जो अपर्याप्त-बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल हैं, वे भी इसी प्रकार समझने चाहिए । पर्याप्तक भी इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत समझने चाहिए । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त–प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक ओर अपर्याप्तक इन चार-चार भेदों में स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्‌गल कहने चाहिए ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार पर्याप्तक भी जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक कहना । किन्तु

एक-एक इन्द्रिय बढ़ानी चाहिए ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्त रत्नप्रभा (आदि) पृथ्वी नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय - घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । इसी प्रकार पर्याप्तक पुद्‌गल के विषय में भी पूर्ववत् कहना । पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव, इन सबके विषय में भी इसी प्रकार कहना, यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत हैं, वे सब श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं

जो पुद्‌गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । जो पुद्‌गल पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं । अपर्याप्त-बादरकायिक एवं पर्याप्त बादर-पृथ्वीकायिक-औदारिकादि शरीरत्रय-प्रयोगपरिणत-पुद्‌गल के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । इसी प्रकार इस अभिलाप के द्वारा जिस जीव के जितनी इन्द्रियाँ और शरीर हों, उसके उतनी इन्द्रियों तथा उतने शरीरों का कथन करना चाहिए यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण एवं श्वेतवर्ण रूप से परिणत हैं, गन्ध से सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध रूप से परिणत हैं, रस से तीखे, कटु, काषाय, खट्टे और मीठे इन पाँचों रसरूप में परिणत हैं, स्पर्श से कर्कशस्पर्श यावत् रूक्षस्पर्श के रूप में परिणत हैं और संस्थान से परिमण्डल, वृत्त, त्र्यंस, चतुरस्र और आयत, इन पाँचों संस्थानों के रूप में परिणत हैं । जो पुद्‌गल पर्याप्तक-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, उन्हें भी इसी प्रकार परिणत जानना । इसी प्रकार क्रमशः सभी के विषय में जानना चाहिए । यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीरप्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण रूप में यावत् संस्थान से आयत संस्थान तक परिणत हैं ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप में भी परिणत हैं, यावत् आयत-संस्थान-रूप में भी परिणत हैं । इसी प्रकार पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी इसी तरह वर्णादि-परिणत हैं। इसी प्रकार यथानुक्रम से जानना । जिसके जितने शरीर हों, उतने कहने चाहिए, यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्त-सर्वार्थ सिद्ध-अनुत्तरौपपातिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीरप्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप में, यावत् संस्थान से आयत-संस्थानरूप में परिणत हैं ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप में परिणत हैं, यावत् संस्थान से आयत-संस्थान रूप में परिणत हैं । जो पुद्‌गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत हैं, वे भी इसी प्रकार जानने चाहिए । इसी प्रकार अनुक्रम से आलापक कहने चाहिए । विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों उतनी कहनी चाहिए, यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-पंचेन्द्रिय-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप में, यावत् संस्थान से आयत संस्थान के रूप में परिणत हैं ।

जो पुद्‌गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप में भी परिणत हैं, यावत् संस्थान से आयत-संस्थान के रूप में परिणत हैं । जो पुद्‌गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी इसी तरह जानना । इसी प्रकार अनुक्रम से सभी आलापक कहने चाहिए । विशेषतया जिसके जितने शरीर और इन्द्रियों हों, उसके उतने शरीर और उतनी इन्द्रियों का कथन करना चाहिए, यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्तक-सर्वार्थ सिद्ध-अनुत्तरौपपातिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मणशरीर तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप में यावत् संस्थान से आयत संस्थान के रूपों में परिणत हैं । इस प्रकार ये नौ दण्डक पूर्ण हुए ।

सूत्र - ३८४

भगवन् ! मिश्रपरिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! पाँच प्रकार के–एकेन्द्रिय-मिश्रपरिणत पुद्‌गल यावत् पंचेन्द्रिय-मिश्रपरिणत पुद्‌गल ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय-मिश्रपुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! प्रयोगपरिणत पुद्‌गलों के समान मिश्र-परिणत पुद्‌गलों के विषय में भी नौ दण्डक कहना । विशेषता यह है कि प्रयोग-परिणत के स्थान पर मिश्र-परिणत कहना । शेष वर्णन पूर्ववत् । यावत् जो पुद्‌गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक हैं; वे यावत् आयत-संस्थान रूप से भी परिणत हैं ।

सूत्र - ३८५

भगवन् ! विस्रसा-परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! पाँच प्रकार के–वर्णपरिणत, गन्धपरिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और संस्थानपरिणत । जो पुद्‌गल वर्णपरिणत हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–कृष्णवर्ण के रूप में परिणत यावत् शुक्ल वर्ण के रूप में परिणत पुद्‌गल । जो गन्ध-परिणत-पुद्‌गल हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–सुरभिगन्ध-परिणत और दुरभिगन्ध-परिणत-पुद्‌गल । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र अनुसार वर्णन करना चाहिए, यावत् जो पुद्‌गल संस्थान से आयत-संस्थान-परिणत हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण के रूप में भी परिणत हैं, यावत् रूक्ष-स्पर्शरूप में भी परिणत हैं ।

सूत्र - ३८६

गौतम ! एक द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होता है, मिश्रपरिणत होता है अथवा विस्रसापरिणत होता है ? गौतम ! एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, अथवा मिश्रपरिणत होता है, अथवा विस्रसापरिणत भी होता है ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह मनःप्रयोगपरिणत होता है, वचन-प्रयोग परिणत होता है, अथवा काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह मनःप्रयोग परिणत होता है, या वचन-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा काय-प्रयोग-परिणत होता है । भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनःप्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है, अथवा मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है, या सत्य-मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है, या असत्या-अमृषामनःप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है, अथवा मृषामनःप्रयोग-परिणत होता है, या सत्य-मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है या फिर असत्य-अमृषामनःप्रयोग-परिणत होता है । भगवन्! यदि एक द्रव्य सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह आरम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है, अनारम्भ सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है, सारम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है, असमारम्भ-सत्यमनःप्रयोग-परिणत होता है, समारम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है अथवा असमारम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह आरम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है, यावत् असमारम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह आरम्भ-मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् असमारम्भ-मृषामनःप्रयोग परिणत ? गौतम ! जिस प्रकार सत्यमनःप्रयोगपरिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार मृषामनःप्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना । इसी प्रकार सत्य-मृषामनःप्रयोगपरिणत के विषय में भी तथा असत्य-अमृषामनःप्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना । भगवन् ! यदि एक द्रव्य वचनप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह सत्य-वचन-प्रयोगपरिणत होता है, मृषा-वचनप्रयोगपरिणत होता है, सत्य-मृषा-वचन-प्रयोग-परिणत होता है अथवा असत्य-अमृषा-वचनप्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! मनःप्रयोगपरिणत के समान वचन-प्रयोग-परिणत के विषय में भी वह असमारम्भ वचन-प्रयोग-परिणत भी होता है तक कहना ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, आहारकमिश्र-कायप्रयोगपरिणत होता है अथवा कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह एक द्रव्य औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है,

अथवा यावत् वह कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है । भगवन् ! यदि एक द्रव्य औदारिकशरीर-कायप्रयोग परिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, या द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है ।

भगवन् ! जो एक द्रव्य शरीर एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पृथ्वी-कायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् वह वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? हे गौतम ! वह पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है । भगवन् ! यदि वह एक द्रव्य पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह सूक्ष्म-पृथ्वी-कायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है अथवा बादर-पृथ्वीकायिक । भगवन् ! यदि एक द्रव्य सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत भी होता है, या वह अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वी-कायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत भी होता है । इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक सभी के चार-चार भेद के विषय में कथन करना चाहिए । (किन्तु) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के दो-दो भेद–पर्याप्तक और अपर्याप्तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! या तो वह तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा वह मनुष्य - पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है । भगवन् ! यदि एक द्रव्य तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह जलचर, स्थलचर और खेचर, तीनों प्रकार के तिर्यंचपंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग से परिणत होता है, अतः खेचरों तक पूर्ववत् प्रत्येक के चार-चार भेद कहना ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिण होता है, अथवा गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! दोनों प्रकार के । भगवन् ! यदि एक द्रव्य, गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पर्याप्त-गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह दोनों गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ।

यदि एक द्रव्य, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, द्वीन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-मिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है । औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत के समान औदारिकमिश्र-कायप्रयोगपरिणत के भी आलापक कहने चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि

बादरवायुकायिक, गर्भज पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक और गर्भज मनुष्यों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में और शेष सभी जीवों के अपर्याप्तक के विषय में कहना चाहिए । भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वैक्रियशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर -प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह एकेन्द्रिय, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ।

भगवन् ! यदि वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अवायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वह एक द्रव्य वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, किन्तु अवायु-कायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत नहीं होता । इसी प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के 'अवगाहना संस्थान' में वैक्रियशरीर (-कायप्रयोगपरिणत) के विषय में जैसा कहा है, वैसा यहाँ भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा वह अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरकायप्रयोगपरिणत होता है पर्यन्त कहना

भगवन् ! यदि एक द्रव्य वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-वैक्रियमिश्र-शरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत के अनुसार वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना । परन्तु इतना विशेष है कि वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग देवों और नैरयिकों के अपर्याप्त के विषय में कहना । शेष सभी पर्याप्त जीवों के विषय में कहना, यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-पंचेन्द्रिय-वैक्रियमिश्र-शरीर-कायप्रयोगपरिणत नहीं होता, किन्तु अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-मिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है; (यहाँ तक कहना ।)

भगवन् ! यदि एक द्रव्य आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह मनुष्याहारशरीर-काय-प्रयोगपरिणत होता है, अथवा अमनुष्य-आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के अवगाहनासंस्थान पद अनुसार यहाँ भी ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-मनुष्य-आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, किन्तु आहारकलब्धि को अप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-मनुष्यहारक-शरीरकायप्रयोगपरिणत नहीं होता तक कहना । भगवन् ! यदि एक द्रव्य आहारक-मिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह मनुष्याहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? गौतम ! आहारकशरीरकायप्रयोग-परिणत (एक द्रव्य) के अनुसार आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना । भगवन् ! यदि एक द्रव्य कार्मणशरीर-कायप्रयोग परिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ? हे गौतम ! वह एकेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, प्रज्ञापनासूत्र के अवगाहना संस्थानपद में कार्मण के भेद कहे गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है (तक भेद कहना) ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है, तो क्या वह मनोमिश्रपरिणत होता है, या वचनमिश्रपरिणत होता है, अथवा कायमिश्रपरिणत होता है ? गौतम ! वह मनोमिश्रपरिणत भी होता है, वचनमिश्रपरिणत भी होता है, कायमिश्रपरिणत भी होता है । भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनोमिश्रपरिणत होता है, तो क्या वह सत्यमनोमिश्र-परिणत होता है, मृषामनोमिश्रपरिणत होता है, सत्य-मृषामनोमिश्रपरिणत होता है, अथवा असत्य-अमृषामनोमिश्र परिणत होता है ? गौतम ! प्रयोगपरिणत एक द्रव्य के अनुसार मिश्रपरिणत एक द्रव्य के विषय में भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायमिश्रपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-

सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत वैमानिकदेव-पंचेन्द्रियकार्मणशरीर-कायमिश्रपरिणत होता है तक कहना । भगवन् ! यदि एक द्रव्य विस्रसा (से) परिणत होता है, तो क्या वह वर्णपरिणत होता है, गन्धपरिणत होता है, रसपरिणत होता है, स्पर्शपरिणत होता है, अथवा संस्थानपरिणत होता है ? गौतम ! वह वर्णपरिणत होता है, अथवा यावत् संस्थानपरिणत होता है । भगवन् ! यदि एक द्रव्य वर्णपरिणत होता है तो क्या वह कृष्णवर्ण के रूप में परिणत होता है, अथवा यावत् शुक्लवर्ण के रूप में है ? गौतम ! वह कृष्ण वर्ण के रूप में भी परिणत होता है, यावत् शुक्लवर्ण के रूप में । भगवन् ! यदि एक द्रव्य गन्धपरिणत होता है तो वह सुरभिगन्ध रूप में परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्ध रूप में ? गौतम ! वह सुरभिगन्धरूप में भी परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्धरूप में भी । भगवन् ! यदि एक द्रव्य रसरूप में परिणत होता है, तो क्या वह तीखे रस के रूप में परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप में । गौतम वह तीखे रस के रूप में भी परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप में भी । भगवन् ! यदि एक द्रव्य स्पर्शपरिणत होता है तो क्या वह कर्कशस्पर्शरूप से परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप में ? गौतम ! वह कर्कशस्पर्शरूप में भी परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप में भी । भगवन् यदि एक द्रव्य संस्थान-परिणत होता है, तो क्या वह परिमण्डल-संस्थानरूप में परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-संस्थानरूप में । गौतम ! वह द्रव्य परिमण्डल-संस्थानरूप में भी परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-संस्थानरूप में भी ।

सूत्र - ३८७

भगवन् ! दो द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होते हैं, मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं ? गौतम ! वे प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्यप्रयोगपरिणत होते हैं और दूसरा मिश्रपरिणत होता है; या एक द्रव्यप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और दूसरा विस्रसापरिणत होता है । इस प्रकार छह भंग होते हैं । यदि वे दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं अथवा कायप्रयोग-परिणत होते हैं ? गौतम ! वे (दो द्रव्य) या तो मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा उनमें से एक द्रव्यमनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा वचनप्रयोगपरिणत होता है, अथवा एक द्रव्य मनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा कायप्रयोगपरिणत होता है या एक द्रव्य वचनप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा कायप्रयोगपरिणत होता है । भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या सत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या असत्य-मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा सत्यमृषामनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्यामृषा-मनःप्रयोगपरिणत होते हैं ? गौतम ! वे (दो द्रव्य) सत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं, यावत् असत्या मृषामनःप्रयोगपरिणत होते हैं; या उनमें से एक द्रव्य सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा मृषामनःप्रयोग-परिणत होता है, अथवा एक द्रव्य सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा सत्यमृषामनःप्रयोगपरिणत होता है, या एक द्रव्य सत्यमनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामनः-प्रयोगपरिणत होता है; अथवा एक द्रव्य मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा सत्यमृषामनःप्रयोगपरिणत होता है, या एक द्रव्य मृषामनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामनःप्रयोगपरिणत होता है अथवा एक द्रव्य सत्यमृषामनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामनःप्रयोगपरिणत होता है । भगवन् ! यदि वे सत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं तो क्या वे आरम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं या यावत् असमारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं ? गौतम ! वे द्रव्य आरम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा यावत् असमारम्भसत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं; अथवा एक द्रव्य आरम्भ-सत्यमनःप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा अनारम्भसत्य-मनःप्रयोगपरिणत होता है; इसी प्रकार इस पाठ के अनुसार द्विकसंयोगी भंग करना । जहाँ जितने भी द्विकसंयोग हो सकें, उतने सभी वहाँ सर्वार्थसिद्धवैमानिक पर्यन्त कहना ।

भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) मिश्रपरिणत होते हैं तो मनोमिश्रपरिणत होते हैं ? प्रयोगपरिणत के अनुसार मिश्रपरिणत के सम्बन्ध में भी कहना । भगवन् ! यदि दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं, तो क्या वे वर्णरूप से परिणत होते हैं, गंधरूप से परिणत होते हैं, (अथवा यावत् संस्थानरूप से परिणत होते हैं ?) गौतम ! जिस प्रकार पहले कहा

गया है, उसी प्रकार विस्रसापरिणत के विषय में कहना चाहिए कि अथवा एक द्रव्य चतुरस्रसंस्थानरूप से परिणत होता है, यावत् एक द्रव्य आयतसंस्थान रूप से परिणत होता है ।

भगवन् ! तीन द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होते हैं, मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं ? गौतम! तीन द्रव्य या तो १. प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं, या २. एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं, या एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है, अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है; अथवा एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं, अथवा दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है; या एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है । भगवन् ! यदि वे तीनों द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं अथवा वे काय-प्रयोगपरिणत होते हैं ? गौतम ! वे या तो मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा काय-प्रयोगपरिणत होते हैं । इस प्रकार एकसंयोगी, द्विकसंयोगी और त्रिकसंयोगी भंग कहना । भगवन् ! यदि तीन द्रव्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या वे सत्यमनःप्रयोगपरिणत होते हैं, इत्यादि प्रश्न है । गौतम ! वे (त्रिद्रव्य) सत्य-मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा यावत् असत्यामृषामनःप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा उनमें से एक द्रव्य सत्यमनः प्रयोगपरिणत होता है और दो द्रव्य मृषामनःप्रयोगपरिणत होते हैं; इत्यादि प्रकार से यहाँ भी द्विकसंयोगी भंग कहने। तीन द्रव्यों के प्रयोगपरिणत की तरह ही यहाँ भी पूर्ववत् मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत के भंग अथवा एक त्र्यंस संस्थानरूप से परिणत हो, एक समचतुरस्रसंस्थानरूप से परिणत हो और एक आयतसंस्थानरूप से परिणत हो तक कहना ।

भगवन् ! चार द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं ? गौतम! वे या तो प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, तीन मिश्रपरिणत होते हैं, या एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और तीन विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और दो मिश्रपरिणत होते हैं, या दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और दो विस्रसा परिणत होते हैं; अथवा तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है; अथवा तीन द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है; अथवा एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और तीन द्रव्य विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और दो द्रव्य विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा तीन द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा एक प्रयोगपरिणत होता है, एक मिश्रपरिणत होता है और दो विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा एक प्रयोगपरिणत होता है, दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, एक मिश्रपरिणत होता है और एक विस्रसा-परिणत होता है । भगवन् ! यदि चार द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं तो क्या वे मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या वचन-प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं ? गौतम ! ये सब पूर्ववत् कहना तथा इसी क्रम से पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस यावत् संख्यात, असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के विषय में कहना । द्विकसंयोग से, त्रिक-संयोग से, यावत् दस के संयोग से, बारह के संयोग से, जहाँ जिसके जितने संयोगी भंग बनते हों, उतने सब भंग उपयोगपूर्वक कहना । ये सभी संयोगी भंग आगे नौवें शतक के बत्तीसवें उद्देशकमें जिस प्रकार हम कहेंगे, उसी प्रकार उपयोग लगाकर यहाँ भी कहना; यावत् अथवा अनन्त द्रव्य परिमण्डलसंस्थानरूप से परिणत होते हैं, यावत् अनन्त द्रव्य आयतसंस्थानरूप से परिणत होते हैं ।

सूत्र - ३८८

भगवन् ! प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत, इन तीनों प्रकार के पुद्‌गलों में कौन-से (पुद्‌गल), किन (पुद्‌गलों) से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! प्रयोगपरिणत पुद्‌गल सबसे थोड़े हैं,

उनसे मिश्रपरिणत पुद्‌गल अनन्तगुणे और उनसे विस्रसापरिणत पुद्‌गल अनन्तगुणे हैं। 'भगवन्! यह इसी प्रकार है

शतक-८ – उद्देशक-२

सूत्र - ३८९

भगवन्! आशीविष कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के हैं। जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष भगवन्! जाति-आशीविष कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! चार प्रकार के जैसे–वृश्चिकजाति-आशीविष, मण्डूक-जाति-आशीविष, उरगजाति-आशीविष और मनुष्यजाति-आशीविष। भगवन्! वृश्चिकजाति-आशीविष का कितना विषय है ? गौतम ! वह अर्द्धभरतक्षेत्र-प्रमाण शरीर को विषयुक्त–या विष से व्याप्त करने में समर्थ हैं। इतना उसके विष का सामर्थ्य है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने न ऐसा कभी किया है, न करता है और न कभी करेगा। भगवन्! मण्डूकजाति-आशीविष का कितना विषय है ? गौतम ! वह अपने विष से भरतक्षेत्र-प्रमाण शरीर को विषैला करने एवं व्याप्त करने में समर्थ है। शेष सब पूर्ववत् जानना, यावत् सम्प्राप्ति से उसने कभी ऐसा किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं। इसी प्रकार उरगजाति-आशीविष के सम्बन्ध में जानना। इतना विशेष है कि वह जम्बूद्वीप-प्रमाण शरीर को विष से युक्त एवं व्याप्त करने में समर्थ है। यह उसका सामर्थ्यमात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति से यावत् करेगा भी नहीं। इसी प्रकार मनुष्यजाति-आशीविष के सम्बन्ध में भी जानना। विशेष इतना है कि वह समयक्षेत्र प्रमाण शरीर को विष से व्याप्त कर सकता है, शेष कथन पूर्ववत्, यावत्, करेगा भी नहीं।

भगवन्! यदि कर्म-आशीविष है तो क्या वह नैरयिक-कर्म-आशीविष है, या तिर्यंचयोनिक, अथवा मनुष्य या देव-कर्म-आशीविष है ? गौतम ! नैरयिक-कर्म-आशीविष नहीं, किन्तु तिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष है, मनुष्य-कर्म-आशीविष है और देव-कर्म-आशीविष है। भगवन्! यदि तिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष है, तो क्या एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष है ? गौतम ! एकेन्द्रिय, यावत् चतुरिन्द्रिय कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष है। भगवन्! यदि पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष है तो क्या सम्मूर्च्छिम है या गर्भज-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष है ? गौतम ! वैक्रिय शरीर के सम्बन्ध के समान पर्याप्त संख्यातवर्ष की आयुष्य वाला गर्भज-कर्मभूमिज-पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक-कर्म-आशीविष होता है; परन्तु अपर्याप्त संख्यात वर्ष के आयुष्य वाला कर्मआशीविष नहीं होता तक कहना। भगवन्! यदि मनुष्य-कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-कर्माशीविष है, या गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष है ? गौतम ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-कर्म-आशीविष नहीं होता, किन्तु गर्भज-मनुष्यकर्म-आशीविष होता है। प्रज्ञापनासूत्र के शरीरपद में वैक्रिय-शरीर के सम्बन्ध के अनुसार यहाँ भी पर्याप्त संख्यात वर्ष का आयुष्य वाला कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष होता है; परन्तु अपर्याप्त यावत् कर्म-आशीविष नहीं होता तक कहना।

भगवन्! यदि देव-कर्माशीविष होता है, तो क्या भवनवासीदेव-कर्माशीविष होता है यावत् वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है ? गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक, ये चारों प्रकार के देव-कर्म-आशीविष होते हैं। भगवन्! यदि भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष होता है तो क्या असुरकुमारभवनवासीदेव-कर्म-आशीविष होता है यावत् स्तनितकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष होता है ? गौतम ! असुरकुमार-भवनवासी-देव यावत् स्तनितकुमार-कर्म-आशीविष भी होता है। भगवन्! यदि असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष है या अपर्याप्त हैं ? गौतम ! पर्याप्त असुरकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त असुरकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष है। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए।

भगवन्! यदि वाणव्यन्तरदेव-कर्म-आशीविष हैं, तो क्या पिशाच-वाणव्यन्तरदेव-कर्माशीविष है, अथवा यावत् गन्धर्व-वाणव्यन्तरदेव-कर्माशीविष हैं ? गौतम ! वे पिशाचादि सर्व वाणव्यन्तरदेव अपर्याप्तावस्था में कर्माशीविष हैं। इसी प्रकार सभी ज्योतिष्कदेव भी अपर्याप्तावस्था में कर्माशीविष होते हैं।

भगवन्! यदि वैमानिकदेव-कर्माशीविष है तो क्या कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्माशीविष हैं, अथवा

कल्पातीत-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष हैं ? गौतम ! कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है, किन्तु कल्पातीत-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं होता । भगवन् ! यदि कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है तो क्या सौधर्म-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है, यावत् अच्युत-कल्पोपपन्नक । गौतम ! सौधर्म-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव से सहस्रार-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-पर्यन्त कर्म-आशीविष होते हैं, परन्तु आनत, प्राणत, आरण और अच्युत-कल्पोपपन्नक-वैमानिककर्म-आशीविष नहीं होते । भगवन् ! यदि सौधर्म-कल्पो पपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष हैं तो क्या पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष है अथवा अपर्याप्त ? गौतम ! पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-कर्म-आशीविष हैं । इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं, किन्तु अपर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष हैं ।

सूत्र - ३९०

छद्मस्थ पुरुष इन दस स्थानों को सर्वभाव से नहीं जानता और नहीं देखता । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति-काय, आकाशास्तिकाय, शरीर से रहित जीव, परमाणुपुद्गल, शब्द, गन्ध, वायु, यह जीव जिन होगा या नहीं ? तथा यह जीव सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं ? इन्हीं दस स्थानों को उत्पन्न (केवल) ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त-जिनकेवली सर्वभाव से जानते और देखते हैं ।

सूत्र - ३९१

भगवन् ! ज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! पाँच प्रकार का–आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान । भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान कितने प्रकार का है ? गौतम ! चार प्रकार का । अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा । राजप्रश्नीयसूत्र में ज्ञानों के भेद के कथनानुसार 'यह है वह केवल-ज्ञान'; यहाँ तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! अज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! तीन प्रकार का–मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान । भगवन् ! मति-अज्ञान कितने प्रकार का है ? गौतम ! चार प्रकार का–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा । भगवन् ! यह अवग्रह कितने प्रकार का है ? गौतम ! दो प्रकार का–अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह । जिस प्रकार (नन्दीसूत्र में) आभिनिबोधिकज्ञान के विषय में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए । विशेष इतना ही है कि वहाँ आभिनिबोधिकज्ञान के प्रकरण में अवग्रह आदि के एकार्थिक शब्द कहे हैं, उन्हें छोड़कर यह 'नोइन्द्रिय-धारणा है' तक कहना । भगवन् ! श्रुत-अज्ञान किस प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! जिस प्रकार नन्दीसूत्र में कहा गया है–'जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा प्ररूपित है'; इत्यादि यावत्–सांगोपांग चार वेद श्रुत-अज्ञान है । इस प्रकार श्रुत-अज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ ।

भगवन् ! विभंगज्ञान किस प्रकार का है ? अनेक प्रकार का है । –ग्रामसंस्थित, नगरसंस्थित यावत् सन्निवेशसंस्थित, द्वीपसंस्थित, समुद्रसंस्थित, वर्ष-संस्थित, वर्षधरसंस्थित, सामान्य पर्वत-संस्थित, वृक्षसंस्थित, स्तूप-संस्थित, हयसंस्थित, गजसंस्थित, नरसंस्थित, किन्नरसंस्थित, किम्पुरुषसंस्थित, महोरगसंस्थित, गन्धर्वसंस्थित, वृषभसंस्थित, पशु, पशय, विहग और वानर के आकार वाला है । इस प्रकार विभंगज्ञान नाना संस्थानसंस्थित है ।

भगवन् ! जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो जीव ज्ञानी हैं, उनमें से कुछ जीव दो ज्ञान वाले हैं, कुछ जीव तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ जीव चार ज्ञान वाले हैं और कुछ जीव एक ज्ञान वाले हैं । जो दो ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं, जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं, अथवा आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी होते हैं । जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी हैं । जो एक ज्ञान वाले हैं, वे नियमतः केवलज्ञानी हैं

जो जीव अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ जीव दो अज्ञानवाले हैं, कुछ तीन अज्ञानवाले हैं । जो जीव दो अज्ञान वाले हैं, वे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी हैं; जो जीव तीन अज्ञानवाले हैं, वे मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंगज्ञानी हैं

भगवन् ! नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । उनमें जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं, यथा–आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी । जो अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ दो अज्ञान वाले हैं, और कुछ तीन अज्ञान वाले हैं । इस प्रकार तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

भगवन् ! असुरकुमार ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! नैरयिकों समान असुरकुमारों का भी कथन करना । इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं । वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं; यथा–मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना । भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः दो ज्ञान वाले हैं, यथा–मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी । जो अज्ञानी हैं, नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा–मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों को भी जानना ।

भगवन् ! पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं, उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कई तीन ज्ञान वाले हैं । इस प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । औघिक जीवों के समान मनुष्यों में पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । वाणव्यन्तर देवों का कथन नैरयिकों के समान जानना । ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में तीन ज्ञान, अज्ञान नियमतः होते हैं । भगवन् ! सिद्ध भगवान ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सिद्ध भगवान ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । वे नियमतः केवल-ज्ञान वाले हैं ।

सूत्र - ३९२

भगवन् ! निरयगतिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं । भगवन् ! तिर्यंचगतिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें नियमतः दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं । भगवन् ! मनुष्यगतिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं? गौतम ! उनके भजना से तीन ज्ञान होते हैं और नियमतः दो अज्ञान होते हैं । देवगतिक जीवों में ज्ञान और अज्ञान का कथन निरयगतिक जीवों के समान समझना । भगवन् ! सिद्धगतिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी? गौतम ! सिद्ध समान जानना ।

भगवन् ! इन्द्रिय वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनके चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। भगवन् ! एक इन्द्रिय वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों की तरह कहना । विकले-न्द्रियों में दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमतः होते हैं । पाँच इन्द्रियों वाले जीवों को सेन्द्रिय जीवों के समान जानना । भगवन् ! अनिन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी ? गौतम ! सिद्धों की तरह जानना ।

भगवन् ! सकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सकायिक जीवों के पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक जीव तक ज्ञानी नहीं, अज्ञानी होते हैं । वे नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं । त्रसकायिक जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान समझना चाहिए । भगवन् ! अकायिक जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनके विषय में सिद्धों की तरह जानना चाहिए ।

भगवन् ! सूक्ष्म जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनके विषय में पृथ्वीकायिक जीवों के समान कथन करना चाहिए । भगवन् ! बादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनके विषय में सकायिक जीवों के समान कहना चाहिए । भगवन् ! नोसूक्ष्म-नोबादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! इनका कथन सिद्धों की तरह समझना।

भगवन् ! पर्याप्तक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! सकायिक जीवों के समान जानना । भगवन् ! पर्याप्तक नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! इनमें नियमतः तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं । पर्याप्त नैरयिक जीवों की तरह पर्याप्त स्तनितकुमारों का कथन करना । (पर्याप्त) पृथ्वीकायिक जीवों का कथन एकेन्द्रिय जीवों की तरह करना । इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय तक समझना । भगवन् ! पर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । पर्याप्त मनुष्यों सम्बन्धी कथन सकायिक जीवों की

तरह करना । पर्याप्त वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन नैरयिक जीवों की तरह समझना ।

भगवन् ! अपर्याप्तक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् अपर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान भजना से होते हैं । नैरयिक जीवों की तरह अपर्याप्त स्तनितकुमार देवों तक इसी प्रकार कथन करना । (अपर्याप्त) पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक जीवों तक का कथन एकेन्द्रिय जीवों की तरह करना । भगवन् ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनमें दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान नियमतः होते हैं । इसी प्रकार (अपर्याप्त) पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों तक जानना । भगवन् ! अपर्याप्तक मनुष्य ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजना से होते हैं और दो अज्ञान नियमतः होते हैं । अपर्याप्त वाणव्यन्तर जीवों का कथन नैरयिक जीवों की तरह समझना । भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क और वैमानिक ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमतः होते हैं । भगवन् ! नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सिद्ध जीवों के समान जानना ।

भगवन् ! निरयभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनके विषय में निरयगतिक जीवों के समान कहना । भगवन् ! तिर्यंचभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! मनुष्यभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों की तरह करना । भगवन् ! देवभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! निरयभवस्थ जीवों के समान इनके विषय में कहना । अभवस्थ जीवों के विषय में सिद्धों की तरह जानना ।

भगवन् ! भवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सकायिक जीवों के समान जानना । भगवन् ! अभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! ये ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं । इनमें तीन अज्ञान भजना से होते हैं। भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी ? गौतम ! सिद्ध जीवों के समान कहना ।

भगवन् ! संज्ञीजीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! सेन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए । असंज्ञी के विषय में द्वीन्द्रिय के समान कहना चाहिए । नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों का कथन सिद्ध जीवों की तरह जानना चाहिए

सूत्र - ३९३

भगवन् ! लब्धि कितने प्रकार की कही है ? गौतम ! लब्धि दस प्रकार की कही गई है–ज्ञानलब्धि, दर्शनलब्धि, चारित्रलब्धि, चारित्राचारित्रलब्धि, दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि, वीर्यलब्धि और इन्द्रियलब्धि ।

भगवन् ! ज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! पाँच प्रकार की, यथा–आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् केवलज्ञानलब्धि । भगवन् ! अज्ञानलब्धि कितने प्रकार की है ? गौतम ! तीन प्रकार की यथा–मति-अज्ञानलब्धि, श्रुत-अज्ञानलब्धि, विभंगज्ञानलब्धि ।

भगवन् ! दर्शनलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! वह तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार–सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि ।

भगवन् ! चारित्रलब्धि कितने प्रकार की है ? गौतम ! पाँच प्रकार की–सामायिक चारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनिकलब्धि, परिहारविशुद्धलब्धि, सूक्ष्मसम्परायलब्धि और यथाख्यातचारित्रलब्धि । भगवन् ! चारित्राचारित्रलब्धि कितने प्रकार की है ? गौतम ! वह एक प्रकार की है ।

इसी प्रकार यावत् उपभोगलब्धि, ये सब एक-एक प्रकार की है । भगवन् ! वीर्यलब्धि कितने प्रकार की है? गौतम ! तीन प्रकार की है–बालवीर्यलब्धि, पण्डितवीर्यलब्धि और बालपण्डितवीर्यलब्धि । भगवन् ! इन्द्रिय-लब्धि कितने प्रकार की है ? गौतम ! पाँच प्रकार की–श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् स्पर्शेन्द्रियलब्धि ।

भगवन् ! ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले होते हैं । इस प्रकार उनमें पाँच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी नहीं अज्ञानी हैं । उनमें से कितने ही जीव दो अज्ञान वाले और कितनेक जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं? गौतम ! वे

ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कितने ही जीव दो, कितने ही तीन, और कितने ही चार ज्ञान वाले होते हैं । इस तरह उनमें चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि-रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं, और जो अज्ञानी हैं, वे कितने ही दो अज्ञान वाले हैं और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । श्रुतज्ञानलब्धि वाले जीवों का कथन भी इसी प्रकार करना । एवं श्रुतज्ञानलब्धिरहित जीवों को आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि-रहित की तरह जानना ।

भगवन् ! अवधिज्ञानलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कतिपय तीन ज्ञान वाले हैं और कईं चार ज्ञान वाले हैं । जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान यावत् अवधि ज्ञान वाले हैं और जो चार ज्ञान से युक्त हैं, आभिनिबोधिकज्ञान, यावत् मनःपर्यवज्ञान वाले हैं । भगवन् ! अवधि-ज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । इस तरह उनमें अवधिज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

भगवन् ! मनःपर्यवज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कितने तीन ज्ञान वाले हैं और कितने चार ज्ञान वाले ? जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यायज्ञान वाले हैं, और जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान यावत् मनःपर्यायज्ञान वाले हैं । भगवन् ! मनःपर्यवज्ञानलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । उनमें मनः पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से हैं ।

भगवन् ! केवलज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं । भगवन् ! केवलज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । उनमें केवलज्ञान को छोड़कर शेष चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं

भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं । उनमें तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! अज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें पाँच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । अज्ञानलब्धियुक्त और अज्ञानलब्धि से रहित जीवों के समान मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञानलब्धि वाले तथा इन लब्धियों से रहित जीवों का कथन करना । विभंगज्ञान-लब्धि से युक्त जीवों में नियमतः तीन अज्ञान होते हैं और विभंगज्ञानलब्धिरहित जीवों में पाँच ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमतः होते हैं ।

भगवन् ! दर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी । उनमें पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! दर्शनलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! दर्शनलब्धिरहित जीव कोई भी नहीं होता । सम्यग्दर्शनलब्धि-प्राप्त जीवों में पाँच ज्ञान भजना से होते हैं । सम्यग्-दर्शनलब्धि-रहित जीवों में तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें तीन अज्ञान भजना से होते हैं । मिथ्यादर्शनलब्धि-रहित जीवों में पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धिप्राप्त जीवों का कथन मिथ्यादर्शनलब्धियुक्त जीवों के समान और सम्यग् मिथ्यादर्शनलब्धि-रहित जीवों का कथन मिथ्यादर्शनलब्धि-रहित जीवों के समान समझना चाहिए ।

भगवन् ! चारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें पाँच ज्ञान भजना से होते हैं । चारित्र-लब्धिरहित जीवों में मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! सामायिकचारित्रलब्धिमान् जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं । उनमें केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान भजना से होते हैं । सामायिकचारित्रलब्धिरहित जीवों में पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । इसी प्रकार यथाख्यातचारित्रलब्धि वाले जीवों तक का कथन करना चाहिए । इतना विशेष है कि यथाख्यातचारित्रलब्धिमान जीवों में पाँच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! चारित्राचारित्रलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कईं दो ज्ञान वाले, कईं तीन ज्ञान वाले होते हैं । जो दो ज्ञान वाले होते

हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं, जो तीन ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते हैं । चारित्राचारित्रलब्धि-रहित जीवों में पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । दानलब्धिमान जीवों में पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! दानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है ।

इसी प्रकार यावत् वीर्यलब्धियुक्त और वीर्यलब्धि-रहित जीवों का कथन करना । बालवीर्यलब्धियुक्त जीवों में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । बालवीर्यलब्धि-रहित जीवों में पाँच ज्ञान भजना से होते हैं । पण्डितवीर्यलब्धिमान जीवों में पाँच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । पण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीवों में मनःपर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! बालपण्डितवीर्यलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजना से होते हैं । बालपण्डितवीर्यलब्धिरहित जीवों पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

भगवन् ! इन्द्रियलब्धिमान जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! इन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं । वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञानी होते हैं । श्रोत्रेन्द्रियलब्धियुक्त जीवों का कथन इन्द्रियलब्धि वाले जीवों की तरह करना चाहिए । भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रियलब्धि-रहित जीव ज्ञानी होते हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं । जो ज्ञानी होते हैं, उनमें से कई दो ज्ञान वाले होते हैं और कई एक ज्ञान वाले होते हैं । जो दो ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं । जो एक ज्ञान वाले होते हैं, वे केवलज्ञानी होते हैं । जो अज्ञानी होते हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं यथा–मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान । चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रियलब्धि सहित या रहित जीवों का कथन श्रोत्रेन्द्रियलब्धि जीवों के समान करना चाहिए । जिह्वेन्द्रियलब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! जिह्वेन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं । जो ज्ञानी होते हैं, वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञान वाले होते हैं, और जो अज्ञानी होते हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं, यथा–मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान । स्पर्शे-न्द्रियलब्धियुक्त या रहित जीवों का कथन इन्द्रियलब्धि जीवों के समान करना चाहिए ।

सूत्र - ३९४

भगवन् ! साकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं, जो ज्ञानी होते हैं, उनमें पाँच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं और जो अज्ञानी होते हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं । श्रुतज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन भी इसी प्रकार जानना । अवधिज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन अवधिज्ञानलब्धिमान जीवों के समान करना । मनःपर्यवज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवों का कथन मनःपर्यवज्ञानलब्धिमान जीवों के समान करना । केवलज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन केवलज्ञानलब्धिमान जीवों के समान समझना । मति-अज्ञानसाकारोपयोगयुक्त जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानसाकारोपयोगयुक्त जीवों को कहना । विभंगज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों में नियमतः तीन अज्ञान पाए जाते हैं ।

भगवन् ! अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । उनमें पाँच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । इसी प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोगयुक्त जीवों के विषय में समझ लेना चाहिए; किन्तु इतना विशेष है कि चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! अवधिदर्शन-अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते हैं अथवा अज्ञानी ? गौतम वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी । जो ज्ञानी होते हैं, उनमें कई तीन ज्ञान वाले होते हैं और कई चार ज्ञान वाले होते हैं । जो तीन ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते हैं और जो चार ज्ञान वाले

होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान से मनःपर्यवज्ञान तक वाले होते हैं । जो अज्ञानी होते हैं, उनमें नियमतः तीन अज्ञान पाए जाते हैं, यथा–मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान । केवलदर्शन-अनाकारोपयोग-युक्त जीवों का कथन केवलज्ञानलब्धियुक्त जीवों के समान समझना चाहिए ।

भगवन् ! सयोगी जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सयोगी जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान समझना । इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवों का कथन भी समझना । अयोगी जीवों का कथन सिद्धों के समान समझना ।

भगवन् ! सलेश्य जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सलेश्य जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान जानना । भगवन् ! कृष्णलेश्यावान जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों के समान जानना । इसी प्रकार यावत्, पद्मलेश्या वाले जीवों का कथन करना । शुक्ललेश्या वाले जीवों का कथन सलेश्य जीवों के समान समझना । अलेश्य जीवों का कथन सिद्धों के समान जानना ।

भगवन् ! सकषायी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! सकषायी जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत्, लोभकषायी जीवों के विषय में भी समझ लेना चाहिए । भगवन् ! अकषायी जीव क्या ज्ञानी होते हैं, अथवा अज्ञानी ? गौतम ! (वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं) । उनमें पाँच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

भगवन् ! सवेदक जीव ज्ञानी होते हैं, अथवा अज्ञानी ? गौतम ! सवेदक जीवों को सेन्द्रियजीवों के समान जानना । इसी तरह स्त्रीवेदकों, पुरुषवेदकों और नपुंसकवेदक जीवों को भी कहना । अवेदक जीवों को अकषायी जीवों के समान जानना ।

भगवन् ! आहारक जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! आहारक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि उनमें केवलज्ञान भी पाया जाता है । भगवन् ! अनाहारक जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी । जो ज्ञानी हैं, उनमें मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर शेष चार ज्ञान पाए जाते हैं और जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

सूत्र - ३९५

भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान का विषय कितना व्यापक है ? गौतम ! संक्षेप में चार प्रकार का है । यथा–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से आभिनिबोधिकज्ञानी आदेश (सामान्य) से सर्वद्रव्यों को जानता और देखता है, क्षेत्र से सामान्य से सभी क्षेत्र को जानता और देखता है, इसी प्रकार काल से भी और भाव से भी जानना । भगवन् ! श्रुतज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का है । द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से उपयोगयुक्त श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्यों को जानता और देखता है । क्षेत्र से सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है । इसी प्रकार काल से भी जानना । भाव से उपयुक्त श्रुतज्ञानी सर्वभावों को जानता और देखता है । भगवन् ! अवधिज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का है । –द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से अवधिज्ञानी रूपीद्रव्यों को जानता और देखता है । इत्यादि वर्णन नन्दीसूत्र के समान 'भाव' पर्यन्त जानना । भगवन् ! मनःपर्यवज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का है, –द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से ऋजुमति-मनःपर्यवज्ञानी (मनरूप में परिणत) अनन्तप्रादेशिक अनन्त (स्कन्धों) को जानता-देखता है, इत्यादि नन्दीसूत्र अनुसार 'भावत' तक कहना । भगवन् ! केवलज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का है । –द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से केवलज्ञानी सर्वद्रव्यों को जानता और देखता है । इसी प्रकार यावत् भाव से केवलज्ञानी सर्वभावों को जानता और देखता है ।

भगवन् ! मति-अज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! संक्षेप में चार प्रकार का–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान-परिगत द्रव्यों को जानता और देखता है । इसी प्रकार यावत् भाव से मति-अज्ञानी मति-अज्ञानी के विषयभूत भावों को जानता और देखता है । भगवन् ! श्रुत-अज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! संक्षेप में चार प्रकार का–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के

विषयभूत द्रव्यों का कथन करता है, बतलाता है, प्ररूपणा करता है । इसी प्रकार क्षेत्र से और काल से भी जान लेना । भाव की अपेक्षा श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत भावों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपित करता है । भगवन् ! विभंगज्ञान का विषय कितना है ? गौतम ! संक्षेप में चार प्रकार का–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य की अपेक्षा विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयगत द्रव्यों को जानता और देखता है । इसी प्रकार यावत् भाव की अपेक्षा विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयगत भावों को जानता और देखता है ।

सूत्र - ३९६

भगवन् ! ज्ञानी 'ज्ञानी' के रूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के हैं । –सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित । इनमें से जो सादि-सपर्यवसित ज्ञानी हैं, वे जघन्यतः अन्तमुहूर्त्त तक और उत्कृष्टतः कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक ज्ञानीरूप में रहते हैं । भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ? गौतम ! ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी, अज्ञानी, मति-अज्ञानी यावत् विभंगज्ञानी, इन दस का अवस्थितिकाल कायस्थितिपद अनुसार जानना । इन सब का अन्तर जीवाभिगमसूत्र अनुसार जानना । इन सबका अल्पबहुत्व बहुवक्तव्यता पद अनुसार जानना ।

भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय कितने हैं ? गौतम ! अनन्त पर्याय हैं । भगवन् ! श्रुतज्ञान के पर्याय कितने हैं ? गौतम ! अनन्त पर्याय हैं । इसी प्रकार यावत्, केवलज्ञान के भी अनन्त पर्याय हैं । इसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान के भी अनन्त पर्याय हैं । भगवन् ! विभंगज्ञान के कितने पर्याय कहे गए हैं ? गौतम ! विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय हैं ।

भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान के पर्यायों में किनके पर्याय, किनके पर्यायों से अल्प, यावत् (बहुत, तुल्य या) विशेषाधिक हैं ? गौतम ! मनःपर्यवज्ञान के पर्याय सबसे थोड़े हैं, उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं और उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं । भगवन् ! इन मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यायों में किनके पर्याय, किनके पर्यायों से यावत् विशेषाधिक हैं । गौतम ! सबसे थोड़े विभंगज्ञान के पर्याय हैं, उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं और उनसे मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं । भगवन् ! इन आभिनिबोधिकज्ञान-पर्याय यावत् केवलज्ञान-पर्यायों में तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यायों में किसके पर्याय, किसके पर्यायों से यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञान के पर्याय हैं, उनसे विभंगज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं, उनसे मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं और केवलज्ञान के पर्याय उनसे अनन्तगुणे हैं । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है'; यों कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे ।

शतक-८ – उद्देशक-३

सूत्र - ३९७

भगवन् ! वृक्ष कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! वृक्ष तीन प्रकार के कहे गए हैं, संख्यात जीव वाले, असंख्यात जीव वाले और अनन्त जीव वाले ।

भगवन् ! संख्यातजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ? गौतम ! अनेकविध, जैसे–ताड़, तमाल, तक्कलि, तेतली इत्यादि, प्रज्ञापनासूत्र में कहे अनुसार नारिकेल पर्यन्त जानना । ये और इस प्रकार के जितने भी वृक्षविशेष हैं, वे सब संख्यातजीव वाले हैं ।

भगवन् ! असंख्यातजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ? गौतम ! दो प्रकार के, यथा–एकास्थिक और बहुजीवक भगवन् ! एकास्थिक वृक्ष कौन-से हैं ? गौतम ! अनेक प्रकार के कहे गए हैं, जैसे–नीम, आम, जामुन आदि । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र में कहे अनुसार 'बहुबीज वाले फलों' तक कहना ।

भगवन् ! अनन्तजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ? गौतम ! अनेक प्रकार के हैं, जैसे–आलु, मूला, शृंगबेर आदि। भगवतीसूत्र के सप्तम शतक के तृतीय उद्देशक में कहे अनुसार 'सिउंढी, मुसुंढी' तक जानना। ये और जितने भी इस प्रकार के अन्य वृक्ष हैं, उन्हें भी जान लेना। यह हुआ उन अनन्तजीव वाले वृक्षों का कथन।

सूत्र - ३९८

भगवन् ! कछुआ, कछुओं की श्रेणी, गोधा, गोधा की श्रेणी, गाय, गायों की पंक्ति, मनुष्य, मनुष्यों की पंक्ति, भैंसा, भैंसों की पंक्ति, इन सबके दो या तीन अथवा संख्यात खण्ड किये जाएं तो उनके बीच का भाग क्या जीवप्रदेशों में स्पृष्ट होता है ? हाँ, गौतम ! वह स्पृष्ट होता है।

भगवन् ! कोई पुरुष उन कछुए आदि के खण्डों के बीच के भाग को हाथ से, पैर से, अंगुलि से, शलाका से, काष्ठ से या लकड़ी के छोटे-से टुकड़े से थोड़ा स्पर्श करे, विशेष स्पर्श करे, थोड़ा या विशेष खींचे, या किसी तीक्ष्ण से थोड़ा छेदे, अथवा विशेष छेदे, अथवा अग्निकाय से उसे जलाए तो क्या उन जीवप्रदेशों को थोड़ी या अधिक बाधा उत्पन्न कर पाता है, अथवा उसके किसी भी अवयव का छेद कर पाता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उन जीवप्रदेशों पर शस्त्र (आदि) का प्रभाव नहीं होता।

सूत्र - ३९९

भगवन् ! पृथ्वीयाँ कितनी हैं ? गौतम ! आठ–रत्नप्रभापृथ्वी यावत् अधःसप्तमा पृथ्वी और ईषत्प्राग्भारा। भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी चरम है, अथवा अचरम ? यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का चरमपद। वैमानिक तक कहना। गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं। 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

शतक-८ – उद्देशक-४

सूत्र - ४००

राजगृह नगर में यावत् गौतमस्वामी ने पूछा–भगवन् ! क्रियाएं कितनी हैं ? गौतम ! पाँच–कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी। यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का समग्र क्रियापद–'माया-प्रत्ययिकी क्रियाएं विशेषाधिक हैं;' –यहाँ तक कहना चाहिए। 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

शतक-८ – उद्देशक-५

सूत्र - ४०१

राजगृह नगर के यावत् गौतमस्वामी ने पूछा–भगवन् ! आजीविकों ने स्थविर भगवंतों से पूछा कि 'सामायिक करके श्रमणोपाश्रय में बैठे हुए किसी श्रावक के भाण्ड-वस्त्र आदि सामान को कोई अपहरण कर ले जाए, वह उस भाण्ड-वस्त्रादि सामान का अन्वेषण करे तो क्या वह अपने सामान का अन्वेषण करता है या पराये सामान का ? गौतम ! वह अपने ही सामान का अन्वेषण करता है, पराये सामान का नहीं।

सूत्र - ४०२

भगवन् ! उन शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार किये हुए श्रावक का वह अपहृत भाण्ड उसके लिए तो अभाण्ड हो जाता है ? हाँ, गौतम ! वह भाण्ड उसके लिए अभाण्ड हो जाता है। भगवन् ! तब आप ऐसा क्यों कहते हैं कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरे के भाण्ड का नहीं ? गौतम ! सामायिक आदि करने वाले उस श्रावक के मन में हिरण्य मेरा नहीं है, सुवर्ण मेरा नहीं है, कांस्य मेरा नहीं है, वस्त्र मेरे नहीं हैं तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल एवं रक्तरत्न इत्यादि विद्यमान सारभूत द्रव्य मेरा नहीं है। किन्तु ममत्वभाव का उसने प्रत्याख्यान नहीं किया है। इसी कारण हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ।

भगवन् ! सामायिक करके श्रमणोपाश्रय में बैठे हुए श्रावक की पत्नी के साथ कोई लम्पट व्यभिचार करता है, तो क्या वह (व्यभिचारी) श्रावक की पत्नी को भोगता है, या दूसरे की स्त्री को भोगता है ? गौतम ! वह उस श्रावक की पत्नी को भोगता है, दूसरे की स्त्री को नहीं। भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास कर लेने से क्या उस श्रावक की वह जाया 'अजाया' हो जाती है ? हाँ, गौतम ! हो जाती है। भगवन् तब आप ऐसा

क्यों कहते हैं कि वह लम्पट उसकी जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता । गौतम ! शील-व्रतादि को अंगीकार करने वाले उस श्रावक के मन में ऐसे परिणाम होते हैं कि माता मेरी नहीं है, पिता मेरे नहीं है, भाई मेरा नहीं है, बहन मेरी नहीं है, भार्या मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नहीं है, पुत्रवधू मेरी नहीं है; किन्तु इन सबके प्रति उसका प्रेम बन्धन टूटा नहीं है । इस कारण हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ ।

भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने (पहले) स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान नहीं किया, वह पीछे उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है ? गौतम ! अतीत काल में किए हुए प्राणातिपात का प्रतिक्रमण करता है तथा वर्तमानकालीन प्राणातिपात का संवर करता है एवं अनागत प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता है ।

भगवन् ! अतीतकालीन प्राणातिपात आदि का प्रतिक्रमण करता हुआ श्रमणोपासक, क्या १. त्रिविध-त्रिविध (तीन करण, तीन योग से), २. त्रिविध-द्विविध, ३. त्रिविध-एकविध, ४. द्विविध-त्रिविध, ५. द्विविध-द्विविध, ६. द्विविध-एकविध, ७. एकविध-विविध, ८. एकविध-द्विविध, ९. एकविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है ? गौतम ! वह त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा यावत् एकविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है ।

१. जब वह त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब मन से, वचन से और काया से । १. स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करते हुए का अनुमोदन करता नहीं । २. जब त्रिविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है तब मन से और वचन से; करता नहीं, करवाता नहीं और अनुमोदन नहीं करता, ३. अथवा वह मन से और काया से करता नहीं, कराता नहीं और अनुमोदन नहीं करता, ४. या वह वचन से और काया से करता, कराता और अनुमोदन करता नहीं, जब त्रिविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ५. मन से करता नहीं, न करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, ६. अथवा वचन से नहीं करता, नहीं करवाता और अनुमोदन नहीं करता, ७. अथवा काया से नहीं करता, नहीं कराता और अनुमोदन नहीं करता । जब द्विविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब ८. मन, वचन और काया से करता नहीं, करवाता नहीं, ९. अथवा मन-वचन-काया से करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, १०. अथवा करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं ।

जब द्विविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ११. मन और वचन से करता नहीं, करवाता नहीं, १२. अथवा मन और काया से करता नहीं, करवाता नहीं, १३. अथवा वचन और काया से करता नहीं, करवाता नहीं, १४. अथवा मन और वचन से, करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, १५. अथवा मन और काया से, करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, १६. वचन और काया से करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, १७. मन और वचन से करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, १८. मन और काया से करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, १९. अथवा वचन और काया से करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं ।

जब द्विविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब २०. मन से करता नहीं, करवाता नहीं, २१. वचन से करता नहीं, करवाता नहीं, २२. काया से करता नहीं, करवाता नहीं, २३. मन से करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, २४. वचन से करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, २५. काया से करता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, २६. मन से करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, २७. वचन से करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं, २८. अथवा काया से करवाता नहीं, अनुमोदन करता नहीं । जब एकविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब २९. करता नहीं, मन, वचन और काया से; ३०. मन, वचन और काया से करवाता नहीं, ३१. मन, वचन और काया से अनुमोदन करता नहीं ।

जब एकविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ३२. मन और वचन से करता नहीं, ३३. मन और काया से करता नहीं, ३४. अथवा वचन और काया से करता नहीं, ३५. अथवा मन और वचन से करवाता नहीं, ३६. अथवा मन और काया से करवाता नहीं, ३७. अथवा वचन और काया से करवाता नहीं, ३८. अथवा मन और वचन से अनुमोदन करता नहीं, ३९. अथवा मन और काया से अनुमोदन करता नहीं, ४०. अथवा वचन और काया से अनुमोदन करता नहीं । जब एकविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ४१. मन से स्वयं करता नहीं, ४२. अथवा वचन से करता नहीं, ४३. अथवा काया से करता नहीं, ४४. अथवा मन से करवाता नहीं, ४५. अथवा वचन से करवाता नहीं, ४६. अथवा

काया से करवाता नहीं, ४७. अथवा मन से अनुमोदन करता नहीं, ४८. अथवा वचन से अनुमोदन करता नहीं, ४९. अथवा काया से अनुमोदन करता नहीं ।

भगवन् ! वर्तमानकालीन संवर करता हुआ श्रावक त्रिविध-त्रिविध संवर करता है ? गौतम ! जो उनचास भंग प्रतिक्रमण के विषय में कहे गए हैं, वे ही संवर के विषय में कहना । भगवन् ! भविष्यत् काल का प्रत्याख्यान करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध-त्रिविध प्रत्याख्यान करता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार यहाँ भी उनचास भंग कहना ।

भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान नहीं किया, किन्तु पीछे वह स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है ? गौतम ! प्राणातिपात के समान मृषावाद के सम्बन्ध में भी एक सौ सैंतालीस भंग कहना । इसी प्रकार स्थूल अदत्तादान के विषय में, स्थूल मैथुन के विषय में एवं स्थूल परिग्रह के विषय में भी पूर्ववत् प्रत्येक के एक सौ सैंतालीस-एक सौ सैंतालीस त्रैकालिक भंग कहना ।

श्रमणोपासक ऐसे होते हैं, किन्तु आजीविकोपासक ऐसे नहीं होते ।

सूत्र - ४०३

आजीविक के सिद्धान्त का यह अर्थ है कि समस्त जीव अक्षीणपरिभोजी होते हैं । इसलिए वे हनन करके, काटकर, भेदन करके, कतर कर, उतार कर और विनष्ट करके खाते हैं । ऐसी स्थिति (संसार के समस्त जीव असंयत और हिंसादिदोषपरायण हैं) में आजीविक मत में ये बारह आजीविकोपासक हैं–ताल, तालप्रलम्ब, उद्विध, संविध, अवविध, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अनुपालक, शंखपालक, अयम्बुल और कातरक ।

इस प्रकार ये बारह आजीविकोपासक हैं । इनका देव अरहंत है । वे माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करते हैं । वे पाँच प्रकार के फल नहीं खाते–उदुम्बर के फल, वड़ के फल, बोर, सत्तर के फल, पीपल फल तथा प्याज, लहसुन, कन्दमूल के त्यागी होते हैं तथा अनिर्लांछित और नाक नहीं नाथे हुए बैलों से त्रस प्राणी की हिंसा से रहित व्यापार द्वारा आजीविका करते हुए विहरण करते हैं । जब इन आजीविकोपासकों को यह अभीष्ट है, तो फिर जो श्रमणोपासक हैं, उनका तो कहना ही क्या ? जो श्रमणोपासक होते हैं, उनके लिए ये पन्द्रह कर्मादान स्वयं करना, दूसरों से कराना और करते हुए का अनुमोदन करना कल्पनीय नहीं है, यथा–अंगारकर्म, वनकर्म, शाकटिक कर्म, भाटीकर्म, स्फोटककर्म, दन्तवाणिज्य, लाक्षावाणिज्य, रसवाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्रपीडनकर्म, निर्लांछन कर्म, दावाग्निदापनता, सरो-ह्रद-तडागशोषणता और असतीपोषणता । ये श्रमणोपासक शुक्ल, शुक्लाभिजात होकर काल के समय–मृत्यु प्राप्त करके किन्हीं देवलोकों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं ।

सूत्र - ४०४

भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! चार प्रकार के, यथा–भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-८ – उद्देशक-६

सूत्र - ४०५

भगवन् ! तथारूप श्रमण अथवा माहन को प्रासुक एवं एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ? गौतम ! वह एकान्त रूप से निर्जरा करता है; उसके पापकर्म नहीं होता । भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक एवं अनेषणीय आहार द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ? गौतम ! उसके बहुत निर्जरा होती है और अल्पतर पापकर्म होता है । भगवन् ! तथारूप असंयत, अविरत, पापकर्मों का जिसने निरोध और प्रत्याख्यान नहीं किया; उसे प्रासुक या अप्रासुक, एषणीय या अनेषणीय अशन-पानादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को क्या फल प्राप्त होता है ? गौतम ! उसे एकान्त पापकर्म होता है, किसी प्रकार की निर्जरा नहीं होती ।

सूत्र - ४०६

गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ दो पिण्ड ग्रहण करने के लिए

उपनिमंत्रण करे–'आयुष्मन् श्रमण ! इन दो पिण्डों में से एक पिण्ड आप स्वयं खाना और दूसरा पिण्ड स्थविर मुनियों को देना । वह निर्ग्रन्थ श्रमण उन दोनों पिण्डों को ग्रहण कर ले और स्थविरों की गवेषणा करे । गवेषणा करने पर उन स्थविर मुनियों को जहाँ देखे, वहीं वह पिण्ड उन्हें दे दे । यदि गवेषणा करने पर भी स्थविर मुनि कहीं न दिखाई दें तो वह पिण्ड स्वयं न खाए और न ही दूसरे किसी श्रमण को दे, किन्तु एकान्त, अनापात, अचित्त या बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके वहाँ परिष्ठापन करे । गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने के विचार से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ तीन पिण्ड ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे–'आयुष्मन् श्रमण ! एक पिण्ड आप स्वयं खाना और दो पिण्ड स्थविर श्रमणों को देना ।' वह निर्ग्रन्थ उन तीनों पिण्डों को ग्रहण कर ले । तत्पश्चात् वह स्थविरों की गवेषणा करे । शेष वर्णन पूर्ववत् । यावत् स्वयं न खाए, परिष्ठापन करे । गृहस्थ के घर में प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को यावत् दस पिण्डों को ग्रहण करने के लिए कोई गृहस्थ उपनिमंत्रण दे–'आयुष्मन् श्रमण ! इनमें से एक पिण्ड आप स्वयं खाना और शेष नौ पिण्ड स्थविरों को देना;' इत्यादि वर्णन पूर्ववत् ।

निर्ग्रन्थ यावत् गृहपति-कुल में प्रवेश करे और कोई गृहस्थ उसे दो पात्र ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे–'आयुष्मन् श्रमण ! एक पात्र का आप स्वयं उपयोग करना और दूसरा पात्र स्थविरों को दे देना ।' इस पर वह निर्ग्रन्थ उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर ले । शेष वर्णन पूर्ववत् यावत् उस पात्र का न तो स्वयं उपयोग करे और न दूसरे साधुओं को दे; यावत् उसे परठ दे । इसी प्रकार तीन, चार यावत् दस पात्र तक का कथन पूर्वोक्त पिण्ड के समान कहना । पात्र के समान सम्बन्ध गुच्छक, रजोहरण, चोलपट्टक, कम्बल, लाठी, (दण्ड) और संस्तारक की वक्तव्यता कहना, यावत् दस संस्तारक ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे, यावत् परठ दे ।

सूत्र - ४०७

गृहस्थ के घर आहार ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्क्षण उसके मन में ऐसा विचार हो कि प्रथम मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा करूँ; (उसके अनुबन्ध का) छेदन करूँ, इस (पाप-दोष से) विशुद्ध बनूँ, पुनः ऐसा अकृत्य न करने के लिए अभ्युद्यत होऊं और यथोचित प्रायश्चित्तरूप तपःकर्म स्वीकार कर लूँ । तत्पश्चात् स्थविरों के पास जाकर आलोचना करूँगा, यावत् प्रायश्चित्तरूप तपःकर्म स्वीकार कर लूँगा, (ऐसा सोच के) वह निर्ग्रन्थ, स्थविर मुनियों के पास जाने के लिए रवाना हुआ; किन्तु स्थविर मुनियों के पास पहुँचने से पहले ही वे स्थविर मूक हो जाएं तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ? गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नहीं । यावत् उनके पास पहुँचने से पूर्व ही वह निर्ग्रन्थ स्वयं मूक हो जाए, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ? गौतम वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नहीं ।

(उपर्युक्त अकृत्यसेवी) निर्ग्रन्थ स्थविर मुनियों के पास आलोचनादि के लिए रवाना हुआ, किन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही वे स्थविर मुनि काल कर जाएं, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ? गौतम ! वह आराधक है, विराधक नहीं । भगवन् ! (उपर्युक्त अकृत्य-सेवन करके) वह निर्ग्रन्थ स्थविरों के पास आलोच-नादि करने के लिए नीकला, किन्तु वहाँ पहुँचा नहीं, उससे पूर्व ही स्वयं काल कर जाए तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ? गौतम ! वह आराधक है, विराधक नहीं । उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ ने तत्क्षण आलोचनादि करके स्थविर मुनिवरों के पास आलोचनादि करने हेतु प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुँच गया, तत्पश्चात् वे स्थविर मुनि मूक हो जाएं, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ? गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नहीं । (उपर्युक्त अकृत्यसेवी मुनि) स्वयं आलोचनादि करके स्थविरों की सेवा में पहुँचते ही स्वयं मूक हो जाए, जिस प्रकार स्थविरों के पास न पहुँचे हुए निर्ग्रन्थ के चार आलापक कहे गए हैं, उसी प्रकार सम्प्राप्त निर्ग्रन्थ के भी चार आलापक कहना ।

बाहर विचारभूमि (स्थण्डिलभूमि) अथवा विहारभूमि (स्वाध्यायभूमि) की ओर नीकले हुए निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन हो गया हो, तत्क्षण उसके मन में ऐसा विचार हो कि 'पहले मैं स्वयं यहीं इस अकृत्य की आलोचनादि करूँ, इत्यादि पूर्ववत् । यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से असम्प्राप्त और सम्प्राप्त दोनों के आठ आलापक

कहने चाहिए। यावत् वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नहीं; ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए किसी निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्काल उसके मन में यह विचार स्फुरित हो कि 'पहले मैं यहीं इस अकृत्य की आलोचनादि करूँ; इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत्। यहाँ भी पूर्ववत् आठ आलापक कहना, यावत् वह आराधक है, विराधक नहीं।

गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट किसी निर्ग्रन्थी (साध्वी) ने किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, किन्तु तत्काल उसको ऐसा विचार स्फुरित हुआ कि मैं स्वयमेव पहले यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना कर लूँ, यावत् प्रायश्चित्तरूप तपःकर्म स्वीकार कर लूँ। तत्पश्चात् प्रवर्तिनी के पास आलोचना कर लूँगी यावत् तपःकर्म स्वीकार कर लूँगी। ऐसा विचार कर उस साध्वी ने प्रवर्तिनी के पास जाने के लिए प्रस्थान किया, प्रवर्तिनी के पास पहुँचने से पूर्व ही वह प्रवर्तिनी मूक हो गई, तो हे भगवन्! वह साध्वी आराधिका है या विराधिका ? गौतम ! वह साध्वी आराधिका है, विराधिका नहीं। जिस प्रकार संप्रस्थित निर्ग्रन्थ के तीन पाठ हैं उसी प्रकार सम्प्रस्थित साध्वी के भी तीन पाठ कहने चाहिए और वह साध्वी आराधिका है, विराधिका नहीं।

भगवन्! किस कारण से आप कहते हैं, वे आराधक है, विराधक नहीं ? गौतम ! जैसे कोई पुरुष एक बड़े ऊन के बाल के या हाथी के रोम के अथवा सण के रेशे के या कपास के रेशे के अथवा तृण के अग्रभाग के दो, तीन या संख्यात टुकड़े करके अग्निकाय में डाले तो हे गौतम ! काटे जाते हुए वे (टुकड़े) काटे गए, अग्नि में डाले जाते हुए को डाले गए या जलते हुए को जल गए, इस प्रकार कहा जा सकता है ? हाँ, भगवन्! काटे जाते हुए काटे गए अग्नि में डाले जाते हुए डाले गए और जलते हुए जल गए; यों कहा जा सकता है। भगवान का कथन-अथवा जैसे कोई पुरुष बिलकुल नये, या धोये हुए, अथवा तंत्र से तुरंत ऊतरे हुए वस्त्र को मजीठ के पात्र में डाले तो हे गौतम ! उठाते हुए वह वस्त्र उठाया गया, डालते हुए डाला गया, अथवा रंगते हुए रंगा गया, यों कहा जा सकता है ? (गौतम स्वामी-) हाँ, भगवन्! उठाते हुए वह वस्त्र उठाया गया, यावत् रंगते हुए रंगा गया, इस प्रकार कहा जा सकता है। (भगवान -) इसी कारण से हे गौतम ! यों कहा जाता है कि (आराधना के लिए उद्यत साध्वी) आराधक है, विराधक नहीं है।

सूत्र - ४०८

भगवन्! जलते हुए दीपक में क्या जलता है ? दीपक जलता है ? दीपयष्टि जलती है ? बत्ती जलती है ? तेल जलता है ? दीपचम्पक जलता है, या ज्योति जलती है ? गौतम ! दीपक नहीं जलता, यावत् दीपचम्पक नहीं जलता, किन्तु ज्योति जलती है। भगवन्! जलते हुए घर में क्या घर जलता है ? भींतें जलती हैं ? टाटी जलती है? धारण जलते हैं ? बलहरण जलता है ? बाँस जलते हैं ? मल्ल जलते हैं ? वर्ग जलते हैं ? छित्वर जलते हैं ? छादन जलता है, या ज्योति जलती है ? गौतम ! घर नहीं जलता, यावत् छादन नहीं जलता, किन्तु ज्योति जलती है।

सूत्र - ४०९

भगवन्! एक जीव एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला, कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है और कदाचित् अक्रिय भी होता है

भगवन्! एक नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम वह कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है। भगवन्! एक असुरकुमार, एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार होता है। इसी प्रकार वैमानिक देवों तक कहना। परन्तु मनुष्य का कथन औघिक जीव की तरह जानना। भगवन्! एक जीव औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रियावाला होता है ? गौतम ! वह कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच क्रिया वाला तथा कदाचित् अक्रिय भी होता है। भगवन्! एक नैरयिक जीव, औदारिकशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! प्रथम दण्डक के समान यह दण्डक भी वैमानिक पर्यन्त कहना; परन्तु मनुष्य का कथन सामान्य जीवों की तरह जानना।

भगवन्! बहुत-से जीव, दूसरे के एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! वे

कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच क्रिया वाले होते हैं तथा कदाचित् अक्रिय भी होते हैं । भगवन् ! बहुत-से नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! प्रथम दण्डक अनुसार यह दण्डक भी वैमानिक पर्यन्त कहना । विशेष यह है कि मनुष्यों का कथन औघिक जीवों की तरह जानना। भगवन् ! बहुत-से जीव, दूसरे जीवों के औदारिकशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! वे कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच क्रिया वाले और कदाचित् अक्रिय भी होते हैं । भगवन् ! बहुत-से नैरयिक जीव, दूसरे जीवों के औदारिकशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पाँच क्रिया वाले भी होते हैं । इसी तरह वैमानिकों पर्यन्त समझना । विशेष इतना कि मनुष्यों का कथन औघिक जीवों की तरह जानना ।

भगवन् ! एक जीव, (दूसरे जीव के) वैक्रियशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् क्रियारहित होता है । भगवन् ! एक नैरयिक जीव, (दूसरे जीव के) वैक्रियशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! वह कदाचित् तीन और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना । किन्तु मनुष्य को औघिकजीव की तरह कहना ।

औदारिकशरीर के समान वैक्रियशरीर की अपेक्षा भी चार दण्डक कहने चाहिए । विशेषता इतनी है कि इसमें पंचम क्रिया का कथन नहीं करना । शेष पूर्ववत् समझना । वैक्रियशरीर के समान आहारक, तैजस और कार्मण शरीर का भी कथन करना । इन तीनों के प्रत्येक के चार-चार दण्डक कहने चाहिए यावत्–'भगवन् ! बहुत-से वैमानिक देव कार्मणशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! तीन क्रिया वाले भी और चार क्रिया वाले भी होते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-८ – उद्देशक-७

सूत्र - ४१०

उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । वहाँ गुणशीलक चैत्य था । यावत् पृथ्वी शिलापट्टक था । उस गुणशीलक चैत्य के आसपास बहुत-से अन्यतीर्थिक रहते थे । उस काल और उस समय धर्मतीर्थ की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर यावत् समवसृत हुए यावत् धर्मोपदेश सूनकर परीषद् वापिस चली गई । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के बहुत-से शिष्य स्थविर भगवंत जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न इत्यादि दूसरे शतक में वर्णित गुणों से युक्त यावत् जीवन की आशा और मरण के भय से विमुक्त थे । वे श्रमण भगवान महावीर से न अति दूर, न अति निकट ऊर्ध्वजानु, अधोशिरस्क ध्यानरूप कोष्ठ को प्राप्त होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे ।

एक बार वे अन्यतीर्थिक जहाँ स्थविर भगवंत थे, वहाँ आए । वे स्थविर भगवंतों से यों कहने लगे–हे आर्यो! तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत, अप्रतिहत पापकर्म तथा पापकर्म का प्रत्याख्यान नहीं किये हुए हो; इत्यादि सातवें शतक के द्वीतिय उद्देशक अनुसार कहा; यावत् तुम एकान्त बाल भी हो । इस पर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा–आर्यो ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध असंयत, यावत् एकान्तबाल हैं ? तदनन्तर उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा–हे आर्यो ! तुम अदत्त पदार्थ ग्रहण करते हो, अदत्त का भोजन करते हो और अदत्त का स्वाद लेते हो, इस प्रकार अदत्त का ग्रहण करते हुए, अदत्त का भोजन करते हुए और अदत्त की अनुमति देते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो ।

तदनन्तर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा–'आर्यो ! हम किस कारण से अदत्त का ग्रहण करते हैं, अदत्त का भोजन करते हैं और अदत्त की अनुमति देते हैं, जिससे कि हम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् अदत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हैं ? इस पर उन अन्य-तीर्थिकों ने स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा–हे आर्यो ! तुम्हारे मत में दिया जाता हुआ पदार्थ, 'नहीं दिया गया', ग्रहण किया जाता हुआ, 'ग्रहण नहीं किया गया', तथा डाला जाता हुआ पदार्थ, 'नहीं डाला गया', ऐसा कथन है; इसलिए हे आर्यो!

तुमको दिया जाता हुआ पदार्थ, जब तक पात्र में नहीं पड़ा, तब तक बीच में से ही कोई उसका अपहरण कर ले तो तुम कहते हो-'वह उस गृहपति के पदार्थ का अपहरण हुआ' 'हमारे पदार्थ का अपहरण हुआ' ऐसा तुम नहीं कहते । इस कारण से तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, यावत् अदत्त की अनुमति देते हो; अतः तुम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् एकान्तबाल हो ।

यह सूनकर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से कहा-'आर्यो ! हम अदत्त का ग्रहण नहीं करते, न अदत्त को खाते हैं और न ही अदत्त की अनुमति देते हैं । हे आर्यो ! हम तो दत्त पदार्थ को ग्रहण करते हैं, दत्त भोजन को खाते हैं और दत्त की अनुमति देते हैं । इसलिए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत, पापकर्म के प्रति-निरोधक, पापकर्म का प्रत्याख्यान किये हुए हैं । सप्तमशतक अनुसार हम यावत् एकान्तपण्डित हैं ।' तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से कहा-'तुम किस कारण दत्त को ग्रहण करते हो, यावत् दत्त की अनुमति देते हो, जिससे दत्त का ग्रहण करते हुए यावत् तुम एकान्तपण्डित हो ?'

इस पर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से कहा-'आर्यो ! हमारे सिद्धान्तानुसार-दिया जाता हुआ पदार्थ, 'दिया गया'; ग्रहण किया जाता हुआ पदार्थ 'ग्रहण किया' और पात्र में डाला जाता हुआ पदार्थ 'डाला गया' कहलाता है । इसीलिए हे आर्यो ! हमें दिया जाता हुआ पदार्थ हमारे पात्र में नहीं पहुँचा है, इसी बीच में कोई व्यक्ति उसका अपहरण कर ले तो 'वह पदार्थ हमारा अपहृत हुआ' कहलाता है, किन्तु 'वह पदार्थ गृहस्थ का अपहृत हुआ,' ऐसा नहीं कहलाता । इस कारण से हम दत्त को ग्रहण करते हैं, दत्त आहार करते हैं और दत्त की ही अनुमति देते हैं । इस प्रकार दत्त को ग्रहण करते हुए यावत् दत्त की अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत यावत् एकान्तपण्डित हैं, प्रत्युत, हे आर्यो ! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो। तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवंतों से पूछा-आर्यो ! हम किस कारण से त्रिविध-त्रिविध...यावत् एकान्त बाल हैं ? इस पर उन स्थविर भगवंतों ने उस अन्यतीर्थिकों से यों कहा-आर्यो ! तुम लोग अदत्त को ग्रहण करते हो, यावत् अदत्त की अनुमति देते हो; इसलिए हे आर्यो ! तुम अदत्त को ग्रहण करते हुए यावत् एकान्तबाल हो ।

तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से पूछा-आर्यो ! हम कैसे अदत्त को ग्रहण करते हैं यावत् जिससे कि हम एकान्तबाल हैं ? यह सूनकर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से कहा-आर्यो ! तुम्हारे मत में दिया जाता हुआ पदार्थ 'नहीं दिया गया' इत्यादि कहलाता है, यावत् वह पदार्थ गृहस्थ का है, तुम्हारा नहीं; इसलिए तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, यावत् पूर्वोक्त प्रकार से तुम एकान्तबाल हो ।

तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से कहा-आर्यो ! तुम ही त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो । इस पर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से पूछा-आर्यो ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्तबाल हैं ? तब उन अन्यतीर्थिकों ने कहा-आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वी-कायिक जीवों को दबाते हो, हनन करते हो, पादाभिघात करते हो, उन्हें भूमि के साथ श्लिष्ट करते हो, उन्हें एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे करते हो, जोर से स्पर्श करते हो, उन्हें परितापित करते हो, उन्हें मारणान्तिक कर देते हो और उपद्रवित करते-मारते हो । इस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो । तब उन स्थविरों ने कहा-आर्यो ! हम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते नहीं, हनते नहीं, यावत् मारते नहीं । हे आर्यो ! हम गमन करते हुए काय के लिए, योग के लिए, ऋत (संयम) के लिए एक देश से दूसरे देश में और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हैं । इस प्रकार एक स्थल से दूसरे स्थल में और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते नहीं, उनका हनन नहीं करते, यावत् उनको मारते नहीं । इसलिए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत यावत् एकान्तपण्डित हैं । किन्तु हे आर्यो ! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो ।

इस पर उन अन्यतीर्थिकों ने पूछा-आर्यो ! हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत, यावत् एकान्तबाल हैं ? तब स्थविर भगवंतों ने कहा-आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हो, यावत्

मार देते हो । इसलिए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए, यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो । इस पर वे अन्यतीर्थिक बोले–हे आर्यो ! तुम्हारे मत में जाता हुआ, नहीं गया कहलाता है; जो लाँघा जा रहा है, वह नहीं लाँघा गया कहलाता है, और राजगृह को प्राप्त करने की ईच्छा वाला पुरुष असम्प्राप्त कहलाता है। तत्पश्चात् उन स्थविर भगवंतों ने कहा–आर्यो ! हमारे मत में जाता हुआ नहीं गया नहीं कहलाता, व्यतिक्रम्यमाण अव्यतिक्रान्त नहीं कहलाता । इसी प्रकार राजगृह नगर को प्राप्त करने की ईच्छा वाला व्यक्ति असंप्राप्त नहीं कहलाता । हमारे मत में तो, आर्यो ! 'गच्छन्' 'गत्'; 'व्यतिक्रम्यमाण' 'व्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की ईच्छा वाला व्यक्ति सम्प्राप्त कहलाता है । हे आर्यो ! तुम्हारे ही मत में 'गच्छन्' 'अगत', 'व्यतिक्रम्यमाण' 'अव्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की ईच्छा वाला असम्प्राप्त कहलाता है । उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर करके उन्होंने गतिप्रपात नामक अध्ययन प्ररूपित किया ।

सूत्र - ४११

भगवन् ! गतिप्रपात कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! गतिप्रपात पाँच प्रकार का है । यथा–प्रयोग गति, ततगति, बन्धन-छेदनगति, उपपातगति और विहायोगति । यहाँ से प्रारम्भ करके प्रज्ञापनासूत्र का सोलहवाँ समग्र प्रयोगपद यावत् 'यह वियोगगति का वर्णन हुआ'; यहाँ तक कथन करना । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-८ – उद्देशक-८

सूत्र - ४१२

राजगृह नगर में (गौतम स्वामी ने) यावत् इस प्रकार पूछा–भगवन् ! गुरुदेव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ? गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, आचार्य प्रत्यनीक, उपाध्याय प्रत्यनीक और स्थविर प्रत्यनीक ।

भगवन् ! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक हैं ? गौतम ! तीन–इहलोकप्रत्यनीक, परलोकप्रत्यनीक और उभयलोकप्रत्यनीक । भगवन् ! समूह की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक हैं ? गौतम ! तीन–कुलप्रत्यनीक, गणप्रत्यनीक और संघप्रत्यनीक ।

भगवन् ! अनुकम्प्य (साधुओं) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ? गौतम ! तीन–तपस्वीप्रत्यनीक, ग्लानप्रत्यनीक और शैक्ष-प्रत्यनीक । भगवन् ! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक हैं ? गौतम ! तीन–सूत्रप्रत्यनीक, अर्थप्रत्यनीक और तदुभयप्रत्यनीक । भगवन् ! भाव की अपेक्षा ? गौतम ! तीन–ज्ञानप्रत्यनीक, दर्शनप्रत्यनीक और चारित्रप्रत्यनीक ।

सूत्र - ४१३

भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! व्यवहार पाँच प्रकार का कहा गया है, आगम व्यवहार, श्रुतव्यवहार, आज्ञाव्यवहार, धारणाव्यवहार और जीतव्यवहार । इन पाँच प्रकार के व्यवहारों में से जिस साधु के पास आगम हो, उसे उस आगम से व्यवहार करना । जिसके पास आगम न हो, उसे श्रुत से व्यवहार चलाना । जहाँ श्रुत न हो वहाँ आज्ञा से उसे व्यवहार चलाना । यदि आज्ञा भी न हो तो जिस प्रकार की धारणा हो, उस धारणा से व्यवहार चलाना । कदाचित् धारणा न हो तो जिस प्रकार का जीत हो, उस जीत से व्यवहार चलाना। इस प्रकार इन पाँचों-से व्यवहार चलाना । जिसके पास जिस-जिस प्रकार से आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत, इन में से जो व्यवहार हो, उसे उस उस प्रकार से व्यवहार चलाना चाहिए ।

भगवन् ! आगमबलिक श्रमण निर्ग्रन्थ क्या कहते हैं ? (गौतम !) इस प्रकार इन पंचविध व्यवहारों में से जब-जब और जहाँ-जहाँ जो व्यवहार सम्भव हो, तब-तब और वहाँ-वहाँ उससे, राग और द्वेष से रहित होकर सम्यक् प्रकार से व्यवहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञा का आराधक होता है ।

सूत्र - ४१४

भगवन् ! बंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! बंध दो प्रकार का–ईर्यापथिकबंध और साम्परायिकबंध । भगवन् ! ईर्यापथिककर्म क्या नैरयिक बाँधता है, या तिर्यंचयोनिक या तिर्यंचयोनिक स्त्री बाँधती है, अथवा मनुष्य, या मनुष्य-

स्त्री बाँधती है, अथवा देव या देवी बाँधती है ? गौतम ! ईर्यापथिककर्म न नैरयिक बाँधता है, न तिर्यंच-योनिक, न तिर्यंचयोनिक स्त्री बाँधती है, न देव और न ही देवी बाँधती है, किन्तु पूर्वप्रतिपन्नक की अपेक्षा इसे मनुष्य पुरुष और मनुष्य स्त्रियाँ बाँधती हैं; प्रतिपद्यमान की अपेक्षा मनुष्य-पुरुष अथवा मनुष्य स्त्री बाँधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य-पुरुष या बहुत-सी मनुष्य स्त्रियाँ बाँधती हैं, अथवा एक मनुष्य और एक मनुष्य-स्त्री बाँधती है, या एक मनुष्य-पुरुष और बहुत-सी मनुष्य-स्त्रियाँ बाँधती हैं, अथवा बहुत-से मनुष्यपुरुष और एक मनुष्य-स्त्री बाँधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य-नर और बहुत-सी मनुष्य-नारियाँ बाँधती हैं ।

भगवन् ! ऐर्यापथिक बंध क्या स्त्री बाँधती है, पुरुष बाँधता है, नपुंसक बाँधता है, स्त्रियाँ बाँधती हैं, पुरुष बाँधते हैं या नपुंसक बाँधते हैं, अथवा नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बाँधता है ? गौतम ! इसे स्त्री नहीं बाँधती, पुरुष नहीं बाँधता, नपुंसक नहीं बाँधता, स्त्रियाँ नहीं बाँधती, पुरुष नहीं बाँधते और नपुंसक भी नहीं बाँधते, किन्तु पूर्व-प्रतिपन्न की अपेक्षा वेदरहित (बहु) जीव अथवा प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेदरहित (एक) या (बहु) जीव बाँधते हैं ।

भगवन् ! यदि वेदरहित एक जीव अथवा वेदरहित बहुत जीव ऐर्यापथिक बंध बाँधते हैं तो क्या–१. स्त्री-पश्चात्कृत जीव बाँधता है; अथवा २–पुरुष-पश्चात्कृत जीव; या ३–नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बाँधता है ? अथवा ४–स्त्रीपश्चात्कृत जीव बाँधते हैं, या ५–पुरुष-पश्चात्कृत जीव, या ६–नपुंसकपश्चात्कृत जीव ? अथवा ७–एक स्त्री -पश्चात्कृत् जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बाँधता है, या ८–एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव यावत् २६–बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बाँधते हैं? गौतम! ऐर्यापथिक कर्म (१) स्त्रीपश्चात्कृत जीव भी बाँधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाँधता है, (३) नपुंसकपश्चात्कृत जीव भी बाँधता है, (४) स्त्री पश्चात्कृत जीव भी बाँधते हैं, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाँधते हैं, (६) नपुंसकपश्चात्कृत जीव भी बाँधते हैं; अथवा (७) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाँधता है अथवा यावत् (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव भी बाँधते हैं ।

भगवन् ! क्या जीव ने (ऐर्यापथिक कर्म) १–बाँधा है, बाँधता है और बाँधेगा; अथवा २–बाँधा है, बाँधता है, नहीं बाँधेगा; या ३–बाँधा है, नहीं बाँधता है, बाँधेगा; अथवा ४–बाँधा है, नहीं बाँधता है, नहीं बाँधेगा, या ५–नहीं बाँधा, बाँधता है, बाँधेगा, अथवा ६–नहीं बाँधा, बाँधता है, नहीं बाँधेगा, या ७–नहीं बाँधा, नहीं बाँधता, बाँधेगा; अथवा ८–न बाँधा, न बाँधता है, न बाँधेगा ? गौतम ! भवाकर्ष की अपेक्षा किसी एक जीव ने बाँधा है, बाँधता है और बाँधेगा; किसी एक जीव ने बाँधा है, बाँधता है, और नहीं बाँधेगा; यावत् किसी एक जीव ने नहीं बाँधा, नहीं बाँधता है, नहीं बाँधेगा । इस प्रकार सभी (आठों) भंग यहाँ कहने चाहिए । ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा (१) किसी एक जीव ने बाँधा, बाँधता है, बाँधेगा; यावत् (५) किसी एक जीव ने नहीं बाँधा, बाँधता है, बाँधेगा यहाँ तक कहना । इसके पश्चात् छठा भंग–नहीं बाँधा, बाँधता नहीं है, बाँधेगा; नहीं कहना चाहिए । (तदनन्तर सातवा भंग)–किसी एक जीव ने नहीं बाँधा, नहीं बाँधता है, बाँधेगा और आठवा भंग एक जीव ने नहीं बाँधा, नहीं बाँधता, नहीं बाँधेगा (कहना) ।

भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म क्या सादि-सपर्यवसित बाँधता है, या सादिअपर्यवसित बाँधता है, अथवा अनादि-सपर्यवसित बाँधता है, या अनादि-अपर्यवसित बाँधता है ? गौतम ! जीव ऐर्यापथिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाँधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बाँधता, अनादि-सपर्यवसित नहीं बाँधता और न अनादि-अपर्यवसित बाँधता है । भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म देश से आत्मा के देश को बाँधता है, देश से सर्व को बाँधता है, सर्व से देश को बाँधता है या सर्व से सर्व को बाँधता है ? गौतम ! वह ऐर्यापथिक कर्म देश से देश को नहीं बाँधता, देश से सर्व को नहीं बाँधता, सर्व से देश को नहीं बाँधता, किन्तु सर्व से सर्व को बाँधता है ।

सूत्र - ४१५

भगवन् ! साम्परायिक कर्म नैरयिक बाँधता है, तिर्यंच या यावत् देवी बाँधती है ? गौतम ! नैरयिक भी बाँधता है; तिर्यंच भी बाँधता है, तिर्यंच-स्त्री भी बाँधती है, मनुष्य भी बाँधता है, मानुषी भी बाँधती है, देव भी बाँधता है और

देवी भी बाँधती है । भगवन् ! साम्परायिक कर्म क्या स्त्री बाँधती है, पुरुष बाँधता है, यावत् नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बाँधता है ? गौतम ! स्त्री भी बाँधती है, पुरुष भी बाँधता है, यावत् बहुत नपुंसक भी बाँधते हैं, अथवा ये सब और अवेदी एक जीव भी बाँधता है, अथवा ये सब और बहुत अवेदी जीव भी बाँधते हैं । भगवन् ! यदि वेदरहित एक जीव और वेदरहित बहुत जीव साम्परायिक कर्म बाँधते हैं तो क्या स्त्रीपश्चात्कृत जीव बाँधता है या पुरुषपश्चात्कृत जीव बाँधता है ? गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबंधक के सम्बन्धमें छब्बीस भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना; यावत् (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बाँधते हैं ।

भगवन् ! साम्परायिक कर्म (१) किसी जीव ने बाँधा, बाँधता है और बाँधेगा ? (२) बाँधा, बाँधता है और नहीं बाँधेगा ? (३) बाँधा, नहीं बाँधता है और बाँधेगा ? तथा (४) बाँधा, नहीं बाँधता है और नहीं बाँधेगा ? गौतम ! (१) कई जीवों ने बाँधा, बाँधते हैं और बाँधेंगे; (२) कितने ही जीवों ने बाँधा, बाँधते हैं और नहीं बाँधेंगे; (३) कितने ही जीवों ने बाँधा है, नहीं बाँधते हैं और बाँधेंगे; (४) कितने ही जीवों ने बाँधा है, नहीं बाँधते हैं और नहीं बाँधेंगे ।

भगवन् ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाँधता है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए । गौतम ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाँधता है, अनादि-सपर्यवसित बाँधता है, अनादि-अपर्यवसित बाँधता है; किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बाँधता । भगवन् ! साम्परायिक कर्म देश से आत्मदेश को बाँधता है ? गौतम ! ऐर्यापथिक कर्मबंध के समान साम्परायिक कर्मबंध के सम्बन्ध में भी जान लेना, यावत् सर्व से सर्व को बाँधता है ।

सूत्र - ४१६

भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ? गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई हैं, यथा–ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

भगवन् ! परीषह कितने कहे हैं ? गौतम ! परीषह बाईस कहे हैं, वे इस प्रकार–१. क्षुधा-परीषह, २. पिपासा-परीषह यावत् २२–दर्शन परीषह । भगवन् ! इन बाईस परीषहों का किन कर्मप्रकृतियों में समावेश हो ता है ? गौतम ! चार कर्मप्रकृतियों में इन २२ परीषहों का समवतार होता है, इस ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ? गौतम ! दो परीषहों का यथा–प्रज्ञा-परीषह और ज्ञानपरीषह (अज्ञानपरीषह) । भगवन् ! वेदनीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ? गौतम! ग्यारह परीषहों का ।

सूत्र - ४१७

पहले पाँच (क्षुधा, शीत, उष्ण और दंशमशक), चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और जल्ल परीषह । इन का समवतार वेदनीय कर्म में होता है ।

सूत्र - ४१८

भगवन् ! दर्शनमोहनीयकर्म में कितने परीषहों का समतवार होता है ? गौतम ! एक दर्शनपरीषह का समवतार होता है ।

सूत्र - ४१९

भगवन् ! चारित्रमोहनीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ? गौतम ! सात परीषहों का–अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना, आक्रोश, सत्कार-पुरस्कार ।

सूत्र - ४२०

भगवन् ! अन्तरायकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ? गौतम ! एक अलाभपरीषह का समवतार होता है ।

भगवन् ! सात प्रकार के कर्मों को बाँधने वाले जीव के कितने परीषह हैं ? गौतम ! बाईस । परन्तु वह जीव एक साथ बीस परीषहों का वेदन करता है; क्योंकि जिस समय वह शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्ण-परीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नहीं करता तथा

जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय निषद्यापरीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय निषद्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नहीं करता । भगवन् ! आठ प्रकार के कर्म बाँधने वाले जीव के कितने परीषह हैं ? गौतम ! बाईस । सप्तविधबन्धक के अनुसार अष्टविधबन्धक में भी कहना ।

भगवन् ! छह प्रकार के कर्म बाँधने वाले सराग छद्मस्थ जीव के कितने परीषह कहे गए हैं ? गौतम ! चौदह । किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है । जिस समय शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नहीं करता । जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय शय्यापरीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय शय्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नहीं करता । भगवन् ! एकविधबन्धक वीतराग-छद्मस्थ जीव के कितने परीषह हैं ? गौतम ! षड्विधबन्धक के समान इसके भी चौदह परीषह हैं, किन्तु वह एक साथ बारह परीषहों का वेदन करता है । भगवन् ! एकविधबन्धक सयोगीभवस्थकेवली के कितने परीषह हैं ? गौतम ! ग्यारह । किन्तु वह एक साथ भी नौ परीषहों का वेदन करता है । शेष षड्विधबन्धक के समान ।

भगवन् ! अबन्धक अयोगीभवस्थकेवली के कितने परीषह हैं ? गौतम ! ग्यारह । किन्तु वह एक साथ नौ परीषहों का वेदन करता है । क्योंकि शीत और उष्णपरीषह का तथा चर्या और शय्यापरीषह का वेदन एक साथ नहीं करता है ।

सूत्र - ४२१

भगवन् ! जम्बूद्वीप में क्या दो सूर्य, उदय और अस्त के मुहूर्त्त में दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, मध्याह्न के मुहूर्त्तमें निकट में होते हुए दूर दिखाई देते हैं? हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीपमें दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि । भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, उदय के समय में, मध्याह्न के समय में और अस्त होने के समय में क्या सभी स्थानों पर ऊंचाई में सम हैं ? हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीप में रहे हुए दो सूर्य...यावत् सर्वत्र ऊंचाई में सम हैं ।

भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप में दो सूर्य उदय के समय, मध्याह्न के समय और अस्त के समय सभी स्थानों पर ऊंचाई में समान हैं तो ऐसा क्यों कहते हैं कि जम्बूद्वीप में दो सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि ? गौतम ! लेश्या के प्रतिघात से सूर्य उदय और अस्त के समय, दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, मध्याह्न में लेश्या के अभिताप से पास होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं और इस कारण हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि दो सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी पास में दिखाई देते हैं, इत्यादि ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र की ओर जाते हैं, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं, अथवा अनागत क्षेत्र की ओर जाते हैं ? गौतम ! वे अतीत और अनागत क्षेत्र की ओर नहीं जाते, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं। भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं या अनागत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ? गौतम ! वे अतीत और अनागत क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अथवा अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ? गौतम ! वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते; यावत् नियमतः छहों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं । भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य क्या अतीत क्षेत्र को उद्योतित करते हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! इस विषय में पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए; यावत् नियमतः छह दिशाओं को उद्योतित करते हैं । इसी प्रकार तपाते हैं; यावत् छह दिशा को नियमतः प्रकाशित करते हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्यों की क्रिया क्या अतीत क्षेत्र में की जाती है ? वर्तमान क्षेत्र में ही की जाती है अथवा अनागत क्षेत्र में की जाती है ? गौतम ! अतीत और अनागत क्षेत्र में क्रिया नहीं की जाती, वर्तमान क्षेत्र में क्रिया की जाती है । भगवन् ! वे सूर्य स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट ? गौतम ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट क्रिया नहीं करते; यावत् नियमतः छहों दिशाओं में स्पृष्ट क्रिया करते हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने ऊंचे क्षेत्र को तपाते हैं, कितने नीचे क्षेत्र को तपाते हैं और कितने तीरछे क्षेत्र को तपाते हैं ? गौतम ! वे सौ योजन ऊंचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, अठारह सौ योजन नीचे के क्षेत्र को तप्त करते हैं, और सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ योजन तथा एक योजन के साठ भागों में से इक्कीस भाग तीरछे क्षेत्र को तप्त करते हैं भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप देव हैं, वे क्या ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ? गौतम ! जीवाभिगमसूत्र अनुसार कहना । इन्द्रस्थान कितने काल तक उपपात-विरहित कहा गया है ? तक कहना चाहिए । गौतम ! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-८ – उद्देशक-९

सूत्र - ४२२

भगवन् ! बंध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! बंध दो प्रकर का कहा गया है, प्रयोगबंध और विस्त्रसाबंध ।

सूत्र - ४२३

भगवन् ! विस्त्रसाबंध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा-सादिक विस्त्रसाबंध और अनादिक विस्त्राबंध ।

भगवन् ! अनादिक-विस्त्रसाबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! तीन प्रकारकाधर्मास्तिकायका अन्योन्य-अनादिक-विस्त्रसाबंध, अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्त्रसाबंध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्त्रसाबंध । भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्त्रसाबंध क्या देशबंध है या सर्वबंध है ? गौतम ! वह देशबंध है, सर्वबंध नहीं । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय के अन्योन्य-अनादिक विस्त्रसाबंद के विषय में समझना । भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक विस्त्रसाबंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वकाल रहता है । अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक -विस्त्रसाबंध भी सर्वकाल रहता है ।

भगवन् ! सादिक-विस्त्रसाबंध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है । जैसे-बन्धनप्रत्यनीक, भाजनप्रत्ययिक और परिणामप्रत्ययिक ।

भगवन् ! बंधन-प्रत्ययिक-सादि-विस्त्रसाबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! परमाणु, द्विप्रदेशक, त्रिप्रदेशिक, यावत् दशप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक पुद्गल-स्कन्धों का विमात्रा में स्निग्धता से, विमात्रा में रुक्षता से तथा विमात्रा में स्निग्धता-रूक्षता से बंधन-प्रत्ययिक बंध समुत्पन्न होता है । वह जघनज्यतः एक समय और उत्कृष्टः असंख्येय काल तक रहता है । भगवन् ! भाजनप्रत्ययिक-सादि-विस्त्रसाबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! पुरानी सुरा, पुराने गुड़, और पुराने चावलों का भाजन-प्रत्ययिक-आदि-विस्त्रसाबंध समुत्पन्न होता है । यह जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टः संख्यात काल तक रहता है । भगवन् ! परिणामप्रत्ययिक-सादि-विस्त्रसाबंध किसे कहते है ? गौतम (तृतीय शतक) में जो बादलों का, अभ्रवृक्षों का यावत् अमोघों आदि के नाम कहे गए हैं, उन सबका परिणामप्रत्ययिकबंध समुत्पन्न होता है । वह बन्ध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः छह मास तक रहता है ।

सूत्र - ४२४

भगवन् ! प्रयोगबंध किस प्रकार का है ? गौतम ! प्रयोगबंध तीन प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार-अनादिअपर्यवसित, सादि-अपर्यवसित अथाव सादि सपर्यवसित । इनमें से जो अनादि-अपर्यवसित है, जह जीव के आठ मध्यप्रदेशों का होता है । उन आठ प्रदेशों में भी तीन-तीन प्रदेशों का जो बंध होता है, वह अनादि-अपर्यवसित बंध है । शेष सभी प्रदेशो का सादि बंध है । इन तीनो में से जो सादि-अपर्यवसित बंध है, वह सिद्धों का होता है तथा इनमें से जो सादि-सपर्यवसित बंध है, वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा आलापनबंध, आल्लिकापन बंध, शरीरबंध और शरीरप्रयोगबंध ।

भगवन् ! आलापनबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! तृण के भार, काष्ठ के भार, पत्तो के भार, पलाल के भार और

बेल के भार, इन भारों को बेंत की लता, छाल, वस्त्रा, रज्जु, बेल, कुश और डाभ आदि से बांधने से आलापनबंध समुत्पन्न होता है । यह बंध जघन्यतः अन्तमुहूर्त तक और उत्कृष्टः संख्येय काल तक रहता है । भगवन् ! (आलीन) बंध किसे कहते है ? गौतम ! आलीनबंध चार प्रकार का है,-श्लेषणाबंध, उच्चयबंध, समुच्चयबंध और संहननबंध । भगवन् ! श्लेषणाबंध किसे कहते हैं ? गौतम !- जो भित्तियों का, आंगन के फर्श का, स्तम्भों का, प्रसादों का, काष्ठों का, चर्मों का, घड़ों का, वस्त्रों का और चटाइयों का चूना, कीचड़ श्लेष लाख, मोम आदि श्लेषण द्रव्यों से बंध सम्पन्न होता है, वह श्लेषणाबंध है । यह बंध जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल रहता है ।

भगवन् ! उच्चयबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! तृणरशिक, काष्ठराशि, पत्रराशि, तृषराशि, भूसे का ढेर, गोबर का ढेर अथवा कूड़े-कचरे का ढेर, इन का ऊँचे ढेर रूप से जो बंध सम्पन्न होता है, उसे उच्चयबंध कहते हैं । यह बंध जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः संख्यातकाल तक रहता है । भगवन् ! समुच्चयबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! कुआ, तालाब, नदी, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, बड़े सरोवरों की पंक्ति, बिलों की पंक्ति, देवकुल, सभा, प्रपा स्तूप, खाई, परिखा, प्राकार अट्टालक, चरक, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रसाद, घर, शरणस्थान, लयन, आपण, श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वरमार्ग, चतुर्मुख मार्ग और राजमार्ग आदि का चूना, मिट्टी, कीचड़ एवं श्लेष के द्वारा समुच्चयरूप से जो बंध होता है, उसे समुच्चयबंध कहते हैं । उसकी स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येयकाल की है ।

भगवन् ! संहननबंध किसे कहते हैं ? गौतम संहननबंध दो प्रकार का है,-देशसंहननबंध और सर्वसंहननबंध । भगवन् ! देशसंहननबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! शकट, रथ, यान, युग्य वाहन, गिल्लि, थिल्लि, शिबिका, स्यन्दमानी, लोढ़ी, लोहे की कड़ाही, कुड़छी, आसन, शयन, स्तम्भ, भाण्ड, पात्र नाना उपकरण आदि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध सम्पन्न होता है, वह देशसंहननबंध है । वह जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः संख्येय काल तक रहता है । भगवन् ! सर्वसंहननबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! दूध और पानी आदि की तरह एकमेक हो जाना सर्वसंहननबंध कहलाता हे ।

भगवन् ! शरीरबंध किस प्रकार का है ? गौतम ! शरीरबंध दो प्रकार का है, पूर्वप्रयोगप्रत्ययिक और प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्यरिक । भगवन् ! पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध किसे कहते हैं ? गौतम ! जहाँ-जहाँ जिन-जिन कारणों ने समुद्घात करते हुए नैरयिक जीवों और संसारस्थ सर्वजीवों के जीवप्रदेशों का जो बंध सम्पन्न होता है, वह पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध है । यह है पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध । भगवन् ! प्रत्युपन्नप्रयोगप्रत्ययिक किसे कहते हैं ? गौतम ! केवलीसमुद्घात द्वारा समुद्घात करते हुए और उस समुद्घात से प्रतिनिवृत्त होते हुए बीच के मार्ग में रहे हुए केवलज्ञानी अनगार के तैजस और कार्मण शरीर का जो बंध सम्पन्न होता है, वह प्रत्युपन्नप्रयोगप्रत्ययिकबंध हैं । (प्र.) (तैजस और कार्मण शरीर के बंध का) क्या कारण है ? (उ.) उस समय प्रदेश एकत्रीकृत होते हैं, जिससे यह बंध होता है ।

भगवन् ! शरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का- औदारिकशरीरप्रयोगबंध, वैक्रिय-शरीरप्रयोगबंघ, आहारकशरीरप्रयोगबंध, तैजसशरीरप्रयोगबंध और कर्मणशरीरप्रयोगबंध । भगवन् ! औदारिक-शरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबंध यावत् पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोग । भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध इत्यादि । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के 'अवगाहना-संस्थान-पद' अनुसार औदारिकशरीर के भेद यहाँ भी अपर्याप्त गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगबंध' तक कहना

भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सवीर्यता, संयोगता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद के कारण, कर्म, योग, भव और आयुष्य आदि हेतुओं की अपेक्षा से औदारिकशरीर-प्रयोगनामकर्म के उदय से होता है, भगवन् ! एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! पूर्ववत् यहाँ भी जानना । इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध यावत् चतुरिन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध कहना । भगवन् ! तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! पूर्ववत् जानाना । भगवन् ! मनुष्य-

पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से तथा प्रमाद के कारण यावत् आयुष्य की अपेक्षा से एवं मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-नामकर्म के उदय से होता है

भगवन् ! ओदारिकशरीर-प्रयोगबंध क्या देशबंध या सर्वबंध है ? गौतम ! वह देशबंध भी है और सर्वबंध भी है । भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध क्या देशबंध है या सर्वबंध है ? गौतम ! दोनो । इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध के विषय में समझना । इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध के विषय में समझना । इसी प्रकार यावत् भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध क्या देशबंध है या सर्वबंध है ? गौतम ! यह देशबंध भी है और सर्वबंध भी है ।

भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबंध काल की अपेक्षा, कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तीन पल्योपम तक रहता है । भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध कालतः कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम २२ हजार वर्ष तक रहता हे । भगवन् ! पृथ्वीकायिक कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लक भवग्रहण तथा उत्कृष्टतः एक समय कम २२ हजार वर्ष तक रहता है । इस प्रकार सभी जीवों का सर्वबंध एक समय तक रहता है । जिनके वैक्रियशरीर नहीं है, उनका देशबंध जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण पर्यन्त और उत्कृष्टतः जिस जीव की जितनी उत्कृष्टतः आयुष्य-स्थिति है, उससे एक समय कम तक रहता है । जिनके वैक्रियशरीर है, उनके देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः जिसकी जितनी (आयुष्य) स्थिति है, उसमें से एक समय कम तक रहता है । इस प्रकार यावत् मनुष्यों का देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तीन पल्योपम तक जानना चाहिए ।

भगवन् ! औदारिकशरीर के बंध का अन्तर कतने काल का होता है ? गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण पर्यन्त और उत्कृष्टतः समयाधिक पूर्वकोटि तथा तेतीस सागरोपम है । देशबंध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः तीन समय अधिक तेतीस सागरोपम है । भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-बंध का अन्तर काल कितने का है ? गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय काम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्टतः एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है । देशबंध का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त का है । भगवन् ! पृथ्वीकायिक कितने काल का है ? गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर एकेन्द्रिय समान कहना चाहिए । देशबंध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः तीन समय का है । जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का शरीरबंधान्तर कहा गया है, उसी प्रकार वायुकायिका जीवों को छोड़ कर चतुरिन्द्रिय तक सभी जीबों का शरीरबंधान्तर कहना, किन्तु विशेषतः उत्कृष्ट सर्वबंधान्तर जिस जीव की जितनी स्थिति हो, उससे एक समय अधिक कहना । वायुकायिका जीवों के सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण और उत्कृष्टतः समयाधिक तीन हजार वर्ष का है । इनके देशबंध का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त का है । भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-औदारिकशरीरबंध का अन्तर कितने काल का है ? गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण है और उत्कृष्टतः समयाधिक पूर्वकोटि का है । देशबंध का अन्तर एकेन्द्रिय जीवों के समान सभ पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों का कहना । इसी प्रकार मनुष्यों के शरीरबंधान्तर के विषय में भी पूर्ववत् 'उत्कृष्टतः अन्तमुहूर्त का है' यहां तक सारा कथन करना ।

भगवन् ! एकेन्द्रियावस्थागत जीव नोएकेन्द्रियावस्था में रह कर पुनः एकेन्द्रियरूप में आए तो एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता हे ? गौतम ! (ऐसे जीव का) सर्वबंधान्तर जघन्यतः तीन समय कम दो क्षुल्लक भवग्रहण काल और उत्कृष्टतः संख्यातवर्ष-अधिक दो हजार सागरोपम का होता है । भगवन् ! पृथ्वीकायिक-अवस्थागत जीव नोपृथ्वीकायिका-अवस्था में उत्पन्न हो, पुनःपृथ्वीकायिकरूप में आए, तो पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रियऔदारिकशरीर-प्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! सूर्यबंधान्तर

जघन्यतः तीन समय कम दो क्षुल्लकभव ग्रहण काल और उत्कृष्टतः अनन्तकाल होता है । कालतः अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है, क्षेत्रतः अनन्त लोक, असंख्येय पुद्गल-परावर्तन हैं । वे पुद्गल-परावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं । देशबंध का अन्तर जघन्यतः समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहणकाल और उत्कृष्टतः अनन्तकाल, यावत् 'आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रमाण पुद्गल-परावर्तन है'; पृथ्वीकायिक जीवों के प्रयोग-बंधान्तर समान वनस्पतिकायिक जीवों को छोड़कर यावत् मनुष्यों के प्रयोगबंधान्तर तक समझना । वनस्पति-कायिक जीवों के सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः काल की अपेक्षा से तीन समय कम दो क्षुल्लकभगवग्रहण काल और उत्कृष्टतः असंख्येयकाल है, अथवा असंख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है, क्षेत्रतः असंख्येय लोक है । इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जघन्यतः समयाधिक क्षुल्लकभवग्राहण का है और उत्कृष्टतः पृथ्वीकायिक स्थितिकाल है ।

भगवन् ! औदारिक शरीर के इन देशबंधक सर्वबंधक और अबंधक जीवों मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े औदारिकशरीर के सर्वबंधक जीव हैं उनसे अबंधक जीव विशेषाधिक हैं और उनसे देशबंधक जीव असंख्यात गुणे हैं ।

सूत्र - ४२५

भगवन् ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! दो प्रकार का है । एकेन्द्रियवैक्रियशरीर-प्रयोगबंध और पंचेन्द्रियवैक्रियशरीर-प्रयोगबंध ।

भगवन् ! यदि एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध है, तो क्या वह वायुकायिक एकेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोगबंध है अथवा अवायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध है ? गौतम ! इस प्रकार के अभिलाप द्वारा अवगाहना-संस्थानपद में वैक्रियशरीर के जिस प्रकार भेद कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी-अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोगबंध' तक रहना चाहिए ।

भगवन् ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है । गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य अथवा लब्धि की अपेक्षा तथा वैक्रियशरीर-प्रयोगनामकर्म के उदय से होता है । भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य और लब्धि की अपेक्षा में तथा वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगनाकर्म के उदय से होता है ।

भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य की अपेक्षा से तथा रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगनाकर्म के उदय से होता है । इसी प्रकार अधःसप्तम नरकपृथ्वी तक रहना चाहिए ।

भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक- (पंचेन्द्रिय) वैक्रियशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सवीर्यता यावत् आयुष्य और लब्धि को लेकर तथा तिर्यञ्चयोनिकपंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से वह होता है। भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रियवैक्रियशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम (पूर्ववत्) जानना

भगवन् ! असुरकुमार-भवनवासीदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता हे ? गौतम! रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकों की तरह समझना । इसी प्रकार स्तनितकुमार तक कहना चाहिए । इसी प्रकार वाणव्यन्तर तथा ज्योतिष्कदेवों के विषय में जाना ।

इसी प्रकार सौधर्मकल्पोपन्नक-वैमानिकदेवों से अच्युतकल्पोपन्नक-वैमानिकदेवों ग्रैवेयककल्पातीत-वैमानिकदेवों तथा अनुत्तरोपपातिककल्पातीत-वैमानिकदेवों के विषय में भी जान लेना चाहिए । भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का देशबंध है, अथवा सर्वबंध है ? गौतम ! वह देशबंध भी है, सर्वबंध भी है । भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध है अथवा सर्वबंध है ? गौतम ! पूर्ववत । भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक- वैक्रियशरीरप्रयोगबंध देशबंध है या सर्वबंध ? गौतम ! पूर्ववत् । इसी प्रकार अनुत्तरौपपातिककल्पातीत-वैमानिक देवों तक समझना ।

भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबंध, कालतः कितने काल तक रहता है ? गौतम ! इसका सर्वबंध जघन्यतः एक

समय और उत्कृष्टतः दो समय तक रहता है और दशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है । भगवन् ! वायुकायिक कितने काल तक रहता है ? गौतम ! इसका सर्वबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः दो समय तक रहता हे तथा देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अन्तमुहूर्त रहता है । भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक कितने काल तक रहता है ? गौतम ! इसका सर्वबंध एक समय तक और देशबंध जघन्यतः तीन समय कम दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्टतः एक समय कम एक सागरोपम तक रहता है । इसी प्रकार अधःसप्तमनरकपृथ्वी तक जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि जिसकी जितनी जघन्य स्थिति हो, उसमें तीन समय कम जघन्य देशबंध तथा जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो, उसमें एक समय कम उत्कृष्ट देशबंध जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य का कथन वायुकायिक के समान जानना चाहिए । असुरकुमार, नागकुमार से अनुत्तरौपपातिकदेवों तक का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए । परन्तु इतना विशेष है कि जिसकी स्थिति हो, उतनी कहनी चाहिए तथा अनुत्तरौपपातिकदेवों का सर्वबंध एक समय और देशबंध जघन्य तीन समय कम इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक होता है ।

भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्त कालतः कितने काल का होता है ? गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अनन्तकाल है-यावत्-आवलिका के असंख्यायतवें भाग के समयों के बराबर पुद्गलपरावर्तन रहता है । इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए । भगवन् ! वायुकायिक-वैक्रियशरीर प्रयोगबंध संवधि पृच्छा । गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है । इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना । भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध पृच्छा, गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट पूवृकोटि-पृथकत्व का होता है । इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए । इसी प्रकार मनुष्य के विषयमें भी (पूर्ववत्) जान ना।

भगवन् ! वायुकायिक-अवस्थागत जीव वायुकायिक के सिवाय अन्य काय में उत्पन्न हो कर पुनः वायुकायिक जीवों में उत्पन्न हो तो उसके वायुकायिक-एकेन्द्रिय- वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! उसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्तकाल-वनस्पतिकाल तक होता है । इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जानना । भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकरूप में रहा हुआ जीव, रत्नप्रभापृथवी के सिवाय अन्य स्थानों में उत्पन्न हो और पुनः रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिकरूप से उत्पन्न हो तो उस का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट अनन्तकाल-का होता हे । देशबंध का अन्तर जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्तकाल-का होता है । इसी प्रकार अधःसप्तम नरकपृथ्वी तक जानना । विशेष इतना है कि सर्वबंध का जघन्य अन्तर जिस नैरयिक की जीतनी जघन्य स्थिति हो, उससे अन्तमुहूर्त अधिक जानना । शेष पूर्ववत् । पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों और मनुष्यों के सर्वबंध का अन्तर वायुकायिक के समान जानना ।

असुरकुमार, नागकुमार स सहस्त्रार देवों तक के वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिकों के समान जानना । विशेष इतना हे क जिसकी जो जघन्य स्थिति हो, उसके सर्वबंध का अन्तर, उससे अन्तमुहूर्त अधिक जानना । शेष पूर्ववत्

भगवन् ! आनतदेवलोक के देव संबंधि पृच्छा गौतम ! उसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथकत्त्वअधिक अठारह सागरोपम का और उत्कृष्ट अनन्तकाल का, देशबंध के अन्तर का काल जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्टत अनंतकाल का होता है । इसी प्रकार अच्युत देवलोक तक के वैक्रिय शरीरप्रयोगबंध का अन्तर जानना । विशेष इतना ही है कि जिसकी जितनी जघन्य स्थिति हो, सर्वबंधान्तर में उससे वर्षपृथक्त्व-अधिक समजना । शेष पूर्ववत् । भगवन् ! ग्रैवेयककल्पातीत- वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कतने काल का होता है ? गौतम ! जघन्यतः वर्षपृथक्त्व-अधिक २२ सागरोपम और उत्कृष्टतः अनन्तकाल- । देशबंध का अन्तर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्टतः वनस्पतिकाल । अनुत्तरौपपातिकदेव संबंधि प्रश्न । गौतम ! उसके सर्वबंध का अंतर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व-

अधिक इकतीस सागरोपम का और उत्कृष्टतः संख्यात सागरोपम का होता है । देशबंध का अंतर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व का और उत्कृष्टतः संख्यात सागरोपम का होता है ।

भगवन् ! वैक्रियशरीर के इन देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं? गौतम ! सबसे थोड़े वैक्रियशरीर के सर्वबंधक जीव हैं, उनसे देशबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्तगुणे हैं ।

भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! एक प्रकार का है । भगवन् ! आहारकशरीर-प्रयोगबंध एक प्रकार का है, तो वह मनुष्यों के होता है अथवा अमनुष्यों के ? गौतम ! मनुष्यों के होता है, अमनुष्यों के नहीं होता । इस प्रकार 'अवगाहना-संस्थान-पद' में कहे अनुसार यावत्-ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यगदृष्टि-पर्याप्त-संख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है, परन्तु अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यातवर्षायुष्क के नहीं होता है ।

भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् (आहारक-) लब्धि के निमित्त से आहारकशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है । भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध होता है, अथवा सर्वबंध ? गौतम ! वह देशबंध भी होता है, सर्वबंध भी । भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध, कालतः कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध एक समय तक, देशबंध जघन्यतः अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टतः भी अन्तमुहूर्त तक । भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है? गौतम ! जघन्यतः अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टतः अनन्तकाल; कालतः अनन्त-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल होता है, क्षेत्रतः अनन्तलोक देशोन अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन होता है । इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जानना ।

भगवन् ! आहारकशरीर के इन देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे कम यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े आहारकशरीर के सर्वबंधक जीव हैं, उनसे देशबंधक संख्यातगेणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्तगुणे हैं ।

सूत्र - ४२६

भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का -एकेन्द्रिय-तैजस-शरीरप्रयोगबंध, यावत् पंचेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध । भगवन् ! एकेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है? गौतम इस प्रका जैसे-अवगाहनासंस्थापनपद में भेद कहे हैं, वैसे यहाँ भी पर्याप्त-सर्वार्थस्दिधअनुत्तरौपप-पातिककल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रियतैजसशरीरप्रयोगबंध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्धअनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रियतैजसशरीरप्रयोगबंध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्धअनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव- पंचेन्द्रियतैजसशरीरप्रयोगबंध तक कहना । भगवन् ! तेजसशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सदद्रव्यता, यावत् आयुष्य के निमित्त से तथा तैजसशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से । भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध होता है, अथवा सर्वबंध ? गौतम ! देशबंध होता है, सर्वबंध नहीं ।

भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध कालतः कितने काल तक रहता है ? गौतम ! यह दो प्रकार का है अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित । भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कालतः कितने काल का होता है ? गौतम न तो अनादि-अपर्यवसित का अन्तर है और न ही अनादि-सपर्यवसित का अन्तर है ।

भगवन् ! तैजसशरीर के इन देशबंधक और अबंधक जीवों मे कौन, किससे यावत् अथवा विशेषाधिक हैं ? गौतम ! तैजसशरीर के अबंधक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे देशबंधक जीव अनन्तगुणे हैं ।

सूत्र - ४२७

भगवन् ! कार्मणशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का है ? गौतम ! आठ प्रकार का । ज्ञानवरणीयकार्मण-शरीरप्रयोगबंध, यावत् अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध । भगवन् ! ज्ञानवरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता करने से, ज्ञान का निह्नव करने से, ज्ञान मे अन्तराय देने से, ज्ञान से

प्रद्वेष करने से, ज्ञान की अत्यन्त अशातना करने से, ज्ञान के अविसंवादन-योग से तथा ज्ञानवरणीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से । भगवन् ! दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! दर्शनप्रत्यनीकता से, इत्यादि ज्ञानवरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध, के समान दर्शनावरणीय कार्मणशरीरप्रयोगबंध के भी कारण जानना; अन्तर इतना ही हे कि यहाँ 'दर्शन' शब्द तथा यावत् 'दर्शनविसंवादन योग से तथा दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से कहना । भगवन् ! सातावेदनीयर्म-शरीरप्रयोगबंध किस कर्म से उदय से होता है ? गौतम ! प्राणियों पर अनुकम्पा करने से, भूतों पर अनुकम्पा करने से इत्यादि, सातवें शतक में कहे अनुसार यहां भी प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को परिताप उत्पन्न न करने से तथा सातावेदनीय कर्मशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तक कहना । भगवन् ! असातावेदनीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! दूसरे जीवों को दुःख पहुंचाने से इत्यादि, सातवें शतक के अनुसार यहाँ भी, उन्हें परिताप उत्पन्न करने से तथा असातावेदनीय-कर्मशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तक कहना । भगवन् ! मोहनीयकर्मशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, तीव्र लोभ से, तीव्र दर्शनमोहनीय से और तीव्र चारित्रमोहनीय से तथा मोहनीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से होता है ।

भगवन् ! नैरयिकायुष्कार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! महारम्भ करने से, महापरिग्रह से, पञ्चेन्द्रिय जीवों का वध करने से और मांसाहार करने से तथा नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से होता है । भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिकआयुष्यकार्मण-शरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता हे ? गौतम ! माया करने से, निकृति करने से, मिथ्या बोलने से, खोटा तौल और खोटा माप करने से तथा तिर्यञ्चयोनिकआयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से होता है । भगवन् ! मनुष्यायुष्यकार्मण-शरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की विनीतता से, दयालुता से, अमत्सरभाव से तथा मनुष्यायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से । भगवन् ! देवायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! सरागसंयम से, संयमासंयम से, बाल तपस्या से तथा अकामनिर्जरा से एवं देवायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगनाकर्म के उदय से होता है ।

भगवन् ! शुभनामकर्णाणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! काया की, भावों की, भाषा की ऋजुता से तथा अविसंवादनयोग से एवं शुभनामकार्मणशरीरप्रयोगनाकर्म के उदय से । भगवन् ! अशुभनामकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! काया की भावों की, भाषा की वक्रता से तथा विसंवादनयोग से एवं अशुभनामकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से । भगवन् ! उच्चगोत्रकार्मणशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गोतम ! जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, शृतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद न करने से तथा उच्चगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से । भगवन् ! नीचगोत्रकार्मणशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! जातिमद, यावत् ऐश्वर्यमद करने से तथा नीचगोत्र-कार्मणशरीरप्रयोगनाकर्म के उदय से होता है ।

भगवन् ! अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! दानान्तराय से, लाभान्तराय से, भोगान्तराय से, उपभोगान्तराय से और वीर्यान्तराय से तथा अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदय से । भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध है अथवा सर्वबंध है ? गौतम ! वह देशबंध है, सर्वबंध नहीं है । इसी प्रकार अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध तक जानना । भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीर-प्रयोबंध कालतः कितने काल तक रहता है ? गौतम ! यह दो प्रकार का है, के अनादि-सपर्यवसित और अनादि-अपर्यवसित । तैजसशरीर प्रयोगबंध समान यहाँ भी कहना । इसी प्रकार अन्तरायकर्म तक रहना ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध का नअन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित का अन्तर नहीं होता । जिस प्रकार तैजसशरीरप्रयोगबंध के अन्तर के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। इसी प्रकार अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध के अन्तर तक समझना।

भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीर के इन देशबंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ? गौतम ! तैजसशरीरप्रयोगबंध के समान कहना । इसी प्रकार आयुष्य को छोड़ कर अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध तक के देशबंधको और अबंधको के अल्पबहुत को कहना । भगवन् ! आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबंध के देशबंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! आयुष्यकर्म के देशबंधक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे अबंधक जीव संख्यातगुणे हैं ।

सूत्र - ४२८

भगवन् ! जिस जीव के औदारिकशरीर का सर्वबंध है, वह जीव वैक्रियशरीर का बंधक है, या अबंधक ? गौतम ! यह बंधक नहीं, अबंधक है । भगवन् ! आहारकशरीर का बंधक है, या अबंधक ? गौतम ! वह बंधक नहीं, अबंधक है । भगवन् तैजसशरीर का बंधक है, या अबंधक ? गौतम ! वह बंधक है, अबंधक नहीं है ।

भगवन् ! यदि वह तैजसशरीर का बंधक है, तो क्या वह देशबंधक है या सर्वबंधक है ? गौतम ! वह देशबंधक है, सर्वबंधक नहीं हे ।

भगवन् ! औदारिकशरीर का सर्वबंधक जीव कार्मणशरीर का बंधक है या अबंधक ? गौतम ! जैसे तैजसशरीर के समान यहाँ भी देशबंधक है, सर्वबंधक नहीं है ।

भगवन् ! जिस जीव के औदारिकशरीर का देशबंध है, भगवन् ! वह वैक्रियशरीर का बंधक है या अंबधक ? गौतम ! बंधक नहीं, अबंधक है । सर्वबंध के समान देशबंध के विषय में भी कार्मणशरीर तक कहना । भगवन् ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का सर्वबंध है, क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक ? गौतम ! वह बंधक नहीं, अबंधक है । इसी प्रकार आहारकशरीर में कहना । तैजस और कार्मणशरीर के विषय में औदारिकशरीर के समान वह देशबंधक है, सर्वबंधक नहीं तक कहना ।

भगवन् ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का देशबंध है, क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है, अथवा अबंधक है ? गौतम ! वह बंधक नहीं, अबंधक है । जैसा वैक्रियशरीर के सर्वबंध के विषय में कहा, वैसा ही यहाँ भी देशबंध के विषय में कार्मणशरीर तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! जिस जीव के आहारकशरीर का सर्वबंध है, तो भंते ! क्या वह जीव औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ? गौतम ! वह बंधक नहीं है, अबंधक है । इसी प्रकार वैक्रियशरीर के विषय में कहना चाहिए । तैजस और कार्मणशरीर के विषय में जैसे औदारिकशरीर के साथ कहा, वैसे यहाँ भी कहना चाहिए । भगवन् ! जिस जीव के आहारकशरीर का देशबंध है, तो भंते ! क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ? गौतम ! आहारकशरीर के सर्वबंध की तरह देशबंध के विषय में भी कार्मणशरीर तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! जिस जीव के तैजसशरीर का देशबंध है, तो भंते ! क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ? गौतम ! वह बंधक भी है, अबंधक भी है । भगवन् ! यदि वह औदारिक शरीर का बंधक है, तो क्या वह देशबंधक है अथवा सर्वबंधक है ? गौतम ! वह देशबंधक भी है, सर्वबंधक भी है । भगवन् ! वैक्रियशरीर का बंधक है, अथवा अबंधक है ? गौतम ! पूर्ववत् जानना । इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय में भी जानना ।

भगवन् ! (तैजसशरीर का बंधक जीव) कार्मणशरीर का बंधक है, या अबंधक है ? गौतम ! वह बंधक है, अबंधक नहीं है । भगवन् ! यदि वह कार्मणशरीर का बंधक है तो देशबंधक है, या सर्वबंधक है ? गौतम ! वह देशबंधक है, सर्वबंधक नहीं है ।

भगवन् ! जिस जीव के कार्मणशरीर का देशबंधक है, भंते ! क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ? गौतम ! जिस प्रकार तैजसशरीर की वक्तव्यता है, उसी प्रकार कार्मणशरीर की भी देशबंधक है, सर्वबंधक नहीं है, तक कहना चाहिए ।

सूत्र - ४२९

भगवन् ! इन औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मणशरीर के देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक

जीवों मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े आहारकशरीर के सर्वबंधक जीव हैं, उनसे आहारकशरीर के देशबंधक जीव संख्यातगुणे हैं, उनसे वैक्रियशरीर के सर्वबंधक असंख्यातगुणे हैं, उनसे वैक्रियशरीर के देशबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं, उनसे तैजस और कार्मण, इन दोनों शरीरों के अबंधक जीव अनन्तगुणे हैं, ये दोनों परस्पर तुल्य हैं, उनसे औदारिकशरीर के सर्वबंधक जीव अनन्तगुणे हैं, उनसे औदारिकशरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं, उनसे औदारिकशरीर के देशबंधक असंख्यातगुणे हैं, उनसे तैजस और कार्मणशरीर के देशबंधक जीव विशेषाधिक हैं, उनसे वैक्रियशरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं और उनसे आहारकशरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' ।

शतक-८ – उद्देशक-१०

सूत्र - ४३०

राजगृह नगर में यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा- भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं- (१) शील ही श्रेयस्कर हे; (२) श्रुत ही श्रेयस्कर है, (३) (शीलनिरपेक्ष) श्रुत श्रेयस्कर है, अथवा (श्रुतनिरपेक्ष) शील श्रेयस्कर है; अतः है भगवन् ! यह किस प्रकार सम्भव है ? गौतम । अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं, वह मिथ्या है । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं, यावत् प्ररूपणा करता हूं । मैंने चार प्रकार के पुरुष कहे हैं । - एक व्यक्ति शीलसम्पन्न है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं है । एक व्यक्ति श्रुतसम्पन्न है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं है । एक व्यक्ति शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है । एक व्यक्ति न शीलसम्पन्न है और न श्रुतसम्पन्न है ।

इनमें से जो प्रथम प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान् है, परन्तु श्रुतवान् नहीं । वह उपरत है, किन्तु धर्म को विशेषरूप से नहीं जानता । हे गौतम ! उसको मैंने देश-आराधक कहा है । इनमें से जो दूसरा पुरुष है, वह शीलवान् नहीं, परन्तु श्रुतवान है । वह अनुपरत है, परन्तु धर्म को विशेषरूप से जानता है । है गौतम ! उसको मैंने देश-विराधक कहा है । इनमें से जो तृतीय पुरुष है, वह पुरुष शीलवान् भी है और श्रुतवान भी है । वह उपरत है और धर्म का भी विज्ञाता है । हे गौतम ! उसको मैंने सर्व-आराधक कहा है । इनमें से जो चौथा पुरुष है, वह न तो शीलवान् है और न श्रुतवान है । वह अनुपरत है, धर्म का भी विज्ञाता नहीं है । मैंने सर्व-विराधक कहा है ।

सूत्र - ४३१

भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की है ? गौतम ! तीन प्रकार की- ज्ञानधारना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना । भगवन् ! ज्ञानाराधना कितने प्रकार की है ? गौतम ! तीन प्रकार की उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । भगवन् ! दर्शनाराधना कितने प्रकार की है ? गौतम ! तीनप्रकार की । इसी प्रकार चारित्राराधना भी तीनप्रकार की है ।

भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती हे, और जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाधराना होती है ? गौतम ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानराधना होती है, उसके दर्शनाराधना उत्कृष्ट या मध्यम होती है । जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसके उत्कृष्ट, जघन्य या मध्यम ज्ञानाराधना होती है । भगवन् ! जीस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है और जिस जीव के उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ? गौतम ! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और दर्शनाराधना के समान उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और उत्कृष्ट चारित्राराधना के विषय में भी कहना । भगवन् ! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, और जिसके उत्कृष्ट चारित्राधना होती है, उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ? गौतम ! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसके उत्कृष्ट, मध्यम या जघन्य चारित्राराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, उसके नियमतः उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है ।

भगवन् ! ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है ? गौतम ! कोई एक जीव उसी भव में सिद्ध होकर, कोई दो भव ग्रहण करके सिद्ध होकर यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है । कोई जीव कल्पोपपन्न, कोई देवलोकों में अथवा कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होता है ।

भगवन् ! दर्शन की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है ? गौतम ! ज्ञानाराधना की तरह ही समझना चाहिए । भगवन् ! चारित्र की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है । गौतम ! ज्ञानाराधना की तरह ही उत्कृष्ट चारित्राराधना के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि कोई जीव कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होता है ।

भगवन् ! ज्ञान की मध्यम-आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखो का अन्त कर देता है ? गौतम ! कोई जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखो का अन्त कर देता है ? गौतम ! कोई जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखो का अन्त करता है; किन्तु तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता । भगवन् ! दर्शन की मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ? गौतम ! ज्ञान की मध्यम आराधना की तरह यहां कहना चाहिए । पूर्वोक्त प्रकार से चारित्र की मध्यम आराधना के विषय में कहना ।

भगवन् ! ज्ञान को जघन्य आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ? गौतम ! कोई जीव तीसरा भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है ? गौतम ! कोई जीव तीसरा भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है; परन्तु सात-आठ भव से आगे अतिक्रमण नहीं करता । इसी प्रकार जघन्य दर्शनाराधना और जघन्य चारित्राराधना को भी कहना ।

सूत्र - ४३२

भगवन् ! पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का-वर्णपरिणाम, गन्धपरिणाभ, रसपरिणाम, स्पर्शपरिणाम और संस्थानपरिणाम । भगवन् ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का-कृष्ण वर्णपरिणाम यावत् शुक्ल वर्णपरिणाम । इसी प्रकार गन्धपरिणाम दो प्रकार का, रसपरिणाम पांच प्रकार का और स्पर्शपरिणाम आठ प्रकार का जानना । भगवन् ! संस्थानपरिणाम कितने प्रकार का है ? गौतम ! पांच प्रकार का-परिमण्डलसंस्थानपरिणाम्, यावत् आयतसंस्थानपरिणाम ।

सूत्र - ४३३

भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश द्रव्य है, द्रव्यदेश है, बहुत द्रव्य हैं, बहुत द्रव्य-देश हैं ? एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं, बहुत द्रव्य और द्रव्यदेश है, या बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं ? गौतम ! वह कथञ्चित् एक द्रव्य है, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, किन्तु वह बुहत द्रव्य नहीं, न बहुत द्रव्यदेश है, एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश भी नहीं, यावत् बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश भी नहीं । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या एक द्रव्य हैं, अथवा एक द्रव्यप्रदेश हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! कथंचित् द्रव्य हैं, कथञ्चित् द्रव्यदेश हैं, कथंचित् बहुतद्रव्य हैं, कथंचित् बहुत द्रव्यदेश हैं और कथंचित् एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं; परन्तु एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं, बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश नहीं, बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं ।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश के संबंध में प्रश्न हैं ? गौतम ! १. कथञ्चित् एक द्रव्य हैं, २. कथञ्चित् एक द्रव्यदेश हैं; यावत् ७ कथञ्चित् बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं किन्तु बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं यह आठवां भंग नहीं कहें । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश विषयक प्रश्न ? गौतम ! १. कथञ्चित् एक द्रव्य हैं, २. कथञ्चित् एक द्रव्यदेश हैं, यावत् ८. कथञ्चित् बहुत द्रव्य हैं और बहुत द्रव्यदेश हैं । चार प्रदेशों के समान पांच, छह, सात यावत् असंख्यप्रदेशों तक के विषय में कहना । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्तप्रदेश विषयक प्रश्न ? गौतम ! पूर्ववत् 'कथंचित् बहुत द्रव्य हैं, और बहुत द्रव्यदेश हैं; तक आठों ही भंग कहने चाहिए ।

सूत्र - ४३४

भगवन् ! लोकाकाश के कितने प्रदेश हैं ? गौतम ! लोकाकाश के असंख्येय प्रदेश हैं । भगवन् ! एक-एक जीव के कितने-कितने जीवप्रदेश हैं ? गौतम ! लोकाकाश के जितने प्रदेश कहे गए हैं, उतने ही एक-एक जीव के जीवप्रदेश हैं ।

सूत्र - ४३५

भगवन् ! कर्मप्रकृतियां कितनी हैं ? गौतम् ! कर्मप्रकृतियां आठ–ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय । भगवन् ! नैरयिकों के कितनी कर्मप्रकृतियां हैं ? गौतम ! आठ । इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी जीवो के आठ कर्मप्रकृतियों कहनी चाहिए ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग–परिच्छेद हैं ? गौतम ! अनन्त अविभाग–परिच्छेद हैं । भगवन् ! नैरयिको के ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग–परिच्छेद हैं ? गौतम ! अनन्तण अविभाग–परिच्छेद हैं । भगवन् ! इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी जीवों के ज्ञानावरणीयकर्म के भी अनन्त अविभाग–परिच्छेद हैं । जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म के अविभाग–परिच्छेद कहे हैं, उसी प्रकार वैमानिक–पर्यन्त सभी जीवों के अन्तराय कर्म तक आठों कर्मप्रकृतियों के अविभाग–परिच्छेद कहना ।

भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभागपरिच्छेदों से अवेष्टित–परिवेष्टित है ? हे गौतम ! वह कदाचित् आवेष्टित–परिवेष्टित होता है, कदाचित आवेष्टित–परिवेष्टित नहीं होता । यदि आवेष्टित–परिवेष्टित होता है तो वह नियमतः अनन्त अविभाग–परिच्छेदों से होता है । भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग–परिच्छेदों से आवेष्टित–परिवेष्टित होता है ? गौतम ! वह नियमतः अनन्त अविभाग–परिच्छेदों से जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ; परन्तु विशेष इतना है क मनुष्य का कथन (सामान्य) जीव की तरह करना चाहिए।

भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव–प्रदेश दर्शनावरणीयकर्म के कितने अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित–परिवेष्टित है ? गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म के समान यहां भी वैमानिक–पर्यन्त कहना । इसी प्रकार अन्तरायकर्म पर्यन्त कहना । विशेष इतना है कि वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मों के विषय में नैरयिक जीवों के समान मनुष्यों के लिए भी कहना । शेष पूर्ववत् ।

सूत्र - ४३६

भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकर्म है, उसके क्या दर्शनावरणीयकर्म भी है और जिस जीव के दर्शनावरणीयकर्म है, उसके ज्ञानावरणीयकर्म भी है ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म है और जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीयकर्म भी है? गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकर्म है, उसके नियमतः वेदनीयकर्म है; किन्तु जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके ज्ञानवरणीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं होता है । भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीयकर्म है, क्या उसके मोहनीयकर्म हैं और जिसके मोहनीयकर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीयकर्म है ? गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीयकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता; किन्तु जिसके मोहनीयकर्म है, उसके ज्ञानावरणीयकर्म नियमतः होता है । भगवन् ! जिसके ज्ञानवारणीयकर्म है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है और जिसके आयुष्यकर्म है, क्या उसके ज्ञानवरणीयकर्म है ? गौतम ! वेदनीयकर्म समान आयुष्यकर्म के साथ कहना । इसी प्रकार नामकर्म और गोत्रकर्म के साथ भी कहना । दर्शनावरणीय के समान अन्तरायकर्म के साथ भी नियमतः परस्पर सहभाव कहना ।

भगवन् ! जिसके दर्शनावरणीयकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म होता है और जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके दर्शनावरणीयकर्म होता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म के समान दर्शनावरणीयकर्म का भी कथन करना चाहिए । भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके मोहनीयकर्म है और जिस जीव के मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है, किन्तु जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके वेदनीयकर्म नियमतः होता है । भगवन् जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके आयुष्यकर्म है ? गौतम ! ये दोनों कर्म नियमतः परस्पर साथ–साथ होते हैं । आयुष्यकर्म के समान नाम और गोत्रकर्म के साथ भी कहना । भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके अन्तरायकर्म है ? गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भो होता, परन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके वेदनीयकर्म नियमतः होता है ।

भगवन् ! जिस जीव के मोहनीयकर्म होता है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है, और जिसके आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके मोहनीयकर्म होता है ? गौतम ! जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके आयुष्यकर्म अवश्य होता है, किन्तु जिसके आयुष्यकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है । इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय में भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! जिस जीव के आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके नामकर्म होता है और जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है ? गौतम ! ये दोनों कर्म नियमतः साथ-साथ होते हैं । गोत्रकर्म के साथ भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

भगवन् ! जिस जीव के आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है ? जिसके अन्तरायकर्म है, उसके आयुष्यकर्म होता है ? गौतम ! जिसके आयुष्यकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं होता, किन्तु जिस जीव के अन्तरायकर्म होता है, उसके आयुष्यकर्म अवश्य होता है ।

भगवन् ! जिस जीव के नामकर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है और जिसके गोत्रकर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ? गौतम ! ये दोनों कर्म नियमतः साथ-साथ हैं । भगवन् ! जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है ? गौतम ! जिस जीव के नामकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म होता भी है और नहीं भी होता, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके नामकर्म नियमतः होता है ।

भगवन् ! जिसके गोत्रकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है ? जीव के अन्तराय कर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है ? गौतम ! जिसके गोत्रकर्म है, सके अन्तरायकर्म होता भी है और नहीं भी होता, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म है, उसके गोत्रकर्म अवश्य होता है ।

सूत्र - ४३७

भगवन् ! जीव पुद्गली है अथवा पुद्गल है । गौतम ! जीव पुदगली भी है और पुद्गल भी । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ? गौतम ! जैसे किसी पुरुष के पास छत्र हो तो उसे छत्री, दण्ड हो तो दण्डी, घट होने से घटी, पट होने से पटी और कर होने से करी कहा जाता है, इसी तरह हे गौतम ! जीव श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा 'पुद्गली' है तथा जीव की अपेक्षा 'पुद्गल' कहलाता है । इस कारण कहता हूं कि जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है ।

भगवन् ! नैरयिक जीव पुद्गली है, अथा पुद्गल है ? गौतम ! उपर्युक्त सूत्रानुसार यहाँ भी कथन करना चाहिए । इसी प्रकार वैमानिक तक कहना चाहिए, किन्तु जिस जीव के जितनी इन्द्रियां हों, उसके उतनी इन्द्रियां करनी चाहिए

भगवन् ! सिद्धजीव पुद्गली हैं या पुद्गल हैं ? गौतम ! सिद्धजीव पुद्गली नहीं, पुद्गल हैं । भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्धजीव पुद्गल हैं; (इन्द्रियां न होने से पुद्गली नहीं) 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-८ का मुनिदीपरत्नसागरकृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक-९

सूत्र - ४३८

१. जम्बूद्वीप, २. ज्योतिष, ३. से ३० तक (अट्ठाईस) अन्तर्द्वीप, ३१. अश्रुत्वा ३२. गांगेय, ३३. कुण्डग्राम, ३४. पुरुष । नौवें शतक में चौंतीस उद्देशक हैं ।

शतक-९ – उद्देशक-१

सूत्र - ४३९

उस काल और उस समय में मिथिला नगरी थी । वहाँ माणिभद्र चैत्य था । महावीर स्वामी का समवसरण हुआ । परिषद् निकली । (भगवान् ने)-धर्मोपदेश दिया, यावत् भगवान् गौतम ने पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा-भगवन् ! जम्बूद्वीप कहाँ है ? (उसका) संस्थान किस प्रकार है ? गौतम ! इस विषय में जम्बूद्वीपप्रज्ञाप्ति में कहे अनुसार-जम्बूद्वीप में पूर्व-पश्चिम समुद्र गामी कुल मिलाकर चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है तक कहना । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-९ – उद्देशक-२

सूत्र - ४४०

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने पूछा-भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने चन्द्रों ने प्रकाश किया, करते हैं, और करेंगे ? जीवाभिगमसूत्रानुसार कहेना ।

सूत्र – ४४१, ४४२

'एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारों के समूह । शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे' तक जानना चाहिए ।

सूत्र - ४४३

भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रकाश किया, करते हैं और करेंगे ? गौतम ! जीवाभिगमसूत्रानुसार तारों के वर्णन तक जानना ।

घातकीखण्ड, कालोदधि, पुष्करवरद्वीप, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और मनुष्यक्षेत्र; इन सब में जीवाभिगमसूत्र के अनुसार-''एक चन्द्र का परिवार कोटाकोटी तारागण (सहित) होता है'' तक जानना चाहिए ।

भगवन् ! पुष्करार्द्ध समुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ? समस्त द्वीपों और समुद्रों में ज्योतिष्क देवों का जो वर्णन किया गया है, उसी प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे तक कहना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है; भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-९ – उद्देशक-३ से ३०

सूत्र - ४४४

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा-भगवन् ! दक्षिण दिशा का 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुकद्वीप' नामक द्वीप कहाँ बताया गया है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में 'एकोरुक' नामक द्वीप है ।) जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति के अनुसार इसी क्रम के शुद्धदन्तद्वीप तक (जान लेना ।) हे आयुष्यमन् श्रमण ! इन द्वीपों के मनुष्य देवगतिगामी कहे गए हैं । इस प्रकार अपनी-अपनी लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार इन अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो का वर्णन कहना । विशेष यह है कि यहाँ एक-एक द्वीप के नाम से एक-एक उद्देशक कहना । इस प्रकार इन अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो के अट्ठाईस उद्देशक होते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-९ – उद्देशक-३१

सूत्र - ४४५

राजगृह नगर में यावत् (गौतमस्वामी ने) इस प्रकार पूछा-भगवन् ! केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवलिपाक्षिक, केवलि-पाक्षिक के श्रावक, केवलि-पाक्षिक की

श्राविका, केवलि-पाक्षिक के उपासक, केवलि-पाक्षिक की उपासिका, (इनमें से किसी) से बिना सुने ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ होता हे ? गौतम ! किसी जीव को केलिप्ररूपत धर्म श्रवण का लाभ होता हे और किसी जीव को नहीं भी होता । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है ? गौतम ! जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, उसको केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका में से किसी से सुने बिना ही केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ होता है और जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया हुआ है, उसे केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ नहीं होता । हे गौतम ! इसी कारण ऐसा कहा गया कि यावत् किसी को धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी को नहीं होता ।

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्धबोधि प्राप्त कर लेता है ? गौतम ! कई जीव शुद्धबोधि प्राप्त कर लेते हैं और कई जीव प्राप्त नहीं कर पाते हैं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है ? हे गौतम ! जिस जीव ने दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपसम किया है, वह जीव केवली यावत् केवलि-पाक्षिक उपासिका से सुने विना ही शुद्धबोधि प्राप्त कर लेता है, किन्तु जिस जीव ने दर्शनावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया है, उस जीव को केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना शुद्धबोधि का लाभ नहीं होता । इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा है ।

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव केवल मुण्डित होकर अगारवास त्याग कर अनगारधर्म में प्रव्रजित हो सकता है ? गौतम ! कोई जीव मुण्डित होकर अगारवास छोड़कर शुद्ध या सम्पूर्ण अनगारिता में प्रव्रजित हो पाता है और कोई प्रव्रजित नहीं हो पाता है । भगवन् ! किस कारण से यावत् कोई जीव प्रव्रजित नहीं हो पाता ? गौतम ! जिस जीव के धर्मान्तरायिक कर्मों का क्षयोपशम किया हुआ है, वह जीव केवली आदि से सुने बिना ही मुण्डित होकर अगारवास से अनागारधर्म में प्रव्राजित हो जाता है, किन्तु जिस जीव के धर्मान्तरायिक कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह मुण्डित होकर अगारवास से अनगारधर्म में प्रव्रजित नहीं हो पाता । इसी कारण से हे गौतम ! यह कहा है ।

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिकासे सुने विना ही क्या कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण कर पाता है ? गौतम ! कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण लेता है और कोई नहीं कर पाता । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् कोई जीव धारण नहीं कर पाता ? गौतम ! जिस जीव ने चारित्रावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने बिना ही शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण कर लेता है किन्तु जिस जीव ने चारित्रावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया है, वह जीव यावत् शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण नहीं कर पाता । इस कारण से ऐसा कहा है ।

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोइ जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम-करता है ? हे गौतम ! कोई जीव करता है और कोई जीव नहीं करता है । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् कोई जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम-करता है और कोई जीव नहीं करता है ? गौतम ! जिस जीव ने यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, वह केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका से सुने बिना ही शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना करता है, किन्तु जिसने यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया है, वह केवली आदि से सुने बिना यावत् शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना नहीं करता ।

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्म-श्रवण किये बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध संवर द्वारा संवृत होता है ? गौतम कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत होता है और कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत नहीं होता है । भगवन् ! किस कारण से यावत् नहीं होता ? गौतम ! जिस जीव ने अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने बिना ही, याव्त शुद्ध संवर से संवृत हो जाता है, किन्तु जिसने अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया है, वह जीव केवली आदि से सुने बिना यावत् शुद्ध संवर से संवृत नहीं होता । इसी कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है ।

भगवन् ! केवली आदि से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है ? गौतम कोई जीव प्राप्त करता है और कोई नहीं प्राप्त करता । भगवन् ! किस कारण से यावत् नहीं प्राप्त करता ? गौतम ! जिस जीव ने आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने बिना ही शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है, किन्तु जिसने आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपसम नहीं किया है, वह केवली आदि से सुने विना शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन नहीं कर पाता । भगवन् ! केवली आदि से सुने बिना ही क्या कोई जीव श्रुतज्ञान उपार्जन कर लेता है ? (गौतम !) आभिनिबोधिकज्ञान के समान शुद्ध श्रुतज्ञान में भी कहना । विशेष इतना कि यहाँ श्रुतज्ञानवरणीयकर्मों का क्षयोपशम कहना । इसी प्रकार शुद्ध अवधि ज्ञान उपार्जनके विषयमें कहना । विशेष यह कि यहाँ अवधिज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहना। इसी प्रकार शुद्ध मनःपर्ययज्ञान के उत्पन्न होने के विषय में कहना । विशेष इतना कि मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम का कथन करना । भगवन् ! केवली यावत् केवलिपाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन कर लेता है ? पूर्ववत् यहाँ भी कहना । विशेष इतना कि यहाँ केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय कहना । शेष पूर्ववत् ।

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका के पास से धर्मश्रवण किये बिना ही क्या कोई जीव केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण-लाभ करता है ? शुद्ध बोधि प्राप्त करता है ? मुण्डित होकर अगारवास से शुद्ध अनगारिता को स्वीकार करता है ? शुद्ध ब्रह्मचार्यवास धारण करता है ? शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना करता है ? शुद्ध ब्रह्मचार्यवास धारण करता है ? शुद्ध संयम द्वार संयम-यतना करता है ? शुद्ध संवर से संवृत होता है ? शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न करता है, यावत् शुद्ध मनःपर्यवज्ञान तथा केवलज्ञान उत्पन्न करता हे ? गौतम ! कोई जीव केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ पाता है, कोई जीव नहीं पाता है । कोई जीव शुद्ध बोधिलाभ प्राप्त करता है, कोई नहीं प्राप्त करता है । कोई जीव मुण्डित हो कर अगारवास से शुद्ध अनगारधर्म में प्रव्रजित होता है और कोई प्रव्रजित नहीं होता है । कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण करता है और कोई धारण नहीं करता है । कोई जीव शुद्ध संयम से संयम-यतना करता है और कोई नहीं करता है । कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत होता है और कोई जीव संवृत नहीं होता है । इसी प्रकार कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन करता है ओर कोई उपार्जन नहीं करता है । कोई जीव यावत् मनः पर्यवज्ञान का उपार्जन करता है और कोई नहीं करता है । कोई जीव केवलज्ञान का उपार्जन करता है और कोई नहीं करता है । भगवन् ! इस कथन का क्या कारण है कि कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण-लाभ करता है, यावत् केवलज्ञान का नहीं करता है ? गौतम ! जिस जीव ने-ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया, धर्मान्तरायिककर्मका, चारित्रावरणीयकर्मका, यतनावरणीयकर्मका, अध्यवसानावरणीयकर्मका, आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्मका, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधि-ज्ञानावरणीय और मनःपर्यवज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपसम नहीं किया तथा केवल ज्ञानावरणीयकर्म का क्षय नहीं किया, वे जीव केवली आदि से धर्मश्रवण किये विना धर्म-श्रवणलाभ नहीं पाते, शुद्धबोधिकलाभ का अनुभव नहीं करते, यावत् केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाते । किन्तु जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्मों का, दर्शनावरणीयकर्मों का, धर्मान्तरायिककर्मों का यावत् केवलज्ञानावरणीयकर्मों का क्षय किया है, वह केवली आदि से धर्मश्रवण किये विना ही केवलिप्ररूपति धर्म-श्रवण लाभ प्राप्त करता है, शुद्ध बोधिलाभ का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान को उपार्जित कर लेता है।

सूत्र - ४४६

निरन्तर छठ-छठ का तपःकर्म करते हुए सूर्य के सम्मुख बाहें ऊंची करके आतापनाभूमि में आतापना लेते हुए उस जीव की प्रकृति-भद्रता से, प्रकृति की उपशान्तता से स्वाभाविक रूप से ही क्रोध, मान, माया और लाभ की अत्यन्त मन्दता होने से, अत्यन्त मृदुत्वसम्पन्नता से, कामभोगों में अनासक्ति से, भद्रता और विनीतता से तथा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या एवं तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए 'विभंग' नामक अज्ञान उत्पन्न होता है । फिर वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान द्वारा जघन्य अंगुल के

असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट असंख्यात हजार योजन तक जानता और देखता है, वह जीवों को भी जानता है और अजीवों को भी जानता है । वह पाषण्डस्थ, सारम्भी, सपरिग्रह और संक्लेश पाते हुए जीवों को भी जानता है और विशुद्ध होते हुए जीवों को भी जानता है । (तत्पश्चात्) वह सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, फिर श्रमणधर्म पर रुचि करता है, फिर चारित्र अंगीकार करता है । फिर लिंग स्वीकार करता है । तब उस के मिथ्यात्व के पर्याय क्रमशः क्षीण होते-होते और सम्यग्दर्शन के पर्याय क्रमशः बढ़ते-बढ़ते वह ‘विभंग’ नामक अज्ञान, सम्यक्त्व-युक्त होता है और शीघ्र ही अवधि (ज्ञान) के रूप में परिवर्तित हो जाता है ।

सूत्र - ४४७

भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितनी लेश्याओं में होता है ? गौतम ! वह तीन विशुद्धलेश्याओं में होता है, यथा-तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या । भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितने ज्ञानों में होता है ? गौतम ! वह आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन तीन ज्ञानों में होता है ।

भगवन् ! वह सयोगी होता है, या अयोगी ? गौतम ! वह सयोगी होता है, अयोगी नहीं होता । भगवन् ! यदि वह सयोगी होता है, तो क्या मनोयोगी होता है, वचनयोगी होता है या काययोगी होता है ? गौतम ! तीनो होते है ।

भगवन् ! वह साकारोपयोग-युक्त होता है, अथवा अनाकारपयोग-युक्त होता है ? गौतम ! वह साकारोपयोग-युक्त भी होता हे और अनाकारोपयोग-युक्त भी होता है ।

भगवन् ! वह किस संहनन में होता है ? गौतम ! वह वज्रऋषभनाराचसंहनन वाला होता है । भगवन् ! वह किस संस्थान में होता है ? गौतम ! वह छह संस्थानों मे से किसी भी संस्थान में होता है ।

भगवन् ! वह कितनी ऊंचाई वाला होता है ? गौतम ! वह जघन्य सात हाथ और उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष ऊंचाई वाला होता है । भगवन् ! कितनी आयुष्य वाला होता है ? गौतम ! वह जघन्य साधिक आठ वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि आयुष्यवाला होता है । भगवन् ! वह सवेदी होता है या अवेदी ? गौतम ! वह सवेदी होता है, अवेदी नहीं । भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है, नपुंसकवेदी होता है, या पुरुष-नपुंसक वेदी होता है? गौतम! वह स्त्रीवेदी नहीं होता, पुरुषवेदी होता है, नपुंसकवेदी नहीं होता, किन्तु पुरुष-नपुंसकवेदी होता है ।

भगवन् ! क्या वह सकषायी होता है, या अकषायी ? गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नहीं । भगवन्! यदि वह सकषायी है, तो वह कितने कषायोंवाला है ? गौतम ! वह संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभः, से युक्त होता है । भगवन् ! उसके कितने अध्यवसाय कहे हैं गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय कहे हैं । भगवन् ! उसके वे अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त होते हैं ? गौतम ! वे प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते हैं ।

वह अवधिज्ञानी बढ़ते हुए प्रशस्त अध्यवसायों से अनन्त नैरयिकभव-ग्रहणों से, अनन्त तिर्यञ्चयोनिक भवों से, अनन्त मनुष्यभव-ग्रहणों से और अनन्त देवभवों से अपनी आत्मा को वियुक्त कर लेता है । जो ये नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति नामक चार उत्तर प्रकृतियाँ हैं, उन प्रकृतियों के आधारभूत अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ को क्षय करके अप्रत्याख्यान-क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय करता है, फिर प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय करता है; फिर संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय करता है । फिर पंचविध ज्ञानावरणीयकर्म, नवविध दर्शनावरणीयकर्म, पंचविध अन्तरायकर्म को तथा मोहनीयकर्म को कटे हुए ताड़वृक्ष के समान बना कर, कर्मरज को बिखेरने वाले अपूर्वकरण में प्रविष्ट उस जीव के अनन्त, अनुत्तर, व्याघातरहित, आवरणरहित, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण एवं श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होता है ।

सूत्र - ४४८

भगवन् ! वे असोच्चा केवली केवलिप्ररूपित धर्म कहते हैं, बतलाते हैं अथवा प्ररूपणा करते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । वे एक उदाहरण के अथवा एक प्रश्न के उत्तर के सिवाय अन्य उपदेश नहीं करते । भगवन् ! वे (किसी को) प्रव्रजित या मुण्डित करते हैं ? गौतम ! वह अर्थ समर्थ नहीं । किन्तु उपदेश करते हैं । भगवन् ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं ।

सूत्र - ४४९

भगवन् ! वे असोच्चा कवली ऊर्ध्वलोक में होते है, अधोलोक में होते हैं या तिर्यक्लोक में होते हैं ? गौतम ! वे तीनो लोक में भी होते हैं । यदि ऊर्ध्वलोक में होते हैं तो शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती और माल्यवन्त नामक वृत (वैताढ्य) पर्वतों में होते हैं तथा संहरण की अपेक्षा सौमनसवन में अथवा पाण्डुकवन में होते हैं । यदि अधोलोक में होते हैं तो गर्त्ता में अथवा गुफ़ा में होते है तथा संहरण की अपेक्षा पातालकलशों में अथवा भवनवासी देवों के भवनों में होते हैं । यदि तिर्यग्लोक में होते हैं तो पन्द्रह कर्मभूमि में होते हैं तथा संहरण की अपेक्षा अढाई द्वीप और समुद्रों के एक भाग में होते हैं ।

भगवन् ! वे असोच्चा केवली एक समय में कितने होते हैं ? गौतम ! वे जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट दस होते हैं । इसलिए हे गौतम ! मैं एसा कहता हुँ कि केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्मश्रवण किये बिना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण प्राप्त होता है और किसी को नहीं होता; यावत् कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है और कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न नहीं कर पाता ।

सूत्र - ४५०

भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से श्रवण कर क्या कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्म-बोध प्राप्त करता है ? गौतम ! कोई जीव प्राप्त करता है और कोई जीव प्राप्त नहीं करता । इस विषय में असोच्चा के समान 'सोच्चा' की वक्तव्यता कहना । विशेष यह कि सर्वत्र 'सोच्चा' ऐसा पाठ कहना । शेष पूर्ववत् यावत् जिसने मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है तथा जिसने केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय किया है, वह यावत् धर्मवचन सुनकर केवलिप्ररूपित धर्म-बोध प्राप्त करता है, शुद्ध बोधि का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान प्राप्त करता है ।

निरन्तर तेले-तेले तपःकर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए प्रकृतिभद्रता आदि गुणों से यावत् ईहा, अपोह, मार्गण एवं ग्वेषण करते हुए अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न अवधिज्ञान के प्रभाव से जघन्य अंगुल के असंख्याततवें भाग और उत्कृष्ट अलोक में भी लोकप्रमाण असंख्य खण्डों को जानता और देखता है ।

भगवन् ! वह (अवधिज्ञानी जीव)कितनी लेश्याओं में होता है ? गौतम ! वह छहों लेश्याओं में होता हे यथा-कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या । भंते ! वह कितने ज्ञानों भें होता है गौतम ! तीन या चार ज्ञानों में । यदि तीन ज्ञानों में होता है, तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में होता हे । यद चार ज्ञान में होता है तो आभिनिबीधकज्ञान, यावत् मनःपर्यवज्ञान में होता है । भगवन् ! वह सयोगी होता है अथवा अयोगी ? गौतम जैसे 'असोच्चा' के योग, उपयोग, संहनन, संस्थान, ऊंचाइ और आयुष्य के विषय में कहा, उसी प्रकार यहाँ भी योगादि के विषय में कहना ।

भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सवेदी होता है अथवा अवेदी ? गौतम ! वह सवेदी भी होता है अवेदी भी होता है । भगवन् ! यदि वह अवेदी होता है तो क्या उपशान्तवेदी होता है अथवा क्षीणवेदी होता है ? गौतम ! वह उपशान्तवेदी नहीं होता, क्षीणवेदी होता है । भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है इत्यादि पृच्छा गौतम ! वह स्त्रीवेदी भी होता है, पुरुषवेदी भी होता है अथवा पुरुष-नपुंसकवेदी होता है ।

भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है अथवा अकषायी ? गौतम ! वह सकषायी भी होता है , अकषायी भी होता है । भगवन् ! यदि वह अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है या क्षीणकषायी ? गौतम ! वह उपशान्तकषायी होता हे या क्षीणकषायी ? गौतम ! वह उपशान्तकषायी नहीं होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है । भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है । यदि वह चार कषायों में होता है, तो संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ में होता है । यदि तीन कषायों में होता है तो संज्वलन मान, माया और लोभ में, यदि दो कषायों में होता है तो संज्वलन माया और लोभ में और यदि एक कषाय में होता है तो एक संज्वलन लोभ में होता है ।

भंते ! उस अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय बताए गए हैं ? गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं ।

असोच्चा कवली कि तरह 'सोच्चा कवली' के लिए उसे केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न होता है, तक कहना चाहिए। भंते ! वह 'सोच्चा केवली' केवलि-प्ररूपित धर्म कहते है, बतलाते है या प्ररूपित करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं।

भगवन् ! वे सोच्चा केवली किसी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं। भगवन् ! उन सोच्चा केवली के शिष्य किसी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते हैं ? हाँ गौतम ! उनके शिष्य भी करते हैं। भगवन् ! क्या उन सोच्चा केवली के प्रशिष्य भी किसी को प्रव्रजित और मुण्डित करते हैं ? हाँ गौतम ! वे भी करते हैं।

भगवन् ! वे सोच्चा केवली सिद्ध होते है, बुद्ध होते हैं, यावत् सर्वदु:खों का अन्त करते हैं ? हाँ गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् सर्वदु:खों का अन्त करते हैं। भंते ! क्या उन सोच्चा केवली के शिष्य भी, यावत् सर्वदु:खों का अन्त करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं। भगवन् ! क्या उनके प्रशिष्य भी, यावत् सर्वदु:खों का अन्त करते हैं ? हाँ, करते हैं।

भंते ! वे सोच्चा केवली ऊर्ध्वलोक में होते हैं, इत्यादि प्रश्न। हे गौतम ! असोच्चाकेवली के समान यहाँ भी अढाई द्वीप-समुद्र के एक भाग में होते हैं, तक कहना।

भगवन् ! वे सोच्चा कवली एक सयम में कितने होते हैं ? गौतम ! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं ? इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि केवली-पाक्षिक की उपासिका से यावत् कोई जीव केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त करता है और कोई नहीं करता। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

शतक-९ – उद्देशक-३२

सूत्र - ४५१

उस काल, उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वहाँ द्युतिपलाश नाम का चैत्य था। महावीर स्वामी पधारे, समवसरण लगा। परिषद् निकली। (भगवान ने) धर्मोपदेश दिया। परिषद् वापिस लौट गई। उस काल उस समय में पार्श्वापत्य गांगेय नामक अनगार थे। जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ वे आए और श्रमण भगवान् महावीर के न अतिनिकट और न अतिदूर खड़े रह कर उन्होंने, श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा-

भगवन् ! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर ? हे गांगेय ! सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी। भगवन् ! असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ? सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी है। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ? गांगेय ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों तक जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक की उत्पत्ति के विषय में नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

सूत्र - ४५२

भगवन् ! नैरयिक जीव सान्तर उद्वर्त्तित होते हैं या निरन्तर ? गांगेय ! सान्तर भी उद्वर्त्तित होते हैं और निरन्तर भी। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना।

भगवन् ! पृथ्वीकायिका जीव सान्तर उद्वर्त्तित होते हैं या निरन्तर ? गांगेय ! पृथ्वीकायिका जीवो का उद्वर्तन सान्तर नही होता, निरन्तर होता है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिका जीवो तक जानना। ये सान्तर नहीं, निरन्तर उद्वर्तित होते है। भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों का उद्वर्त्तन सान्तर होता है या निरन्तर ? गांगेय ! द्विन्द्रिय जीवों का उद्वर्त्तन सान्तर भी होता है और निरन्तर भी होता है। इसी प्रकार वाणव्यन्तरो तक जानना।

भगवन ! ज्योतिष्क देवों का च्यवन सान्तर होता है या निरन्तर ? गांगेय ! उनका च्यवन सान्तर भी और निरन्तर भी। इसी प्रकाश के वैमानिकों के जानना।

सूत्र - ४५३

भगवन् ! प्रवेशनक कितने प्रकार का है ? गांगेय ! चार प्रकार का-नैरयिक प्रवेशनक, तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक, मनुष्य-प्रवेशनक और देव-प्रवेशनक।

भगवन् ! नैरयिक-प्रवेशनक कितने प्रकार का है ? गांगेय ! सात प्रकार का-रत्नप्रभा यावत्

अधःसप्तमपत्रथ्वीनैरयिक-प्रवेशनक । भंते ! क्या एक नैरयिक जीव नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ रत्नप्रभापृथ्वी में होता है, अथवा यावत् अधःसप्तपृथ्वी में होता है । गांगेय ! वह नैरयिक रत्नप्रभा, या यावत अधःसप्तमपृथ्वी होता है ।

भगवन् ! नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तपृथ्वी में उत्पन्न होते है ? गांगेय ! वे दोनो रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है, अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होतै है । अथवा एक रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक शर्कराप्रभापृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक बालुकाप्रभापृथ्वी में । अथवा यावत् एक रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक शर्कराप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक बालुकाप्रभा में, अथवा यावत् एक शर्करापृथ्वी में उत्पन्न होता है और एक अधःसप्तपृथ्वी में । अथवा एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में, अथवा इसी प्रकार यावत् एक बालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है । इसी प्रकार एक-एक पृथ्वीछोड़ देना; यावत् एक तमःप्रभा में और एक तमस्तमःप्रभा में उत्पन्न होता है ।

भगवन् ! तीन नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते है ? अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है ? गांगेय ! वे तीन नैरयिक (एक साथ) रत्नप्रभा में उत्पन्न होते है, अथवा यावत् अधःसप्तम में उत्पन्न होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा मे; अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में । अथवा दो नैरयिक रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में । अथवा यावत् दो जीव रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक शर्कराप्रभा में और दो बालुकाप्रभा में, अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा दो शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में, अथवा यावत् दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में शर्कराप्रभा की वक्तव्यता समान सातों नरकों की वक्तव्यता, यावत् दो तमःप्रभा में और एक तमस्तमःप्रभा में होता है, तक जानना ।

अथवा (१) एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में, अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है । अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा (६) एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है । अथवा एकरत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है । इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है; यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है; अथवा एक रत्नप्रभा में एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वीमें होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है; अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है; यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होता है; यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अध-सप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है; अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक

अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तम:प्रभा में होता है । (३३) अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक धूमप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! नैरयिकप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए चार नैरयिक जीव क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न । 'गांगेय ! वे चार नैरयिक जीव रत्नप्रभा में होता है, अथवा यावत् अध:सप्तमपृथ्वी में होते हैं ।

(द्विकसंयोगी तिरसेठ भंग)-अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में होते है; अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन बालुकाप्रभा में होते है; इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन अध:सप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा दो रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में होते है; इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और दो अध:सप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा तीन रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है; इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में और तीन बालुकाप्रभा में होते है । जिस प्रकार रत्नप्रभा का आगे की नरकपृथ्वीयो के साथ संचार किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा का भी उसके आगे की नरको के साथ संचार करना चाहिए । इसी प्रकार आगे की एक-एक नरकपृथ्वीयों के साथ योग करना चाहिए ।

(त्रिकसंयोगी १०५ भंग) - अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो बालुकाप्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते है । इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में और दो अध:सप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में दो शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में, इसी प्रकार यावत् अथवा रत्नप्रभा में दो शर्कराप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में । अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में । इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में । इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में । इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और दो अध:सप्तमपृथ्वी में । इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा जैसे तीन नैरयिको के त्रिकसंयोगी भंग कहे, उसी प्रकार चार नैरयिको के भी त्रिकसंयोगी भंग जानना, यावत् दो धूमप्रभामें, एक तम:प्रभामें और एक तमस्तम:प्रभामें होता है

(चतु:संयोगी ३५ भंग-) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्करप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है, अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक तम:प्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक अध:सप्तम पृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तम:प्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अध:सप्तम पृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में एक धूमप्रभा में और तम:प्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में एक पंकप्रभा में और एक तम:प्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तम:प्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तम:प्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तम:प्रभा में और एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा

एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में एक बालुकाप्रभा में एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है । जिस प्रकार रत्नप्रभा का उससे आगे की पृथ्वीयों के साथ संचार किया उसी प्रकार शर्कराप्रभा का उससे आगे की पृथ्वीयों के साथ योग करना चाहिए यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक धुमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वीमें होता है अथवा एक पंकप्रभामें एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभामें, एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है

भगवन् ! पांच नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते है ? इत्यादि पृच्छा । गांगेय ! रत्नप्रभा में होते है, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होते है ।

(द्विकसंयोगी ८४ भंग-) अथवा एक रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में होते है; यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में, इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तमपृथ्वी में अथवा तीन रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में । २-६ इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा चार रत्नप्रभा में और शर्कराप्रभा में यावत् अथवा चार रत्नप्रभामें और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभामें, और बालुकाप्रभा में होते हे। जिस प्रकार रत्नप्रभा के साथ आगे की पृथ्वीयों का संयोग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा के साथ संयोग करने पर बीस भंग होते है । यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । इसी प्रकार बालुकाप्रभा आदि एक-एक पृथ्वी के साथ आगे की पृथ्वीयों का योग करना; यावत् चार तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

(त्रिकसंयोगी २१० भंग-) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन बालुकाप्रभा में होते है । इसी प्रकार यावत्-अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और तीन अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो बालुकाप्रभा में होते है; इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो बालुकाप्रभा में होते है । इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में होता है । इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में होता है । इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते है, इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा में, दो बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में । इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, दो बालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्व में । अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में । इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा दो रत्नप्रभ में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में । इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा मे, और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और दो धूमप्रभा में । जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतुःसंयोगी भंग कहे है, उसी प्रकार पांच नैरयिक जीवो के चतुःसंयोगी भंग कहना चाहिए, किन्तु यहाँ एक अधिक का संचार करना । इस प्रकार यावत् दो पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में

होता है, यहाँ तक कहना । (ये चतु:संयोगी १४० भंग होते है) ।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभ में और एक धूमप्रभा में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा मे और एक तमःप्रभा में, अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, और एक तमःप्रभा में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में एक बालुकाप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में, और तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में एक पंकप्रभा में एधक तमः प्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! छह नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! ये रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

(द्विकसंयोगी १०५ भंग-) - अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच शर्कराप्रभा में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच बालुकाप्रभा में । अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में और पांच अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा दो रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में, अथवा यावत् दो रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा तीन रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में । इस क्रम द्वारा पांच नैरयिक जीवो के द्विकसंयोगी भंग के समान छह नैरयिको के भी रहना । विशेष यह है की यहाँ एक अधिक का संचार करना, यावत् अथवा पांच तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

(त्रिकसंयोगी ३५० भंग)- एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभ में और चार बालुकाप्रभा में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में और चार पंकप्रभा में । इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, और चार अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और तीन बालुकाप्रभा में । इस क्रम से पांच नैरयिक जीवों के त्रिकसंयोगी भंग समान छह नैरयिक जीवो के भी त्रिकसंयोगी भंग कहना । विशेष यहाँ एक का संचार अधिक करना । शेष सब पूर्ववत्

(चतुष्कसंयोगी ३५० भंग)- जिस प्रकार पांच नैरयिको के चतुष्कसंयोगी भंग कहे गए, उसी प्रकार छह नैरयिको के चतु:संयोगी भंग जान लेने चाहिए ।

(पंचसंयोगी १०५ भंग)-पांच नैरयिको के जिस प्रकार पंचसंयोगी भंग कहे गए, उसी प्रकार छह नैरयिको के पंचसंयोगी भंग जान लेना, परन्तु इसमे एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए । यावत् अन्तिम भंग (इस प्रकार है-) जो बालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है

(षट्संयोगी ७ भंग)-अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्राभ में, यावत् एक तमःप्रभा में होता है, अथवा एक

रत्नप्रभा में, यावत् एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, यावत् एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा मे, यावत् एक बालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता ।

भगवन् ! सात नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रन्तप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे सातों नैरयिक रत्नप्रभा में होते है, यावत् अथवा अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

(द्विकसंयोगी १२६ भंग)-अथवा एक रत्नप्रभा में और छह शर्कराप्रभा में होते है । इस क्रम से छह नैरयिकजीवो के द्विकसंयोगी भंग समान सात नैरयिक जीवो के भी द्विकसंयोगी भंग कहना । विशेष यहाँ एक नैरयिक का अधिक संचार करना । शेष सभी पूर्ववत् । जिस प्रकार छह नैरयिको के त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी और षट्संयोगी भंग कहे, उसी प्रकार सात नैरयिको के त्रिकसंयोगी आदि भंगो के विषय में कहना । विशेषता इतनी है कि यहाँ एक-एक नैरयिक जीव का अधिक संचार करना । यावत्-षट्संयोगी का अन्तिम भंग इस प्रकार कहना-अथवा दो शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! आठ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! रत्नप्रभा में होते है, यावत् अथवा अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में और सात शर्कराप्रभा में होते है, इत्यादि; जिस प्रकार सात नैरयिको के द्विकसंयोगी त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी और षट्संयोगी भंग कहे गए है, उसी प्रकार आठ नैरयिको के भी द्विकसंयोगी आदि भंग कहने चाहिए; किन्तु इतना विशेष है कि एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए । शेष सभी षट्संयोगी तक पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए । अन्तिम भंग यह है- अथवा तीन शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, यावत् एक तमःप्रभा में और दो अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् दो तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । इसी प्रकार सभी स्थानो में संचार करना चाहिए । यावत् - अथवा दो रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! नौ नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न । हे गांगेय ! वे नौ नैरयिक जीव रत्नप्रभा में होते है, अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में और आठ शर्कराप्रभा में होते है, इत्यादि जिस प्रकार आठ नैरयिको के द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, चतुष्कसंयोगी, पंचसंयोगी, षट्संयोगी और सप्तसंयोगी भंग कहे है, उसी प्रकार नौ नैरयिको के विषय में भी कहना । विशेष यह है कि एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए । शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए । अन्तिम भंग इस प्रकार है-अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में एक बालुकाप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! दस नैरयिकजीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते है ? इत्यादि पश्न । गांगेय ! वे दस नैरयिक जीव, रत्नप्रभा में होते है , अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में और नौ शर्कराप्रभा में होते है; इत्यादि नौ नैरयिक जीवो के द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, यावत् एवं सप्तसंयोगी भंग समान दस नैरयिक जीवो के भी भंग कहना । विशेष यह है कि यहाँ एक-एक नैरयिक का अधिक संचार करना, शेष सभी भंग पूर्ववत् । उनका अंतिम आलापक है-अथवा चार रत्नप्रभा में, एक शर्करप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! संख्यात नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! संख्यात नैरयिक रत्नप्रभा में होते है, यावत् अथवा अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में होता है, और संख्यात शर्कराप्रभा में होते है, इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में और संख्यात

अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा दो रत्नप्रभा में और सख्यात शर्कराप्रभा में होते है इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा में, और सख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा तीन रत्नप्रभा में और शर्कराप्रभा में होते है । इसी प्रकार इसी क्रम से एक-एक नारक का संचार करना चाहिए । यावत् दस रत्नप्रभा में और संख्यात शर्कराप्रभा में होते है । इस प्रकार यावत् अथवा दस रत्नप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा सख्यात में और संख्यात शर्कराप्रभा में होते है । इस प्रकार यावत् संख्यात रत्नप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक शर्कराप्रभा में और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है । जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी का शेष नरकपृथ्वीयों के साथ संयोग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभापृथ्वी का भी आगे की सभी नरक-पृथ्वीयों के साथ संयोग करना चाहिए । इसी प्रकार एक-एक पृथ्वी का आगे की नरक-पृथ्वीयों के साथ संयोग करना चाहिए; यावत् अथवा संख्यात तमःप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है ।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्यात पंकप्रभा में होते है । इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और संख्यात बालुकाप्रभा में, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में । अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में, और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है । इस प्रकार इसी क्रम से एक-एक नारक का अधिक संचार करना । अथवा एक रत्नप्रभा में, सख्यात शर्कराप्रभा और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है; यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, संख्यात बालुकाप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है; यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होता है । अथवा तीन रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है । इस प्रकार इस क्रम में रत्नप्रभा में एक-एक नैरयिक का संचार करना, यावत् अथवा संख्यात रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात बालुकाप्रभा में होते है, यावत् अथवा संख्यात रत्नप्रभा मे, संख्यात शर्कराप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और संख्यात पंकप्रभा में होते है, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में और संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा एक रत्नप्रभा में, दो बालुकाप्रथा में और संख्यात पंकप्रभा में होते है । इसी प्रकार इसी क्रम से त्रिकसंयोगी, यावत् सप्तसंयोगी भंगो के कथन, दस नैरयिकसम्बन्धी भंगो के समान करना । अन्तिम भंग जो सप्तसंयोगी है, यह है-अथवा संख्यात रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में यावत् संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

भगवन् ! असंख्यात नैरयिक, नैरयिक, नैरयिक-प्रवेशक द्वारा प्रवेश करते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे रत्नप्रभा अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है, अथवा एक रत्नप्रभा में और असंख्यात शर्कराप्रभा में होते है । संख्यात नैरयिको के द्विकसंयोगी यावत् सप्तसंयोगी भंग समान असंख्यात के भी कहना । विशेष यह कि यहाँ 'असंख्यात' यह पद कहना चाहिए । शेष पूर्ववत् । यावत्-अन्तिम आलापक यह है-अथवा असंख्यात रत्नप्रभा में, असंख्यात शर्कराप्रभा में यावत् असंख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

भगवन् ! असंख्यात नैरयिक, नैरयिक-प्रवेशक द्वारा प्रवेश करते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे रत्नप्रभा अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है, अथवा एक रत्नप्रभा में ओर असंख्यात शर्कराप्रभा में होते है । संख्यात नैरयिको के द्विकसंयोगी यावत् सप्तसंयोगी भंग समान असंख्यात के भी कहना । विशेष यह कि यहाँ 'असंख्यात' यह पद कहना चाहिए । शेष पूर्ववत् । यावत्-अन्तिम आलापक यह है-अथवा असंख्यात रत्नप्रभा में, असंख्यात शर्कराप्रभा में यावत् असंख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

भगवन ! नैरयिक जीव नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए उत्कृष्ट पद में क्या रत्नाप्रभा में उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! सभी नैरयिक रत्नप्रभा में होते है ।

(द्विकसंयोगी ६ भंग)-अथवा रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा में होते है । अथवा रत्नप्रभा और बालुकाप्रभा में होते

है । इस प्रकार यावत् रत्नप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

(त्रिकसंयोगी १५ भंग)- अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा में होते है । इस प्रकार यावत् रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा बालुकाप्रभा ओर पंकप्रभा में होते है । यावत् अथवा रत्नप्रभा, बालुकाप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभा में होते है । जिस प्रकार रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए तीन नैरयिक जीवो के त्रिकसंयोगी भंग कहे हे, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत् अथवा रत्नप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

(चतुसंयोगी २० भंग)-अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा और पंकप्रभा में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा और धूमप्रभा में होते है । यावत् अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा पंकप्रभा और धूमप्रभा में होते है । रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतुःसंयोगी भंग कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् अथवा रत्नप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

(पंचसंयोगी १५ भंग)-अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभा में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा और तमःप्रभा में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभ, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, धूमप्रभा ओर तमःपृथ्वी में होते है । रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए जिस प्रकार ५ नैरयिक जीवो के पंचसंयोग भंग कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, अथवा यावत् रत्नप्रभा, पंकप्रभा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

(ष्टसंयोगी ६ भंग) - अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और तमःप्रभा में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् पंकप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पंकप्रभा, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है । अथवा रत्नप्रभा, बालुकाप्रभा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

(सप्तसंयोगी १ भंग) - अथवा रत्नप्रभा, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते है ।

भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकप्रवेशनक, शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकप्रवेशनक, यावत् अधःसप्तपृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक में से कौन प्रवेशनक किस प्रवेशनक से अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे अल्प अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक है, उनसे तमःप्रभापृथ्वी नैरयिकप्रवेशनक असंख्यातगुण है । इस प्रकार उलटे क्रम से, यावत् रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकप्रवेशनक असंख्यातगुण है ।

सूत्र - ४५४

भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार का है ? पांच प्रकार का- एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकप्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक ।

भगवन् ! एक तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय जीवो में उत्पन्न होता है ? भगवन ! दो तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियो में उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! एकेन्द्रियो में होते है, अथवा यावत् पंचेन्द्रियों में होते है । अथवा एक एकेन्द्रिय में और एकद्वीन्द्रिय में होता है । नैरयिक जीवों में समान तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक के विषय में भी असंख्य तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक कहना ।

भगवन् ! उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में पृच्छा । गांगेय ! ये सभी एकेन्द्रियों में होते है । अथवा एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रियो में होते है । नैरयिक जीवोनो समान तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में भी संचार करना चाहिए । एकेन्द्रिय जीवों को न छोड़ते हुए द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी और पंचसंयोगी भंग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए; यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवों में द्वीन्द्रियो में, यावत् पंचेन्द्रियो में होते है ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक से लेकर यावत् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक में से कौन किससे अल्प-अल्प विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे अल्प पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक है, उनसे चतुरिन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे त्रीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषीधक है और उनसे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक है ।

सूत्र - ४५५

भगवन् ! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ? गांगेय ! दो प्रकार का है, सम्मूर्च्छिममनुष्य-प्रवेशनक ओर गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक । भगवन् ! दो मनुष्य, मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो में उत्पन्न होते है ? इत्यादि (पूर्ववत) प्रश्न । गांगेय ! दो मनुष्य या तो सम्मूर्च्छिममनुष्य में उत्पन्न होते है, अथवा गर्भजमनुष्यो में होते है । अथवा एक सम्मूर्च्छिममनुष्यो में और एक गर्भज मनुष्यों मे होता है । इस क्रम से जिस प्रकार नैरयिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार मनुष्य-प्रवेशनक भी यावत् दस मनुष्यों तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! संख्यात मनुष्य, मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए सम्मूर्च्छिममनुष्यों में होते है ? इत्यादि प्रश्न गांगेय ! वे सम्मूर्च्छिममनुष्य में होते है, अथवा गर्भजमनुष्यों में होते है । अथवा एक सम्मूर्च्छिममनुष्यो में होता है और संख्यात गर्भजमनुष्यों में । अथवा दो सम्मूर्च्छिममनुष्यो में होते है और संख्यात गर्भजमनुष्यों मे होते है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक बढ़ाते हुए यावत् संख्यात सम्मूर्च्छिममनुष्यो में और संख्यात गर्भजमनुष्यों में होते है । भगवन् ! असंख्यात मनुष्य, मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए, इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिममनुष्यो में होते है । अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिममनुष्यों में होते है और एक गर्भजमनुष्यों मे होता है । अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिममनुष्यों मे होते है और दो गर्भजमनुष्यों में होते है । अथवा इसी प्रकार यावत् असंख्यात सम्मूर्च्छिममनुष्यो में होते है और संख्यात गर्भजमनुष्यो में होते है ।

भगवन् ! मनुष्य उत्कृष्टरूप से किस प्रवेशनक में होते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिममनुष्यों में अथवा सम्मूर्च्छिममनुष्यों मे और गर्भज मनुष्यों में होते है ।

भगवन् ! सम्मूर्च्छिममनुष्य-प्रवेशनक और गर्भजमनुष्यप्रवेशनक, इन से कौन किस से अल्प, यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे थोड़े गर्भमनुष्य-प्रवेशनक है, उनसे सम्मूर्च्छिममनुष्य-प्रवेशनक असंख्यातगुण है ।

सूत्र - ४५६

भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का है ? गांगेय ! चार प्रकार का- भावनवासीदेव-प्रवेशनक, वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक, ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक और वैमानिकदेव-प्रवेशनक । भगवन् ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवों में, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवों में होता है ? गांगेय ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ भवनवासी, या वणव्यन्तर या ज्योतिष्क या वैमानिक देवों में होता है । भगवन् ! दो देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवो में, इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे भवनवासी देवो में, अथवा वाणव्यन्तर देवों में, या ज्योतिष्क देवों में होते है, या वैमानिक देवों मे होते है । अथवा एक भवनवासी देवों मे होता है, और एक वाणव्यन्तर देवो में होता है । और एक वाणव्यन्तर देवों में होता है । तिर्यञ्चोनिक-प्रवेशनक समान देव-प्रवेशनक भी असंख्यात देव-प्रवेशनक तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! उत्कृष्टरूप से देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए किन देवो मे होते है ? इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे सभी ज्योतिष्क देवों मे होते है । अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी देवों में, अथवा ज्योतिष्क और वाण्व्यन्तर देवो में, अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक देवो में । अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवो में, अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक देवो में, अगवा ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो में । अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवों मे होते है ।

सूत्र - ४५७

भगवन् ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकदेव-प्रवेशनक, इन चारों से कौन प्रवेशनक किस

प्रवेशनक से अल्प, यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे थोड़े वैमानिकदेव-प्रवेशनक है, उनसे भवनवासीदेव-प्रवेशनक असंख्यातगुणे है, उनसे वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक असंख्यातगुणे है, और उनसे ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक संख्यतागुणे हैं ।

भगवन् ! इन नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव-प्रवेशनक, इन चारो में से कौन किससे अल्प, यावत विशेषाधिक है । गांगेय ! सबसे। अल्प मनुष्य-प्रवेशनक है, उससे नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यतागुणा है, और उससे देव-प्रवेशनक असंख्यतागुणा है, और उससे तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है ।

सूत्र - ४५८

भगवन् ! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर उत्पन्न होते है ? असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर ? यावत् वैमानिक देव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर उत्पन्न होते है ? (इसी तरह) नैरयिक का उद्वर्तन सान्तर होता है अथवा निरन्तर ? यावत् वाणव्यन्तर देवो का उद्वर्तन सान्तर होता है या निरन्तर ? ज्योतिष्क देवो का सान्तर च्यवन होता है या निरन्तर ? वैमानिक देवों का सान्तर च्यवन होता है या निरन्तर होता है ?

हे गांगेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी, यावत् स्तनितकुमार सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी । पृथ्वीकायिकजीव सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर ही उत्पन्न होते है । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते है । शेष सभी जीव नैरयिक जीवों के समान सान्तर भी उत्पन्न होते है, निरन्तर भी, यावत् वैमानिक देव सान्तर भी उत्पन्न होते है, और निरन्तर भी । नैरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्तन करते है, निरन्तर भी । इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना । पृथ्वीकायिकजीव सान्तर नहीं उद्ववर्तते, निरन्तर उद्ववर्तित होते है । इसी प्रकार वनस्पतिकायिको तक कहना । शेष सभी जीवों का कथन नैरयिको के समान जानना । इतना विशेष है कि ज्योतिष्क देव और वैमानिक देव च्यवते, ऐसा पाठ कहना चाहिए चावत् वैमानिक देव सान्तर भी च्यवते है और निरन्तर भी ।

भगवन् ! सत् नैरयिक जीव उत्पन्न होते है या असत् ? गांगेय ! सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक उत्पन्न नही होते । इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना । भगवन् ! सत् नैरयिक उद्वर्तते है या असत् ? गांगेय ! सत् नैरयिक उद्वर्तते है किन्तु असत् नैरयिक उद्वर्तित नही होते । इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना । विशेष इतना है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के लिए 'च्यवते है', ऐसा कहना । भगवन् ! नैरयिक जीव सत् नैरयिको में उत्पन्न होते हे या असत् नैरयिको में ? असुरकुमार देव, सत असुरकुमार देवों में उत्पन्न होते है या असत् असुरकुमार देवो में ? इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों मे उत्पन्न होते है या असत् वैमानिको में ? तथा सत् नैरयिकों में से उद्वर्तते है या असत् नैरयिको में से ? सत् असुरकुमारो में से उद्वर्तते है यावत् सत् वैमानिक में से च्यवते है या असत् वैमानिक में से ? गांगेय ! नैरयिक जीव सत् नैरयिको में उत्पन्न होते है, किन्तु असत् नैरयिको में उत्पन्न नही होते । सत् असुरकुमारों में उत्पन्न होते है, असत् असुरकुमारों मे नही । इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिको में उत्पन्न होते है, असत् वैमानिको में नही । सत् नैरयिको में से उद्वर्तते है, असत् नैरयिकों में से नहीं । यावत् सत् वैमानिकों मे से च्यवते है असत् वैमानिको में से नहीं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिक सत् नारयिकों में उत्पन्न होते है, असत् नैरयिको में नहीं । इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते है, असत् वैमानिकों में से नही ? गांगेय ! निश्चित ही पुरुषादानीय अर्हत् श्रीपार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत, अनादि और अनन्त कहा है इत्यादि, पंचम शतक के नौवे उद्देशक में कहे अनुसार जानना, यावत्-जो अवलोकन किया जाए, उसे लोक कहते है । इस कारण हे गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि यावत् असत् वैमानिकों में से नहीं ।

भगवन् ! आप स्वयं इसे प्रकार जानते है, अथवा अस्वयं जानते है ? तथा बिना सुने ही इसे इस प्रकार जानते है, अथवा सुनकर जानते है कि 'सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत् नैरयिक नहीं । यावत् सत् वैमानिकों मे से च्यवन होता है, असत् वैमानिको से नही ?' गांगेय ! यह सब इस रूप में मै स्वयं जानता हूं, अस्वयं नहीं तथा बिना सुने ही मै इसे इस प्रकार जानता हूं, सुनकर ऐसा नही जानता कि सत् नैरयिक उत्पन्न होते है, असत नैरयिक नही, यावत् सत्

वैमानिकों में से च्यवते है, असत् वैमानिकों में से नहीं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है, कि मैं स्वयं जानता हूं, इत्यादि, गांगेय ! केवलज्ञानी पूर्व में मित भी जानते है अमित भी जानते है । इसी प्रकार दक्षिण दिशा में भी जानते है । इस प्रकार शब्द-उद्देशक में कहे अनुसार कहना । यावत् केवली का ज्ञान निरावरण होता है, इसलिए हे गांगेय ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मैं स्वयं जानता हूं, इत्यादि, यावत् असत् वैमानिकों में से नही च्यवते ।

हे भगवन् ! नैरयिक, नैरयिको में स्वयं उत्पन्न होते है या अस्वयं उत्पन्न होते है ? गांगेय ! नैरयिक, नैरयिको में स्वयं उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते । भगवन् ! ऐसा क्यों कहते है कि यावत् अस्वयं उत्पन्न नहीं होते ? गांगेय! कर्म के उदय से, कर्मो की गुरुता के कारण, कर्मो के भारीपन से, कर्मो के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, अशुभ कर्मो के उदय से, अशुभ कर्मो के विपाक से तथा अशुभ कर्मो के फलपरिपाक से नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते । भंते ! असुरकुमार, असुरकुमारो में स्वयं उत्पन्न होते है या अस्वयं ? इत्यादि पृच्छा । गांगेय ! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नही होते । भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है कि यावत् अस्वयं उत्पन्न नही होते ? हे गांगेय ! कर्म के उदय, से, कर्म के अभाव से, कर्म की विशोधि से, कर्मो की विशुद्धि से, शुभ कर्मो के उदय से, शुभ कर्मो के विपाक से, शुभ कर्मो के फलविपाक से असुरकुमार, असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते । इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए । भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिकों मे स्वयं उत्पन्न होते है, या अस्वयं उत्पन्न होते है ? गांगेय ! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको में सव्यं यावत् उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नही होते है । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि पृथ्वीकायिक स्वयं उत्पन्न होते है, इत्यादि ? गांगेय ! कर्म के उदय से, कर्मो की गुरुता से, कर्म के भारीपन से, कर्म के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, शुभाशुभ कर्मो के उदय से, शुभाशुभ कर्मो के विपाक से, शुभाशुभ कर्मो से फल-विपाक से पृथ्वीकायिका, पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नही होते । इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक जानना चाहिए । असुरकुमारो के वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के विषय में भी जानना । इसी कारण हे गांगेय ! में ऐसा कहता हूं कि यावत् वैमानिक, वैमानिकों मे स्वयं उत्पन्न होते है, अस्वयं उत्पन्न नही होते ।

सूत्र - ४५९

तब से गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के रूप में पहचाना । गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया । उसके बाद कहा-भगवन् ! मैं आपके पास चातुर्यामरूप धर्म के बदले पंचमहाव्रतरूप धर्म को अंगीकार करना चाहता हूं । इस प्रकार सारा वर्णन प्रथम शतक के नौवे उद्देशक में कथित कालस्यवेषिकपुत्र अनगार के समान जानना चाहिए, यावत् सर्वदुःखों से रहित बने । हे भगवन् यह इसी प्रकार है ।

शतक-९ – उद्देशक-३३

सूत्र - ४६०

उस काल और समय में ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर था । वहाँ बहुशाल नामक चैत्य था । उस ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर में ऋषभदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था । वह आढ्य, दीप्त, प्रसिद्ध, यावत् अपरिभूत था । वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेद में निपुण था । स्कन्दक तपास की तरह वह भी ब्राह्मणों के अन्य बहुत से नयों में निष्णात था । वह श्रमणों का उपासक, जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता, पुण्य-पाप के तत्त्व को उपलब्ध, यावत् आत्मा को भावित करता हुआ विहरण करता था । उस ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी (धर्मपत्नी) थी । उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे, यावत् उसका दर्शन भी प्रिय था । उसका रूप सुन्दर था । वह श्रमणोपासिका थी, जीव-अजीव आदि तत्त्वों की जानकार थी तथा पुण्य-पाप के रहस्य को उपलब्ध की हुई थी, यावत् विहरण करती थी ।

उस काल और उस समय में महावीर स्वामी वहाँ पधारे । समवसरण लगा । परिषद् यावत् पर्युपासना करने लगी । तदनन्तर इस बात को सुनकर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, यावत् हृदय में

उल्लसित हुआ और जहाँ देवानन्दा ब्राह्मणी थी, वहाँ आया और उसके पास आकर इस प्रकार बोला – हे देवानुप्रिये ! धर्म की आदि करने वाले यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर आकाश में रहे हुए चक्र से युक्त यावत् सुखपूर्ववक विहार करते हुए यहाँ पधारे है, यावत् बहुशालक नामक चैत्य में योग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरण करते है । हे देवानुप्रिये ! उन तथारूप अरिहन्त भगवान् के नाम-गौत्र के श्रवण से भी महाफल प्राप्त होता है, तो उनके सम्मुख जाने, वन्दन-नमस्कार करने, प्रश्न पूछने और पर्युपासना करने आदि से होने वाले फल के विषय में तो कहना ही क्या ! एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन के श्रवण से महान् फल होता है, तो फिर विपुल अर्थ को ग्रहण करने से महाफल हो, इसमें तो कहना ही क्या हे ! इसलिए हे देवानुप्रिये ! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमन करें यावत् उनकी पर्युपासना करें । यह कार्य हमारे लिए इस भव में तथा परभव में हित के लिए, सुख के लिए, क्षमता के लिए, निःश्रेयस, के लिए और आनुगामकिता के लिए होगा ।

तत्पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मण से इस प्रकार का कथन सुन कर देवानन्दा ब्राह्मणी हृदय में अत्यन्त हर्षित यावत् उल्लसित हुई और उसने दोनो हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया । तत्पश्चात् उस ऋषभदत्त ब्राह्मण ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और इस प्रकार कहा- देवानुप्रियो ! शीघ्र चलने वाले, प्रशस्त, सदृशरूप वाले, समान खुर और पूंछ वाले, एक समान सींग वाले, स्वर्णनिर्मित कलापों से युक्त, उत्तम गति वाले, चांदी की घंटियो से युक्त, स्वर्णमय नाथ द्वारा नाथे हुए, नील कमल की कलंगी वाले दो उत्तम युवा बैलों से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घंटियो के समूह से व्याप्त, उत्तम काष्ठस्य जुए और जीत की उत्तम दो डोरियों से युक्त, प्रवर लक्षणों से युक्त धार्मिक श्रेष्ठ यान शीघ्र तैयार करके यहाँ उपस्थित करो और इस आज्ञा को वापिस करो अर्थात् इस आज्ञा का पालन करके मुझे सूचना करो ।

जब ऋषभदत्त ब्राह्मण ने उन कौटुम्बिक पुरुषों को इस प्रकार कहा, तब वे उसे सुनकर अत्यन्त हर्षित यावत् हृदय में आनन्दित हुए और मस्तक पर अंजलि करके कहा-स्वामिन ! आपकी यह आज्ञा हमें मान्य है – । इस प्रकार कह कर विनयपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार किया और शीघ्र ही द्रुतगामी दो बैलों से युक्त यावत् श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके उपस्थित किया, यावत् उनकी आज्ञा के पालन की सूचना दी । तदनन्तर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण स्नान यावत् अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणो से अपने शरीर को अलंकृत किये हुए अपने धर से बाहर निकला । जहाँ बाहरी उपस्थापनशाला थी और जहाँ श्रेष्ठ धार्मिक रथ था, वहाँ आया । उस रथ पर आरूढ हुआ । तब देवानन्दा ब्राह्मणी ने भी स्नान किया, यावत् अल्पभार वाले महामूल्य आभूषणों से शरीर को सुशोभित किया । फिर बहुत सी कुब्जा दासिंयो तथा चिलात देश की दासिंयो के साथ यावत् अन्तःपुर से निकली । जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ श्रेष्ठ धार्मिक रथ खड़ा था, वहाँ आई । उस श्रेष्ठ धार्मिक रथ पर आरूढ हुई । वह ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा ब्राह्मणी के साथ श्रेष्ठ धार्मिक रथ पर आरूढ हो अपने परिवार से परिवृत्त होकर ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर के मध्य में होता हुआ निकला और बहुशालक नामक उद्यान में आया । वहाँ तीर्थकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयों को देखा । देखते ही उसने श्रेष्ठ धार्मिक रथ को ठहराया और उस श्रेष्ठ-धर्म-रथ से नीचे उतरा । वह श्रमण भगवान् महावीर के पास पांच प्रकार के अभिगमपूर्वक गया । वे पाँच अभिगम है-(१) सचित द्रव्यों का त्याग करना इत्यादि; द्वितीय शतक में कहे अनुसार यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना से उपासना करने लगा ।

सूत्र - ४६९

देवानन्दा ब्राह्मणी भी धार्मिक उत्तम रथ से नीचे उतरी और अपनी बहुत-सी दासियों आदि यावत् महत्तरिका-वृन्द से परिवृत्त हो कर श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख पंचविध अभिगमपूर्वक गमन किया । वे पाँच अभिगम है-सचित द्रव्यों का त्याग करना, अचित द्रव्यों का त्याग न करता, विनय से शरीर को अवनत करना, भगवान् के दृष्टिगोचर होते ही दोनो हाथ जोड़ना, मन को एकाग्र करना । जहाँ श्रमण महावीर थे, वहाँ आई और तीन वार आदक्षिण प्रदशिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार के बाद ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे करके अपने परिवार सहित शुश्रूषा करती हुई, नमन करती हुई, सम्मुख खड़ी रह कर विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर उपासना करने लगी ।

तदनन्तर दस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनो में दुध आया । उसके नेत्र हर्षाश्रुओ से भीग गए । हर्ष से प्रफुल्लित होती हुई उसकी बाहों को बलयों ने रोक लिया । हर्षातिरेक से उसकी कञ्चुकी विस्तीर्ण हो गई । मेघ की धारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया । फिर वह श्रमण भगवान् महावीर को अनिमेष दृष्टि से देखती रही । भगवान् गौतम ने, श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया और पूछा-भन्ते ! इस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनो से दुध कैसे निकल आया ? यावत् इसे रोमांच क्यों हो आया ? और यह आप देवानुप्रिये को अनिमेष दृष्टि से देखती हुई क्यो खड़ी है ? श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भगवान् गौतम से कहा-है गौतम ! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है । मैं देवानन्दा का अत्मज हूं । इसलिए देवानन्दा को पूर्व-पुत्रसन्हनुरागवश दूध आ गया, यावत् रोमाञ्च हुआ और यह मुझे अनिमेष दृष्टि से देख रही है ।

सूत्र - ४६२

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने ऋषभदत्तब्राह्मण और देवानन्दा तथ उस अत्यन्त बड़ी ऋषिपरिषद् को धर्मकथा कही; यावत् परिषद् वापर चली गई ।

इसके पश्चात वह ऋषभदत्त ब्राह्मण, श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म-श्रमण कर और उसे हृदय में धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट होकर खड़ा हुआ । उसने श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दन-नमन करके इस प्रकार निवेदन किया-'भगवन् ! आपने कहा, वैसा ही है, आपका कथन यर्थाथ है भगवन् !' इत्यादि स्कन्दक तापस-प्रकरण में कहे अनुसार; यावत्-'जो आप कहते है, वह उसी प्रकार है ।' इस प्रकार कह कर वह ईशानकोण में गया । वहाँ जा कर उसने स्वयमेव आभूषण, माला और अलंकचार उतार दिये । फिर स्वयमेव पंचमुष्टि केशलोच किया और श्रमण भगवान् महावीर के पास आया । भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की, यावत् नमस्कार करके इस प्रकार कहा- भगवन् ! यह लोक चारों ओर से प्रज्वलित हो रहा है, भगवन् ! यह लोक चारों ओर से अत्यन्त जल रहा है, इत्यादि कह कर स्कन्दक तापस के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण की, यावत् सामायिक आदि ग्यारह अंगो का अध्ययन किया, यावत् बहुत-से उपवास, बेला, तेला, चौला इत्यादि विचित्र तपःकर्मो से आत्मा को भावित करते हुए, बहुत वर्षो तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया और एक मास की संल्लेखना से आत्मा को संलिखित करके साठ भक्तों का अनशन से छेदन किया ओर ऐसा करके जिस उद्देश्य से नग्रभाव स्वीकार किया, यावत् आराधना कर ली, यावत् वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त एवं सर्वदुःखों से रहित हुए ।

तदन्तर श्रमण भगवान महावीरस्वामी से धर्म सुनकर एवं हृदयंगम करके वह देवानन्दा ब्राह्मणी अत्यन्त हृष्टं एवं तुष्ट हुई और श्रमण भगवान् महावीर की तीन चार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोली-भगवन् ! आपने जैसा कहा है, वैसा ही है, भगवन् । आपका कथन यर्थाथ है । इस प्रकार ऋषभदत्त के समान देवानन्दा ने भी निवेदन किया; और-धर्म कहा; यहाँ तक कहना चाहिए । तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वयमेव प्रव्रजित कराया, स्वयमेव मुण्डित कराया और स्वयमेव चन्दना आर्या को शिष्यारुप में सौंप दिया ।

तत्पश्चात् चन्दना आर्या ने देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वयं प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुण्डित किया और स्वयमेद उसे शिक्षा दी । देवानन्दा ने भी ऋषभदत्त के समान इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् रूप से स्वीकार किया और वह उनकी आज्ञानुसार चलने लगी, यावत् संयम में सम्यक् प्रवृत्ति करने लगी । तदनन्तर आर्या देवानन्दा ने आर्य चन्दना से सामायिक आदि ग्यारह अंगो का अध्ययन किया । शेष वर्णन पूर्ववत्, यावत् समस्त दुःखों से रहित हुई ।

सूत्र - ४६३

उस ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर से पश्चिम दिशा में क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था । (वर्णन) उस क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर में जमालि नाम का क्षत्रियकुमार रहता था । वह आढ्य, दीप्त यावत् अपरिभूत था । वह जिसमें मृदंग वाद्य की स्पष्ट ध्वनि हो रही थी, बत्तीस प्रकार के नाटको के अभिनय और नृत्य हो रहे थे, अनेक प्रकार की सुन्दर तरुणियों द्वारा सम्प्रयुक्त नृत्य और गुणगान बार-बार किये जा रहे थे, उसकी प्रशंसा से भवन गुंजाया जा

रहा था, खुशियां मनाई जा रही थी, ऐसे अपने उच्च श्रेष्ठ प्रासाद-भवन में प्रावृट, वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म, इन छह ऋतुओं में अपने वैभव के अनुसार आनन्द मनाता हुआ, समय बिताता हुआ, मनुष्यसम्बन्धी पांच प्रकार के इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, वाले कामभोगों का अनुभव करता हुआ रहता था ।

उस दिन क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर में श्रृगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर यावत् महापथ पर बहुत से लोगो का कोलाहल हो रहा था, इत्यादि औपपातिकसूत्र कि तरह जानना चाहिए; यावत् बहुत-से लोग परस्पर एक-दुसरे से कह रहे थे 'देवानुप्रियो ! आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर, इस ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते है । अतः हे देवानुप्रियो ! तथारूप अरिहन्त भगवान् के नाम, गोत्र के श्रवण-मात्र से महान् फल होता है; इत्यादि वर्णन औपपातिकसूत्र अनुसार, यावत् वह जनसमुह तीन प्रकार की पर्युपासना करता है ।

तब बहुत-से मनुष्यों के शब्द और उनका परस्पर मिलन सुन और देख कर उस क्षत्रियकुमार जमालि के मन में विचार यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ-'क्या आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में इन्द्र का उत्सव है ?, अथवा स्कन्दोत्सव है ?, या मुकुन्द महोत्सव है ? नाग का, यक्ष का अथवा भूतमहोत्सव है ? या की कूप का, सरोवर का, नदी का या द्रह का उत्सव है ?, अथवा किसी पर्वत का, वृक्ष का, चैत्य का अथवा स्तूप का उत्सव है ?, जिसके कारण ये बहुत-से उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्चाकु, ज्ञातृ, कौरव्य, क्षत्रियपुत्र, भट, भटपुत्र, सेनापति, सेनापतिपत्र, प्रशास्ता एवं प्रशास्तृपुत्र, लिच्छवी, लिच्छवीपुत्र, ब्राह्मण, ब्राह्मणपुत्र एवं इभ्य इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् सार्थवाह-प्रमुख, स्नान आदि करके यावत् बाहर निकल रहै है ?' इस प्रकार विचार करके उसने कंचुकीपुरुष को बुलाया और उससे पूछा-'हे देवानुप्रियो ! क्या आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में इन्द्र आदि का कोई उत्सव है, जिसके कारण यावत् ये सब लोग बाहर जा रहे है ?'

तब जमालि क्षत्रियकुमार के इस प्रकार कहने पर वह कंचुकी पुरुष अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ । उसने श्रमण भगवान् महावीर का आगमन जान कर एवं निश्चित करके हाथ जोड़ कर जय-विजय-ध्वनि से जमालि क्षत्रियकुमार को बधाई दी । उसने कहा-'हे देवानुप्रिये ! आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बाहर इन्द्र आदि का उत्सव नही है, किन्तु देवानुप्रिये ! आदिकर यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान में अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते है; इसी कारण ये उग्रकुल, भोगकुल आदि के क्षत्रिय आदि तथा और भी अनेक जन वन्दन के लिए यावत् जा रहे है । 'तदनन्तर कंचुकीपुरुष से यह बात सुन कर और हृदय मे धारण करके जमालि क्षत्रियकुमार, हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ । उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा-'देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही चार घण्टा वाले अश्वरथ को जोत कर यहाँ उपस्थित करो और मेरी इस आज्ञा का पालन करके सूचना दो । तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने क्षत्रियकुमार जमालि के इस आदेश को सुन कर तदनुसार कार्य करके निवेदन किया ।

तदनन्तर वह जमालि क्षत्रियकुमार जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया उसने स्नान किया तथा अन्य सभी दैनिक क्रियाएँ की, यावत् शरीर पर चन्दन का लेपन किया; समस्त आभूषणों से विभूषित हुआ और स्नानगृह से निकला आदि सारा वर्णन औपपातिकसूत्र अनुसार जानना चाहिए । फिर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ सुसज्जित चातुर्घष्ट अश्वरथ था, वहाँ वह आया । उस अश्वरथ पर चढ़ा । कोरण्टपुष्प की माला से युक्त छत्र को मस्तक पर धारण किया हुआ तथा बड़े-बड़े सुभटो, दासो, पथदर्शको आदि के समुह से परिवृत हुआ वह जमालि क्षत्रियकुमार क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य में से होकर निकला और ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर के बाहर जहाँ बहुशाल नामक उद्यान था, वहाँ आया । वहाँ घोड़ो को रोक कर रथ को खड़ा किया, वह रथ से नीचे उतरा । फिर उसने पुष्प, ताम्बूल, आयुध (शस्त्र) आदि तथा उपानह (जूते) वहीं छोड़ दिये । एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासंग किया। तदनन्तर आचमन किया हुआ और अशुद्धि दूर करके अत्यन्त शुद्ध हुआ जमालि मस्तक पर दोनों हाथ जोड़े हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुचा । समीप जाकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार अदक्षिण

प्रदक्षिणा की, यावत् त्रिविध पर्युपासना की । तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने उस क्षत्रियकुमार जमालि तथा उस बहुत बड़ी ऋषिगण आदि की परिषद् की यावत् धर्मोपदेश दिया । यावत् परिषद वापस लौट हुई ।

सूत्र - ४६४

श्रमण भगवान् महावीर के पास से धमृ सुन कर और उसे हृदयंगम करके हर्षित और सन्तुष्ट क्षत्रियकुमार जमालि यावत् उठा और खड़े होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की यावत् वन्दन-नमन किया और कहा-''भगवन् ! मैं र्निग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं । भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर प्रतीत करता हू । भन्ते ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन में मेरी रुचि है । भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर प्रतीत करता हू । भन्ते ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन में मेरी रूचि है । भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन के अनुसार चलने के लिए अभ्युद्यत हुआ हूं । भन्ते ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन तथ्य है, सत्य है; भगवन् ! यह असंदिग्ध है, यावत् जैसा कि आप कहते है । किन्तु हे देवानुप्रिये ! मैं अपने माता-पिता को पूछता हूं और उनकी अनुज्ञा लेकर आप देवानुप्रिये के समीप मुण्डित हो कर अगारधर्म से अनगारधर्म मे प्रव्रजित होना चाहता हूं ।'' ''देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो ।'' जब श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि क्षत्रियकुमार से इस प्रकार से कहा तो वह हर्षित और सन्तुष्ट हुआ । उसने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् नमस्कार किया । फिर उस चार घंटा वाले अश्वरथ पर आरुढ हुआ, रथारूढ हो कर श्रमण भगवान् महावीर के पास से, बहुशाल नामक उद्यान से निकला, यावत् मस्तक पर कोरटपुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किए हुए महान् सुभटों इत्यादि के समूह से परिवृत्त होकर जहाँ क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था, वहाँ आया । वहाँ से वह क्षत्रियकुण्डग्राम के बीचोंबीच होता हुआ, जहाँ अपना घर था और जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, वहाँ आया । वहाँ पहुंचते ही उसने घोड़ो को रोका और रथ को खड़ा कराया । फिर वह रथ से नीचे उतरा और आन्तरिक उपस्थानशाला में, जहाँ कि उसके माता-पिता थे, वहाँ आया । आते ही उसने जय-विजय शब्दों से वधाया, फिर कहा 'हे माता-पिता ! मैने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुना है, वह धर्म मुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट रुचिकर प्रतीत हुआ है ।

यह सुन कर माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा-हे पुत्र ! तू धन्य है ! बेटा ! तू कृतार्थ हुआ है ! पुत्र ! तू कृतपुण्य है । पुत्र ! तू कृतलक्षण है कि तूने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुझे इष्ट, विशेष प्रकार से अभीष्ट और रुचिकर लगा है । तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि ने दूसरी बार भी अपने माता-पिता से कहा- मैने श्रमण भगवान् महावीर से वास्तविक धर्म सुना, जो मुझे इष्ट, अभीष्ट और रुचिकर लगा इसलिए हे माता-पिता ! मैं संसार के रथ से उद्विग्र हो गया हूं, जन्म-मरण से भयभीत हुआ हूं । अतः मैं चाहता हूं कि आप दोनो की आज्ञा प्राप्त होने पर श्रमण भगवान् महावीर पास मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर अनगार धर्ममें प्रव्रजित होऊ ।

क्षत्रियकुमार जमालि की माता उसके उस अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, मन को अप्रिय और अश्रुतपूर्व वचन सुनकर और अवधारण करके रोमकूप से बहते हुए पसीने से उसका शरीर भीग गया । शोक के भार से उसके अंग-अंग कांपने लगे । निस्तेज हो गई । मुख दीन और उन्मना हो गया । हथेलियो से मसली हुई कमलमाला की तरह शरीर तत्काल मुर्झा गया एवं दुर्बल हो गया । वह लावण्यशून्य, कान्तिरहित और शोभाहीन हो गई । आभूषण ढीले हो गए । हाथो की धवल चूडियाँ नीचे गिर कर चूर-चूर हो गई । उत्तरीय वस्त्र अंग से हट गया । मूर्च्छावश उसकी चेतना नष्ट हो गई । शरीर भारी-भारी हो गया । सुकोमल केशराशि बिखर गई । वह कुल्हाडी से काटी हुई चम्पकलता की तरह एवं महोत्सव समाप्त होने के बाद इन्द्रध्वज की तरह शोभाविहीन हो गई । उसके सन्धिबन्धन हो गए और वह धड़ाम से सारे ही अंगो सहित फर्श पर गिर पड़ी ।

इसके पश्चात क्षत्रियकुमार जमालि की व्याकुलतापूर्वक इधर-उधर गिरती हुई माता के शरीर पर शीघ्र ही दासियों ने स्वर्णकलशो के मुख से निकली हुई शीतल एवं निर्मल जलधारा का सिंचन करके शरीर को स्वस्थ किया । फिर पंखो तथा ताड़ के पत्तों से बने पंखों से जलकणों सहित हवा की । तदनन्तर अन्तःपुर के परिजनों ने उसे आशवस्त किया । रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, शोक करती हुई, एवं विलाप करती हुई माता क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहने लगी-पुत्र ! तू हमारा इकलौता पुत्र है, तू हमें इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनसुहाता है,

आधारभूत है विश्वासपात्र है, तू सम्मत, अनुमत और बहुमत है । तू आभूषणो के पिटारे के समान है, रत्नस्वरूप है, रत्नतूल्य है, जीवन या जीवितोत्सव के समान है, हृदय को आनन्द देने वाला है; उदूम्बर के फूल के समान तेरा नाम-श्रवण भी दुर्लभ है, तो तेरा दर्शन दुर्लभ हो, इसमें कहना ही क्या ! इसलिए हे पुत्र ! हम तेरा क्षण भर का वियोग भी नही चाहते । इसलिए जब तक हम जीवित रहे, तब तक तू घर में ही रह । उसके पश्चात् जब हम कालधर्म को प्राप्त हो जाएँ, तब निरपेक्ष होकर तू गृहवास का त्याग करके श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर अनगारधर्म में प्रव्रजित होना ।

तब क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से कहा-अभी जो आपने कहा कि-हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इष्ट कान्त आदि हो, यावत् हमारे कालगत होने पर प्रव्रजित होना, इत्यादि; माताजी ! पिताजी ! यों तो यह मनुष्य-जीवन जन्म, जरा, मृत्यु, रोग तथा शारीरिक और मानसिक अनेक दुःखो की वेदना से और सैकड़ो कष्टो एवं उपद्रवो से ग्रस्त है । अध्रुव; है, अनियत है, अशाश्वत है, सन्ध्याकालीन बादलों के रंग-सदृश, क्षणिक है, जल-बुद्‌बुद के समान है, कुश की नोकर पर रहे हुए जलबिन्दु के समान है, स्वप्तदर्शन के तुल्य है, विद्युत-लता की चमक के समान चंचल और अनित्य है । सड़ने, पड़ने, गलने और विध्वंस होने के स्वभाववाला है । पहले या पीछे इसे अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा । अतः हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि कि हममें से कौन पहले जाएगा और कौन पीछे जाएगा ? इसलिए मैं चाहता हूं कि आपकी अनुज्ञा मिल जाए तो मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंडित होकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार कर लूं ।

यह बात सुन कर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने कहा-हे पुत्र ! तुम्हारा यह शरीर विशिष्ट रूप, लक्षणों, व्यंजनो एवं गुणो से युक्त है, उत्तम बल, वीर्य और सत्त्व से सम्पन्न है, विज्ञान में विचक्षण है, सौभाग्य-गुण से उन्नत है, कुलीन है, महान् समर्थ है, विविध व्याधियों और रोगो से रहित है, निरुपहत, उदात्त, मनोहर और पांचो इन्द्रियो की पटुता से युक्त है तथा प्रथम यौवन अवस्था में है, इत्यादि अनेक उत्तम गुणो से युक्त है । हे पुत्र ! जब तक तेरे शरीर में रूप, सौभाग्य और यौवन आदि उत्तम गुण है, तब तक तू इनका अनुभव कर । पश्चात् हमारे कालधर्म प्राप्त होने पर जब तेरी उम्र परिपक्क हो जाए और कुलवंश की वृद्धि का कार्य हो जाए, तब निरपेक्ष हो कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित हो कर अगारवास छोड़ कर अनगारधर्म में प्रव्रजित होना । तब क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से कहा-हे माता-पिता ! आपने मुझे जो यह कहा कि पुत्र ! तेरा यह शरीर उत्तम रूप आदि गुणों से युक्त है, इत्यादि , यावत् हमारे कालगत होने पर तु प्रव्रजित होना । (किन्तु) यह मानव-शरीर दुःखो का घर है, अनेक प्रकार की सैकड़ो व्याधिओ का निकेतन हे, अस्थि रुप काष्ठ पर खड़ा हुआ है, नाड़ियो और स्नायुओ के जाल से वेष्टित है, मिट्टी के बर्तन के समान दुर्बल है । अशुचि के संक्लिष्ट है, इसको टिकाये रखने के लिए सदैव इसकी सम्भाल रखनी पड़ती है, यह सड़े हुए शव के समान और जीर्ण घर के समान है, सड़ना, पड़ना और नष्ट होना, इसका स्वभाव है । इस शरीर को पहले या पीछे अवश्य छोड़ना पडेगा; तब कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कानै ? इत्यादि वर्णन पूर्ववत् यावत्-इसलिए मैं चाहता हूं कि आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मै प्रव्रज्या ग्रहण कर लू । तब क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने कहा-पुत्र ! ये तेरी गुणवल्लभा, उत्तम, तुझमे नित्य भावानुरक्त, सर्वांगसुन्दरी आठ पत्नियाँ है, जो विशाल कुल में उत्पन्न नवयौवनाएँ है, कलाकुशल है, सदैव लालित और सुखभोग के योग्य है । ये मार्दवगुण से युक्त, निपुण, विनय-व्यवहार में कुशल एवं विचक्षण है । ये मंजुल, परिमिति और मधुर भाषिणी है । ये हास्य, विप्रेक्षित, गति, विलास और चेष्टाओं मे विशारद है । निर्दोष कुल और शील से सुशोभित है, विशुद्ध कुलरूप वंशतन्तु की वृद्धि करने मे समर्थ एवं पूर्णयौवन वाली है । ये मनोनुकूल एवं हृदय को इष्ट हे । अतः हे पुत्र ! तू इनके साथ मनुष्यसम्बन्धी विपुल कामभोगो का उपभोग कर, बाद में जब तू भुक्तभोगी हो जाए और विषय-विकारो मे तेरी उत्सुकता समाप्त हो जाए, तब हमारे कालधर्म को प्राप्त हो जाने पर यावत् तू प्रव्रजित हो जाना ।

माता-पिता के पूर्वोक्त कथन के उत्तर में जमालि क्षत्रियकुमार ने अपने माता-पिता से कहा-तथीप आपने जो यह कहा कि विशाल कुल में उत्पन्न तेरी ये आठ पत्नियाँ हे, यावत् भुक्तभोग और वृद्ध होने पर तथा हमारे कालधर्म

को प्राप्त होने पर दीक्षा लेना, किन्तु माताजी और पिताजी ! यह निश्चित है कि ये मनुष्य-सम्बन्धी कामभोगो, मल, मूत्र, श्लेषम, सिंघाण, वमन, पित्त, पूति, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होते है, ये अमनोज्ञ और असुन्दर मूत्र तथा दुर्गन्धयुक्त विष्ठा से परिपूर्ण है; मृत कलेवर के समान गन्ध वाले उच्छवास एवं अशुभ निःश्वास से युक्त होने से उद्वेग पैदा करने वाले है । ये बीभत्स है, अल्पकालस्थायी है, तुच्छस्वभाव के है, कलमल के स्थानरूप होने से दुःखरूप है और बहु-जनसमुदाय के लिए भोग्यरूप से साधारण है, ये अत्यन्त मानसिक क्लेश से तथा गाढ शारीरिक कष्ट से साध्य है । ये अज्ञानी जनो द्वारा ही सेवित है, साधु पुरुषो द्वारा सदैव निन्दनीय है, अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले है, परिणाम में कटु फल वाले है, जलते हुए घास के पूले की आग के समान कठिनता से छूटने वाले तथा दुःखानुबन्धी है, सिद्धि गमन में विघ्नरूप है । अतः हे माता-पिता ! यह भी कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जाएगा, कौन पीछे ? इसलिए हे आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मै दीक्षा लेना चाहता हूं ।

तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा-''हे पुत्र ! तेरे पितामह, प्रपितामह और पिता के प्रपितामह से प्राप्त यह बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य उत्तम वस्त्र, विपुल धन, कनक यावत् सारभूत द्रव्य विद्यमान है । यह द्रव्य इतना है कि सात पीढी तक प्रचुर दान दिया जाय, पुष्कल भोगा जाय और बहुत-सा बांटा जाय, तो भी पर्याप्त है । अतः हे पुत्र ! मनुष्य-सम्बन्धी इस विपुल ऋद्धि और सत्कार समुदाय का अनुभव कर । फिर इस कल्याण का अनुभव करके और कुलवंशतन्तु की वृद्धि करने के पश्चात यावत् तू प्रव्रजित हो जाना । इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से कहा-आपने जो यह कहा कि तेरे पितामह, प्रपितामह आदि से प्राप्त द्रव्य के दान, भोग आदि के पश्चात यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना आदि, किन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् सारभूत द्रव्य अग्नि-साधारण, चोर-साधारण, राज-साधारण, मृत्यु-साधारण, एवं दायाद-साधारण है, तथा अग्नि-सामान्य यावत् दायाद-सामान्य है । यह अध्रुव है, अनित्य है और अशाश्वत है । इसे पहले या पीछे एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा । अतः कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा और कौन पीछे जाएगा ? इत्यादि पूर्ववत् कथन, यावत् आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाए तो मेरी दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा है ।

जब क्षत्रियकुमार जमालि को उसके माता-पिता विषय के अनुकूल बहुत-सी उक्तियों प्रज्ञप्तियों, संज्ञाप्तियों और विज्ञप्तियों द्वारा कहने, बतलाने और समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुए, तब विषय के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली उक्तियों से समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे-हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य, अनुत्तर, यावत् सर्वदुःखों का अन्त करने वाला है । इसमें तत्पर जीव सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं एवं समस्त दुःखों का अन्त करते है। परन्तु यह (निर्ग्रन्थधर्म) सर्प की तरह एकान्त दृष्टि वाला है, छुरे या खड्ग आदि तीक्ष्ण शस्त्र की तरह एकान्त धार वाला है । यह लोहे के चने चबाने के समान दुष्कर है; बालु के कौर की तरह स्वादरहित (नीरस) है । गंगा आदि महानदीके प्रतिस्त्रोत गमन के समान अथवा भुजाओं से महासमुद्र तैरने के सामने पालन करने में अतीव कठिन है । तीक्ष्ण धार पर चलना है; महाशिला को उठाने के सामने गुरुतर भार उठाना है । तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान व्रत का आचरण करना है । हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों के लिए ये बातें कल्पनीय नहीं हैं । यथा-आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूरक, पूतिक, क्रीत, प्रामित्य, अछेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, वर्दलिकाभक्त, शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड । इसी प्रकार मूल, कन्द, फल, बीज और हरित-भोजन करना या पीना भी उसके लिए अकल्पनीय है । हे पुत्र ! तू सुख में पला, सुख भोगने योग्य है, दुःख सहन करने योग्य नहीं है । तू शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा को तथा चोर, व्याल, डांस, मच्छरों के उपद्रव को एवं वात, तित्त, कफ एवं सन्निपात सम्बन्धी अनके रोगों के आतंक को और उदय भी आए हुए परीषहों एवं उपसर्गो को सहन करने में समर्थ नहीं है । हे पुत्र ! हम तो क्षणभर में तेरा वियोग सहन करना नहीं है । हे पुत्र ! हम तो क्षणभर में तेरा वियोग सहन करना नहीं चाहते । अतः पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं, तब तक तूगृहस्थवास में रह । उसके बाद हमारे कालगत हो जाने पर, यावत् प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना ।

तब क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता को उत्तर देते हुए प्रकार कहा-हे माता-पिता ! आप मुझे यह जो

कहते हैं कि यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, अनुत्तर है, अद्वितीय है, यावत् तू समर्थ नहीं है इत्यादि यावत् बाद में प्रव्रजित होना; किन्तु हे माता-पिता ! यह निश्चित्त है कि नामर्दों, कायरों, कापुरुषों तथा इस लोक में आसक्त और परलोक से पराङ्मुख एवं विषयभोगों की तृष्णा वाले पुरुषों के लिए तथा प्राकृतजन के लिए इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन का आचरण करना दुष्कर है; परन्तु धीर, कृतनिश्चय एवं उपाय में प्रवृत्त पुरुष के लिए इसका आचरण करना कुछ भी दुष्कर नहीं है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मुझे आज्ञा दे दें तो मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ले लूं । जब क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता विषय के अनुकूल और विषय के प्रतिकूल बहुत-सी उक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विणप्तियों द्वारा उसे समझा-बुझा न सके, तब अनिच्छा से उन्होंने क्षत्रियकुमार जमालि को दीक्षाभिनिष्क्रमण की अनुमति दे दी ।

सूत्र - ४६५

तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा-शीघ्र ही क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के अन्दर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़ कर जमीन की सफाई करके उसे लिपाओ, इत्यादि औपपातिक सूत्र अनुसार यावत् कार्य करके उन कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञा वापस सौंपी । क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने दुबारा उन कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही जमालि क्षत्रियकुमार के महार्थ महामूल्य, महार्ह और विपुल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो । इस पर कौटुम्बिक पुरुषों ने उनकी आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापस सौंपी ।

इसके पश्चात् जमालि क्षत्रिकुमार के माता-पिता ने उसे उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बिठाया । फर एक सौ आठ सोने के कलशों से इत्यादि राजप्रश्नीयसूत्र अनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्वऋद्धि के साथ यावत् महाशब्द के साथ नष्क्रमणीभषेक किया । नष्क्रमणाभिषेक पूर्ण होने के बाद (जमालिकुमार के माता-पिता ने) हाथ जोड़ कर जय-विजय-शब्दों से उसे बधाया । फिर उन्होंने उससे कहा-'पुत्र ! बताओ, हम तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे कस कार्य में क्या, दें ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?' इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा-हे माता-पिता ! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगवाना चाहता हूँ और नापित को बुलाना चाहता हूँ ।

तब क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-''देवानुप्रियो ! शीघ्र ही श्रीघर से तीन लाख स्वर्णमूद्राएँ निकाल कर उदमें से एक-एक लाख सोनैया दे कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख सोनैया देकर नापित को बुलो ।'' क्षत्रियकुमार जमालि के पिता की उपर्युक्त आज्ञा सुन कर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत ही हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए । उन्होंनें हाथ जोड़ कर यावत् स्वामी के वचन स्वीकार किए और शीघ्र ही श्रीघर से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ निकाल कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नापित को बुलाया। फिर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के आदेश से कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा नाई को बुलाए जाने पर वह बहुत ही प्रसन्न और तुष्ट हुआ । उसने स्नानादि किया, यावत् शरीर को अलंकृत किया, फिर जहाँ क्षत्रियकुमार जमालि के पिता थे, वहाँ आया और उन्हें जय-विजय शब्दों से बधाया, फिर इस प्रकार कहा-''हे देवानुप्रिय ! मुझे करने योग्य कार्य का आदेश दीजिये ।''

इस पर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उस नापित से कहा-हे देवानुप्रिय ! क्षत्रियकुमार जमालि के निष्क्रमण के योग्य अग्रकेश चार अंगुल छोड़ कर अत्यन्त यत्न-पूर्वक काट दो । क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के द्वारा यह आदेश दिये जाने पर वह नापित अत्यन्त हर्षित एवं तुष्ट हुआ और हाथ जोड़ कर यावत् बोला-'स्वामिन् ! आपकी जैसी आज्ञा है, वैसा ही होगा;' इस प्रकार उसने विनयपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार किया । फिर सुगन्धित गन्धोदक से हाथ-पैर धोए, आठ पट वाले शुद्ध वस्त्र से मुहं बांधा और अत्यन्त यत्नपूर्वक क्षत्रियकुमार जमालि के निष्क्रमणयोग्य अग्रकेशों को चार अंगुल छोड़ कर काटा ।

इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि की माता नेशुक्लवर्ण केया हंस-चिह्न वाले वस्त्र की चादर में उन

अग्रकेशों को ग्रहण किया । फिर उन्हें सुगन्धित गन्धोदक से धोया, फिर प्रधान वं श्रेष्ठ गन्ध एवं माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र में उन्हें बांध कर रत्नकरण्डक में रखा । इसके बाद जमालिकुमार की माता हार, जलधारा, सिन्दुवार के पुष्पों एवं टूटी हुई मोतियों की माला के समान पुत्र के दुःसह वियोग के कारण आंसू बहाती हुई इस प्रकार कहने लगी-''ये हमारे लिए बहुत-सी तिथियो, पर्वो, उत्सवों और नागपूजादिरूप यज्ञों तथा महोत्सवादिरूप क्षणों में क्षत्रियकुमार जमालि के अन्तिम दर्शनरूप होंगे''-ऐसा विचार कर उन्हें अपने तकिये के नीचे रख दिया ।

इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने दुसरी बार भी उत्तरदिशाभिमुख सिंहासन रखवाया और क्षत्रियकुमार जमालि को चांदी और सोने के कलशों से स्नान करवाया । फिर रुएँदार सुकोमल गन्धकाषायित सुगन्धियुक्त वस्त्र से उसके अंग पोछे । उसके बाद सरस गोशीर्षचन्दन का अंग प्रत्यंग पर लेपन किया । तदनन्तर नाक के निःश्वास की वायु से उड़ जाए, ऐसा बारीक, नेत्रों को आह्लादक लगने वाला, सुन्दर वर्ण और कोमल स्पर्श से युक्त, घोड़े के मुख की लार से भी अधिक कोमल, श्येत और सोने के तारों से जुड़ा हुआ, महामूल्यवान् एवं हंस के चिह्न से युक्त पटशाटक पहिनाया । हार एवं अर्द्धहार पहिनाया । सूर्याभदेव के अलंकारों का वर्णन अनुसार समझना चाहिए, यावत् विचित्र रत्नों से जटिल मुकुट पहानया । ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूष्टिम, पूरिम और संघातिम रूप से तैयार की हुई चारों प्रकार की मालाओं से कल्पवृक्ष के समान ।स जमालिकुमार को अलंकृत एवं विभूषित किया।

तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बालुया और उनसे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही अनेक सैकड़ौं खंभों से युक्त, लीलापूर्वक खड़ी हुई पुतलियों वाली, इत्यादि, राजप्रश्नीयसूत्र में वर्णित विमान के समान यावत्-मणि-रत्नों की घंटियों के सहूह से चारों ओर से धिरी हुई, हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने योग्य शिविका उपस्थित करो और मेरी इस आज्ञा का पालन करके मुझे सूचित करो । इस आदेश को सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार की शिविका तैयार करके यावत् निवेदन किया । तत्पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार आभरणालंकार से अलंकृत होकर तथा प्रतिपूर्ण अलंकारों से सुसज्जित हो कर सिंहासन से उठा । दक्षिण की ओर से शिविका पर चढा, श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुंह करके आसीन हुआ ।

फिर क्षत्रियकुमार जमालि की माता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत करके हंस के चिह्न वाला श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठी । तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि की धायमाता ने स्नानादि किया, यावत् शरीर की अलंकृत करके रजोहरण और पात्र ले कर दाहिनी ओर से शिविका पर चढीस और क्षत्रियकुमार जमालि के बाई ओर श्रेष्ठ । किर क्षत्रियकुमार जमालि के पृष्ठभाग में श्रृंगार के घर के समान, सुन्दर वेष वाली, सुन्दर गतिवाली, यावत् रूप और यौवन के विलास से युक्त तथा सुन्दर स्तन, जघन, वदन, कर, चरण, लावण्य, रूप एवं यौवन के गुणों से युक्त एक उत्तम तरुणी हिम, रजत, कुमुद, कुन्द पुष्प एवं चन्द्रमा के समान, कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त, श्वेत छत्र हाथ में लेकर लीला-पूर्वक धारण करती हुई खड़ी हुई । तदन्तर जमालिकुमार के दोनों ओर श्रृंगार के घर के समान, सुन्दर वेश वाली यावत् रूप-यौवन के विलास से युक्त दो उत्तम तरुणियां हाथ में चामर लिए हुए लीलासहित ढुलाती हुई खड़ी हो गई । वे चामर अनेक प्रकार की मणियों, कनक, रत्नों तथा विशुद्ध एवं महामूल्यवान् तपनीय से निर्मित उज्ज्वल एवं विचित्र दण्ड वाले तथा चमचमाते हुए थे और शंख, अंकरत्न, कुन्द-पुष्प, चन्द्र, जलबिन्दु, मथे हुए अमृत के फेन के पुंज समान श्वेत थे ।

और फिर क्षत्रियकुमार जमालि के ईशानकोण में श्रुंगार के गृह के समान, उत्तम वेष वाली यावत् रूप, यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ तरुणी पवित्र जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हाथी के महामुख के आकार के समान श्वेत रजतनिर्मित कलश (भृंगार) (हाथ में) लेकर खड़ी हो गई । उसके बाद क्षत्रियकुमार जमालि के आग्नेय कोण में शृंगार गृह के तुल्य यावत् रूप यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ युवती विचित्र स्वर्णमय दण्ड वाले एक ताड़पत्र के पंखे को लेकर खड़ी हो गई । इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाय और उन्हें इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही एक सरीखे, समान त्वचा वाले, समान वय वाले समान लावण्य, रूप और

यौवन-गुणों से युक्त, एक सरीखे आभूषण, वस्त्र और परिकर धारण किये हुए एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक तरुणों को बुलाओ ।' तब वे कौटुम्बिक पुरुष स्वामी के आदेश को यवत् स्वीकार करके शीघ्र ही एक सरीखे, समान त्वचा वाले यावत् एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक तरुणों को बुला लाए ।

जमालि क्षत्रियकुमार के पिता के (आदेश से) कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये हुए वे एक हजार तरुण सेवक हर्षित और सन्तुष्ट हो कर, स्नानादि से निवृत्त हो कर बलिकर्म, कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त करके एक सरीखे आभूषण और वस्त्र तथा वेष धारण करके जहाँ जमालि क्षत्रियकुमार के पिता थे, वहाँ आए और हाथ जोड़ कर यावत् उन्हें जय-विजय शब्दों से बधा कर इस प्रकार बोले-हे देवानुप्रिय ! हमें जो कार्य करना है, उसका आदेश दीजिए । इस पर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उन एक हजार तरुण सेवकों को इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम स्नानादि करके यावत् एक सरीखे वेष में सुसज्ज होकर जमालिकुमार को शिबिका को उठाओ । तब वे कौटुम्बिक तरुण क्षत्रियकुमार जमालि के पिता का आदेश शिरोधार्य करके स्नानादि करके यावत् एक सरीखी पोशाक धारण किये हुए क्षत्रियकुमार जमालि की शिबिका उठाई ।

हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने योग्य उस शिबिका पर जब जमालि क्षत्रियकुमार आदि सब आरूढ हो गए, तब उस शिबिका के आगे-आगे सर्वप्रथम ये आठ मंगल अनुक्रम से चले, यथा-स्वस्तिक, श्रवत्स, नन्द्यावर्त्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण । इन आठ मंगलों के अनन्तर पूर्ण कलश चला; इत्यादि, औपपातिकसूत्र के कहे अनुसार यावत् गगनतलचुम्बिनी वैजयन्ती (ध्वजा) भी आगे यथानुक्रम से खाना हुई । यावत् आलोक करते हुए और जय-जयकार शब्द का उच्चारण करते हुए अनुक्रम से आगे चले । इसके पश्चात् बहुत से उग्रकुल के, भोगकुल के क्षत्रिय, इत्यादि यावत् महापुरुषों के वर्ग से परिवृत होकर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने स्नान आदि किया । यावत् वे विभूषित होकर उत्तम हाथी के कंधे पर चढे और कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, श्वेत चामरों से बिंजाते हुए, घोड़े, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर तथा महासुभटों के समुदाय से धिरे हुए यावत् क्षत्रियकुमार के पीछे-पीछे चल रहे थे । साथ ही जमालि क्षत्रिय कुमार के आगे बड़े-बड़े, श्रेष्ठ घुड़सवार तथा उसके दोनों बगलमें उत्तम हाथी एवं पीछे रथ और रथसमूह चल रहे थे ।

इस प्रकार क्षत्रियकुमार जमालि सर्व ऋद्धि सहित सहित यावत् बाजे-गाजे के साथ चलने पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था । उसके दोनों और श्वेत चामर और छोटे पंखे बिंजाए जा रहे थे । क्षत्रियकुमार जमालि क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य में से होकर जाता हुआ, ब्राह्मणकुण्डग्राम के बाहर जहाँ बशुशालक नामक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उस ओर गमन करने लगा । जब क्षत्रियकुमार जमालि क्षत्रियकुण्ग्राम नगर के मध्य में से होकर जा रहा था, तब श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों पर बहुत-से-अर्थार्थी (धनार्थी), कामार्थी इत्यादि लोग, औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार इष्ट, कान्त, प्रिय आदि शब्दों से यावत् अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे-'हे नन्द (आनन्ददाता) ! धर्म द्वारा तुम्हारी जय हो ! हे नन्द ! तप के द्वारा तुम्हारी जय हो ! हे नन्द ! तुम्हारा भद्र हो ! दे देव ! अखण्ड-उत्तम-ज्ञान-दर्शन-चारित्र द्वारा अविजित इन्द्रियों को जीतो और विजित श्रमणधर्म का पालन करो । हे देव ! विघ्नों को जीतकर सिद्धि में जाकर बसो ! तप से धैर्य रूपी कच्छ को अत्यन्त दृढतापूर्वक बाँधकर राग-द्वेष रूपी मल्लों को पछाड़ो ! उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा अष्टकर्मशत्रुओं का मर्दन करो ! हे धीर ! अप्रमत्त होकर त्रैलोक्य के रंगमंच में आराधनारूपी पताका ग्रहण करो और अन्धकार रहित अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करो ! तथा जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धिमार्ग पर चलकर परमपदरूप मोक्ष को प्राप्त करो ! परीषह-सेना को नष्ट करो तथा इन्द्रियग्राम के कण्टकरूप उपसर्गों पर विजय प्राप्त करो ! तुम्हारा धर्माचरण निर्विघ्न हो !' इस प्रकार से लोग अभिनन्दन एवं स्तुति करने लगे ।

तब औपपातिकसूत्र में वर्णित कूणिक के वर्णनानुसार क्षत्रियकुमार जमालि हजारों की नयनावलियों द्वारा देखा जाता हुआ यावत् निकला । फिर ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशालक नामक उद्यान के निकट आया और ज्यों ही उसने तीर्थकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयों को देखा, त्यों ही हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली उस

शिबिका को ठहराया और स्वयं उस सहस्रपुरुषवाहिनी शिबिका से नीचे उतरा । क्षत्रियकुमार जमालि को आगे करके उसके माता-पिता, जहाँ श्रमण भगवान् महावर विराजमान थे, वहाँ उपस्थित हुए और दाहिनी ओर से तीन वार प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दना-नमस्कार करके कहा-भगवन् ! यह क्षत्रियकुमार जमालि, हमारा इकलौता, इष्ट, कान्त और प्रिय पुत्र है । यावत्-इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो दर्शन दुर्लभ हो, इसमें कहना ही क्या ! जैसे कोई कमल, पद्म या यावत् सहस्रदलकमल कीचड़ में उत्पन्न होने और जल में संवर्द्धित होने पर भी पंकरज से लिप्त नहीं होता, न कलकण से लिप्त होता है; इसी प्रकार क्षत्रियकुमार जमालि भी काम भी काम में उत्पन्न हुआ, भोगों में संवर्द्धित हुआ; किन्तु काम में रंचमात्र भी लिप्त नहीं हुआ और न ही भोग के अंशमात्र से लिप्त हुआ और न यह मित्र, ज्ञाति, निज-सम्बन्धी, स्वजन-सम्बन्धी और परिजनों में लिप्त हुआ है । हे देवानुप्रिय ! यह संसार-भय से उद्विग्न हो गया है, यह जन्म-मरण के भय से भयभीत हो चुका है । अतः आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो कर, अगारवास छोड़ कर अनगार धर्म में प्रव्रजित हो रहा है । इसलिए हम आप देवानुप्रिय को यह शिष्यभिक्षा देते हैं । आप देवानप्रिय ! इस शिष्य रूप भिक्षा को स्वीकार करें ।

इस पर श्रमण भगवान् महावीर ने उस क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा-''हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।'' भगवान् के ऐसा कहने पर क्षत्रियकुमार जमालि हर्षित और तुष्ट हुआ; तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा कर यावत् वन्दना-नमस्कार कर, ईशानकोण में गया । वहाँ जा कर उसने स्वयं ही आभूषण, माला और अलंकार उतार दिये । तत्पश्चात् जमालि क्षत्रियकुमार की माता ने उन आभूषणों, माला एवं अलंकारों को हंस के चिह्न वले एक पटशाटक में ग्रहण कर लिया और फिर हार, जलधारा इत्यादि के समान यावत् आंसू हुई अपने पुत्र से इस प्रकार बोली-हे पुत्र! संयम में चेष्टा करना, पुत्र ! संयम में यत्न करना; हे पुत्र ! संयम में पराक्रम करना । इस विषय में जरा भी प्रमाद न करना । इस प्रकार कह कर क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस चले गए ।

इसके पश्चात् जमालिकुमार ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया, फिर श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ और ऋषभदत्त ब्राह्मण की तरफ भगवान् के पास प्रव्रज्या अंगीकार की । विशेषता यह है कि जमालि क्षत्रियकुमार ने ५०० पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की, शेष सब वर्णन पूर्ववत् है, यावत् जमालि अनगार ने सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत-से उपवास, बेला, तेला, यावत अर्द्धमास, मासख्मण इत्यादि विचित्र तपःकर्मोः से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा ।

सूत्र - ४६६

तदनन्तर एक दिन जमालि अनगार श्रमण भगवान् महावीर के पास आए और भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले-भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं पांच सौ अनगारों के साथ इस जनपद से बाहर विहार करना चाहता हूँ । यह सुनकर श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार की इस बात को आदर नहीं दिया, न स्वीकार किया । वे मौन रहे । तब जमालि अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर से दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा-भंते ! आपकी आज्ञा मिल जाए तो मैं पांच सौ अनगारों के साथ अन्य जनपदों में विहार करना चाहता हूँ । जमालि अनगार के दूसरी बार और तीसरी बार भी वही बात कहने पर श्रमण भगवान् महावीर ने इस बात का आदर नहीं किया, यावत् वे मौन रहे । तब जमालि अनगार ने श्रमण मगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और फिर उनके पास से, बहुशालक उद्यान से निकला और फिर पांच सौ अनगारों के साथ बाहर के जनपदों में विचरण करने लगा ।

उस काल उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी । (वर्णन) वहाँ कोष्ठक नामक उद्यान था, उसका और वनखण्ड तक का वर्णन (जान लेना चाहिए) । उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी । (वर्णन) वहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था । (वर्णन) तथा यावत् उसमें पृथ्वीशिलापट्ट था । एक बार वह जमालि अनगार, पांच सौ

अनगारों के साथ संपरिवृत्त होकर अनुक्रम से विचरण करता हुआ और ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ श्रावस्ती नगरी में जहाँ कोष्ठक उद्यान था, वहाँ आया और मनियों के कल्प के अनुरुप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा ।

उधर श्रमण भगवन महावीर भी एक बार अनुक्रम से विचरण करते हुए यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहाँ चम्पानगरी थी और पूर्णभद्र नामक चैत्य था, वहाँ पधारे; तथा श्रमणों के अनुरुप अवग्रह ग्रहण संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे । उस समय जमालि अनगार को अरस, विरस, अन्त, प्रान्त, रूक्ष और तुच्छ तथा कालातिक्रान्त और प्रामणातिक्रान्त एवं ठंडे पान और भोजनों से एक बार शरीर में विपुल रोगातंक उत्पन्न हो गया । वह रोग उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, चण्ड, दुःख रूप, कष्टसाध्य, तीव्र और दुःसह था । उसका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त होने के कारण दाह से युक्त हो गया था ।

वेदना से पीड़ित जमालि अनगार ने तब श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुला कर उनसे कहा-हे देवानुप्रियो ! मेरे सोने के लिए तुम संस्तारक बिछा दो । तब श्रमण-निर्ग्रन्थो ने जमालि अनगार की यह बात विनय-पूर्वक स्वीकार की और जमालि अनगार के लिए बिछौना बिछाने लगे । किन्तु जमालि अनगार प्रबलतर वेदना से पीड़ित थे, इस लिए उन्होने दुबारा फिर श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुलाया और उनसे इस प्रकार पूछा-देवानुप्रियो ! क्या मेरे सोने के लिए संस्तारक बिछा दिया या बिछा रहे हो ? इसके उत्तर में श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय के सोने के लिए बिछौना बिछा नहीं, बिछाया जा रहा है ।

श्रमणों की यह बात सुनने पर जमालि अनगार के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि चलमान चलित है, उदीर्यमाण उदीरित है, यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण है, यह कथन मिथ्या है; क्योंकि यह प्रत्यक्ष दीख रहा है कि जब तक शय्या-संस्तारक बिछाया गया नहीं है, इस कारण 'चलमान' 'चलित नहीं, किन्तु 'अचलित' है, यावत् 'निर्जीर्यमाण' 'निर्जीर्ण' नहीं, किन्तुं 'अनिर्जीण' है । इस प्रकार विचार कर श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'चलमान' 'चलित' है; यावत् (वस्तुतः) निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नहीं, किन्तु अनिजीर्ण है ।

जमालि अनगार द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर यावत् प्ररूपणा किये जाने पर कई श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस (उपर्युक्त) बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की तथा कितने ही श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस बात पर श्रद्धा, प्रतीत एवं रुचि नहीं की । उनमें से जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि की, वे जमालि अनगार को आश्रय करके करके विचरण करने लगे और जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की, वे जमालि अनगार के पास से, कोष्ठक उद्यान से निकल गए और अनुक्रम से विचरते हुए एवं ग्रामनुग्राम विहार करते हुए, चम्पा नगरी के बाहर जहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास पहूँचे । उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की, फिर वन्दना-नमस्कार करके वे भगवान् का आश्रय स्वीकार कर विचरने लगे ।

सूत्र - ४६७

तदन्तर किसी समय जमालि-अनगार उक रोगातंक से मुक्त और हृष्ट हो गया तथा नीरोग और बलवान् शीर वाला हुआ; तब श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकला और अनुक्रम से विचरण करता हुआ एवं ग्रामनुग्राम विहार करता हुआ, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, जिसमें कि श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उनके पास आया । वह भगवान् महावीर से न तो अत्यन्त दूर और न अतिनिकट खड़ा रह कर भगवान् से इस प्रकार कहने लगा-जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के बहुत-से शिष्य छद्मस्थ रह कर छद्मस्थ अवस्था में ही निकल कर विचरण करते हैं, उस प्रकार मैं छद्मस्थ रह कर छद्मस्थ अवस्था में निलक कर विचरण नहीं करता; मैं उत्पन्न हुए केवलज्ञान-केवलदर्शन को धारण करने वाला अर्हत्, जिन, केवली हो कर केवली विहार से विचरण कर रहा हूँ ।

इस पर भगवान् गौतम ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा-हे जमालि ! केवली का ज्ञान या दर्शन पर्वत, स्तम्भ अथवा स्तूप आदि से अवरुद्ध नहीं होता और न इनसे रोका जा सकता है । तो हे जमालि ! यदि तुम उत्पान्न केवलज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन और केवली हो कर केवली रूप से उपक्रमण (गुरुकुल से निर्गमन) करके विचरण कर रहे हो तो इन दो प्रश्नों का उत्तर दो-लोक शाश्वत है या आशाश्वत है ? एवं जीव शाश्वत है अथवा आशाश्वत है ? भगवन् गौतम द्वारा इस प्रकार जमालि अनगार से कहे जाने पर वह (जमालि) शंकित एवं कांक्षित हुआ, यावत् कलुषित परिणाम वाला हुआ । वह भगवान् गौतमस्वामी को किञ्चित् भी उत्तर देने में समर्थ न हुआ। वह मौन होकर चुपचात खरा रहा ।

(तत्पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार को सम्बोधित करके यों कहा-जमालि ! मेरे बहुत-से श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तेवासी छद्मनस्थ हैं जो इन प्रश्नों का उत्तर देने में उसी प्रकार समर्थ हैं, जिस प्रकार मैं हूँ, फिर भी इस प्रकार की भाषा वे नहीं बोलते । जमालि ! लोक शाश्वत है, क्योंकि यह कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं और कभी न रहेगा, ऐसा भी नहीं है; किन्तु लोक था, है और रहेगा । यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय अवस्थित ओर नित्य है । हे जमालि ! लोक अशाश्वत (भी) है, क्योंकि अवसर्पिणी काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है, फिर उत्सर्पिणी काल होकर अवसर्पिणी काल होता है । हे जमालि ! जीव शाश्वत है; क्योंकि जीव कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और कभी नहीं रहेगा, ऐसा भीं नहीं है; इत्यादि यावत् जीव नित्य है । हे जमालि ! जीव अशाश्वत (भी) है, क्योंकि वह नैरयिक होकर तिर्यञ्चयोनिक हो जाता है, तिर्यञ्चयोनिक होकर मनुष्य हो जातपा है और मनुष्य हो कर देव हो जाता है ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा जमालि अनगार को इस प्रकार कहे जाने पर, यावत् प्ररूपित करने पर भी उसने इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की और श्रमण भगवान् महावीर की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं करता हुआ जमालि अनगार दूसरी बार भी स्वयं भगवान् के पास से चला गया । इस प्रकार भगवान् से स्वयं पृथक विचरण करके जमालि ने बहुत-से असद्भूत भावों को प्रकट करके तथा मिथ्यात्व के अभिनिवेशों से अपनी आत्मा को, पर को तथा उभय को भ्रान्त करते हुए एवं मिथ्याज्ञानयुक्त करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन किया । अन्त में अर्द्धमास की संलेखना द्वारा अपने शरीर को कृश करके तथा अनशन द्वारा तीस भक्तों का छेदन करके, उस स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय में काल करके लान्तककल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देवरूप में उत्पन्न हुआ ।।

सूत्र - ४६८

जमालि अनगार को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर के पास आए और वन्दना नमस्कार करके पूछा-भगवन् ! यह निश्चित है कि जमालि अनगार आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य था भगवन् ! वह जमालि अनगार काल के समय काल करके कहाँ उत्पन्न हुआ है ? श्रमण भगवानम् महावीर ने भगवान् गौतमस्वामी से कहा-गौतम ! मेरा अन्तेवासी जमालि नामक अनगार वासत्तव में कुशिष्य था । उस समय मेरे द्वारा कहे जाने पर यावत् प्ररूपित किये जाने पर उसने मेरे कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की थी । उस कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करता हुआ दुसरी बार भी वह अपने आप मेरे पास से चला गया और बहुत-से असदभावों के प्रकट करने से, इत्यादि पूर्वोक्त कारणों से यावत् वह काल के समय काल करके किल्विषिक देवरूप उत्पन्न हुआ है

सूत्र - ४६९

भगवन् ! किल्विषिक देव कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! तीन प्रकार के-तीन पल्योपम की स्थिति वाले, तीन सागरोपम की स्थिति वाले और तेरह सागरोपम की स्थिति वाले ! भगवन् ! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! ज्योतिष्क देवों के ऊपर और सौधर्म-ईशान कल्पों के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं । भगवन् ! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! सौधर्म और ईशान कल्पों के ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के नीचे तीन सागरोपम की स्थिति वाले देव रहते हैं

भगवत् ! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विविषक देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! ब्रह्मलोककल्प के ऊपर तथा लान्तककल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं ।

भगवन् ! किन कर्मों के आदान से किल्विषिकदेव, किल्विषिकदेव के रूप में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जो जीव आचार्य और उपाध्याय क अशय करने वाले, अवर्णवाद बोलने वाले और अकीर्ति करने वाले हैं तथा बहुत से असत्य भावों को प्रकट करने से, मिथ्यात्व के अभिनिवेशों से अपनी आत्मा को, दूसरों को और स्व-पर दोनो को भ्रान्त और दुर्बोध करने वाले बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करके उस अकार्य स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना काल करके तीन में (से) किन्हीं किल्विषिकदेवों में किल्विषिकदेव रूप में उत्पन्न होते हैं । तीन पल्योपम की स्थीत वालों में, तीन सागरोपम की स्थिति वालों में, अथवा तेरह सागरोपम की स्थिति वालों में । भगवन्! किल्विषिक देव उन देवलोकों से आयु का क्षय होने पर, भवक्षय होने पर और स्थिति का क्षय होने के बाद च्यवकर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?, गौतम ! कुछ किल्विषिकदेव, नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के चार-पांच भव करके और इतना संसार-परिभ्रमण करके तत्पश्चात् सिद्धबुद्ध होते हैं, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते हैं और कितने ही किल्विषिकदेव अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले चार गतिरूप संसार-कान्तार में परिभ्रमण करते हैं

भगवन् ! क्या जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, रूक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरसजीवी यावत् तुच्छजीवी, उपशान्तजीवी, प्रशान्तजीवी और विविक्तजीवो था ? हाँ, गौतम ! जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्तजीवी था । भगवन् ! यदि जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विकिक्तजीवी था, तो काल के समय काल करके वह लान्तककल्प में तेरह सागरोपम की स्थीत वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव के रूप में क्यों उत्पान्न हुआ ? गौतम ! जमालि अनगार आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक तथा आचार्य और उपाध्याय का अपयश करने वाला और उनका अवर्णवाद करने वाला था, यावत् वह मिथ्याभिनिवेश द्वारा अपने आपको, दूसरों को और उभय को भ्रान्ति में डालने वाला और दुर्विदग्ध बनाने वाला था, यावत् बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिक संलेखना से शरीर को कृश करके तथा तीस भक्त का अनशन द्वारा छेदन कर उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही, उसने काल के समय काल किया, जिससे वह लान्तक देवलोक में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देवरूप में उत्पन्न हुआ ।

सूत्र - ४७०

भगवन् ! वह जमालि देव उस देवलोक से आयु क्षय होते पर यावत् कहाँ उत्पान्न होगा ? गौतम ! तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव के पांच भव ग्रहण करके और इतना संसार-परिभ्रमण करके तत्पश्चात् वह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् सर्वदुःखों का अन्त करेगा । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-९, उद्देशक-३४

सूत्र - ४७१

उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । वहाँ भगवान् गौतम ने यावत् भगवान् से पूछा-भगवन् ! कोई पुरुष पुरुष की घात करता हुआ क्या पुरुष की ही घात करता है अथवा नोपुरुष की भी घात करता है ? गौतम ! वह पुरुष का भी घात करता है और नोपुरुष का । भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है ? गौतम ! उस पुरुष के मन में ऐसा विचार होता है कि मैं एक ही पुरुष को मारता हूँ; किन्तु वह एक पुरुष को मारता हुआ अन्य अनेक जीवों को भी मरता है । इसी दृष्टि से ऐसा कहा जाता है ।

भगवन् ! अश्व को मारता हुआ कोई पुरुष क्या अश्व को ही मारता है या नो अश्व मारता है ? गौतम ! वह अश्व को मारता है और नोअश्व को भी मारता है । भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! इसका उत्तर पूर्ववत् समझना चाहिए । इसी प्रकार हाथी, सिंह, व्याघ्र चित्रल तक समझना चाहिए ।

भगवन् ! कोई पुरुष किसी एक त्रस प्राणी को मारता हुआ क्या उसी त्रसप्राणी को मारता है, अथवा उसके

अन्य त्रसप्राणियों को भी मारता है। गौतम ! वह उस त्रसप्राणी को भी मारता है और अन्य त्रसप्राणियों को भी मारता है। भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि वह पुरुष उस त्रसजीव को भी मारता है और अन्य त्रसजीवों को भी मार देता है। गौतम ! उस त्रसजीव को मारने वाले पुरुष के मन में ऐसा विचार होता है कि मैं उसी त्रसजीव को मार रहा हूँ, किन्तु वह उस त्रसजीव को मारता हुआ, उसके सिवाय अन्य अनेक त्रसजीवों को भी मारता है। इसलिए, हे गौतम ! ऐसा कहा है।

भगवन् ! कोई पुरुष ऋषि को मारता हुआ क्या ऋषि को ही मारता है, अथवा नोऋषि को भारता है ? गौतम ! वह ऋषि को भारता है, नोऋषि को भी मारता है। भगवन् ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! ऋषि को मारने वाले उस पुरुष के मन में ऐसा विचार होता है कि मैं एक ऋषि को मारता हूँ; किन्तु वह एक ऋषि को मारता हुआ अनन्त जीवों को मारता है। इस कारण है गौतम ! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

भगवन् ! पुरुष को मारता हुआ कोई भी व्यक्ति क्या पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा नोपुरुष-वैर से स्पष्ट भी होता है ? गौतम ! वह व्यक्ति नियम से परुषुवैर से स्पष्ट होता ही है। अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुषवैरों से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार अश्व से लेकर यावत् चित्रल के विषय में भी जानना चाहिए; यावत् अथवा चित्रलवैर से और नोचित्रलवैरों से स्पृष्ट होता है। भगवन् ! ऋषि को मारता हुआ कोई षुरुष क्या ऋषिवैर से स्पृष्ट होता है, या नोऋषिवैर से स्पृष्ट होता है ? गौतम ! वह नियम से ऋषिवैर और नोऋषिवैरों से स्पृष्ट होता है।

सूत्र - ४७२

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है ? हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है। भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को यावत् श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को ग्रहण करता और छोड़ता है। इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव को भी यावत् ग्रहण करता और छोड़ता है।

भगवन् ! अप्कायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं ? गौतम ! पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए। भगवन् ! अप्कायिक जीव, अप्कायिक जीव को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? (हाँ, गौतम !) पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए। इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के विषय में भी जानना चाहिए।

मगवन् ! तेजस्कायिक जीव पृथ्वीकायिकजीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? (गौतम !) यह सब पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिए।

भगवन् पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होत है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रियावाले, कदाचित् चार क्रियावाले और कदाचित् पांच क्रियावाले होते है। भगवन् ! पृथ्वीकायिका जीव, अप्कायिक जीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ? हे गौतम ! पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना। इसी प्रकार अप्कायिक जीवों के साथ, तथा इसी प्रकार तेजस्कायिक जीवो के साथ तथा इसी प्रकार ही वायुकायिकजीवों के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि का कथन करना।

भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीवों को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छवास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रियावाले होते हैं।

सूत्र - ४७३

भगवन् ! वायुकायिक जीव, वृक्ष के मूल को कंपाते हुरए और गिराते हुए कितनी क्रिया वाले होते है ? गौतम!

वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं । इसी प्रकार कंद को कंपाते आदि के सम्बन्ध में जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत् बीज कंपाते या गिराते हुए आदि की क्रिया से सम्बन्धित प्रश्न । गौतम ! वे कदाचित तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले, कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक-१०

सूत्र - ४७४

दशवें शतक के चौंतीस उद्देशक इस प्रकार हैं - दिशा, संवृतअनगार, आत्मऋद्धि, श्यामहस्ती, देवी, सभा और उत्तरवर्ती अट्ठाईस अन्तर्द्वीप

शतक-१०, उद्देशक-१

सूत्र - ४७५

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा - भगवन् ! यह पूर्वदिशा क्या कहलाती है ? गौतम! यह जीवरूप भी है और अजीवरूप भी है । भगवन् ! पश्चिमदिशा क्या कहलाती है ? गौतम ! यह भी पूर्वदिशा के समान जानना । इसी प्रकार दक्षिणदिशा, उत्तरदिशा, उर्ध्वदिशा और अधोदिशा के विषय में भी जानना चाहिए ।

भगवन् ! दिशाएँ कितनी कही गई हैं ? गौतम ! दिशाएँ दस कही गई है । वे इस प्रकार हैं - पूर्व, पूर्व-दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, पश्चिमोत्तर, उत्तर, उत्तरपूर्व, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा । भगवन् ! इन दस दिशाओं के कितने नाम कहे गए हैं ? गौतम ! (इनके) दस नाम हैं, - ऐन्द्री (पूर्व), आग्नेयी, याम्या (दक्षिण), नैऋती, वारुणी (पश्चिम), वायव्या, सौम्या (उत्तर), ऐशानी, विमला (ऊर्ध्वदिशा) और तमा (अधोदिशा) ।

भगवन ! ऐन्द्री पूर्व दिशा जीवरूप है, जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप है, अथवा अजीवरूप है, अजीव के देशरूप है या अजीव के प्रदेशरूप है ? गौतम ! वह जीवरूप भी है, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह अजीवप्रदेशरूप भी है । उसमें जो जीव हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, यावत् पंचेन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय हैं । जो जीव के देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय यावत् अनिन्द्रिय जीव के देश हैं । जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः ऐकेन्द्रिय यावत् अनिन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं । उसमें जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के हैं, यता-रूपी अजीव और अरूपी अजीव । रूपी अजीवों के चार भेद हैं यथा-स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणुपुद्गल । जो अरूपी अजीव हैं, वे सात प्रकार के हैं, यथा-धर्मास्तिकाय नहीं किन्तु धर्मास्तिकाय का देश हैं, अधर्मास्थिकाय के प्रदेश और अद्धामय अर्थात् काल है ।

भगवन् ! अग्नेयीदिशा क्या जीवरूप है, जीवदेशरूप है, अथवा जीवप्रदेशरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न । गौतम ! वह जीवरूप नहीं, किन्तु जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप भी है तथा अजीवरूप है और अजीव के प्रदेशरूप भी है । इसमें जीव के जो देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और द्वीन्द्रिय का एक देश हैं १, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश एवं द्वीन्द्रियों के बहुत देश हैं २; अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत देश हैं ३. एकेन्द्रियों के बहुत देश और एक त्रीन्द्रिय का एक देश है १. इसी प्रकार से पूर्ववत् त्रीन्द्रिय के साथ तीन भंग कहने चाहिए । इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय तक के भी क्रमशः तीन-तीन भंग कहने चाहिए । इसमें जीव के जो प्रदेश हैं, वे नियम से एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं । अथवा एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश और बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत प्रदेश हैं । इसी प्रकार सर्वत्र प्रथम भंग को छोड़ कर दो-दो भंग जानने चाहिए, यावत् अनिन्द्रिय तक इसी प्रकार कहना चाहिए । अजीवों के दो भेद हैं, यथा-रूपी अजीव और अरूपी अजीव । जो रूपी अजीव हैं, वे चार प्रकार के हैं, यथा-स्कन्ध से लेकर यावत् परमाणु पुद्गल तक । अरूपी अजीव सात प्रकार के हैं, यथा-धर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय नहीं, किन्तु आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय ।

भगवन् ! याया (दक्षिण)-दिशा क्या जीवरूप है ? इत्यादि प्रश्न । (गौतम !) ऐन्द्रीदिशा के समान जानना । नैर्ऋती विदिशा को आग्नेयी विदिशा के समान जानना । वारुणी (पश्चिम)-दिशा को ऐन्द्रीदिशा के समान जानना । वायव्या विदिशा आग्नेयी के समान है । सौम्या (उत्तर)-दिशा ऐन्द्रीदिशा के समान जान लेना । ऐशानी आग्नेयी के समान जानना । विमला (ऊर्ध्व)-दिशा में जीवों का कथन आग्नेयी के समान है तथा अजीवों का कथन ऐन्द्रीदिशा के

समान है । इसी प्रकार तमा (अधोदिशा) को भी जानना । विशेष इतना कि तमादिशा में अरूपी-अजीव के ६ भेद ही हैं, वहाँ अद्धासमय नहीं है । अतः अद्धासमय का कथन नहीं किया गया ।

सूत्र - ४७७

भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! पांच प्रकार के औदारिक, यावत् कार्मण । भगवन् औदारिक शरीर कितने प्रकार का है ? अवगाहन-संस्थान-पद समान अल्पबहुत्व तक जानना । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

शतक-१०, उद्देशक-२

सूत्र - ४७७

राजगृह में यावत् गौतमस्वामी ने पूछा-भगवन् ! वीचिपथ में स्थित होकर सामने के रूपों को देखते हुए, पार्श्ववर्ती ऊपर के एवं नीचे के रूपों का नरीक्षण करते हुए संवृत अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! वीचिपथ में स्थित हो कर सामने के रूपों को देखते हुए यावत् नीचे के रूपों का अवलोकन करते हुए संवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है । भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है ? गौतम ! किसके क्रोध, मान, माया एवं लोभ व्युच्छिन्न हो गए हों, उसी को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है; इत्यादि सब कथन सप्तम शतक के प्रथक उद्देशक में कहे अनुसार, यह संवृत अनगार सूत्रविरुद्ध आचरण करता है; यहाँ तक जानना चाहिए । इसी कारण हे गौतम ! कहा गया कि यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

भगवन् ! अवीचिपथ में स्थित संवृत अनगार को सामने के रूपो को निहारते हुए यावत् नीचे के रूपों का अवलोकन करते हुए क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?; इत्यादि प्रश्न । गौतम ! अकषायभाव में स्थित संवृत अनगार को उपर्युक्त रूपों का अवलोकन करते हुए ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है । भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! सप्तम शतक के सप्तम उद्देशक में वर्णित-ऐसा जो संवृत अनगार यावत् सूत्रानुसार आचरण करता है; इसी कारण मैं कहता हूँ, यावत् साम्परायिक क्रिया नहीं लगती ।

सूत्र - ४७८

भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार-शीत, उष्ण, शीतोष्ण । यहाँ योनिपद कहना चाहिए ।

सूत्र - ४७९

भगवन् ! वेदना कितने प्रकार की कही गई है । गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है । यथा-शीता, उष्णा और शीतोष्णा यहाँ वेदनापद कहना चाहिए, यावत्-'भगवन् ! क्या नैरयिक जीव दुःखरूप वेदना वेदते हैं, या सुखरूप वेदना वेदते हैं, अथवा अदुःख-असुखरूप वेदना वेदते हैं ? हे गौतम ! नैरयिक जीव दुःखरूप वेदना भी वेदते हैं, सुखरूप वेदना भी वेदते हैं और अदुःख-असुखरूप वेदना भी वेदते हैं ।

सूत्र - ४८०

भगवन् ! मासिक भिक्षुप्रतिमा जिस अनगार ने अंगीकार की है तथा जिसने शीरर का त्याथ कर दिया है और काया का सदा के लिए व्युत्सर्ग कर दिया है, इत्यादि दशाश्रुतस्कन्ध में बताए अनुसार मासिक भिक्षु प्रतिमा सम्बन्धी समग्र वर्णन करना ।

सूत्र - ४८१

कोई भिक्षु किसी अकृत्य का सेवन करके यदि उस अकृत्यस्थान की आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है तो उसके आराधना नहीं होती । यदि वह भिक्षु उस सेवित अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है । कदाचित् किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया, किन्तु बाद में उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हो कि मैं अपने अन्तिम समय में इस अकृत्यस्थान की

आलोचना करूंगा यावत् तपरूप प्रायश्चित स्वीकार करुंगा; परन्तु वह उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रिमण किये बिना ही काल करे तो उसके आराधना नहीं होती । यदि वह आलोचन और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है ।

कदाचित् किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया हो ओर उसके बाद उसके मन में यह विचार उत्पन्न हो कि श्रमणोपासक भी काल के अवसर पर काल करके किन्ही देवलोकों में उत्पन्न हो जाते हैं, तो क्या मैं अणपन्निक देवत्व भी प्राप्त नहीं कर सकूंगा ?, यह सोच कर यदि वह उस अकृत्य स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल करे तो उसके आराधना नहीं होती । यदि वह आलोचना और प्रतिक्रमण करके करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक–१०, उद्देशक–३

सूत्र - ४८२

राजगृह नगर में यावत् पूछा-भगवद् ! देव क्या आत्मऋद्धि द्वारा यावत् चार-पांच देवावासान्तरों का उल्लंघन करताहै और इसके पश्चात् दूसरी शक्ति द्वारा उल्लंघन करता है ? हाँ, गौतम ! देव आत्मशक्ति से यावत् चार-पांच देवासों का उल्लंघन करता है और उसके उपरान्त (वैक्रिय) शक्ति द्वारा उल्लंघन करता है । इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी समझना । विशेष यह कि वे असुरकुमारों के आवासों का उल्लंघन करते हैं । शेष पूर्ववत् । इसी प्रकार स्तनितकुमारपर्यन्त जानना । इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवपर्यन्त जानना यावत् वे आत्मशक्ति से चार-पांच अन्य देवावासों का उल्लंघन करते है; इसके उपरान्त परऋद्धि से उल्लंघन करते हैं ।

भगवन् ! अल्पऋद्धिकदेव, महर्द्धिकदेव के बीच में हो कर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! समर्द्धिक देव समर्द्धिक देव के बीच में से हो कर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है; परन्तु यदि वह प्रमत्त हो तो जा सकता है । भगवन् ! क्या वह देव, उस को विमोहित करके जा सकता है, या विमोहित किये विना ? गौतम ! वह देव, विमोहित करके जा सकता है, विमोहित किये विना नहीं । भगवन् ! वह देव, उस देव को पहले विमोहित करके बाद में जाता है, या पहले जा कर बाद में विमोहित करता है ? गौतम ! पहले उसे विमोहित करता है और बाद में जाता है, परन्तु पहले जा कर बाद में विमोहित नहीं करता ।

भगवन् ! क्या महर्द्धिक देव, अल्पऋद्धिक देव के बीचोंबीच में से हो कर जा सकता है ? हाँ, गौतम ! जा सकता है । भगवन् ! वह महर्द्धिक देव, उस अल्पऋद्धिक देव को विमोहित करके जाता है, अथवा विमोहित किये बिना जाता है ? गौतम ! वह विमोहित करके भी जा सकता है और विमोहित किये बिना भी जा सकता है । भगवन् ! वह महर्द्धिक देव, उसे पहले विमोहित करके बाद में जाता है, अथवा पहले जा कर बाद में विमोहित करता है ? गौतम! वह महर्द्धिक देव, पहले उसे विमोहित करके बाद में भी जा सकता है और पहले जा कर बाद में भी विमोहित कर सकता है ।

भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक असुरकुमार देव, महर्द्धिक असुरकुमार देव के बीचोंबीच में से हो कर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । इसी प्रकार सामान्य देव की तरह असुरकुमार के भी तीन आलापक कहना । इस प्रकार स्तनितकुमार तक तीन-तीन आलापक कहना । वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में भी ऐसे भी जानना ।

भगवन् ! क्या अल्प-ऋद्धिक देव, महर्द्धिक देवी के मध्य में से हो कर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । भगवन् ! क्या समर्द्धिक देव, समर्द्धिक देवी के बीचोंबीच में से कर जा सकता है ? गौतमम ! पूर्वोक्त प्रकार से देव के साथ देवी का भी दण्डक वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी, महर्द्धिक देव के मध्य में से हो कर जा सकती है? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । इस प्रकार यहाँ भी यह तीसरा दण्डक कहना चाहिए यावत्-भगवन् ! महर्द्धिक वैमानिक देवी, अल्प-ऋद्धिक वैमानिक देव के बीच में से होकर जा सकती है ? हाँ, गौतम ! जा सकती है । भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी महर्द्धिक

देवी के मध्य में से होकर जा सकती है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । इसी प्रकार सम-ऋद्धिक देवी का सम-ऋद्धिक के साथ पूर्ववत् आलापक कहना चाहिए । महर्द्धिक देवी का अल्प-ऋद्धिक देवी के साथ आलापक कहना चाहिए ।

इसी प्रकार एक-एक के तीन-तीन आलापक कहने चाहिए; यावत्-भगवन् ! वैमानिक महर्द्धिक देवी, अल्प-ऋद्धिक वैमानिक देवी के मध्य में होकर जा सकती है ? हाँ गौतम ! जा सकती है; यावत्-क्या वह महर्द्धिक देवी, उसे विमोहित करके जा सकती है या विमोहित किए बिना भी जा सकती है ? थता पहले विमोहित करके बाद में जाती है, अथवा पहले जा कर बाद में विमोहित करती है ? हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप से कि पहले जाती है और पीछे भी विमोहित करती है; तक कहना चाहिए । इस प्रकार के चार दण्डक कहने चाहिए ।

सूत्र - ४८३

भगवान् ! दौड़ता हुआ घोड़ा 'खु-खु' शब्द क्यों करता है ? गौतम ! जब घोड़ा दौड़ता है तो उसके हृदय और यकृत् के बीच में कर्कट नामक वायु उत्पन्न होती है, इससे दौड़ता हुआ घोड़ा 'खु-खु' शब्द करता है ।

सूत्र - ४८४-४८६

इन बारह प्रकार की भाषाओं में 'हम आश्रय करेंगे, शयन करेगें, खड़े रहेंगे, बैठेंगे और लेटेंगे' इत्यादि भाषण करना क्या प्रज्ञापनी भाषा कहलाती है और ऐसा भाषा मृषा नहीं कहलाती है ? हाँ, गौतम ! यह आश्रय करेंगे, इत्यादि भाषा प्रज्ञापनी भाषा है, यह भाषा मृषा नहीं है । हे, भगवान् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है!

आमंत्रणी, आज्ञापनी, याचनी, पृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, इच्छानुलोमा । अनभिगृहीता, अभिगृहीता, संशयकरणी, व्याकृता और अव्याकृता ।

शतक-१० – उद्देशक-४

सूत्र - ४८७

उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था (वर्णन) वहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था । वहाँ श्रमण भगवान महावीर का समवसरण हुआ यावत् परीषद् आई और वापस लौट गई । उस काल और उस समय में, श्रमण भगवान महावीरस्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार थे । वे ऊर्ध्वजानु यावत् विचरण करते थे । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के एक अन्तेवासी थे–श्यामहस्ती नामक अनगार । वे प्रकृतिभद्र, प्रकृतिविनीत, यावत् रोह अनगार के समान ऊर्ध्वजानु, यावत् विचरण करते थे । एक दिन उन श्यामहस्ती नामक अनगार को श्रद्धा यावत् अपने स्थान से उठे और उठकर जहाँ भगवान गौतम विराजमान थे, वहाँ आए । भगवान गौतम के पास आकर वन्दना–नमस्कार कर यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछने लगे–

भगवन् ! क्या असुरकुमारों के राजा, असुरकुमारों के इन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हाँ, हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? हे श्यामहस्ती ! उस काल उस समय में इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में काकन्दी नामकी नगरी थी । उस काकन्दी नगरी में सहायक तैंतीस गृहपति श्रमणोपासक रहते थे । वे धनाढ्य यावत् अपरिभूत थे । वे जीव-अजीव के ज्ञाता एवं पुण्यपाप को हृदयंगम किए हुए विचरण करते थे । एक समय था, जब वे परस्पर सहायक गृहपति श्रमणोपासक पहले उग्र, उग्र-विहारी, संविग्न, संविग्नविहारी थे, परन्तु तत्पश्चात् वे पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, यथाच्छन्द और यथाच्छन्द-विहारी हो गए । बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन कर, अर्धमासिक संलेखना द्वारा शरीर का कृश करके तथा तीस भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके, उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल के अवसर पर काल कर वे असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए हैं ।

(श्यामहस्ती गौतमस्वामी से)–भगवन् ! जब वे काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तैंतीस गृहपति श्रमणोपासक असुरराज चमर के त्रायस्त्रिंशक-देवरूप में उत्पन्न हुए हैं, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि असुरराज असुरेन्द्र चमर के (ये) तैंतीस देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? तब गौतमस्वामी शंकित, कांक्षित एवं विचिकित्सक हो गए । वे वहाँ से उठे और श्यामहस्ती अनगार के साथ जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आए । श्रमण भगवान

महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और पूछा-

भगवन् ! क्या असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? इत्यादि प्रश्न । पूर्वकथित त्रायस्त्रिंशक देवों का वृत्तान्त कहना यावत् वे ही चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए । भगवन् ! जब से वे त्रायस्त्रिंशक देवरूप में उत्पन्न हुए हैं क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं; असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के नाम शाश्वत कहे गए हैं । इसलिए किसी समय नहीं थे, या नहीं हैं, ऐसा नहीं है और कभी नहीं रहेंगे, ऐसा भी नहीं है । यावत् अव्युच्छित्ति नय की अपेक्षा से वे नित्य हैं, पहले वाले च्यवते हैं और दूसरे उत्पन्न होते हैं

भगवन् ! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में बिभेल नामक एक सन्निवेश था । उस बिभेल सन्निवेश में परस्पर सहायक तैंतीस गृहस्थ श्रमणोपासक थे; इत्यादि वर्णन चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशकों के समान ही जानना, यावत् वे त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए । शेष पूर्ववत् । वे अव्युच्छिति-नय की अपेक्षा नित्य हैं । पुराने च्यवते रहते हैं, दूसरे उत्पन्न होते रहते हैं ।

भगवन् ! क्या नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? गौतम ! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक देवों के नाम शाश्वत कहे गए हैं । वे किसी समय नहीं थे, ऐसा नहीं है; नहीं रहेंगे-ऐसा भी नहीं; यावत् पुराने च्यवते हैं और नए उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार भूतानन्द इन्द्र, यावत् महाघोष इन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों के विषय में जानना ।

भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? इत्यादि प्रश्न । हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं ? गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के, भारतवर्ष में पलाशक सन्निवेश था । उस सन्निवेश में परस्पर सहायक तैंतीस गृहपति श्रमणोपासक रहते थे, इत्यादि सब वर्णन चमरेन्द्र के त्राय-स्त्रिंशकों के अनुसार करना, यावत् विचरण करते थे । वे तैंतीस परस्पर सहायक गृहस्थ श्रमणोपासक पहले भी और पीछे भी उग्र, उग्रविहारी एवं संविग्न तथा संविग्नविहारी होकर बहुत वर्षों तक श्रमणोपासकपर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना से शरीर को कृश करके, साठ भक्त का अनशन द्वारा छेदन करके, अन्तमें आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल के अवसर पर समाधिपूर्वक काल करके यावत् शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए । भगवन् ! जब से वे बालाक निवासी परस्पर सहायक गृहपति श्रमणोपासक शक्र के त्रायस्त्रिंशकों रूप में उत्पन्न हुए, क्या तभी से शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? इत्यादि प्रश्न समग्र वर्णन पुराने च्यवते हैं और नए उत्पन्न होते हैं; तक चमरेन्द्र समान करना ।

भगवन् ! ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? इत्यादि प्रश्न का उत्तर शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए । इतना विशेष है कि ये चम्पानगरी के निवासी थे, यावत् ईशानेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए । जब से ये चम्पानगरी निवासी तैंतीस परस्पर सहायक श्रमणोपासक त्रायस्त्रिंशक बने, इत्यादि शेष समग्र वर्णन पूर्ववत् पुराने च्यवते हैं और नये उत्पन्न होते हैं । भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र सनत्कुमार के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हाँ, गौतम ! हैं। भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? इत्यादि समग्र प्रश्न तथा उसके उत्तर में जैसे धरणेन्द्र के विषय में कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिए । इसी प्रकार प्राणत और अच्युतेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों के सम्बन्ध में भी कि पुराने च्यवते हैं और नये उत्पन्न होते हैं, तक कहना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-१० – उद्देशक-५

सूत्र - ४८८

उस काल और समय में राजगृह नामक नगर था । वहाँ गुणशीलक नामक उद्यान था । यावत् परीषद् लौट गई । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के बहुत-से अन्तेवासी स्थविर भगवान जातिसम्पन्न... इत्यादि विशेषणों से युक्त थे, आठवें शतक के सप्तम उद्देशक के अनुसार अनेक विशिष्ट गुणसम्पन्न, यावत् विचरण करते थे । एक बार उन स्थविरों (के मन) में श्रद्धा और शंका उत्पन्न हुई । अतः उन्होंने गौतमस्वामी की तरह, यावत्

पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ? आर्यो ! काली, राजी, रजनी, विद्युत् और मेघा । इनमें से एक-एक अग्रमहिषी का आठ-आठ हजार देवियों का परिवार कहा गया है । एक-एक देवी दूसरी आठ-आठ हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती हैं । इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर चालीस हजार देवियाँ हैं । यह एक त्रुटिक (वर्ग) हुआ ।

भगवन् ! क्या असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर अपनी चमरचंचा राजधानी की सुधर्मासभा में चमर नामक सिंहासन पर बैठकर त्रुटिक के साथ भोग्य दिव्य भोगों को भोगने में समर्थ हैं ? (हे आर्यो !) यह अर्थ समर्थ नहीं । भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? आर्यो ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की चमरचंचा नामक राजधानी की सुधर्मासभा में माणवक चैत्यस्तम्भ में, वज्रमय गोल डिब्बों में जिन भगवन् की बहुत-सी अस्थियाँ रखी हुई हैं, जो कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज तथा अन्य बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों के लिए अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारयोग्य एवं सम्मानयोग्य हैं । वे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप एवं पर्यु-पासनीय हैं । इसलिए उन के प्रणिधान में वह यावत् भोग भोगने में समर्थ नहीं हैं । इसीलिए हे आर्यो ! ऐसा कहा गया है कि असुरेन्द्र यावत् चमर, चमरचंचा राजधानी में यावत् दिव्य भोग भोगने में समर्थ नहीं है । परन्तु हे आर्यो! वह असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर, अपनी चमरचंचा राजधानी की सुधर्मासभा में चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर चौंसठ हजार सामानिक देवों, त्रायस्त्रिंशक देवों और दूसरे बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों से परिवृत्त होकर महानिनाद के साथ होने वाले नाट्य, गीत, वादित्र आदि के शब्दों से होने वाले दिव्य भोग्य भोगों का केवल परिवार की ऋद्धि से उपभोग करने में समर्थ हैं, किन्तु मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं ।

सूत्र - ४८९

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल सोम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो! चार यथा–कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्दधरा । इनमें से प्रत्येक देवी का एक-एक हजार देवियों का परिवार है । इनमें से प्रत्येक देवी एक-एक हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है । इस प्रकार पूर्वापर सब मिलकर चार हजार देवियाँ होती हैं । यह एक त्रुटिक कहलाता है । भगवन् ! क्या असुरेन्द्र असुरकु-मारराज चमर का लोकपाल सोम महाराजा, अपनी सोमा नामक राजधानी की सुधर्मासभा में, सोम नामक सिंहासन पर बैठकर अपने उस त्रुटिक के साथ भोग्य दिव्य-भोग भोगने में समर्थ है ? (हे आर्यो !) चमर के अनुसार यहाँ भी जानना । परन्तु इसका परिवार, सूर्याभदेव के परिवार के समान जानना । शेष सब वर्णन पूर्ववत्; यावत् वह सोमा राजधानी की सुधर्मा सभा में मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! चमरेन्द्र के यावत् लोकपाल यम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? इत्यादि प्रश्न । (आर्यो!) सोम महाराजा के अनुसार यम महाराजा के सम्बन्ध में भी कहना, किन्तु इतना विशेष है कि यम लोकपाल की राजधानी यमा है । शेष सब वर्णन सोम महाराजा के समान । इसी प्रकार वरुण महाराजा का भी कथन करना । विशेष यही है कि वरुण महाराजा की राजधानी का नाम वरुणा है । इसी प्रकार वैश्रमण महाराजा के विषय में भी जानना । विशेष इतना ही है कि वैश्रमण की राजधानी वैश्रमणा है । शेष यावत्–वे वहाँ मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं हैं ।

भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! पाँच अग्रमहिषियाँ हैं । शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा और मदना । इनमें से प्रत्येक देवी के आठ-आठ हजार देवियों का परिवार है; इत्यादि वर्णन चमरेन्द्र के देवीवर्ग के समान । विशेष इतना है कि बलीन्द्र की राजधानी बलिचंचा है । इनके परिवार मोक उद्देशक के अनुसार जानना । यावत्–वह (सुधर्मा सभा में) मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है । भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार–मेनका, सुभद्रा, विजया और अशनी । इनकी एक-एक देवी का परिवार आदि समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल सोम के समान जानना । इसी

प्रकार वैरोचनेन्द्र बलि के लोकपाल वैश्रमण तक सारा वर्णन पूर्ववत् जानना ।

भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ? आर्यो ! छह अग्र-महिषियाँ हैं । यथा-इला, शुक्रा, सतारा, सौदामिनी, इन्द्रा और घनविद्युत । उनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी के छह-छह हजार देवियों का परिवार कहा गया है । इनमें से प्रत्येक देवी, अन्य छह-छह हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती हैं । इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर छत्तीस हजार देवियों का यह त्रुटिक (वर्ग) कहा गया है । भगवन्! क्या धरणेन्द्र यावत् भोग भोगने में समर्थ है ? इत्यादि प्रश्न । पूर्ववत् समग्र कथन जानना चाहिए । विशेष इतना ही है कि राजधानी धरणा में धरण नामक सिंहासन पर स्वपरिवार...शेष पूर्ववत् । भगवन् ! नागकुमारेन्द्र धरण के लोकपाल कालवाल नामक महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-अशोका, विमला, सुप्रभा, सुदर्शना । इनमें से एक-एक देवी का परिवार आदि वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान समझना चाहिए । इसी प्रकार (धरणेन्द्र के) शेष तीन लोकपालों के विषय में भी कहना ।

भगवन् ! भूतानन्द की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? हे आर्यो ! छह यथा-रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती रूपकान्ता और रूपप्रभा । इनमें से प्रत्येक देवी-अग्रमहिषी के परिवार आदि का तथा शेष वर्णन धरणेन्द्र के समान जानना । भगवन् ! भूतानन्द के लोकपाल नागवित्त के कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? इत्यादि पृच्छा । आर्यो ! चार हैं । सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना । इसमें प्रत्येक देवी के परिवार आदि का शेष वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान जानना । इसी प्रकार शेष तीन लोकपालों का वर्णन भी जानना ।

जो दक्षिणदिशावर्ती इन्द्र हैं, उनका कथन धरणेन्द्र के समान तथा उनके लोकपालों का कथन धरणेन्द्र के लोकपालों के समान जानना चाहिए । उत्तरदिशावर्ती इन्द्रों का कथन भूतानन्द के समान तथा उनके लोकपालों का कथन भी भूतानन्द के लोकपालों के समान जानना चाहिए । विशेष इतना है कि सब इन्द्रों की राजधानियों और उनके सिंहासनों का नाम इन्द्र के नाम के समान जानना चाहिए । उनके परिवार का वर्णन भगवती सूत्र के तीसरे शतक के प्रथम मोक उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए । सभी लोकपालों की राजधानियों और उनके सिंहासनों का नाम लोकपालों के नाम के सदृश जानना चाहिए तथा उनके परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के परिवार के वर्णन के समान जानना चाहिए ।

भगवन् ! पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार, यथा-कमला, कमल-प्रभा, उत्पला और सुदर्शना । इनमें से प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवियों का परिवार है । शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान एवं परिवार का कथन भी उसी के परिवार के सदृश करना । विशेष इतना है कि इसके 'काला' नाम की राजधानी और काल नामक सिंहासन है । शेष पूर्ववत् । इसी प्रकार पिशाचेन्द्र महाकाल का एतद्विषयक वर्णन भी इसी प्रकार समझना । भगवन् ! भूतेन्द्र भूतराज सुरूप की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो! चार, यथा-रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा । प्रत्येक देवी के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान है । इसी प्रकार प्रतिरूपेन्द्र के विषय में भी जानना चाहिए ।

भगवन् ! यक्षेन्द्र यक्षराज पूर्णभद्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार । यथा-पूर्णा, बहुपत्रिका, उत्तमा और तारका । प्रत्येक के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान है । इसी प्रकार माणिभद्र के विषय में भी जान लेना । भगवन् ! राक्षसेन्द्र राक्षसराज भीम के कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ? आर्यो ! चार । यथा-पद्मा, पद्मावती, कनका और रत्नप्रभा । प्रत्येक के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान है । इसी प्रकार महाभीम (राक्षसेन्द्र) के विषय में भी जानना ।

भगवन् ! किन्नरेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-अवतंसा, केतुमती, रतिसेना और रतिप्रिया । प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार के लिए पूर्ववत् जानना चाहिए । इसी प्रकार किम्पुरुषेन्द्र के विषय में कहना चाहिए । भगवन् ! सत्पुरुषेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा-रोहिणी, नवमिका, ह्री और पुष्पवती । इनके देवी-परिवार का वर्णन पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए । इसी प्रकार

महापुरुषेन्द्र के विषय में भी समझ लेना चाहिए ।

भगवन् ! अतिकायेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! ४ । यथा–भुजगा, भुजगवती, महाकच्छा, स्फुटा प्रत्येक अग्रमहिषीके देवी-परिवार का वर्णन पूर्वोक्तरूप से जानना । इसी प्रकार महाकायेन्द्रके विषयमें भी समझ ना

भगवन् ! गीतरतीन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ हैं–सुघोषा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती । प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन पूर्ववत् । इसी प्रकार गीतयश-इन्द्र के विषयमें भी जान लेना । इन सभी इन्द्रों का शेष वर्णन कालेन्द्र समान । राजधानियों और सिंहासनों का नाम इन्द्रों के नाम के समान है ।

भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार । चन्द्रप्रभा, ज्योत्सनाभा, अर्चिमाली एवं प्रभंकरा । शेष समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र में कहे अनुसार । सूर्येन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ यह हैं–सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा । शेष पूर्ववत्; यावत् वे मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं हैं ।

भगवन् ! अंगार (मंगल) नामक महाग्रह की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार । विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता । इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन चन्द्रमा के देवी-परिवार के समान। परन्तु विशेष यह कि इसके विमान का नाम अंगारावतंसक, सिंहासन का नाम अंगारक है, इत्यादि शेष समग्र वर्णन पूर्ववत् जानना । इसी प्रकार व्यालक ग्रह के विषय में भी जानना । इसी प्रकार ८८ महाग्रहों के विषय में भावकेतु ग्रह तक जानना । परन्तु विशेष यह है कि अवतंसकों और सिंहासनों का नाम इन्द्र के नाम के अनुरूप है । शेष पूर्ववत् ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! आठ अग्रमहिषियाँ हैं, पद्मा, शिवा, श्रेया, अंजू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी । इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी का सोलह-सोलह हजार देवियों का परिवार कहा गया है । प्रत्येक देवी सोलह-सोलह हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है । इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर एक लाख अट्ठाईस हजार देवियों का परिवार होता है । यह एक त्रुटिक (देवियों का वर्ग) कहलाता है । भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, सौधर्मकल्प में, सौधर्मावतंसक विमान में, सुधर्मासभा में, शक्र नामक सिंहासन पर बैठकर अपने त्रुटिक के साथ भोग भोगने में समर्थ हैं ? आर्यो ! इसका समग्र वर्णन चमरेन्द्र के समान जानना चाहिए । विशेष इतना है कि इसके परिवार का कथन 'मोका' उद्देशक के अनुसार जान लेना चाहिए ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोममहाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! चार । रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा । प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान जानना । इतना विशेष है कि स्वयम्प्रभ नामक विमान में, सुधर्मासभा में, सोम नामक सिंहासन पर बैठकर मैथुन-निमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं इत्यादि पूर्ववत् । इसी प्रकार वैश्रमण लोकपाल तक का कथन करना । विशेष यह है कि इनके विमान आदि का वर्णन तृतीयशतक अनुसार जानना ।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? आर्यो ! आठ हैं । कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुन्धरा । इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी की देवियों के परिवार आदि का शेष समस्त वर्णन शक्रेन्द्र के समान जानना ।

भगवन् ! देवेन्द्र ईशान के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ? आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा–पृथ्वी, रात्रि, रजनी और विद्युत । इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी की देवियों के परिवार आदि शेष समग्र वर्णन शक्रेन्द्र के लोकपालों के समान है । इसी प्रकार वरुण लोकपाल तक जानना चाहिए । विशेष यह है कि इनके विमानों का वर्णन चौथे शतक अनुसार जानना चाहिए । शेष पूर्ववत्, यावत्–वह मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-१० – उद्देशक-६

सूत्र - ४९०

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की सुधर्मासभा कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण

दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूभाग से अनेक कोटाकोटि योजन दूर ऊंचाई में सौधर्म नामक देवलोक में सुधर्मासभा है; इस प्रकार सारा वर्णन राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार जानना, यावत् पाँच अवतंसक विमान कहे गए हैं; यथा–असोकावतंसक यावत् मध्य में सौधर्मावतंसक विमान है । वह सौधर्मावतंसक महाविमान लम्बाई और चौड़ाई में साढ़े बारह लाख योजन है ।

सूत्र - ४९१

सूर्याभविमान के समान विमान-प्रमाण तथा उपपात अभिषेक, अलंकार तथा अर्चनिका, यावत् आत्म-रक्षक इत्यादि सारा वर्णन सूर्याभदेव के समान जानना चाहिए । उसकी स्थिति (आयु) दो सागरोपम की है ।

सूत्र - ४९२

भगवन् ! देवेन्द्र शक्र कितनी महती ऋद्धि वाला यावत् कितने महान् सुख वाला है ? गौतम ! वह महाऋद्धिशाली यावत् महासुखसम्पन्न है । वह वहाँ बत्तीस लाख विमानों का स्वामी है; यावत् विचरता है । देवेन्द्र देवराज शक्र इस प्रकार की महाऋद्धि से सम्पन्न और महासुखी है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है

शतक-१० – उद्देशक-७

सूत्र - ४९३

भगवन् ! उत्तरदिशा में रहने वाले एकोरुक मनुष्यों का एकोरुकद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ? गौतम ! एकोरुकद्वीप से लेकर यावत् शुद्धदन्तद्वीप तक का समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र अनुसार जानना चाहिए । इस प्रकार अट्ठाईस द्वीपों के ये अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

शतक-१० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

शतक-११

सूत्र - ४९४

ग्यारहवें शतक के बारह उद्देशक इस प्रकार हैं-(१) उत्पल, (२) शालूक, (३) पलाश, (४) कुम्भी, (५) नाडीक, (६) पद्म, (७) कर्णिका, (८) नलिन, (९) शिवराजर्षि, (१०) लोक, (११) काल और (१२) आलभिक।

शतक-११ – उद्देशक-१

सूत्र - ४९५-४९७

१. उपपात, २. परिमाण, ३. अपहार, ४. ऊंचाई (अवगाहना), ५. बन्धक, ६. वेद, ७. उदय, ८. उदीरणा, ९. लेश्या, १०. दृष्टि, ११. ज्ञान । तथा-१२. योग, १३. उपयोग, १४. वर्ण-रसादि, १५. उच्छ्वास, १६. आहार, १७. विरति, १८. क्रिया, १९. बन्धक, २०. संज्ञा, २१. कषाय, २२. स्त्रीवेदादि, २३. बन्ध । २४. संज्ञी, २५. इन्द्रिय, २६. अनुबन्ध, २७. संवेध, २८. आहार, २९. स्थिति, ३०. समुद्घात, ३१. च्यवन और ३२. सभी जीवों का मूलादि में उपपात ।

सूत्र - ४९८

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था । वहाँ पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा-भगवन् ! एक पत्र वाला उत्पल एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! एक जीव वाला है, अनेक जीव वाला नहीं । उसके उपरांत जब उस उत्पल में दूसरे जीव उत्पन्न होते हैं, तब वह एक जीव वाला नहीं रहकर अनेक जीव वाला बन जाता है । भगवन् ! उत्पल में वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, या तिर्यञ्चयोनिकों से अथवा मनुष्यों से या देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! वे जीव नारकों से आकर उत्पन्न नहीं होते, वे तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से भी और देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं । ''व्युत्क्रान्तिपद'' के अनुसार-वनस्पतिकायिक जीवोंमें यावत् ईशान-देवलोक तक के जीवों का उपपात होता है ।

भगवन् ! उत्पलपत्र में वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जघन्यतः एक, दो या तीन और उत्कृष्टतः संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव एक-एक समय में एक-एक नीकाले जाएं तो कितने काल में पूरे नीकाले जा सकते हैं ? गौतम ! एक-एक समय में एक-एक नीकाले जाएं ओर उन्हें असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक नीकाल जाए तो भी वे पूरे नीकाले नहीं जा सकते ।

भगवन् ! उन (उत्पल के) जीवों की अवगाहना कितनी बड़ी है ? गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन होती है ।

भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धक हैं या अबन्धक हैं ? गौतम ! वे ज्ञानावरणीय कर्म के अबन्धक नहीं; किन्तु एक जीव बन्धक हैं, अथवा अनेक जीव बन्धक हैं । इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़ कर अन्तराय कर्म तक समझ लेना । विशेषतः (वे जीव) आयुष्य कर्म के बन्धक हैं, या अबन्धक ? यह प्रश्न है । गौतम ! उत्पल का एक जीव बन्धक है, अथवा एक जीव अबन्धक है, अथवा अनेक जीव बन्धक हैं, या अनेक जीव अबन्धक हैं, अथवा एक जीव बन्धक है, और एक अबन्धक है, अथवा एक जीव बन्धक और अनेक जीव अबन्धक हैं, या अनेक जीव बन्धक हैं और एक जीव अबन्धक है एवं अथवा अनेक जीव बन्धक हैं और अनेक जीव अबन्धक हैं । इस प्रकारये आठ भंग होते हैं ।

भगवन् ! वे (उत्पल के) जीव ज्ञानावरणीय कर्म के वेदक हैं या अवेदक हैं ? गौतम ! वे जीव अवेदक नहीं, किन्तु या तो एक जीव वेदक है और अनेक जीव वेदक हैं । इसी प्रकार अन्तराय कर्म तक जानना । भगवन् ! वे जीव सातावेदक हैं, या असातावेदक हैं ? गौतम ! एक जीव सातावेदक है, अथवा एक असातावेदक है, इत्यादि पूर्वोक्त आठ भंग । भगवन् ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदय वाले हैं या अनुदय वाले हैं ? गौतम ! वे जीव अनुदय वाले नहीं हैं, किन्तु एक जीव उदय वाला है, अथवा वे उदय वाले हैं । इसी प्रकार अन्तराय कर्म तक समझ लेना । भगवन् ! वे जीव ज्ञानावरणीय कर्म के उदीरक हैं या अनुदीरक हैं ? गौतम ! वे अनुदीरक नहीं; किन्तु एक जीव उदीरक है,

अथवा अनेक जीव उदीरक हैं । इसी प्रकार अन्तरय कर्म तक जानना; परन्तु इतना विशेष है कि वेदनीय और आयुष्य कर्म में पूर्वोक्त आठ भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! वे उत्पल के जीव, कृष्णलेश्या वाले होते हैं, नीललेश्या वाले होते हैं, या कापोतलेश्या वाले होते हैं, अथवा तेजोलेश्या वाले होते हैं ? गौतम ! एक जीव कृष्णलेश्या वाला होता है, यावत् एक जीव तेजोलेश्या वाला होता है । अथवा अनेक जीव कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले अथवा तेजोलेश्या वाले होते हैं । अथवा एक कृष्णलेश्या वाला और एक नीललेश्या वाला होता है । इस प्रकार ये द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी और चतुःसंयोगी सब मिलाकर ८० भंग होते हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, अथवा सम्यग्-मिथ्यादृष्टि हैं ? गौतम ! वे सम्यग्दृष्टि नहीं, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि भी नहीं, वह मात्र मिथ्यादृष्टि हैं, अथवा वे अनेक भी मिथ्यादृष्टि हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव ज्ञानी हैं, अथवा अज्ञानी हैं ? गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं, किन्तु वह एक अज्ञानी है अथवा वे अनेक भी अज्ञानी हैं । भगवन् ! वे जीव मनोयोगी हैं, वचनयोगी हैं, अथवा काययोगी हैं ? गौतम ! वे मनोयोगी नहीं हैं, न वचनयोगी हैं, किन्तु वह एक हो तो काययोगी हैं और अनेक हों तो भी काययोगी हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव साकारोपयोगी हैं, अथवा अनाकारोपयोगी हैं ? गौतम ! वे साकारो-पयोगी भी होते हैं और अनकारोपयोगी भी ।

भगवन् ! उन जीवों का शरीर कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाला है ? गौतम ! उनका (शरीर) पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाला है । जीव स्वयं वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श-रहित है । भगवन् ! वे जीव उच्छ्वासक हैं, निःश्वासक हैं या उच्छ्वासक-निःश्वासक हैं ? गौतम ! (उनमें से) कोई एक जीव उच्छ्वासक है, या कोई एक जीव निःश्वासक है, अथवा कोई एक जीव अनुच्छ्वासक-निश्वासक है, या अनेक जीव उच्छ्वासक हैं, या अनेक जीव निःश्वासक हैं, अथवा अनेक जीव अनुच्छ्वासक-निःश्वासक हैं अथवा एक उच्छ्वासक है और एक निःश्वासक है, इत्यादि । अथवा एक उच्छ्वासक और एक अनुच्छ्वासक-निःश्वासक हैं; इत्यादि । अथवा एक निःश्वासक और एक अनुच्छ्वासक-निःश्वासक है, इत्यादि । अथवा एक उच्छ्वासक एक निःश्वासक और एक अनुच्छ्वासक-निःश्वासक है इत्यादि आठ भंग होते हैं । ये सब मिलकर २६ भंग होते हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव आहारक हैं या अनाहारक हैं ? गौतम ! कोई एक जीव आहारक है, अथवा कोई एक जीव अनाहारक है; इत्यादि आठ भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! क्या वे उत्पल के जीव विरत हैं, अविरत हैं या विरताविरत हैं ? गौतम ! वे उत्पल-जीव न तो सर्वविरत हैं और न विरताविरत हैं, किन्तु एक जीव अविरत है अथवा अनेक जीव भी अविरत हैं । भगवन् ! क्या वे उत्पल के जीव सक्रिय हैं या अक्रिय हैं ? गौतम ! वे अक्रिय नहीं हैं, किन्तु एक जीव भी सक्रिय है और अनेक जीव भी सक्रिय हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव सप्तविध बन्धक हैं या अष्टविध बन्धक हैं ? गौतम ! वे जीव सप्तविध-बन्धक हैं या अष्टविधबन्धक हैं । यहाँ पूर्वोक्त आठ भंग कहना ।

भगवन् ! वे उत्पल के जीव आहारसंज्ञा के उपयोग वाले हैं, या भयसंज्ञा के उपयोग वाले हैं, अथवा मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले हैं या परिग्रहसंज्ञा के उपयोग वाले हैं ? गौतम ! वे आहारसंज्ञा के उपयोग वाले हैं, इत्यादि (लेश्याद्वार के समान) अस्सी भंग कहना । भगवन् ! वे उत्पल के जीव क्रोधकषायी हैं, मानकषायी हैं, मायाकषायी हैं अथवा लोभकषायी हैं ? गौतम ! यहाँ पूर्वोक्त ८० भंग कहना चाहिए ।

भगवन् ! वे उत्पल के जीव स्त्रीवेदी हैं, पुरुषवेदी हैं या नपुंसकवेदी हैं ? गौतम ! वे स्त्रीवेद वाले नहीं, पुरुष वेद वाले भी नहीं, परन्तु एक जीव भी नपुंसकवेदी हैं और अनेक जीव भी नपुंसकवेदी हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव स्त्रीवेद के बन्धक हैं, पुरुषवेद के बन्धक हैं या नपुंसकवेद के बन्धक हैं ? गौतम ! वे स्त्रीवेद के बन्धक हैं, या पुरुषवेद के बन्धक हैं अथवा नपुंसकवेद के बन्धक हैं । यहाँ उच्छ्वासद्वार के समान २६ भंग कहने चाहिए ।

भगवन् ! वे उत्पल के जीव संज्ञी हैं या असंज्ञी ? गौतम ! वे संज्ञी नहीं, किन्तु एक जीव भी असंज्ञी हैं और अनेक जीव भी असंज्ञी हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव सेन्द्रिय हैं या अनिन्द्रिय ? गौतम ! वे अनिन्द्रिय नहीं, किन्तु एक जीव सेन्द्रिय हैं और अनेक जीव भी सेन्द्रिय हैं । भगवन् ! वह उत्पल का जीव उत्पल के रूप में कितने काल तक

रहता है ? गौतम ! वह जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः असंख्यात काल तक रहता है ।

भगवन् ! वह उत्पल का जीव, पृथ्वीकाय में जाए और पुनः उत्पल का जीव बने, इस प्रकार उसका कितना काल व्यतीत हो जाता है ? कितने काल तक गमनागमन करता रहता है ? गौतम ! भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट असंख्यात भव करता है, कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है । भगवन् ! वह उत्पल का जीव, अप्काय के रूप में उत्पन्न होकर पुनः उत्पल में आए तो इसमें कितना काल व्यतीत हो जाता है ? कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! पृथ्वीकाय के समान भवादेश से और कालादेश से कहना । इसी प्रकार पृथ्वीकाय के गमनागमन अनुसार वायुकाय जीव तक कहना । भगवन् ! वह उत्पल का जीव, वनस्पति के जीव में जाए और वह पुनः उत्पल के जीव में आए, इस प्रकार कितने काल तक रहता है ? कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! भवादेश से वह जघन्य दो भव करता है और उत्कृष्ट अनन्त भव करता है । कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त्त तक, उत्कृष्ट अनन्त काल तक ।

भगवन् ! वह उत्पल का जीव, द्वीन्द्रियजीव पर्याय में जाकर पुनः उत्पल जीव में आए तो उसका कितना काल व्यतीत होता है ? कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! वह जीव भवादेश से जघन्य दो भव करता है, उत्कृष्ट संख्यात भव करता है । कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट संख्यात काल व्यतीत हो जाता है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव को भी जानना । भगवन् ! उत्पल का वह जीव, पंचेन्द्रियतिर्यंच-योनिक जीव में जाकर पुनः उत्पल के जीव में आए तो उसका कितना काल व्यतीत होता है ? वह कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! भवादेश से जघन्य दो भव करता है और उत्कृष्ट आठ भव । कालादेश से जघन्य दो अन्तमुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व काल । इसी प्रकार मनुष्ययोनि के विषय में भी जानना । यावत् इतने काल उत्पल का वह जीव गमनागमन करता है । भगवन् ! वे उत्पल के जीव किस पदार्थ का आहार करते हैं ? गौतम ! वे जीव द्रव्यतः अनन्तप्रदेशी द्रव्यों का आहार करते हैं, इत्यादि, प्रज्ञापनासूत्र के अट्ठाईसवें पद के आहार-उद्देशक में वनस्पतिकायिक जीवों के आहार के विषय में कहा है कि वे सर्वात्मना आहार करते हैं, यहाँ तक-सब कहना । विशेष यह है कि वे नियमतः छह दिशा से आहार करते हैं । शेष पूर्ववत् ।

भगवन् ! उन उत्पल के जीवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है । भगवन् ! उन जीवों में कितने समुद्घात हैं ? गौतम ! तीन समुद्घात, यथा-वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात । भगवन् ! वे जीव मारणान्तिकसमुद्घात द्वारा समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर ? गौतम ! (वे) समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं । भगवन् ! वे उत्पल के जीव मरकर तुरन्त कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं ? अथवा यावत् या देवों में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! प्रज्ञापना सूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिक पद के उद्वर्त्तना-प्रकरण में वनस्पति-कायिकों के वर्णन के अनुसार कहना ।

भगवन् ! सभी प्राण, सभी भूत, समस्त जीव और समस्त सत्त्व; क्या उत्पल के मूलरूप में, उत्पल के कन्दरूप में, उत्पल के नालरूप में, उत्पल के पत्ररूप में, उत्पल के केसररूप में, उत्पल की कर्णिका के रूप में तथा उत्पल के थिभुग के रूप में इससे पहले उत्पन्न हुए हैं ? हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार (पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न हुए हैं) । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-२

सूत्र - ४९९

भगवन् ! क्या एक पत्ते वाला शालूक एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला है ? गौतम ! वह एक जीव वाला है; यहाँ से लेकर यावत् अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं; तक उत्पल–उद्देशक की सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष इतना ही है कि शालूक के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथ-क्त्व की है । शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए । 'भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-३

सूत्र - ५००

भगवन् ! पलासवृक्ष के एक पत्ते वाला (होता है, तब वह) एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! उत्पल-उद्देशक की सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष इतना है कि पलाश के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग हैं और उत्कृष्ट गव्यूति-पृथक्त्व है । देव च्यव कर पलाशवृक्ष में से उत्पन्न नहीं होते । भगवन् ! वे जीव क्या कृष्णलेश्या वाले होते हैं, नीललेश्या वाले होते हैं या कापोतलेश्या वाले होते हैं ? गौतम ! वे तीनों लेश्या वाले होते हैं । इस प्रकार यहाँ उच्छ्वासक द्वार के समान २६ भंग होते हैं । शेष सब पूर्ववत् है । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-४

सूत्र - ५०१

भगवन् ! एक पत्ते वाला कुम्भिक एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! पलाश (जीव) के समान कहना । इतना विशेष है कि कुम्भिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट वर्ष-पृथक्त्व की है । शेष पूर्ववत् । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-५

सूत्र - ५०२

भगवन् ! एक पत्ते वाला नालिक, एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! कुम्भिक उद्देशक अनुसार कहना । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-६

सूत्र - ५०३

भगवन् ! एक पत्र वाला पद्म, एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला होता है ? गौतम ! उत्पल-उद्देशक के अनुसार इसकी सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-७

सूत्र - ५०४

भगवन् ! एक पत्ते वाली कर्णिका एक जीव वाली है या अनेक जीव वाली है ? गौतम ! इसका समग्र वर्णन उत्पल-उद्देशक के समान करना । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-८

सूत्र - ५०५

भगवन् ! एक पत्ते वाला नलिन एक जीव वाला होता है, या अनेक जीव वाला ? गौतम ! इसका समग्र वर्णन उत्पल उद्देशक के समान करना चाहिए और सभी जीव अनन्त बार उत्पन्न हो चूके हैं, यहाँ तक कहना । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-९

सूत्र – ५०६, ५०७

उस काल और उस समय में हस्तिनापुर नाम का नगर था । उस हस्तिनापुर नगर के बाहर ईशानकोण में सहस्राम्रवन नामक उद्यान था । वह सभी ऋतुओं के पुष्पों और फलों से समृद्ध था । रम्य था, नन्दनवन के समान सुशोभित था । उसकी छाया सुखद और शीतल थी । वह मनोरम, स्वादिष्ट फलयुक्त, कण्टकरहित प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यावत् प्रतिरूप था । उस हस्तिनापुर नगर में शिव राजा था । वह महाहिमवान् पर्वत के समान श्रेष्ठ था, इत्यादि । शिव राजा की धारिणी देवी थी । उसके हाथ-पैर अतिसुकुमाल थे, इत्यादि । शिव राजा का पुत्र और धारिणी रानी का अंगजात 'शिवभद्र' कुमार था । उसके हाथ-पैर अत्यन्त सुकुमाल थे । कुमार का वर्णन राज-प्रश्नीय

सूत्र में कथित सूर्यकान्त राजकुमार के समान यावत् वह राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कठोर, पुर, अन्तः पुर और जनपद का स्वयमेव निरीक्षण करता हुआ रहता था ।

तदनन्तर एक दिन राजा शिव को रात्रि के पीछले प्रहर में राज्य की धूरा–का विचार करते हुए ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि यह मेरे पूर्व-पुण्यों का प्रभाव है, इत्यादि तामलि–तापस के वृत्तान्त के अनुसार विचार हुआ–यावत् मैं पुत्र, पशु, राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पूर और अन्तःपुर इत्यादि से वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूँ। प्रचुर धन, कनक, रत्न यावत् सारभूत द्रव्य द्वारा अतीव अभिवृद्धि पा रहा हूँ । तो क्या मैं पूर्वपुण्यों के फल-स्वरूप यावत् एकान्तसुख का उपयोग करता हुआ विचरण करूँ ? अतः जब मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि जब तक मैं हिरण्य आदि से वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूँ, यावत् जब तक सामान्त राजा आदि भी मेरे वश में हैं तब तक कल प्रभात होते ही जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर मैं बहुत-सी लोढ़ी, लोहे की कड़ाही, कुड़छी और ताम्बे के बहुत से तापसोचित उपकरण बनवाऊं और शिवभद्र कुमार को राज्य पर स्थापित करके और पूर्वोक्त बहुत-से लोहे एवं ताम्बे के तापसोचित भांड-उपकरण लेकर, उन तापसों के पास जाऊं जो ये गंगातट पर वानप्रस्थ तापस हैं; जैसे कि–अग्निहोत्री, पोतिक कौत्रिक याज्ञिक, श्राद्धी, खप्परधारी, कुण्डिकाधारी श्रमण, दन्त-प्रक्षालक, उन्मज्जक, सम्मज्जक, निमज्जक, सम्प्रक्षालक, ऊर्ध्वकण्डुक, अधःकण्डुक, दक्षिणकूलक, उत्तरकूलक, शंखधमक, कूलधमक, मृगलुब्धक, हस्तीतापस, जल से स्नान किये बिना भोजन नहीं करने वाले, पानी में रहने वाले, वायु में रहने वाले, पटमण्डप में रहने वाले, बिलवासी, वृक्षमूलवासी, जलभक्षक, वायुभक्षक, शैवालभक्षक, मूलाहारी, कन्दाहारी, त्वचाहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, फलाहारी, बीजाहारी, सड़कर टूटे या गिरे हुए कन्द, मूल, छाल, पत्ते, फूल और फल खाने वाले, दण्ड ऊंचा रखकर चलने वाले, वृक्षमूलनिवासी, मांडलिक, वनवासी, दिशाप्रोक्षी, आतापना से पंचाग्नि ताप तपने वाले इत्यादि औपपातिक सूत्र अनुसार यावत् अपने शरीर को काष्ठ-सा बना देते हैं। उनमें से जो तापस दिशाप्रोक्षक हैं, उनके पास मुण्डित होकर मैं दिक्प्रोक्षक-तापस-रूप प्रव्रज्या अंगीकार करूँ। प्रव्रजित होने पर इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करूँ कि यावज्जीवन निरन्तर छठ-छठ की तपस्या द्वारा दिक्चक्रवाल तपःकर्म करके दोनों भुजाएं ऊंची रखकर रहना मेरे लिए कल्पनीय है । फिर दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर अनेक प्रकार की लोढ़ियाँ, लोहे की कड़ाही आदि तापसोचित भण्डोपकरण तैयार कराके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा–शीघ्र ही हस्तिनापुर नगर के बाहर औ भीतर जल का छिड़काव करके स्वच्छ कराओ, इत्यादि; यावत् कौटुम्बिक पुरुषों ने राजा की आज्ञानुसार कार्य करवा कर निवेदन किया ।

उसके पश्चात् उस शिव राजा ने दूसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और फिर उनसे कहा–'हे देवानुप्रियो ! शिवभद्रकुमार के महार्थ, महामूल्यवान और महोत्सव योग्य विपुल राज्याभिषेक की शीघ्र तैयारी करो।' तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने राजा के आदेशानुसार राज्याभिषेक की तैयारी की । यह हो जाने पर शिव राजा ने अनेक गणनायक, दण्डनायक यावत् सन्धिपाल आदि राज्यपुरुष-परिवार से युक्त होकर शिवभद्रकुमार को पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन किया । फिर एक सौ आठ सोने के कलशों से, यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से, समस्त ऋद्धि के साथ यावत् बाजों के महानिनाद के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया । तदनन्तर अत्यन्त कोमल सुगन्धित गन्धकाषायवस्त्र से उसके शरीर को पोंछा । फिर सरस गोशीर्षचन्दन का लेप किया; इत्यादि, जिस प्रकार जमालि को अलंकार से विभूषित करने का वर्णन है, उसी प्रकार शिवभद्र कुमार को भी यावत् कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित किया । इसके पश्चात् हाथ जोड़कर यावत् शिव-भद्रकुमार को जयविजय शब्दों से बधाया और औपपातिक सूत्र में वर्णित कोणिक राजा के प्रकरणानुसार–इष्ट, कान्त एवं प्रिय शब्दों द्वारा आशीर्वाद दिया, यावत् कहा कि तुम परम आयुष्मान् हो और इष्ट जनों से युक्त होकर हस्तिनापुर नगर तथा अन्य बहुत-से ग्राम, आकर, नगर आदि के, यावत् परिवार, राज्य और राष्ट्र आदि के स्वामित्व का उपभोग करते हुए विचरो; इत्यादि कहकर जय-जय शब्द का प्रयोग किया । अब वह शिवभद्रकुमार राजा बन गया । वह महाहिमवान् पर्वत के समान राजाओं में प्रधान होकर विचरण करने लगा ।

तदनन्तर किसी समय शिव राजा ने प्रसस्त तिथि, करण, नक्षत्र और दिवस एवं शुभ मुहूर्त्त में विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाया और मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन, परिजन, राजाओं एवं क्षत्रियों आदि को आमंत्रित किया । तत्पश्चात् स्वयं ने स्नानादि किया, यावत् शरीर पर (चंदनादि का लेप किया) । (फिर) भोजन के समय भोजनमण्डप में उत्तम सुखासन पर बैठा और उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन यावत् परिजन, राजाओं और क्षत्रियों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन किया । फिर तामली तापस के अनुसार, यावत् उनका सत्कार-सम्मान किया । तत्पश्चात् उन मित्र, ज्ञातिजन आदि सभी की तथा शिवभद्र राजा की अनुमति लेकर लोढ़ी-लोहकटाह, कुड़छी आदि बहुत से तापसोचित भण्डोपकरण ग्रहण किए और गंगातट निवासी जो वानप्रस्थ तापस थे, वहाँ जाकर, यावत् दिशाप्रोक्षक तापसों के पास मुण्डित होकर दिशाप्रोक्षक-तापस के रूप में प्रव्रजित हो गया । प्रव्रज्या ग्रहण करते ही शिवराजर्षि ने इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया-आज से जीवन पर्यन्त मुझे बेले-बेले करते हुए विचरना कल्पनीय है; इत्यादि पूर्ववत् यावत् अभिग्रह धारण करके प्रथम छट्ठ तप अंगीकार करके विचरने लगा ।

तत्पश्चात् वह शिवराजर्षि प्रथम छट्ठ (बेले) के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरे, फिर उन्होंने वल्कलवस्त्र पहने और जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए । वहाँ से किढीण (बाँस का पात्र) और कावड़ को लेकर पूर्व दिशा का पूजन किया । हे पूर्व दिशा के (लोकपाल) सोम महाराज ! प्रस्थान में प्रस्थित हुए मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करें, और यहाँ (पूर्वदिशा में) जो भी कन्द, मूल, छाल, पत्ते, पुष्प, फल, बीज और हरी वनस्पति है, उन्हें लेने की अनुज्ञा दें; यों कहकर शिवराजर्षि ने पूर्वदिशा का अवलोकन किया और वहाँ जो भी कन्द, मूल, यावत् हरी वनस्पति मिली, उसे ग्रहण की और कावड़ में लगी हुई बाँस की छबड़ी में भर ली । फिर दर्भ, कुश, समिधा और वृक्ष की शाखा को मोड़कर तोड़े हुए पत्ते लिए और जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए । कावड़ सहित छबड़ी नीचे रखी, फिर वेदिका का प्रमार्जन किया, उसे लीपकर शुद्ध किया । तत्पश्चात् डाभ और कलश हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आए। गंगा महानदी में अवगाहन किया और उसके जल से देह शुद्ध की । फिर जलक्रीड़ा की, पानी अपने देह पर सींचा, जल का आचमन आदि करके स्वच्छ और परम पवित्र होकर देव और पितरों का कार्य सम्पन्न करके कलश में डाभ डालकर उसे हाथ में लिए हुए गंगा महानदी से बाहर नीकले और जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए । कुटी में उन्होंने डाभ, कुश और बालू से वेदी बनाई । फिर मथनकाष्ठ से अरणि की लकड़ी घिसी और आग सुलगाई । अग्नि जब धधकने लगी तो उसमें समिधा की लकड़ी डाली और आग अधिक प्रज्वलित की । फिर अग्नि के दाहिनी ओर ये सात वस्तुएं रखीं, यथा- सकथा, वल्कल, स्थान, शय्याभाण्ड, कमण्डलु, लकड़ी का डंडा और शरीर ।

सूत्र - ५०८

फिर मधु, घी और चावलों का अग्नि में हवन किया और चरु (बलिपात्र) में बलिद्रव्य लेकर बलिवैश्वदेव को अर्पण किया और तब अतिथि की पूजा की और उसके बाद शिवराजर्षि ने स्वयं आहार किया । तत्पश्चात् उन शिवराजर्षि ने दूसरी बेला अंगीकार किया और दूसरे बेले के पारणे के दिन शिवराजर्षि आतापनाभूमि से नीचे ऊतरे, वल्कल के वस्त्र पहने, यावत् प्रथम पारणे की जो विधि की थी, उसीके अनुसार दूसरे पारणे में भी किया । इतना विशेष है कि दूसरे पारणे के दिन दक्षिण दिशा की पूजा की । हे दक्षिण दिशा के लोकपाल यम महाराज ! परलोकसाधना में प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करें, इत्यादि शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए; यावत् अतिथि की पूजा करके फिर उसने स्वयं आहार किया । तदनन्तर उन शिव राजर्षि ने तृतीय बेला अंगीकार किया ।

उसके पारणे के दिन शिवराजर्षि ने पूर्वोक्त सारी विधि की । इसमें इतनी विशेषता है कि पश्चिमदिशा की पूजा की और प्रार्थना की-हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज ! परलोक-साधना-मार्ग में प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करें, इत्यादि यावत् तब स्वयं आहार किया । तत्पश्चात् उन शिवराजर्षि ने चतुर्थ बेला अंगीकार किया । फिर इस चौथे बेले के तप के पारणे के दिन पूर्ववत् सारी विधि की । विशेष यह है कि उन्होंने उत्तरदिशा की पूजा की और इस प्रकार प्रार्थना की-हे उत्तर-दिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज ! परलोक-साधना-मार्ग में प्रवृत्त

इस शिवराजर्षि की रक्षा करें, इत्यादि अवशिष्ट सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् तत्पश्चात् शिवराजर्षि ने स्वयं आहार किया । इसके बाद निरन्तर बेले-बेले की तपश्चर्या के दिक्चक्रवाल का प्रोक्षण करनेसे, यावत् आतापना लेनेसे तथा प्रकृति की भद्रता यावत् विनीतता से शिवराजर्षि को किसी दिन तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए विभंग ज्ञान उत्पन्न हुआ । उत्पन्न हुए विभंगज्ञान से वे इस लोकमें सात द्वीप, सात समुद्र देखने लगे । इससे आगे वे न जानते थे, न देखते थे ।

तत्पश्चात् शिवराजर्षि को इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ कि, ''मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्न्न हुआ है । इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं । उससे आगे द्वीपसमुद्रों का विच्छेद है ।'' ऐसा विचार कर वे आतापना-भूमि से नीचे ऊतरे और वल्कलवस्त्र पहने, फिर जहाँ अपनी कुटी थी, वहाँ आए । वहाँ से अपने लोढ़ी, लोहे कड़ाह, कुड़छी आदि बहुत-से भण्डोपकरण तथा छबड़ी-सहित कावड़ को लेकर वे हस्तिनापुर नगर में जहाँ तापसों का आश्रम था, वहाँ आए । वहाँ उसने तापसोचित उपकरण रखे और फिर हस्तिनापुर नगर के शृंटागक, त्रिक यावत् राजमार्गों में बहुत-से मनुष्यों को इस प्रकार कहने और यावत् प्ररूपणा करने लगे-'हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता और देखता हूँ कि इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं तदनन्तर शिवराजर्षि से यह बात सूनकर और विचार कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक यावत् राजमार्गों पर बहुत-से लोग एक-दूसरे से इस प्रकार कहने यावत् बतलाने लगे-हे देवानुप्रियो ! शिवराजर्षि जो इस प्रकार की बात कहते यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, यावत् इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं । इससे आगे द्वीप और समुद्रों का अभाव है,' उनकी यह बात इस प्रकार कैसे मानी जाए ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी वहाँ पधारे । परीषद् ने धर्मोपदेश सूना, यावत् वापस लौट गई । उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूमि अनगार ने, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थोद्देशक में वर्णित विधि के अनुसार यावत् भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए, बहुत-से लोगों के शब्द सूने वे परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, यावत् इस प्रकार बतला रहे थे-हे देवानुप्रियो ! शिव-राजर्षि यह कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'हे देवानुप्रियो ! इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, इत्यादि यावत् उससे आगे द्वीप-समुद्र नहीं हैं, तो उनकी यह बात कैसे मानी जाए ?'

बहुत-से मनुष्यों से यह बात सूनकर और विचार कर गौतम स्वामी को संदेह, कुतूहल यावत् श्रद्धा उत्पन्न हुई वे निर्ग्रन्थोद्देशक में वर्णित वर्णन के अनुसार भगवान की सेवा में आए और पूछा-'शिवराजर्षि जो यह कहते हैं, यावत् उससे आगे द्वीपों और समुद्रों का सर्वथा अभाव है, भगवन् ! क्या उनका ऐसा कथन यथार्थ है ?' भगवान महावीर ने कहा-'हे गौतम ! जो ये बहुत-से लोग परस्पर ऐसा कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं शिव-राजर्षि को विभंगज्ञान उत्पन्न होने से लेकर यावत् उन्होंने तापस-आश्रम में भण्डोपकरण रखे । हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक, त्रिक आदि राजमार्गों पर वे कहने लगे-यावत् सात द्वीप-समुद्रों से आगे द्वीपसमुद्रों का अभाव है, इत्यादि कहना । तदनन्तर शिवराजर्षि से यह बात सूनकर बहुत से मनुष्य ऐसा कहते हैं, यावत् उससे आगे द्वीप-समुद्रों का सर्वथा अभाव है ।' वह कथन मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि वास्तव में जम्बूद्वीपादि द्वीप एवं लवणादी समुद्र एक सरीखे वृत्त होने से आकार में एक समान हैं परन्तु विस्तार में वे अनेक प्रकार के हैं, इत्यादि जीवाभिगम अनुसार जानना, यावत् 'हे आयुष्मन् श्रमणों ! इस तिर्यक् लोक में असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं ।'

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप नामक द्वीप में वर्णसहित और वर्णरहित, गन्धसहित और गन्धरहित, सरस और अरस, सस्पर्श और अस्पर्श द्रव्य, अन्योन्यबद्ध तथा अन्योन्यस्पृष्ट यावत् अन्योन्यसम्बद्ध हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् क्या लवणसमुद्र में वर्णसहित और वर्णरहित, गन्धसहित और गन्धरहित, रसयुक्त और रसरहित तथा स्पर्शयुक्त और स्पर्शरहित द्रव्य, अन्योन्यबद्ध तथा अन्योन्यस्पृष्ट यावत् अन्योन्यसम्बद्ध हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । भगवन् ! क्या धातकीखण्डद्वीप में सवर्ण-अवर्ण आदि द्रव्य यावत् अन्योन्यसम्बद्ध हैं ? हाँ, गौतम ! हैं । इसी प्रकार यावत् स्वयम्भूरमणसमुद्र में भी यावत् द्रव्य अन्योन्यसम्बद्ध हैं ? हाँ, हैं । इसके पश्चात् वह अत्यन्त-महती विशाल परीषद्

श्रमण भगवान महावीर से उपर्युक्त अर्थ सूनकर और हृदय में धारण कर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई और श्रमण भगवान महावीर को वन्दना व नमस्कार करके जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

तब हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक यावत् मार्गों पर बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने यावत् बतलाने लगे-हे देवानुप्रियो ! शिवराजर्षि जो यह कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं जानता-देखता हूँ कि इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं, इसके आगे द्वीप-समुद्र बिलकुल नहीं हैं; उनका यह कथन मिथ्या है । श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार कहते, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि निरन्तर बेले-बेले का तप करते हुए शिवराजर्षि को विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ है । विभंगज्ञान उत्पन्न होने पर वे अपनी कुटी में आए यावत् वहाँ से तापस आश्रम में आकर अपने तापसोचित उपकरण रखे और हस्तिनापुर के शृंगाटक यावत् राजमार्गों पर स्वयं को अतिशय ज्ञान होने का दावा करने लगे । लोग ऐसी बात सून परस्पर तर्कवितर्क करते हैं, ''क्या शिवराजर्षि का यह कथन सत्य है ? परन्तु मैं कहता हूँ कि उनका यह कथन मिथ्या है ।' श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार कहते हैं कि वास्तव में जम्बूद्वीप आदि तथा लवणसमुद्र आदि गोल होने से एक प्रकार के लगते हैं, किन्तु वे उत्तरोत्तर द्विगुण-द्विगुण होने से अनेक प्रकार के हैं । इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणों ! द्वीप और समुद्र असंख्यात हैं ।

तब शिवराजर्षि बहुत-से लोगों से यह बात सूनकर तथा हृदयंगम करके शंकित, कांक्षित, विचिकित्सक, भेद को प्राप्त, अनिश्चित एवं कलुषित भाव को प्राप्त हुए । तब शंकित, कांक्षित यावत् कालुष्ययुक्त बने हुए शिवराजर्षि का वह विभंग-अज्ञान भी शीघ्र ही पतीत हो गया । तत्पश्चात् शिवराजर्षि को इस प्रकार का विचार यावत् उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी, धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं, जिनके आगे आकाश में धर्मचक्र चलता है, यावत् वे यहाँ सहस्राम्रवन उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचर रहे हैं । तथारूप अरहंत भगवंतों का नाम-गोत्र श्रवण करना भी महाफलदायक है, तो फिर उनके सम्मुख जाना, वन्दना करना, इत्यादि का तो कहना ही क्या ? यावत् एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का सूनना भी महाफलदायक है, तो फिर विपुल अर्थ के ग्रहण करने का तो कहना ही क्या ! अतः मैं श्रमण भगवान महावीर-स्वामी के पास जाऊं, वन्दन-नमस्कार करूँ, यावत् पर्युपासना करूँ । यह मेरे लिए इस भवमें और परभवमें, यावत् श्रेयस्कर होगा ।' इस प्रकार विचार करके वे जहाँ तापसों का मठ था वहाँ आए, उसमें प्रवेश किया। फिर वहाँ से बहुत-से लोढ़ी, लोह-कड़ाह यावत् छबड़ी-सहित कावड़ आदि उपकरण लिए और उस तापसमठ से नीकले । वहाँ से वे शिवराजर्षि हस्तिनापुर नगर के मध्य में से होते हुए, जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था और जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आए । तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, उन्हें वन्दना-नमस्कार किया और न अति दूर, न अति निकट, यावत् भगवान की उपासना करने लगे ।

तत्पश्चात् भगवान महावीर ने शिवराजर्षि को और उस महती परीषद् को धर्मोपदेश दिया कि यावत् -''इस प्रकार पालन करने से जीव आज्ञा आराधक होते हैं ।'' तदनन्तर वे शिवराजर्षि भगवान महावीर स्वामी से धर्मोपदेश सूनकर, अवधारण कर; स्कन्दक की तरह, यावत् ईशानकोण में गए, लोढ़ी, लोह-कड़ाह यावत् छबड़ी सहित कावड़ आदि तापसोचित उपकरणों एकान्त स्थान में डाल दिया । फिर स्वयमेव पंचमुष्टि लोच किया, श्रमण भगवान महावीर के पास ऋषभदत्त की तरह प्रव्रज्या अंगीकार की; ११ अंगशास्त्रों का अध्ययन किया यावत् समस्त दुःखों से मुक्त हुए

सूत्र - ५०९

श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके भगवान गौतम ने इस प्रकार पूछा-'भगवन् ! सिद्ध होने वाले जीव किस संहनन से सिद्ध होते हैं ?' गौतम ! वे वज्रऋषभनाराच-संहनन से सिद्ध होते हैं; इत्यादि औपपातिकसूत्र के अनुसार संहनन, संस्थान, उच्चत्व, आयुष्य, परिवसन, इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धिगण्डिका-'सिद्ध जीव अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं', यहाँ तक कहना चाहिए । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-१०

सूत्र - ५१०

राजगृह नगर में यावत् पूछा-भगवन् ! लोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! चार प्रकार का है । यथा-

द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक और भावलोक ।

भगवन् ! क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! तीन प्रकार का । यथा-अधोलोक-क्षेत्रलोक, तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक और ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक । भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! सात प्रकार का यथा-रत्नप्रभापृथ्वी-अधोलोक-क्षेत्रलोक, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी-अधोलोक-क्षेत्रलोक । भगवन् ! तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! असंख्यात प्रकार का यथा-जम्बूद्वीप-तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक, यावत् स्वयम्भूरमणसमुद्र-तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक । भगवन् ! ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! पन्द्रह प्रकार का है यथा-सौधर्मकल्प-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक, यावत् अच्युतकल्प-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक, ग्रैवेयक विमान-ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्रलोक, अनुत्तरविमान-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक और ईषत्प्राग्भारपृथ्वी-ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक ।

भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक का किस प्रकार का संस्थान है ? गौतम ! त्रपा के आकार का है । भगवन् ! तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक का संस्थान किस प्रकार का है ? गौतम ! झालर के आकार का है । भगवन् ! ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक किस प्रकार के संस्थान का है ? गौतम ! ऊर्ध्वमृदंग के आकार का है । भगवन् ! लोक का संस्थान किस प्रकार का है ? गौतम ! सुप्रतिष्ठक के आकार का । यथा-वह नीचे विस्तीर्ण है, मध्य में संक्षिप्त है, इत्यादि सातवें शतक में कहे अनुसार जानना । यावत्-उस लोक को उत्पन्न ज्ञान-दर्शन-धारक केवलज्ञानी जानते हैं, इसके पश्चात् वे सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं । भगवन् ! अलोक का असंस्थान कैसा है ? गौतम ! अलोक का संस्थान पोले गोले के समान है ।

भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक में क्या जीव हैं, जीव का देश हैं, जीव के प्रदेश हैं ? अजीव हैं, अजीव के प्रदेश हैं ? गौतम ! दसवें शतक के ऐन्द्री दिशा समान कहना । यावत्-अद्धा-समय रूप है । भगवन् ! क्या तिर्यग्लोक में जीव हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! पूर्ववत् जानना । इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक के विषय में भी जानना, इतना विशेष है कि ऊर्ध्वलोक में अरूपी के छह भेद ही हैं, क्योंकि वहाँ अद्धासमय नहीं है ।

भगवन् ! क्या लोक में जीव हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! दूसरे शतक के अस्ति उद्देशकके लोकाकाश के विषय में जीवादि के कथन समान, विशेष इतना है कि यहाँ अरूपी के सात भेद कहने चाहिए, यावत् अधर्मास्ति-काय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धा-समय । शेष पूर्ववत् । भगवन् ! क्या अलोक में जीव हैं ? गौतम ! दूसरे शतक के दसवें अस्तिकाय उद्देशक में अलोकाकाश के विषय अनुसार जानना; यावत् वह आकाश के अनन्तवें भाग न्यून हैं । भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश में क्या जीव हैं; जीव के देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीव के देश हैं या अजीव के प्रदेश हैं ? गौतम ! (वहाँ) जीव नहीं, किन्तु जीवों के देश हैं, जीवों के प्रदेश भी हैं, यथा अजीव हैं, अजीवों के देश हैं और अजीवों के प्रदेश भी हैं । इनमें जो जीवों के देश हैं, वे नियम से एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के देश और द्वीन्द्रिय जीव का एक देश है, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश और द्वीन्द्रिय जीव के देश हैं; इसी प्रकार मध्यम भंग-रहित, शेष भंग, यावत् अनिन्द्रिय तक जानना, यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश और अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं । इनमें जो जीवों के प्रदेश हैं, वे नियम से एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवों का प्रदेश और द्वीन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं । इसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय तक प्रथम भंग को छोड़कर दो-दो भंग कहना, अनिन्द्रिय में तीनों भंग कहना । उनमें जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के हैं यथा-रूपी अजीव और अरूपी अजीव । रूपी अजीवों का वर्णन पूर्ववत् । अरूपी अजीव पाँच प्रकार हैं-यथा धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश और अद्धा-समय । भगवन् ! क्या तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश में जीव हैं; इत्यादि प्रश्न । गौतम ! अधोलोक-क्षेत्रलोक के समान तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक के विषय में समझ लेना । इस प्रकार ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश के विषय में भी जानना । विशेष इतना है कि वहाँ अद्धा-समय नहीं है, (इस कारण) वहाँ चार प्रकार के अरूपी अजीव हैं । लोक के एक आकाशप्रदेश के विषय में भी अधोलोक-क्षेत्रलोक के आकाशप्रदेश के कथन के समान जानना । भगवन् ! क्या अलोक के एक आकाशप्रदेश में

जीव हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! वहाँ जीव नहीं है, जीवों के देश नहीं है, इत्यादि पूर्ववत्; यावत् अलोक अनन्त अगुरुलघुगुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश के अनन्तवे भाग न्यून है ।

द्रव्य से–अधोलोक-क्षेत्रलोक में अनन्त जीवद्रव्य हैं, अनन्त अजीवद्रव्य हैं और अनन्त जीवाजीवद्रव्य हैं । इसी प्रकार तिर्यग्लोक-क्षेत्रलोक में भी जानना । इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक में भी जानना । द्रव्य से अलोक में जीवद्रव्य नहीं, अजीवद्रव्य नहीं और जीवाजीवद्रव्य भी नहीं, किन्तु अजीवद्रव्य का एक देश है, यावत् सर्वाकाश के अनन्तवे भाग न्यून है । काल से–अधोलोक-क्षेत्रलोक किसी समय नहीं था–ऐसा नहीं; यावत् वह नित्य है । इसी प्रकार यावत् अलोक के विषय में भी कहना । भाव से–अधोलोक-क्षेत्रलोक में 'अनन्तवर्णपर्याय' है, इत्यादि, द्वीतिय शतक में वर्णित स्कन्दक-प्रकरण अनुसार जानना, यावत् अनन्त अगुरुलघु-पर्याय हैं । इसी प्रकार यावत् लोक तक जानना भाव से–अलोक में वर्ण-पर्याय नहीं, यावत् अगुरुलघु-पर्याय नहीं है, परन्तु एक अजीवद्रव्य का देश है, यावत् वह सर्वाकाश के अनन्तवे भाग कम है ।

सूत्र - ५११

भगवन् ! लोक कितना बड़ा कहा गया है ? गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप, समस्त द्वीप-समुद्रों के मध्य में है; यावत् इसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है । किसी काल और किसी समय महर्द्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न छह देव, मन्दर पर्वत पर मन्दर की चूलिका के चारों ओर खड़े रहें और नीचे चार दिशाकुमारी देवियाँ चार बलि-पिण्ड लेकर जम्बूद्वीप नामक द्वीप की चारों दिशाओं में बाहर की ओर मुख करके खड़ी रहें । फिर वे चारों देवियाँ एक साथ चारों बलिपिण्डों को बाहर की ओर फैके । हे गौतम ! उसी समय उन देवो में से एक-एक देव, चारों बलिपिण्डों को पृथ्वीतल पर पहुँचने से पहले ही, शीघ्र ग्रहण करने में समर्थ हों ऐसे उन देवों में से एक देव, हे गौतम ! उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से पूर्व में जाए, एक देव दक्षिण दिशा की ओर जाए, इसी प्रकार एक देव पश्चिम की ओर, एक उत्तर की ओर, एक देव ऊर्ध्वदिशा में और एक देव अधोदिशा में जाए । उसी दिन और उसी समय एक हजार वर्ष की आयु वाले एक बालक ने जन्म लिया । तदनन्तर उस बालक के माता-पिता चल बसे । वे देव, लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते । उसके बाद वह बालक आयुष्य पूर्ण होने पर कालधर्म को प्राप्त हो गया। उतने समय में भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त न कर सके । उस बालक के हड्डी, मज्जा भी नष्ट हो गई, तब भी वे देव, लोक का अन्त नहीं पा सके । फिर उस बालक की सात पीढ़ी तक का कुलवंश नष्ट हो गया तब भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त न कर सके । तत्पश्चात् उस बालक के नाम-गोत्र भी नष्ट हो गए, उतने समय तक भी देव, लोक का अन्त प्राप्त न कर सके ।

भगवन् ! उन देवों का गत क्षेत्र अधिक है या अगत क्षेत्र ? हे गौतम ! गतक्षेत्र अधिक है, अगतक्षेत्र गतक्षेत्र के असंख्यातवे भाग है । अगतक्षेत्र से गतक्षेत्र असंख्यातगुणा है । हे गौतम ! लोक इतना बड़ा है । भगवन् ! अलोक कितना बड़ा कहा गया है ? गौतम ! यह जो समयक्षेत्र है, वह ४५ लाख योजन लम्बा-चौड़ा है इत्यादि सब स्कन्दक प्रकरण के अनुसार जानना, यावत् वह (पूर्वोक्त) परिधियुक्त है । किसी काल और किसी समय में, दस महर्द्धिक देव, इस मनुष्यलोक को चारों ओर से घेर कर खड़े हों । उनकी नीचे आठ दिशाकुमारियाँ, आठ बलि-पिण्ड लेकर मनुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में बाह्याभिमुख होकर खड़ी रहें । तत्पश्चात् वे उन आठों बलिपिण्डों को एक समय मनुष्योत्तर पर्वत के बाहर की ओर फेके । तब उन खड़े हुए देवों में से प्रत्येक देव उन बलिपिण्डों को धरती पर पहुँचने से पूर्व शीघ्र ही ग्रहण करने में समर्थ हों, ऐसी शीघ्र, उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति द्वारा वे दसों देव, लोक के अन्त में खड़े रहकर उनमें से एक पूर्व दिशा की ओर जाए, एक देव दक्षिणपूर्व की ओर जाए, इसी प्रकार यावत् एक देव उत्तरपूर्व की ओर जाए, एक देव ऊर्ध्वदिशा की ओर जाए और एक देव अधोदिशा में जाए । उस काल और उसी समय में एक गृहपति के घर में एक बालक का जन्म हुआ हो, जो कि एक लाख वर्ष की आयु वाला हो । तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता का देहावसान हुआ, इतने समय में भी देव अलोक का अन्त नहीं प्राप्त कर सके । तत्पश्चात् उस बालक का भी देहान्त हो गया । उसकी अस्थि और मज्जा भी विनष्ट हो गई और उसकी

सात पीढ़ियों के बाद वह कुल-वंश भी नष्ट हो गया तथा उसके नाम-गोत्र भी समाप्त हो गए। इतने लम्बे समय तक चलते रहने पर भी देव अलोक के अन्त को प्राप्त नहीं कर सकते। भगवन्! उन देवों का गतक्षेत्र अधिक है, या अगतक्षेत्र अधिक है ? गौतम ! वहाँ गतक्षेत बहुत नहीं, अगतक्षेत्र ही बहुत है। गतक्षेत्र से अगतक्षेत्र अनन्तगुणा है। अगतक्षेत्र से गतक्षेत्र अनन्तवे भाग है। हे गौतम ! अलोक इतना बड़ा है।

सूत्र - ५१२

भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश पर एकेन्द्रिय जीवों के जो प्रदेश हैं, यावत् पंचेन्द्रिय जीवों के और अनिन्द्रिय जीवों के जो प्रदेश हैं, क्या वे सभी एक दूसरे के साथ बद्ध हैं, अन्योन्य स्पृष्ट हैं यावत् परस्पर-सम्बद्ध हैं? भगवन्! क्या वे परस्पर एक दूसरे को आबाधा (पीड़ा) और व्याबाधा (विशेष पीड़ा) उत्पन्न करते हैं ? या क्या वे उनके अवयवों का छेदन करते हैं ? यह अर्थ समर्थ (शक्य) नहीं है।

भगवन् ! यह किस कारण से कहा ? गौतम ! जिस प्रकार कोई शृंगार का घर एवं उत्तम वेष वाली यावत् सुन्दर गति, हास, भाषण, चेष्टा, विलास, ललित संलाप निपुण, युक्त उपचार से कलित नर्तकी सैकड़ों और लाखों व्यक्तियों से परिपूर्ण रंगस्थली में बत्तीस प्रकार के नाट्यों में से कोई एक नाट्य दिखाती है, तो–हे गौतम ! वे प्रेक्षक-गण उस नर्तकी को अनिमेष दृष्टि से चारों ओर से देखते हैं न ? हाँ भगवन्! देखते हैं। गौतम ! उनकी दृष्टियाँ चारों ओर से उस नर्तकी पर पड़ती हैं न ? हाँ, भगवन्! पड़ती हैं। हे गौतम ! क्या उन दर्शकों की दृष्टियाँ उस नर्तकी को किसी प्रकार की थोड़ी या ज्यादा पीड़ा पहुँचाती है ? या उसके अवयव का छेदन करती हैं ? भगवन्! यह अर्थ समर्थ नहीं है। गौतम ! क्या वह नर्तकी दर्शकों की उन दृष्टियों को कुछ भी बाधा-पीड़ा पहुँचाती है या उनका अवयव-छेदन करती है ? भगवन्! यह अर्थ भी समर्थ नहीं है। गौतम ! क्या वे दृष्टियाँ परस्पर एक दूसरे को किंचित् भी बाधा या पीड़ा उत्पन्न करती हैं ? या उनके अवयव का छेदन करती हैं ? भगवन्! यह अर्थ भी समर्थ नहीं। हे गौतम ! इसी कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर बद्ध, स्पृष्ट और यावत् सम्बद्ध होने पर भी अबाधा या व्याबाधा उत्पन्न नहीं करते और न ही अवयवों का छेदन करते हैं।

सूत्र - ५१३

भगवन्! लोक के एक आकाशप्रदेश पर जघन्यपद में रहे हुए जीवप्रदेशों, उत्कृष्ट पद में रहे हुए जीव-प्रदेशों और समस्त जीवों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! लोक के एक आकाश प्रदेश पर जघन्यपद में रहे हुए जीवप्रदेश सबसे थोड़े हैं, उनसे सर्वजीव असंख्यातगुणे हैं, उनसे (एक आकाशप्रदेश पर) उत्कृष्ट पद में रहे हुए जीवप्रदेश विशेषाधिक हैं। 'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।'

शतक-११ – उद्देशक-११

सूत्र - ५१४

उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था। यावत् उसमें एक पृथ्वीशिलापट्ट था। उस वाणिज्यग्राम नगर में सुदर्शन नामक श्रेष्ठी रहता था। वह आढ्य यावत् अपरिभूत था। वह जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता, श्रमणोपासक होकर यावत् विचरण करता था। महावीर स्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ, यावत् परीषद् पर्युपासना करने लगी।

सुदर्शन श्रेष्ठी इस बात को सूनकर अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। उसने स्नानादि किया, यावत् प्रायश्चित्त करके समस्त वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर अपने घर से नीकला। फिर कोरंट-पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण करके अनेक पुरुषवर्ग से परिवृत्त होकर, पैदल चलकर वाणिज्यग्राम नगर के बीचोंबीच होकर नीकला और जहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया। सचित्त द्रव्यों का त्याग आदि पाँच अभिगमपूर्वक वह सुदर्शन श्रेष्ठी भी, श्रमण भगवान महावीर के सम्मुख गया, यावत् तीन प्रकार से भगवान की पर्युपासना करने लगा। श्रमण भगवान महावीर ने सुदर्शन श्रेष्ठी और उस विशाल परीषद् को धर्मोपदेश दिया, यावत् वह आराधक हुआ।

सुदर्शन श्रेष्ठी भगवान महावीर से धर्मकथा सूनकर एवं हृदय में अवधारण करके अतीव हृष्ट-तुष्ट हुआ । उसने खड़े होकर भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की और वन्दना-नमस्कार करके पूछा–भगवन् ! काल कितने प्रकार का है ? हे सुदर्शन ! चार प्रकार का । यथा–प्रमाणकाल, यथार्निवृत्ति काल, मरणकाल और अद्धाकाल ।

भगवन् ! प्रमाणकाल क्या है ? सुदर्शन ! प्रमाणकाल दो प्रकार का कहा गया है, यथा–दिवस-प्रमाणकाल और रात्रि-प्रमाणकाल । चार पौरुषी (प्रहर) का दिवस होता है और चार पौरुषी (प्रहर) की रात्रि होती है । दिवस और रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्त्त की होती है, तथा दिवस और रात्रि की जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है ।

सूत्र - ५१५

भगवन् ! जब दिवस की या रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्त्त की होती है, तब उस मुहूर्त्त का कितना भाग घटते-घटते जघन्य तीन मुहूर्त्त की दिवस और रात्रि की पौरुषी होती है ? और जब दिवस और रात्रि की पौरुषी जघन्य तीन मुहूर्त्त की होती है, तब मुहूर्त्त का कितना भाग बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्त्त की पौरुषी होती है ? हे सुदर्शन ! जब दिवस और रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्त्त की होती है, तब मुहूर्त्त का एक सौ बाईसवां भाग घटते-घटते जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है, और जब जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्त्त की होती है, तब मुहूर्त्त का एक सौ बाईसवा भाग बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट पौरुषी साढ़े चार मुहूर्त्त की होती है । भगवन् ! दिवस और रात्रि की उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्त्त की पौरुषी कब होती है और जघन्य तीन मुहूर्त्त की पौरुषी कब होती है? हे सुदर्शन ! जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तथा जघन्य बारह मुहूर्त्त की छोटी रात्रि होती है, तब साढ़े चार मुहूर्त्त की दिवस की उत्कृष्ट पौरुषी होती है और रात्रि की तीन मुहूर्त्त की सबसे छोटी पौरुषी होती है । जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की बड़ी रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त्त का छोटा दिन होता है, तब साढ़े चार मुहूर्त्त की उत्कृष्ट रात्रिपौरुषी होती है और तीन मुहूर्त्त की जघन्य दिवस-पौरुषी होती है । भगवन् ! अठारह मुहूर्त्त का उत्कृष्ट दिवस और बारह मुहूर्त्त की जघन्य रात्रि कब होती है ? तथा अठारह मुहूर्त्त की उत्कृष्ट रात्रि और बारह मुहूर्त्त का जघन्य दिन कब होता है ? सुदर्शन ! अठारह मुहूर्त्त का उत्कृष्ट दिवस और बारह मुहूर्त्त की जघन्य रात्रि आषाढ़ी पूर्णिमा की होती है; तथा अठारह मुहूर्त्त की उत्कृष्ट रात्रि और बारह मुहूर्त्त का जघन्य दिवस पौषी पूर्णिमा को होता है ।

भगवन् ! कभी दिवस और रात्रि, दोनों समान भी होते हैं ? हाँ, सुदर्शन ! होते हैं । भगवन् ! दिवस और रात्रि, ये दोनों समान कब होते हैं ? सुदर्शन ! चैत्र की और आश्विन की पूर्णिमा को दिवस और रात्रि दोनों समान होते हैं । उस दिन १५ मुहूर्त्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त्त की रात होती है तथा दिवस एवं रात्रि की पौने चार मुहूर्त्त की पौरुषी होती है

सूत्र - ५१६

भगवन् ! वह यथार्निवृत्तिकाल क्या है ? (सुदर्शन !) जिस किसी नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य अथवा देव ने स्वयं जिस गति का और जैसा भी आयुष्य बाँधा है, उसी प्रकार उसका पालन करना–भोगना, 'यथायुर्निवृ-त्तिकाल' कहलाता है । भगवन् ! मरणकाल क्या है ? सुदर्शन ! शरीर से जीव का अथवा जीव से शरीर का (पृथक् होने का काल) मरणकाल है, यह है–मरणकाल का लक्षण ।

भगवन् ! अद्धाकाल क्या है ? सुदर्शन ! अनेक प्रकार का है । वह समयरूप प्रयोजन के लिए है, आवलि-कारूप प्रयोजन के लिए है, यावत् उत्सर्पिणीरूप प्रयोजन के लिए है । हे सुदर्शन ! दो भागों में जिसका छेदन-विभाग न हो सके, वह 'समय' है, क्योंकि वह समयरूप प्रयोजन के लिए है । असंख्य समयों के समुदाय की एक आवलिका कहलाती है । संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है, इत्यादि छठे शतक में कहे गए अनुसार यावत्–'यह एक सागरोपम का परिमाण होता है', यहाँ तक जान लेना चाहिए । भगवन् ! इन पल्योपम और सागरोपमों से क्या प्रयोजन है? सुदर्शन ! इन पल्योपम, सागरोपमों से नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों, देवों का आयुष्य नापा जाता है

सूत्र - ५१७

भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की है ? सुदर्शन ! स्थितिपद सम्पूर्ण कहना, यावत्–अजघन्य-अनुत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम की स्थिति है ।

सूत्र - ५१८, ५१९

भगवन् ! क्या इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय या अपचय होता है ? हाँ, सुदर्शन ! होता है । भगवन् ऐसा किस कारण से कहते हैं ? हे सुदर्शन ! उस काल और उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था । वहाँ सहस्रा-म्रवन नामक उद्यान था । उस हस्तिनापुर में 'बल' नामक राजा था । उस बल राजा की प्रभावती नामकी देवी (पटरानी) थी । उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे, यावत् पंचेन्द्रिय संबंधी सुखानुभव करती हुई जीवनयापन करती थी ।

किसी दिन प्रभावती देवी उस प्रकार के वासगृह के भीतर, उस प्रकार की अनुपम शय्या पर (सोई हुई थी ।) (वह वासगृह) भीतर से चित्रकर्म से युक्त तथा बाहर से सफेद किया हुआ, एवं घिसकर चिकना बनाया हुआ था । जिसका ऊपरी भाग विविध चित्रों से युक्त तथा अधोभाग प्रकाश से देदीप्यमान था । मणियों और रत्नों के कारण उसका अन्धकार नष्ट हो गया था । उसका भूभाग बहुत सम और सुविभक्त था । पाँच वर्ण के सरस और सुगन्धित पुष्पपुंजों के उपचार से युक्त था । उत्तम कालागुरु, कुन्दरुक और तुरुष्क के धूप से वह वासभवन चारों ओर से महक रहा था । उसकी सुगन्ध से वह अभिराम तथा सुगन्धित पदार्थों से सुवासित था । एक तरह से वह सुगन्धित द्रव्य की गुटिका के जैसा हो रहा था । ऐसे आवासभवन में जो शय्या थी, वह अपने आप में अद्वीतिय थी तथा शरीर से स्पर्श करते हुए पार्श्ववर्ती तकिये से युक्त थी । फिर उसके दोनों और तकिये रखे हुए थे । वह दोनों ओर से उन्नत थी, बीच में कुछ झुकी हुई एवं गहरी थी, एवं गंगा नदी के तटवर्ती बालू पैर रखते ही नीचे धस जाने के समान थी । वह मुलायम बनाए हुए रेशमी दुकूलपट से आच्छादित तथा सुन्दर सुरचित रजस्राण से युक्त थी । लाल रंग के सूक्ष्म वस्त्र की मच्छरदानी उस पर लगी हुई थी । वह सुरम्य आजिनक, रूई, बूर, नवनीत तथा अर्कतूल के समान कोमल स्पर्श वाली थी; तथा सुगन्धित श्रेष्ठपुरुष चूर्ण एवं शयनोपचार से युक्त थी ।

ऐसी शय्या पर सोती हुई प्रभावती रानी, जब अर्धरात्रिकाल के समय कुछ सोती-कुछ जागती अर्धनिद्रित अवस्था में थी, तब स्वप्न में इस प्रकार का उदार, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मंगलकारक एवं शोभायुक्त महास्वप्न देखा और जागृत हुई । प्रभावती रानी ने स्वप्न में एक सिंह देखा, जो हार, रजत, क्षीरसमुद्र, चन्द्रकिरण, जलकण, रजतमहाशैल के समान श्वेत वर्ण वाला था, वह विशाल, रमणीय और दर्शनीय था । उसके प्रकोष्ठ स्थिर और सुन्दर थे वह अपने गोल, पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढ़ाओं से युक्त मुँह को फाड़े हुए था । उसके ओष्ठ संस्का-रित जातिमान् कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत एवं अत्यन्त सुशोभित थे । उसका तालु और जीभ रक्तकमल के पत्ते के समान अत्यन्त कोमल थी । उसके नेत्र, मूस में रहे हुए एवं अग्नि में तपाये हुए तथा आवर्त्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्ण वाले, गोल एवं विद्युत के समान विमल (चमकीले) थे । उसकी जंघा विशाल एवं पुष्ट थी। उसके स्कन्ध परिपूर्ण और विपुल थे । वह मृदु, विशद, सूक्ष्म एवं प्रशस्त लक्षण वाली विस्तीर्ण केसर के जटा से सुशोभित था । वह सिंह अपनी सुनिर्मित, सुन्दर एवं उन्नत पूँछ को फटकारता हुआ, सौम्य आकृति वाला, लीला करता हुआ, जंभाई लेता हुआ, गगनतल से उतरता हुआ तथा अपने मुख-कमल-सरोवर में प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया । स्वप्न में ऐसे सिंह को देखकर रानी जागृत हुई ।

तदनन्तर वह प्रभावती रानी इस प्रकार के उस उदार यावत् शोभायुक्त महास्वप्न को देखकर जागृत होते ही अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई; यावत् मेघ की धारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान रोमांचित होती हुई उस स्वप्न का स्मरण करने लगी । फिर वह अपनी शय्या से उठी और शीघ्रता से रहित तथा अचपल, असम्भ्रमित एवं अवि-लम्बित अत एव राजहंस सरीखी गति से चलकर जहाँ बल राजा की शय्या थी, वहाँ आई और उन्हें उन इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, उदार, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मंगलमय तथा शोभायुक्त परिमित, मधुर एवं मंजुल वचनों से जगाने लगी । राजा जागृत हुआ । राजा की आज्ञा होने पर रानी विचित्र मणि और रत्नों की रचना से चित्रित भद्रासन पर बैठी । और उत्तम सुखासन से बैठकर आश्वस्त और विश्वस्त हुई । रानी प्रभावती, बल राजा से इष्ट, कान्त यावत् मधुर वचनों से बोली-'हे देवानुप्रिय ! आज मैं सो रही थी, तब मैंने यावत् अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए सिंह को स्वप्न में देखा और मैं जाग्रत हुई हूँ । तो हे देवानुप्रिय ! मुझे इस उदार यावत् महास्वप्न का क्या कल्याणरूप फल विशेष होगा ?

तदनन्तर वह बल राजा प्रभावती देवी से इस बात को सूनकर और समझकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ यावत् उसका हृदय आकर्षित हुआ । मेघ की धारा से विकसित कदम्ब के सुगन्धित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा, रोमकूप विकसित हो गए । राजा बल उस स्वप्न के विषय में अवग्रह करके ईहा में प्रविष्ट हुआ, फिर उसने अपने स्वाभाविक बुद्धिविज्ञान से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया । उसके बाद इष्ट, कान्त यावत् मंगलमय, परिमित, मधुर एवं शोभायुक्त सुन्दर वचन बोलता हुआ राजा बोला-'हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा है । देवी ! तुमने कल्याणकारक यावत् शोभायुक्त स्वप्न देखा है । हे देवी ! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याणरूप एवं मंगलकारक स्वप्न देखा है । हे देवानुप्रिये ! (तुम्हें) अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यालाभ होगा । हे देवानुप्रिये ! नौ मास और साढ़े तीन दिन व्यतीत होने पर तुम हमारे कुल में केतु-समान, कुल के दीपक, कुल में पर्वततुल्य, कुल का शेखर, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति फैलाने वाले, कुल को आनन्द देने वाले, कुल का यश बढ़ाने वाले, कुल के आधार, कुल में वृक्ष समान, कुल की वृद्धि करने वाले, सुकुमाल हाथ-पैर वाले, अंगहीनता-रहित, परिपूर्ण पंचेन्द्रिययुक्त शरीर वाले, यावत् चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन, सुरूप एवं देवकुमार के समान कान्ति वाले पुत्र को जन्म देगी ।' वह बालक भी बालभाव से मुक्त होकर विज्ञ और कलादि में परिपक्व होगा । यौवन प्राप्त होते ही वह शूरवीर, पराक्रमी तथा विस्तीर्ण एवं विपुल बल और वाहन वाला राज्या-धिपति राजा होगा । अतः हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा है, यावत् देवी ! तुमने आरोग्य, तुष्टि यावत् मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार बल राजा ने प्रभावती देवी को इष्ट यावत् मधुर वचनों से वही बात दो बार और तीन बार कही ।

तदनन्तर वह प्रभावती रानी, बल राजा से इस बात को सूनकर, हृदय में धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुई; और हाथ जोड़कर यावत् बोली-'हे देवानुप्रिय ! आपने जो कहा, वह यथार्थ है, देवानुप्रिय ! वह सत्य है, असंदिग्ध है । वह मुझे ईच्छित है, स्वीकृत है, पुनः पुनः ईच्छित और स्वीकृत है ।' इस प्रकार स्वप्न के फल को सम्यक् रूप से स्वीकार किया और फिर बल राजा की अनुमति लेकर अनेक मणियों और रत्नों से चित्रित भद्रासन से उठी । फिर शीघ्रता और चपलता से रहित यावत् गति से जहाँ अपनी शय्या थी, वहाँ आई और शय्या पर बैठकर कहने लगी-'मेरा यह उत्तम, प्रधान एवं मंगलमय स्वप्न दूसरे पापस्वप्नों से विनष्ट न हो जाए ।' इस प्रकार विचार करके देवगुरुजन-सम्बन्धी प्रशस्त और मंगलरूप धार्मिक कथाओं से स्वप्नजागरिका के रूप में वह जागरण करती हुई बैठी रही ।

तदनन्तर बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनको इस प्रकार का आदेश दिया-'देवानुप्रियो ! बाहर की उपस्थानशाला आज शीघ्र ही विशेषरूप से गन्धोदक छिड़क कर शुद्ध करो, स्वच्छ करो, लीप कर सम करो सुगन्धित और उत्तम पाँच वर्ण के फूलों से सुसज्जित करो, उत्तम कालागुरु और कुन्दरुष्क के धूप से यावत् सुगन्धित गुटिका के समान करो-कराओ, फिर वहाँ सिंहासन रखो । ये सब कार्य करके यावत् मुझे वापस निवेदन करो ।' तब यह सूनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बल राजा का आदेश शिरोधार्य किया और यावत् शीघ्र ही विशेषरूप से बाहर की उपस्थानशाला को यावत् स्वच्छ, शुद्ध, सुगन्धित किया यावत् आदेशानुसार सब कार्य करके राजा से निवेदन किया ।

इसके पश्चात् बल राजा प्रातःकाल के समय अपनी शय्या से उठे और पादपीठ से नीचे ऊतरे । फिर वे जहाँ व्यायामशाला थी, वहाँ गए । व्यायामशाला तथा स्नानगृह के कार्य का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना, यावत् चन्द्रमा के समान प्रिय-दर्शन बनकर वह नृप, स्नानगृह से नीकले और जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी वहाँ आए । सिंहासन पर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठे । फिर अपने से ईशानकोण में श्वेत वस्त्र से आच्छा-दित तथा सरसौं आदि मांगलिक पदार्थों से उपचरित आठ भद्रासन रखवाए । तत्पश्चात् अपने से न अति दूर और न अति निकट अनेक प्रकार के मणिरत्नों से सुशोभित, अत्यधिक दर्शनीय, बहुमूल्य श्रेष्ठ पट्टन में निर्मित सूक्ष्म पट पर सैकड़ोंचित्रों की रचना से व्याप्त, ईहामृग, वृषभ आदि के यावत् पद्मलता के चित्र से युक्त एक आभ्यन्तरिक यवनिका लगवाई । (उस पर्दे के अन्दर) अनेक प्रकार के मणिरत्नों से एवं चित्र से रचित विचित्र खोली वाले, कोमल वस्त्र से आच्छादित, तथा श्वेत वस्त्र चढ़ाया हुआ, अंगों को सुखद स्पर्श वाला तथा सुकोमल गद्दीयुक्त एक भद्रासन रखवा दिया । फिर बल राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अष्टांग महानिमित्त के सूत्र

और अर्थ के ज्ञाता, विविध शास्त्रों में कुशल स्वप्न-शास्त्र के पाठकों को बुला लाओ । इस पर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् राजा का आदेश स्वीकार किया और राजा के पास से नीकले । फिर वे शीघ्र, चपलता युक्त, त्वरित, उग्र एवं वेगवाली तीव्र गति से हस्तिनापुर नगर के मध्य में होकर जहाँ उन स्वप्न-लक्षण पाठकों के घर थे, वहाँ पहुँचे और उन्हें राजाज्ञा सूनाई । इस प्रकार स्वप्नलक्षणपाठकों को उन्होंने बुलाया ।

वे स्वप्नलक्षण-पाठक भी बलराजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाए जाने पर अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत किया । फिर वे अपने मस्तक पर सरसों और हरी दूब से मंगल करके अपने-अपने घर से नीकले, और जहाँ बलराजा का उत्तम शिखररूप राज्य-प्रासाद था, वहाँ आए । उस उत्तम राजभवन के द्वार पर एकत्रित होकर मिले और जहाँ राजा की बाहरी उपस्थानशाला थी, वहाँ सभी मिलकर आए । बलराजा के पास आकर, उन्होंने हाथ जोड़कर बलराजा को 'जय हो, विजय हो' आदि शब्दों से बधाया । बलराजा द्वारा वन्दित, पूजित, सत्कारित एवं सम्मानित किए गए वे स्वप्नलक्षण-पाठक प्रत्येक के लिए पहले से बिछाए हुए उन भद्रासनों पर बैठे । तत्पश्चात् बल राजा ने प्रभावती देवी को यवनिका की आड़ में बिठाया। फिर पुष्प और फल हाथों में भरकर बल राजा ने अत्यन्त विनयपूर्वक उन स्वप्नलक्षणपाठकों से कहा-'देवानुप्रियो ! आज प्रभावती देवी तथारूप उस वासगृह में शयन करते हुए यावत् स्वप्न में सिंह देखकर जागृत हुई है । इस उदार यावत् कल्याणकारक स्वप्न का क्या फलविशेष होगा ?

इस पर बल राजा से इस प्रश्न को सूनकर एवं हृदय में अवधारण कर वे स्वप्नलक्षणपाठक प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुए । उन्होंने उस स्वप्न के विषय में सामान्य विचार किया, फिर विशेष विचार में प्रविष्ट हुए, तत्पश्चात् उस स्वप्न के अर्थ का निश्चय किया । फिर परस्पर एक-दूसरे के साथ विचार-चर्चा की, फिर उस स्वप्न का अर्थ स्वयं जाना, दूसरे से ग्रहण किया, एक दूसरे से पूछकर शंका-समाधान किया, अर्थ का निश्चय किया और अर्थ पूर्णतया मस्तिष्क में जमाया । फिर बल राजा के समक्ष स्वप्नशास्त्रों का उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले-'हे देवानुप्रिय ! हमारे स्वप्न शास्त्र में बयालीस सामान्य स्वप्न और तीस महास्वप्न, इस प्रकार कुल बहत्तर स्वप्न बताये हैं । तीर्थंकर की माताएं या चक्रवर्ती की माताएं, जब तीर्थंकर या चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं, तब इन तीस महास्वप्नों में से ये १४ महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं । जैसे- (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) अभिषिक्त लक्ष्मी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कुम्भ (कलश), (१०) पद्म-सरोवर, (११) सागर, (१२) विमान या भवन, (१३) रत्नराशि और (१४) निर्धूम अग्नि ।

सूत्र - ५२०

'हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने इनमें से एक महास्वप्न देखा है । अतः हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने उदार स्वप्न देखा है, सचमुच प्रभावती देवी ने यावत् आरोग्य, तुष्टि यावत् मंगलकारक स्वप्न देखा है । हे देवानुप्रिय ! इस स्वप्न के फलरूप आपको अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ एवं राज्यलाभ होगा ।' अतः हे देवानुप्रिय ! यह निश्चित है कि प्रभावती देवी नौ मास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर यावत् पुत्र को जन्म देगी । वह बालक भी बाल्यावस्था पार करने पर यावत् राज्याधिपति राजा होगा अथवा वह भावितात्मा अनगार होगा । इसलिए हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने उदार, यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु एवं कल्याणकारक यावत् स्वप्न देखा है ।

तत्पश्चात् स्वप्नलक्षणपाठकों से इस स्वप्नफल को सूनकर एवं हृदय में अवधारण कर बल राजा अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ । उसने हाथ जोड़कर यावत् उन स्वप्नलक्षणपाठकों से कहा-'हे देवानुप्रियो ! आपने जैसा स्वप्नफल बताया, यावत् वह उसी प्रकार है ।' इस प्रकार कहकर स्वप्न का अर्थ सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया । फिर उन स्वप्नलक्षणपाठकों को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों से सत्कारित-सम्मानित किया, जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया एवं सबको बिदा किया । तत्पश्चात् बल राजा अपने सिंहासन से उठा और जहाँ प्रभावती देवी बैठी थी, वहाँ आया और प्रभावती देवी को इष्ट, कान्त यावत् मधुर वचनों से वार्तालाप करता हुआ कहने लगा-'देवानुप्रिये ! स्वप्नशास्त्र में ४२ सामान्य स्वप्न और ३० महास्वप्न, इस प्रकार ७२ स्वप्न बताएं हैं । इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् कहना, यावत् माण्डलिकों की माताएं इनमें से किसी एक महास्वप्न को

देखकर जागृत होती हैं । देवानुप्रिये ! तुमने भी इन चौदह महास्वप्नों में से एक महास्वप्न देखा है । हे देवी ! सचमुच तुमने एक उदार स्वप्न देखा है, जिसके फलस्वरूप तुम यावत् एक पुत्र को जन्म दोगी, यावत् जो या तो राज्याधिपति राजा होगा, अथवा भावितात्मा अनगार होगा । देवानुप्रिये ! तुमने एक उदार यावत् मंगल-कारक स्वप्न देखा है; इस प्रकार इष्ट, कान्त, प्रिय यावत् मधुर वचनों से उसी बात को दो-तीन बार कहकर उसकी प्रसन्नता में वृद्धि की ।

तब बल राजा से उपर्युक्त अर्थ सूनकर एवं उस पर विचार करके प्रभावती देवी हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई । यावत् हाथ जोड़कर बोली-देवानुप्रिय ! जैसा आप कहते हैं, वैसा ही यह है । यावत् इस प्रकार कहकर उसने स्वप्न के अर्थ को भलीभाँति स्वीकार किया और बल राजा की अनुमति प्राप्त होने पर वह अनेक प्रकार के मणिरत्नों की कारीगरी से निर्मित उस भद्रासन से यावत् उठी; शीघ्रता तथा चपलता से रहित यावत् हंसगति से जहाँ अपना भवन था, वहाँ आकर अपने भवन में प्रविष्ट हुई । तदनन्तर प्रभावती देवी ने स्नान किया, शान्तिकर्म किया और फिर समस्त अलंकारों से विभूषित हुई । वह अपने गर्भ का पालन करने लगी । अब उस गर्भ का पालन करने के लिए वह न तो अत्यन्त शीतल और न तो अत्यन्त उष्ण, न अत्यन्त तिक्त और न अत्यन्त कडुए, न अत्यन्त कसैले, न अत्यन्त खट्टे और न अत्यन्त मीठे पदार्थ खाती थी परन्तु ऋतु के योग्य सुखकारक भोजन आच्छादन, गन्ध एवं माला का सेवन करके गर्भ का पालन करती थी । वह गर्भ के लिए जो भी हित, परिमित, पथ्य तथा गर्भपोषक पदार्थ होता, उसे ग्रहण करती तथा उस देश और काल के अनुसार आहार करती थी तथा जब वह दोषों से रहित मृदु शय्या एवं आसनों से एकान्त शुभ या सुखद मनोनुकूल विहारभूमि में थी, तब प्रशस्त दोहद उत्पन्न हुए, वे पूर्ण हुए । उन दोहदों को सम्मानित किया गया । वे दोहद समाप्त हुए, सम्पन्न हुए । वह रोग, शोक, मोह, भय, परित्रास आदि से रहित होकर उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी ।

इसके पश्चात् नौ महीने और साढ़े सात दिन परिपूर्ण होने पर प्रभावती देवी ने, सुकुमाल हाथ और पैर वाले, हीन अंगों से रहित, पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाले तथा लक्षणव्यञ्जन और गुणों से युक्त यावत् चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन एवं सुरूप पुत्र को जन्म दिया । पुत्र जन्म होने पर प्रभावती देवी की अंगपरिचारिकाएं प्रभावती देवी को प्रसूता जानकर बल राजा के पास आई, और हाथ जोड़कर उन्हें जय-विजय शब्दों से बधाया । फिर निवेदन किया-हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने नौ महीने और साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर यावत् सुरूप बालक को जन्म दिया है । अतः देवानुप्रिय की प्रीति के लिए हम यह प्रिय समाचार निवेदन करती हैं । यह आपके लिए प्रिय हो । यह प्रिय समाचार सूनकर एवं हृदय में धारण कर बल राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ; यावत् मेघ की धारा से सिंचित कदम्बपुष्प के समान उसके रोमकूप विकसित हो गए । बल राजा ने अपने मुकुट को छोड़कर धारण किए हुए शेष सभी आभरण उन अंगपरिचारिकाओं को दे दिए । फिर सफेद चाँदी का निर्मल जल से भरा हुआ कलश लेकर उन दासियों का मस्तक धोया । उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हें बिदा किया ।

सूत्र - ५२१

इसके पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें इस प्रकार कहा-'देवानुप्रियो ! हस्तिना-पुर नगर में शीघ्र ही चारक-शोधन अर्थात्-बन्दियों का विमोचन करो, और मान तथा उन्मान में वृद्धि करो । फिर हस्तिनापुर नगर के बाहर और भीतर छिड़काव करो, सफाई करो और लीप-पोत कर शुद्धि (यावत्) करो-कराओ। तत्पश्चात् यूप सहस्त्र और चक्रसहस्त्र की पूजा, महामहिमा और सत्कारपूर्वक उत्सव करो । मेरे इस आदेशानुसार कार्य करके मुझे पुनः निवेदन करो ।' तदनन्तर बल राजा के उपर्युक्त आदेशानुसार यावत् कार्य करके उन कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञानुसार कार्य हो जाने का निवेदन किया ।

तत्पश्चात् बल राजा व्यायामशाला में गए । व्यायाम किया, इत्यादि वर्णन पूर्ववत्, यावत् बल राजा स्नानगृह से नीकले । प्रजा से शुल्क तथा कर लेना बन्द कर दिया, भूमि के कर्षण-जोतने का निषेध कर दिया, क्रय, विक्रय का निषेध कर देने से किसी को कुछ मूल्य देना, या नाप-तौल करना न रहा । कुटुम्बिकों के घरों में सुभटों का प्रवेश बन्द करा दिया । राजदण्ड से प्राप्य दण्ड द्रव्य तथा अपराधीयों को दिए गए कुदण्ड से प्राप्य द्रव्य लेने का निषेध कर दिया

किसी को ऋणी न रहने दिया जाए । इसके अतिरिक्त प्रधान गणिकाओं तथा नाटकसम्बन्धी पात्रों से युक्त था । अनेक प्रकार के तालानुचरों द्वारा निरन्तर करताल आदि तथा वादकों द्वारा मृदंग उन्मुक्त रूप से बजाए जा रहे थे । बिना कुम्हलाई हुई पुष्पमालाओं उसमें आमोद-प्रमोद और खेलकूद करने वाले अनेक लोग भी थे । इस प्रकार दस दिनों तक राजा द्वारा पुत्रजन्म महोत्सव प्रक्रिया होती रही । इन दस दिनों की पुत्रजन्म संबंधी महोत्सव-प्रक्रिया जब प्रवृत्त हो रही थी, तब बल राजा सैकड़ों, हजारों और लाखों रूपयों के खर्च वाले याग-कार्य करता रहा तथा दान और भाग देता और दिलवाता हुआ एवं सैकड़ों, हजारों और लाखों रुपयों के लाभ देता और स्वीकारता रहा ।

तदनन्तर उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन कुल मर्यादा अनुसार प्रक्रिया की । तीसरे दिन (बालक को) चन्द्र-सूर्य-दर्शन की क्रिया की । छठे दिन जागरिका की । ग्यारह दिन व्यतीत होने पर अशुचि जातककर्म से निवृत्ति की । बारहवाँ दिन आने पर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार कराया । फिर शिव राजा के समान यावत् समस्त क्षत्रियों यावत् ज्ञातिजनों को आमंत्रित किया और भोजन कराया । इसके पश्चात् स्नान एवं बलिकर्म किए हुए राजा ने उन सब मित्र, ज्ञातिजन आदि का सत्कार-सम्मान किया और फिर उन्हीं मित्र, ज्ञातिजन यावत् राजा और क्षत्रियों के समक्ष अपने पितामह, प्रतिपतामह एवं पिता के प्रपितामह आदि से चले आत हुए, अनेक पुरुषों की परम्परा से रूढ़, कुल के अनुरूप, कुल के सदृश कुलरूप सन्तान-तन्तु की वृद्धि करने वाला, गुणयुक्त एवं गुणनिष्पन्न ऐसा नामकरण करते हुए कहा–चूं कि हमारा यह बालक राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिए हमारे इस बालक का 'महाबल' नाम हो । अत एव उसका नाम 'महाबल' रखा ।

तदनन्तर उस बालक महाबल कुमार का–१. क्षीरधात्री, २. मज्जनधात्री, ३. मण्डनधात्री, ४. क्रीड़नधात्री और ५. अंकधात्री, इन पाँच धात्रिओं द्वारा राजप्रश्नीयसूत्र में वर्णित दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के समान लालन-पालन होने लगा यावत् वह महाबल कुमार वायु और व्याघात से रहित स्थान में रही हुई चम्पकलता के समान अत्यन्त सुख-पूर्वक बढ़ने लगा । साथ ही, महाबल कुमार के माता-पिता ने अपनी कुलमर्यादा की परम्परा के अनुसार क्रमशः चन्द्र-सूर्य-दर्शन, जागरण, नामकरण, घुटनों के बल चलना, पैरों से चलना, अन्नप्राशन, ग्रासवर्द्धन, संभाषण, कर्णवेधन, संवत्सरप्रतिलेखन, नक्खत्तः शिखा रखवाना और उपनयन संस्कार करना, इत्यादि तथा अन्य बहुत-से गर्भाधान, जन्म-महोत्सव आदि कौतुक किए ।

फिर उस महाबल कुमार के माता-पिता ने उसे आठ वर्ष से कुछ अधिक वय का जानकर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त के कलाचार्य के यहाँ पढ़ने भेजा, इत्यादि वर्णन दृढ़प्रतिज्ञकुमार के अनुसार करना, यावत् महाबल कुमार भोगों में समर्थ हुआ । महाबलकुमार को बालभाव से उन्मुक्त यावत् पूरी तरह भोग-समर्थ जानकर माता-पिता ने उसके लिए आठ सर्वोत्कृष्ट प्रासाद बनवाए । वे प्रासाद अत्यन्त ऊंचे यावत् सुन्दर थे। उन आठ श्रेष्ठ प्रासादों के ठीक मध्य में एक महाभवन तैयार करवाया, जो अनेक सैकड़ों स्तंभों पर टिका हुआ था, यावत् वह अतीव सुन्दर था ।

सूत्र - ५२२

तत्पश्चात् किसी समय शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त्त में महाबल कुमार ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त किया । उसे समस्त अलंकारों से विभूषित किया गया । फिर सौभाग्यवती स्त्रियों के द्वारा अभ्यंगन, स्नान, गीत, वादित, मण्डन, आठ अंगों पर तिलक, लाल डोरे के रूप में कंकण तथा दही, अक्षत आदि मंगल अथवा मंगलगीत–विशेष-रूप में आशीर्वचनों से मांगलिक कार्य किये गए तथा उत्तम कौतुक एवं मंगलोपचार के रूप में शान्तिकर्म किए गए । तत्पश्चात् महाबल कुमार के माता-पिता ने समान जोड़ी वाली, समान त्वचा वाली, समान उम्र की, समान रूप, लावण्य, यौवन एवं गुणों से युक्त विनीत एवं कौतुक तथा मंगलोपचार की हुई तथा शान्तिकर्म की हुई और समान राजकुलों से लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में (महाबल कुमार का) पाणिग्रहण करवाया । विवाहोपरान्त महाबल कुमार माता-पिता ने प्रीतिदान दिया । यथा–आठ कोटि हिरण्य, आठ कोटि स्वर्ण मुद्राएं, आठ श्रेष्ठ मुकुट, आठ श्रेष्ठ कुण्डलयुगल, आठ उत्तम हार, आठ उत्तम अर्द्धहार, आठ उत्तम एकावली हार, आठ मुक्तावली हार, आठ कनकावली हार, आठ रत्नावली हार, आठ श्रेष्ठ कड़ों की जोड़ी, आठ

बाजूबन्दों की जोड़ी, आठ श्रेष्ठ रेशमी वस्त्रयुगल, आठ टसर के वस्त्रयुगल, आठ पट्ट-युगल, आठ दुकूलयुगल, आठ श्री, आठ ह्री, आठ धी, आठ कीर्ति, आठ बुद्धि एवं आठ लक्ष्मी देवियाँ, आठ नन्द, आठ भद्र, आठ उत्तम तल वृक्ष, ये सब रत्नमय जानना ।

अपने भवन में केतु रूप आठ उत्तम ध्वज, दस-दस हजार गायों के प्रत्येक व्रज वाले आठ उत्तम व्रज, बत्तीस मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है, ऐसे आठ उत्तम नाटक, श्रीगृहरूप आठ उत्तम अश्व, ये सब रत्नमय जानने चाहिए । भाण्डागार के समान आठ रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, आठ उत्तम यान, आठ उत्तम युग्य, आठ शिबिकाएं, आठ स्यन्दमानिका इस प्रकार आठ गिल्ली, आठ थिल्ली, आठ श्रेष्ठ विकट यान, आठ पारियानिक रथ, आठ संग्रामिक रथ, आठ उत्तम अश्व, आठ उत्तम हाथी, दस हजार कुलों-परिवारों का एक ग्राम होता है, ऐ आठ उत्तम ग्राम; आठ उत्तम दास, एवं आठ उत्तम दासियाँ, आठ उत्तम किंकर, आठ उत्तम कंचूकी, आठ वर्षधर, आठ महत्तरक, आठ सोने के, आठ चाँदी के और आठ सोने-चाँदी के अवलम्बन दीपक, आठ सोने के, आठ चाँदी के और आठ सोने-चाँदी के उत्कंचन दीपक, इसी प्रकार सोना, चाँदी और सोना-चाँदी इन तीनों प्रकार के आठ पंजरदीपक, सोना, चाँदी और सोने-चाँदी के आठ थाल, आठ थालियाँ, आठ स्थासक, आठ मल्लक, आठ तलिका, आठ कलाचिका, आठ तापिकाहस्तक, आठ तवे, आठ पादपीठ, आठ भीषिका, आठ करोटिका, आठ पलंग, आठ प्रतिशय्याएं, आठ हंसासन, आठ क्रौंचासन, आठ गरुड़ासन, आठ उन्नतासन, आठ अवनतासन, आठ दीर्घासन, आठ भद्रासन, आठ पक्षासन, आठ मकरासन, आठ पद्मासन, आठ दिक्स्वस्तिकासन आठ तेल के डिब्बे, इत्यादि यावत् आठ सर्षप के डिब्बे, आठ कुब्जा दासियाँ आदि यावत् आठ पारस देश की दासियाँ, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी दासियाँ, आठ चामर, आठ चामरधारिणी दासियाँ, आठ पंखे, आठ पंख-धारिणी दासियाँ, आठ करोटिका, आठ करोटिकाधारिणी दासियाँ, आठ क्षीरधात्रियाँ, यावत् आठ अंकधात्रियाँ, आठ अंगमर्दिका, आठ उन्मर्दिका, आठ स्नान कराने वाली दासियाँ, आठ अलंकार पहनाने वाली दासियाँ, आठ चन्दन घिसने वाली दासियाँ, आठ ताम्बूल वर्ण पीसने वाली, आठ कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, आठ परिहास करने वाली, आठ सभा में पास रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक, आठ रसोई बनाने वाली, आठ भण्डार की रक्षा करने वाली, आठ तरुणियाँ, आठ पुष्प धारण करने वाली, आठ पानी भरने वाली, आठ बलि करने वाली, आठ शय्या बिछाने वाली, आठ आभ्यन्तर और बाह्य प्रतिहारियाँ, आठ माला बनाने वाली और आठ-आठ आटा आदि पीसने वाली दासियाँ दीं । बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र एवं विपुल धन, कनक, यावत् सारभूत द्रव्य दिया । जो सात कुल-वंशों तक ईच्छापूर्वक दान देने, उपभोग करने और बाँटने के लिए पर्याप्त था ।

इसी प्रकार महाबल कुमार ने भी प्रत्येक भार्या को एक-एक हिरण्यकोटि, एक-एक स्वर्णकोटि, एक-एक उत्तम मुकुट, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएं दी यावत् सभी को एक-एक पेषणकारी दासी दी तथा बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण आदि दिया, जो यावत् विभाजन करने के लिए पर्याप्त था । तत्पश्चात् वह महाबल कुमार जमालि कुमार के वर्णन के अनुसार उन्नत श्रेष्ठ प्रासाद में अपूर्व भोग भोगता हुआ जीवनयापन करने लगा ।

सूत्र - ५२३

उस काल और उस समय में तेरहवे तीर्थंकर अरहंत विमलनाथ के धर्मघोष अनगार थे । वे जातिसम्पन्न इत्यादि केशी स्वामी के समान थे, यावत् पाँच सौ अनगारों के परिवार के साथ अनुक्रम से विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर में सहस्राम्रवन उद्यान में पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे । हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक यावत् राजमार्गों पर बहुत-से लोग मुनि-आगमन की परस्पर चर्चा करने लगे यावत् जनता पर्युपासना करने लगी ।

बहुत-से मनुष्यों का कोलाहल एवं चर्चा सूनकर जमालिकुमार के समान महाबल कुमार को भी विचार हुआ उसने अपने कंचूकी पुरुष को बुलाकर कारण पूछा । कंचुकी पुरुष ने भी निवेदन किया–देवानुप्रिय ! विमलनाथ तीर्थंकर के प्रशिष्य श्री धर्मघोष अनगार यहाँ पधारे हैं । इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् यावत् महाबल कुमार भी

जमालिकुमार की तरह उत्तम रथ पर बैठकर उन्हें वन्दना करने गया । धर्मघोष अनगार ने भी केशीस्वामी के समान धर्मोपदेश दिया । सूनकर महाबल कुमार को भी जमालिकुमार के समान वैराग्य उत्पन्न हुआ । उसी प्रकार माता-पिता से अनगार धर्म में प्रव्रजित होने की अनुमति माँगी । विशेष यह है कि धर्मघोष अनगार से मैं मुण्डित होकर आगारवास से अनगार धर्म में प्रव्रजित होना चाहता हूँ । जमालिकुमार के समान उत्तर-प्रत्युत्तर हुए । विशेष यह है कि माता-पिता ने महाबल कुमार से कहा–हे पुत्र ! यह विपुल धर्म और उत्तम राजकुल में उत्पन्न हुईं कला-कुशल आठ कुलबालाओं को छोड़कर तुम क्यों दीक्षा ले रहे हो ? इत्यादि यावत् माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक महाबल कुमार से कहा–'हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए भी तुम्हारी राज्यश्री देखना चाहते हैं ।' यह सूनकर महाबल कुमार चूप रहे ।

इसके पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, शिवभद्र के राज्याभिषेक अनुसार महाबल कुमार के राज्याभिषेक का वर्णन समझ लेना, यावत् राज्याभिषेक किया, फिर हाथ जोड़कर महाबल कुमार को जय-विजय शब्दों से बधाया; तथा कहा–हे पुत्र ! कहो, हम तुम्हें क्या देवें ? तुम्हारे लिए हम क्या करें ? इत्यादि जमालि के समान जानना, यावत् महाबल कुमार ने धर्मघोष अनगार से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ।

दीक्षाग्रहण के पश्चात् महाबल अनगार ने धर्मघोष अनगार के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया तथा उपवास, बेला, तेला आदि बहुत-से विचित्र तपःकर्मों से आत्मा को भावित करते हुए पूरे बारह वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में मासिक संलेखना से साठ भक्त अनशन द्वारा छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक काल के अवसर पर काल करके ऊर्ध्वलोक में चन्द्र और सूर्य से भी ऊपर बहुत दूर, अम्बड़ के समान यावत् ब्रह्मलोककल्प में देवरूप में उत्पन्न हुए । महाबलदेव की दस सागरोपम की स्थिति थी । हे सुदर्शन ! वही महाबल का जीव तुम हो । तुम वहाँ दस सागरोपम तक दिव्य भोगों को भोगते हुए रह करके, वहाँ दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके, वहाँ के आयुष्य का, स्थिति का और भव का क्षय होने पर वहाँ से च्यवकर सीधे इस भरतक्षेत्र में वाणिज्यग्राम-नगर में, श्रेष्ठिकुल में पुत्ररूप से उत्पन्न हुए हो ।

सूत्र - ५२४

तत्पश्चात् हे सुदर्शन ! बालभाव से मुक्त होकर तुम विज्ञ और परिणतवय वाले हुए, यौवन अवस्था प्राप्त होने पर तुमने यथारूप स्थविरों से केवलि-प्ररूपित धर्म सूना । वह धर्म तुम्हें ईच्छित प्रतीच्छित और रुचिकर हुआ। हे सुदर्शन ! इस समय भी तुम जो कर रहे हो, अच्छा कर रहे हो ।

इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय और अपचय होता है । श्रमण भगवान महावीर से यह बात सूनकर और हृदय में धारण कर सुदर्शन श्रमणोपासक को शुभ अध्यवसाय से, शुभ परिणाम से और विशुद्ध होती हुई लेश्याओं से तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से और ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए संज्ञीपूर्व जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे अपने पूर्वभव की बात को सम्यक् रूप से जानने लगा ।

श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्वभव का स्मरण करा देने से सुदर्शन श्रेष्ठी के हृदय में दुगुनी श्रद्धा और संवेग उत्पन्न हुए । उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गए । भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा एवं वन्दना-नमस्कार करके बोला–भगवन् ! यावत् आप जैसा कहते हैं, वैसा ही है, सत्य है, यथार्थ है । ऐसा कहकर सुदर्शन सेठ उत्तरपूर्व दिशा में गया, इत्यादि यावत् सुदर्शन श्रेष्ठी ने प्रव्रज्या अंगीकार की । विशेष यह है कि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, पूरे बारह वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया; यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए । शेष पूर्ववत् । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ – उद्देशक-१२

सूत्र - ५२५

उस काल और उस समय में आलभिका नामकी नगरी थी । वहाँ शंखवन नामक उद्यान था । इस आलभिका नगरी में ऋषिभद्रपुत्र वगैरह बहुत-से श्रमणोपासक रहते थे । वे आढ्य यावत् अपरिभूत थे, जीव और अजीव (आदि तत्त्वों) के ज्ञाता थे, यावत् विचरण करते थे । उस समय एक दिन एक स्थान पर आकर एक साथ एकत्रित होकर बैठे

हुए उन श्रमणोपासकों में परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप हुआ ।

हे आर्यो ! देवलोकों में देवों की स्थिति कितने काल की है ? ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने उन श्रमणो-पासकों से कहा-आर्यो ! देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, उसके उपरांत एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् दस समय अधिक, संख्यात समय अधिक और असंख्यात समय अधिक, उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है । इसके उपरांत अधिक स्थिति वाले देव और देवलोक नहीं हैं । तदनन्तर उन श्रमणोपासकों ने ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के द्वारा इस प्रकार कही हुई यावत् प्ररूपित की हुई इस बात पर श्रद्धा न की, न प्रतीति की और न रुचि ही की; वे श्रमणोपासक जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में चले गए ।

सूत्र - ५२६

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर यावत् (आलभिका नगरी में) पधारे, यावत् परीषद् ने उनकी पर्युपासना की । तुंगिका नगरी के श्रमणोपासकों के समान आलभिका नगरी के वे श्रमणोपासक इस बात को सूनकर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए, यावत् भगवान की पर्युपासना करने लगे । तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों को तथा उस बड़ी परीषद् को धर्मकथा कही, यावत् वे आज्ञा के आराधक हुए ।

वे श्रमणोपासक भगवान महावीर के पास से धर्म-श्रवण कर एवं अवधारण करके हृष्ट-तुष्ट हुए । फिर वे स्वयं उठे और खड़े होकर उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और पूछा-भगवन् ! ऋषिभद्र-पुत्र श्रमणोपासक ने हमें इस प्रकार कहा, यावत् प्ररूपणा की-हे आर्यो ! देवलोकों में देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष है । उसके आगे एक-एक समय अधिक यावत् इसके बाद देव और देवलोक विच्छिन्न नहीं हैं । तो क्या भगवन् ! यह बात ऐसी ही है ? भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों को तथा उस बड़ी परीषद् को कहा-हे आर्यो! ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने जो तुमसे इस प्रकार कहा था, यावत् प्ररूपणा की थी कि देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति १०००० वर्ष की है, उसके आगे एक समय अधिक, यावत् इसके आगे देव और देवलोक विच्छिन्न है-यह अर्थ सत्य है । हे आर्यो ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि देवलोकों में देवों की यावत् उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है, यावत् इससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हो जाते हैं । आर्यो ! यह बात सर्वथा सत्य है

तदनन्तर उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान महावीर से यह समाधान सूनकर और हृदय में अवधारण कर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया; फिर जहाँ ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक था, वे वहाँ आए । ऋषिभद्रपुत्र श्रमणो-पासक के पास आकर उन्होंने उसे वन्दन-नमस्कार किया और उसकी बात को सत्य न मानने के लिए विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना की । फिर उन श्रमणोपासकों ने भगवान से कईं प्रश्न पूछे तथा उनके अर्थ ग्रहण किए और भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में चले गए ।

सूत्र - ५२७

तदनन्तर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके पूछा-भगवन् ! क्या ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के समीप मुण्डित होकर आगारवास से अनगारधर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ हैं? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं किन्तु यह ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक बहुत-से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासों से तथा यथोचित गृहीत तपःकर्मों द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ, वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन करेगा । फिर मासिक संलेखना द्वारा साठ भक्त का अनशन द्वारा छेदन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर तथा समाधि प्राप्त कर, काल के अवसर पर काल करके सौधर्मकल्प के अरुणाभ नामक विमान में देवरूप से उत्पन्न होगा । वहाँ ऋषिभद्रपुत्र-देव की भी चार पल्योपम की स्थिति होगी । भगवन् ! वह ऋषिभद्रपुत्र-देव उन देवलोक से आयुक्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय करके यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ? वह महाविदेहक्षेत्र में सिद्ध होगा, यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा ।

सूत्र - ५२८

पश्चात् किसी समय श्रमण भगवान महावीर भी आलभिका नगरी के शंखवन उद्यान से नीकलकर बाहर

जनपदों में विहार करने लगे ।

उस काल और उस समय में आलभिका नामकी नगरी थी । वहाँ शंखवन नामक उद्यान था । उस शंखवन उद्यान के न अति दूर और न अति निकट मुद्‌गल परिव्राजक रहता था । वह ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि शास्त्रों यावत् बहुत-से ब्राह्मण-विषयक नयों में सम्यक् निष्णात था । वह लगातार बेले-बेले का तपःकर्म करता हुआ तथा आतापनाभूमि में दोनों भुजाएं ऊंची करके यावत् आतापना लेता हुआ विचरण करता था । इस प्रकार से बेले-बेले का तपश्चरण करते हुए मुद्‌गल परिव्राजक को प्रकृति की भद्रता आदि के कारण शिवराजर्षि के समान विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ । उस समुत्पन्न विभंगज्ञान के कारण पंचम ब्रह्मलोक रूप कल्पमें रहे हुए देवों की स्थिति तक जानने-देखने लगा

तत्पश्चात् उस मुद्‌गल परिव्राजक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि-'मुझे अतिशय-ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं जानता हूँ कि देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, उसके उपरांत एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् असंख्यात समय अधिक, इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है उससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हैं ।' इस प्रकार उसने ऐसा निश्चय कर लिया । फिर वह आतापनाभूमि से नीचे ऊतरा और त्रिदण्ड, कुण्डिका, यावत् गैरिक वस्त्रों को लेकर आलभिका नगरी में जहाँ तापसों का मठ था, वहाँ आया वहाँ उसने अपने भण्डोपकरण रखे और आलभिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्ग पर एक-दूसरे से इस प्रकार कहने और प्ररूपणा करने लगा-'हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता-देखता हूँ कि देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति यावत् (दस सागरोपम की है) । इससे आगे देवों और देवलोकों का अभाव है ।' इस बात को सूनकर आलभिका नगरी के लोग परस्पर शिवराजर्षि के अभिलाप के समान कहने लगे यावत्-'हे देवानुप्रियो ! उनकी यह बात कैसे मानी जाए ?'

भगवान महावीर स्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ, यावत् परीषद् वापस लौटी । गौतमस्वामी उसी प्रकार नगरी में भिक्षाचर्या के लिए पधारे तथा बहुत-से लोगोंमें परस्पर चर्चा होती हुई सूनी । शेष पूर्ववत्, यावत् (भगवान ने कहा-) गौतम ! मुद्‌गल परिव्राजक का कथन असत्य है । मैं इस प्रकार प्ररूपणा करता हूँ, इस प्रकार प्रतिपादन करता हूँ यावत् इस प्रकार कथन करता हूँ-'देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति १०००० वर्ष की है । किन्तु इसके उपरांत एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत् उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है । इससे आगे देव और देवलोक विच्छिन्न हो गए हैं ।'' भगवन् ! क्या सौधर्म-देवलोक में वर्णसहित और वर्णरहित द्रव्य अन्योऽन्यबद्ध यावत् सम्बद्ध हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न । हाँ, गौतम ! हैं । इसी प्रकार क्या ईशान देवलोक में यावत् अच्युत देवलोक में तथा ग्रैवेयकविमानों में और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में भी वर्णादिसहित और वर्णादिरहित द्रव्य है ? हाँ, गौतम ! है । तदनन्तर वह महती परीषद् (धर्मोपदेश सूनकर) यावत् वापस लौट गई ।

तत्पश्चात् आलभिका नगरी में शृंगाटक, त्रिक यावत् राजमार्गों पर बहुत-से लोगों से यावत् मुद्‌गल परिव्राजक ने भगवान द्वारा दिया अपनी मान्यता के मिथ्या होने का निर्णय सूनकर इत्यादि सब वर्णन शिवराजर्षि के समान कहना, यावत् सर्वदुःखों से रहित होकर विचरते हैं; मुद्‌गल परिव्राजक ने भी अपने त्रिदण्ड, कुण्डिका आदि उपकरण लिए, भगवा वस्त्र पहने और वे आलभिका नगरी के मध्य में होकर नीकले, यावत् उनकी पर्युपासना की। भगवान द्वारा अपनी शंका का समाधान हो जाने पर मुद्‌गल परिव्राजक भी यावत् उत्तरपूर्वदिशा में गए और स्कन्दक की तरह त्रिदण्ड, कुण्डिका एवं भगवा वस्त्र एकान्त में छोड़कर यावत् प्रव्रजित हो गए । यावत् वे सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं यहाँ तक कहना चाहिए । 'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।'

शतक-११ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

५ / १ – भगवती-अङ्गसूत्र-५/१–हिन्दी अनुवाद पूर्ण

भगवती-अङ्गसूत्र-५ (भाग-१)

मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

५

भगवती/व्याख्याप्रज्ञप्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397